ध्रुवपद और उसका विकास

संगीतमहामहोपाध्याय विद्यावारिधि
आचार्य कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति

वक्तव्य

आज हमें 'ध्रुवपद और उसका विकास' नामक ग्रन्थ विद्वज्जनों के सामने उपस्थित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यह परिषद् द्वारा आयोजित भाषणमाला-कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत संगीत-विषयक भाषण का पुस्तक-रूप है। इसके लेखक संस्कृत, हिन्दी, अँगरेजी, फारसी आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् **संगीतमहामहोपाध्याय विद्यावारिधि आचार्य श्रीकैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति** हैं।

आचार्य बृहस्पति न केवल अनेक भाषाओं के माने हुए विद्वान् हैं, संगीत की शास्त्रीय परम्परा की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पद्धति के पारगामी प्रवक्ता भी हैं। पाण्डित्य के साथ संगीतशास्त्र की पारगामिता आपको अपनी कुलक्रमागत पैतृक धरोहर के रूप में प्राप्त हुई है। आप संगीत-कला के प्रमाणभूत विशेषज्ञ हैं।

ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है कि संगीतशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन विधा 'ध्रुवपद' इसका प्रतिपाद्य विषय है। विचारक मनीषी ने अपनी पैनी सूझ-बूझ तथा विचक्षण वाचोयुक्तियों से ध्रुवपद के उद्भव और विकास की परम्परा का महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। पूरी विवेचना वैदिक ऋचाओं, शास्त्रीय उक्तियों और आचार्य भरत तथा परवर्त्ती व्याख्याताओं के साक्ष्यभूत उद्धरणों के साथ ही ऐतिहासिक विवरणों तथा प्रामाणिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित की गई है। जहाँतक हमारी जानकारी है, हिन्दी-भाषा के माध्यम से ध्रुवपद-विषयक सांगोपांग विश्लेषण उपस्थित करनेवाला यह प्रथम ग्रन्थ है। इसकी महनीय उपलब्धि का लेखा-जोखा संगीत के विशेषज्ञ विद्वान् ही कर सकते हैं। इसलिए, हम इस ग्रन्थ के मूल्य और महत्त्व को आँकने का उत्तरदायित्व साहित्य और संगीत के विशेषज्ञों को ही सौंपते हैं।

इस गरिमापूर्ण और अछूते विषय के ग्रन्थ को प्रकाशित कर परिषद् सहज ही आह्लादित है और इसके लिए विद्वान् लेखक के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती है। साथ ही, जिज्ञासु पाठकों और नीरक्षीरविवेकी अधीती चिन्तकों से साग्रह अनुरोध करती है कि परिषद् के अन्य प्रकाशनों की भाँति इस ग्रन्थ को भी अपनाकर वे हमारे स्वीकृत सारस्वत अध्यवसाय को मान्यता देते हुए हमारी उत्साहपूर्ण प्रगति में स्फूर्त्ति तथा प्रेरणा का संचार करें।

पटना — विनीत

प्रबोधिनी एकादशी, २०३३ वि० — **हंसकुमार तिवारी**

२ नवम्बर, १९७६ ई० — निदेशक

दो शब्द

भगवत्कृपा से प्रस्तुत कृति के प्रकाशन का मुहूर्त्त आ गया और यह सुविज्ञ पाठकों के करकमलों में पहुँच रही है, यह मेरे लिए अत्यन्त हर्ष का अवसर है। प्रस्तुत दिशा में सम्भवतः यह सर्वप्रथम प्रयत्न है, अतः इसका दोषपूर्ण होना स्वाभाविक है, फिर भी मर्मज्ञ पाठकों को यदि इसमें कुछ भी उपयोगी मिला, तो लेखक का परिश्रम सफल होगा।

राजनीतिक कारणों से **महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त** की वह परम्परा उच्छिन्न हो गई, जो नाद के 'स्वरवान्' रूप पर भी विचार करती थी और 'अभिधानवान्' रूप पर भी। कहा जाता है कि **आचार्य अभिनवगुप्त** ने वर्त्तमान गुलमर्ग मार्ग पर स्थित 'मगम' नामक ग्राम के समीप अपने बारह सौ शिष्यों के साथ समाधि ली थी। सम्भव है, **महमूद गजनवी** के आक्रमणों के कारण आचार्य अभिनवगुप्त ने धर्मरक्षा के लिए यह निर्णय किया हो। अस्तु; यह सत्य है कि महामाहेश्वर भरत-नाट्यशास्त्र के अन्तिम व्याख्याता हुए। उनके पश्चात् ही सम्भवतः 'संगीत' और 'साहित्य' की धाराएँ पृथक्-पृथक् हो गईं। परिणाम यह हुआ कि साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों में पाठ्य काव्य तो विचार का विषय बना, गेय काव्य मौखिक परम्परा में होने के कारण कालकवलित हो गया।

हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में 'पद'-साहित्य भी आया और राज्याश्रित कवियों का वह काव्य भी, जिसको कवित्तों और सवैयों का आश्रय प्राप्त था; परन्तु इस तथ्य पर लोगों का ध्यान न गया कि 'घनाक्षरी' और 'सवैया' जैसे छन्द गेय होने के कारण भी राज-सभाओं में समादृत थे।

वह ध्रुवपद-साहित्य, जिसमें छन्द का बन्धन नहीं था, श्रेष्ठ आलोचकों द्वारा भी 'ऊबड़-खाबड़' समझा गया; क्योंकि उसमें आलोचकों को 'गति' और 'यति' के दर्शन न होते थे। फलतः, एक ओर जहाँ साहित्य-जगत् द्वारा रस-निर्झर ध्रुवपद-साहित्य की भी उपेक्षा हुई, वहाँ **भातखण्डे** जैसे अहिन्दीभाषियों ने ध्रुवपद-संग्रहों की ओर दृष्टिपात तक न किया; क्योंकि वे तो केवल स्वरलिपि चाहते थे, गेय विषय की ओर उनका ध्यान न था।

ऐसी स्थिति में इन पंक्तियों के लेखक को यह आशंका है कि इस ग्रन्थ को पढ़ेगा कौन? संगीतज्ञों को इसमें स्वरलिपियाँ न मिलेंगी और छन्द के मर्मज्ञ इसमें स्वच्छन्दता पायेंगे। फिर, भी जो सज्जन इस ग्रन्थ को कुतूहलपूर्वक उठायेंगे और इसकी विषय-सूची देखने का कष्ट करेंगे, उन्हें लगेगा कि इस ग्रन्थ में कुछ ऐसी बाते कहने की विनम्र चेष्टा है, जिन्हें हिन्दी-वाङ्मय में आना चाहिए था।

यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का शीर्षक 'वैदिक गान' है, तथापि इसमें 'साम' की अन्वर्थता ही वैदिकत्व है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ही वैदिकों के, क्रमशः चतुः-श्रुति, द्विश्रुति और त्रिश्रुति स्वर हैं, तथा समस्त 'स्वरविधि' में कारणभूत हैं।[१] नाट्य-

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए लेखक का ग्रन्थ 'संगीतचिन्तामणि' (द्वितीय संस्करण), प्रकाशक : संगीत-कार्यालय, हाथरस, पृ० २५-२६, १५१–१५३।

शास्त्र में संगीत सामवेद से ही संगृहीत हुआ है, अतः सप्तरूप तथा सप्तगीत का विवेचन इस अध्याय में है। ध्रुवाओं और प्रबन्धों के विषय में ज्ञातव्य सामग्री भी दी गई है और उन 'ध्रुव'-प्रबन्धों के सोलह भेद भी हैं, जो व्रजभाषा-ध्रुवपदों के बीज हैं।

द्वितीय अध्याय में संगीत की अनादि परम्परा के उच्छेद का इतिहास तो है ही, उन कारणों की भी चर्चा है, जिन्होंने विशेषतया **मुहम्मद गोरी** के आक्रमण के पश्चात् संगीत के क्षेत्र को प्रभावित किया। चिश्ती-परम्परा के सूफियों, उनके शिष्य-प्रशिष्यों और उनसे प्रभावित सम्राटों तथा अन्य राजपुरुषों की चर्चा इस अध्याय में है।

तीसरे अध्याय में ध्रुवपदकारों के आश्रयदाताओं की चर्चा है, जिनमें प्रतापी मुसलमान-सम्राट् भी हैं और कुछ हिन्दू-नरेश भी।

चतुर्थ अध्याय में **मानसिंह तोमर** के कृतित्व और उससे प्रभावित परम्परा का वर्णन है।

पंचम अध्याय में विभिन्न ध्रुवपदकारों का इतिवृत्त है, जिसमें अनेक कपोल-कल्पनाओं का निराकरण करके सत्य को उद्घाटित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

छठे अध्याय में ध्रुवपदों का शिल्प-विधान और साहित्यशास्त्रीय मूल्यांकन है।

परिशिष्ट 'अ' में आश्रयदाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद हैं और परिशिष्ट 'आ' में ध्रुवपदकारों की। इनमें अनेक ध्रुवपद पहली बार प्रकाश में आ रहे हैं।

रामपुर के 'रजा-पुस्तकालय' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ-भाण्डार के विद्वान् प्रबन्धक **मौ० इम्तियाज अली खाँ 'अर्शी'** ने मेरा ध्यान 'सहसरस' की ओर आकृष्ट किया, जो मुगल-सम्राट् शाहजहाँ के द्वारा कराया गया **नायक बख्श** के ध्रुवपदों का संग्रह है। मैंने इस संग्रह की चर्चा **कुमारी निर्मला जोशी** से की और उन्होंने इण्डिया-ऑफिस-लाइब्रेरी से 'सहसरस' की दो विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों की 'फोटोस्टैट'-कॉपियाँ मँगवाईं। अनेक दुर्निवार कारणों से हमें 'सहसरस' के सम्पादन का अवसर न मिला, परन्तु हर्ष का विषय है कि 'सहसरस' का प्रकाशन सन् १९७२ ई० में संगीत-नाटक-अकादमी के द्वारा हो चुका है। **डॉ० प्रेमलता शर्मा** के कुशल सम्पादन और विद्वत्तापूर्ण भूमिका से 'सहसरस' की श्रीवृद्धि हुई है। खेद है कि हम इस पुस्तक में 'सहसरस' की सामग्री का उपयोग नहीं कर सके।

मेरी सहधर्मिणी **श्रीमती सुलोचनाजी** ने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मेरा भार हल्का किया है और 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' के निदेशक **पं० हंसकुमार तिवारी** ने प्रशंसनीय तत्परता के साथ इस कृति को यथाशीघ्र प्रकाशित किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

विद्वद्वशंवद
बृहस्पति

भूमिका

आप संगीत के किसी भी विद्यार्थी से 'ध्रुवपद' की चर्चा करें, वह निस्संकोच कह देगा, 'ध्रुवपद' का आविष्कार **मानसिंह तोमर** ने किया; क्योंकि रागदर्पणकार **फकीरुल्लाह** ने औरंगजेब के युग में यही लिखा है। **भातखण्डेजी** ने ध्रुवपद की गान-शैली को मर्दाना और जोरदार कहा है, उनकी सम्मति में ध्रुवपद-गान में राग श्रेष्ठ रहता है। ऐतिहासिक तथ्य भी यह है कि **अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ** एवं **औरंगजेब** तक के दरबार में मूर्द्धन्य स्थान 'कलावन्तों' को ही प्राप्त था, जो ध्रुवपद-गायक या बीनकार थे, परन्तु 'ध्रुवपद' शब्द की अन्वर्थता अथवा 'ध्रुवपद' शब्द के मूल की ओर ध्यान देने की आवश्यकता आज संगीत का विद्यार्थी नहीं समझता।

यदि आप संगीत के सामान्य विद्यार्थी से यह पूछें कि 'ध्रुवपद' से पहले क्या गाया जाता था, तो आपको तत्काल उत्तर मिलेगा, 'प्रबन्ध' गाये जाते थे, वह यह नहीं जानता कि संगीत-जगत् में बहुप्रचलित 'बन्दिश' शब्द 'प्रबन्ध' का ही फारसी-अनुवाद है और ध्रुवपद भी प्रबन्ध का ही एक प्रकार है। इस पुस्तक के विद्वान् लेखक की स्थापना यह है कि **मानसिंह तोमर** ने 'ध्रुव' नामक प्रबन्ध-भेदों को अपने युग की लोकभाषा का सम्बल दिया। 'पद' शब्द का अर्थ सार्थक शब्दसमूह या भाषा है। वह 'पद', जो 'ध्रुव' नामक गेय प्रबन्धों में प्रयुक्त हो, 'ध्रुवपद' है; अतः 'ध्रुवपद' शब्द 'ध्रुव' नामक प्रबन्धों के भाषापक्ष का बोधक है।

'ध्रुव' नामक प्रबन्धों के सोलह भेद होते थे। **मानसिंह तोमर** के राज्याभिषेक से चालीस-पचास वर्ष पूर्व 'संगीतरत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार **कल्लिनाथ** ने लिखा है कि उनके युग में ध्रुवों के अक्षरसंख्या-नियम में कहीं-कहीं शिथिलता भी दिखाई देती है, अतः यह सिद्ध है कि 'ध्रुवपद' **मानसिंह तोमर** का आविष्कार नहीं है, अपितु **मानसिंह तोमर** ने उत्तर भारत में इसे पुनरुज्जीवित किया, लोकभाषा के माध्यम से यह सर्वजनप्रिय हुआ और राजसभा का लाड़ला होने के कारण यह अभिजात-वर्ग को भी प्रिय हुआ।

ध्रुवपद के पुनरुत्थान में लोगों को भारतीयता का पुनरुत्थान दिखाई देता है, जो खिलजियों, तुगलकों और पठान-बादशाहों के दरबार से बहिष्कृत थी।

अकबर की नीति ने जहाँ राजपूतों को मुगलों का पक्षधर बनाया, कलावन्तों और पण्डितों को दरबार में सम्माननीय स्थान दिलाया, वहाँ व्रजभाषा-कवियों को भी मुगल-विरुदावली का गायक बना दिया। इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि व्रजभाषा-काव्य के लौकिक विषय ही ध्रुवपदों के भी विषय हो गये, साथ ही घनाक्षरी और सवैया जैसे छन्द ध्रुवपद-गायकों और **प्रवीनराय** जैसी कोकिलकण्ठियों के कण्ठ से भी गुंजित होने लगे। स्थिति यह हो गई कि बिहारी ने 'तन्त्री-नाद, सरस राग, कवित्त-रस और रति-रंग' में सर्वांगमग्न व्यक्तियों को ही सहृदय माना। वह युग दरबारों में साहित्य और संगीत के अलौकिक संगम का था।

मुहम्मदशाह रँगीले के युग में **महाकवि देव** और उनके शिष्य प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक और बीनकार **नेमत खाँ 'सदारंग'** साहित्य और संगीत की इस परम्परा के अन्तिम प्रतिनिधि हुए।

इस युग के पश्चात् कुछ देशी रियासतों में इस परम्परा के कुछ अवशेष रहे, उत्तर-प्रदेश की भूतपूर्व मुस्लिम-रियासत रामपुर में **महाकवि ग्वाल, महाकवि दाग, महाकवि अमीर मीनाई, महापण्डित दत्तराम** जैसी विभूतियों को उन्नीसवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में आश्रय मिला। **महापण्डित दत्तराम** के प्रपौत्र एवं इस ग्रन्थ के लेखक **आचार्य बृहस्पति** इस युग में इस परम्परा के एकमात्र प्रतिनिधि हैं।

संगीत के शास्त्रीय पक्ष की ओर भी मुगल-दरबार का ध्यान गया था और अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के दरबार में वह 'संगीतरत्नाकर' विचार का विषय बनता था, जिसकी दक्षिण भारत में उपेक्षा हो रही थी।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भरत का संगीत-सिद्धान्त' में **भरत मुनि** की स्वरविधि को बोधगम्य बनाया और संगीत के इतिहास में पहली बार कहा :—"स्थायी स्वर पर आलम्बित, उसके संवादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और संचारी स्वरों द्वारा परिपोषित वह चेतना-विशेष 'रस' है, जिसकी अनुभूति के समय रजस्तमोगुणजनित उनकी रागद्वेषादि ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती हैं।" अपने एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीतचिन्तामणि' में उन्होंने संगीत के अन्य अनेक पक्षों पर विचार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जहाँ हमें 'ऋक्' से 'ध्रुव'-प्रबन्धों तक का संक्षिप्त परिचय देता है, वहाँ यह हमें संगीत की अनादि परम्परा के उच्छेद के कारण भी बताता है और विशेषतया यह सिद्ध करता है कि चिश्ती-परम्परा ने उत्तर और दक्षिण भारत के संगीत को प्रभावित किया, राग-वर्गीकरण का एक नया सिद्धान्त दिया।

मानसिंह तोमर के संकल्प और उसके परिणामों का तर्कशुद्ध विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है और ध्रुवपदकारों और उनके आश्रयदाताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव जानकारी देने की चेष्टा की गई है। विशेषतया, **तानसेन** के विषय में जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया गया है, वे चौंका देनेवाले हैं।

अपने एक अन्य ग्रन्थ 'मुसलमान और भारतीय संगीत' में उन्होंने इस तथ्य की ओर इंगित किया है कि **शाहजहाँ** के अनुसार **अकबर** ने **तानसेन** को 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि दी थी। संस्कृत-भाषा की ऐसी उपाधि केवल हिन्दू-जाति के लोगों को दी जाती थी।

'ध्रुवपदों का शिल्प-विधान' संगीत के विद्यार्थियों की आँखें खोल देनेवाला है, तो ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन काव्य के पारखियों को अनेक ध्रुवपद-संग्रहों की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित करता है।

दो परिशिष्टों में अनेक बहुमूल्य ध्रुवपद संगृहीत हैं, जिनमें शोधार्थियों के लिए प्रचुर सामग्री है।

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने 'रागमाला' नामक एक ध्रुवपद-संग्रह की सामग्री का भी उपयोग किया है, जिसकी फोटोस्टैट-कॉपी संगीत-नाटक-अकादमी में सुरक्षित है। पृ० २१६ पर 'रागमाला' के एक पृष्ठ का ब्लॉक छपा है। **अलाउद्दीन** और **गोपाल नायक** के साक्षात् को प्रयोजित करनेवाला साहित्य जहाँ इस संग्रह में उपलब्ध है, वहाँ **तानसेन**-कृत वह सैद्धान्तिक ध्रुवपद भी इसी संग्रह में मिला है, जो 'मूर्च्छना' और 'मेल' के रहस्य को स्पष्ट करता है।

उदयपुर-निवासी **कृष्णानन्द 'रागसागर'** ने 'रागकल्पद्रुम' के नाम से बारह लाख पच्चीस हजार गेय पदों का संग्रह किया था। **ग्रियर्सन** ने अपने 'साहित्य का इतिहास' में इस सामग्री का भरपूर उपयोग किया, परन्तु उसके पश्चात् गेय पदों के संग्रहों की ओर प्रायः लोगों का ध्यान नहीं गया। **आचार्य बृहस्पति** ने 'रागमाला' नामक जिस संग्रह का उपयोग किया है, उसे ग्वालियर-परम्परा का संग्रह कहा जा सकता है।

विशिष्ट घटना के अवसर पर तत्काल-निर्मित गेय पद 'समय' कहलाते हैं, ऐसे 'समय' दोनों परिशिष्टों में यत्र-तत्र हैं।

गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं। गीत में चार तत्त्व स्वर (राग), पद (भाषा), ताल और मार्ग हैं, फलतः शोध की दृष्टि से संगीत में आज सम्भावनाओं की कमी नहीं है, परन्तु अधिकारी मार्गदर्शक इस क्षेत्र में अँगुलियों पर गिनने योग्य हैं, उत्तरप्रदेश के एक विश्वविद्यालय में इस दिशा में प्रशस्य कार्य हुआ है, और स्थानों पर भी हुआ होगा, परन्तु निस्सन्देह इस दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

मतभेद का अर्थ युद्ध या वैर नहीं है, परन्तु शोध के महत्त्व से अपरिचित कुछ सज्जन **भातखण्डेजी** से मतभेद प्रकट करना 'कुफ्र' से कम नहीं समझते और यदि **तानसेन** के विषय में गुप्त तथ्यों का उद्घाटन किया जाय, तो बेचैन होने लगते हैं। जान-बूझकर अतथ्य से चिपटे रहना न तो बुद्धिमत्ता है, न ईमानदारी। प्रस्तुत ग्रन्थ में कही हुई कुछ बातों से भी लोगों को मतभेद हो सकता है, यदि उसके पीछे तर्क और प्रमाण का बल है, तो वह लेखक के लिए अवश्य स्वीकरणीय होगा।

यदि भूमिका-लेखिका और ग्रन्थ-लेखक परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में बँधे हों, साथ ही भूमिका-लेखिका ग्रन्थकार की शिष्या भी हो, तो उसका क्षेत्र सीमित हो जाता है, अतः मैं यह कहकर अपनी बात समाप्त करती हूँ कि ग्रन्थ संगीत-जगत् को सादर समर्पित है, वह नीरक्षीर-विवेक स्वयं कर लेगा।

संगीत-विभाग, दौलतराम-कॉलेज
दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुलोचना यजुर्वेदी

विषय-सूची

ध्रुवपद और उसका विकास

प्रथम अध्याय

वैदिक गान

(क) पूर्वाभास

भारतीय आस्तिक मान्यता के अनुसार वेद अपौरुषेय, अनादि एवं समस्त विद्याओं के स्रोत हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि कब किस व्यक्ति को वैदिक ऋचाओं के गान का विचार सूझा। परन्तु, यह अवश्य पता चलता है कि किसी काल में किसी युगपुरुष के मन में यह विचार आया था कि वैदिक ऋचाओं को गाकर प्रयुक्त किया जाय। गीयमान ऋचाओं के प्रयोग से गाता और श्रोता दोनों को आनन्द आया, अतः ऋचाओं का गेय रूप देवताओं के लिए भी प्रीतिकर माना गया। यह विश्वास हो गया कि देवता न **ऋक्** का आश्रय लेते हैं, न **यजुष्** का, अपितु वे ऋचाओं के स्वर-संवलित रूप **साम** का ही आश्रय लेते हैं।[1] ऋचाओं को **'वर्णन'**, **यजुष** को **'यजन'** और साम को **'स्तुति'** का साधन माना गया।[2] **साम** चारों वेदों में श्रेष्ठ कहा गया और भगवान् कृष्ण के मुख से, वेदव्यास के अनुसार, यह शब्द निकले कि, मैं वेदों में सामवेद हूँ।

साम की अन्वर्थता के सम्बन्ध में ऐतरेयब्राह्मण एक छोटी-सी कहानी प्रस्तुत करता है कि प्राचीन काल में **ऋक्** और **साम** थे। **सा** ही **ऋक्** थी और **अम** (आलापात्मक स्वर) साम था। ऋक् ने साम से कहा कि सन्तान के लिए हम दोनों दाम्पत्य-बन्धन में बँध जायें। साम ने अस्वीकृति व्यक्त करते हुए कहा कि मैं 'ज्यायान्' (ऋक् की अपेक्षा अधिक बड़ा) हूँ, इसलिए मेरी **महिमा** है। ऋक् ने दो रूप धारण करके वही याचना की और उसे पुनः वही उत्तर मिला। तब ऋक् ने तीन रूप धारण किये और साम का सम्बन्ध ऋचा से हो गया। इसलिए, तीन ऋचाओं से स्तुति करते हैं, तीन ऋचाओं से गाते हैं, साम तीन ऋचाओं से युक्त होता है। **सा** और **अम** परस्पर संयुक्त हो गये और उनकी संज्ञा 'साम' हो गई।[3]

---

१. देवा वै नर्चि न यजुष्यश्रयन्त ते सामन्येवाश्रयन्त।—तैत्तिरीयसंहिता, २।५।७।

२. ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति।—उपरिवत्, २।५।८।

३. ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्, सैव नाम ऋगासीदमो नाम साम, सा वा ऋक् सामोपावदन्मिथुनं सम्भवाव प्रजात्या इति, नेत्यब्रवीत् साम, ज्यायान् वा अतो मम महिमेति, ते द्वे भूत्वोपावदताम्, ते प्रति च न समवदत्, तास्तिस्रो भूत्वोपावदं-स्तत् तिसृभिः समभवत्, तस्मात् तिसृभिः स्तुवन्ति, तिसृभिरुद्गायन्ति, तिसृभिर्हि साम सम्मितम्... यद्वै तत्सा चामश्च समभवताम् तत् सामाभवत्, तत्साम्नः सामत्वम्।—ऐ० ब्रा०, १२।

गीति साम कहलाती है। गीतिरूप मन्त्र साम हैं। इस प्रकार के वचनों से युक्त साम नामक गीतिमन्त्र उपलब्ध होते हैं। साम शब्द का प्रयोग सामान्यतः गानमात्र में है।[१] इस प्रकार के वाक्य सिद्ध करते हैं कि साम शब्द का अर्थ ही गान है। गीत, वाद्य और नृत्य को वैदिकों की भाषा में त्रिवृत् शिल्प कहा जाता था।[२] पश्चाद्वर्त्ती युगों में इस त्रिवृत् शिल्प के लिए लोक ने 'सगीत' शब्द का प्रयोग किया।[३]

यज्ञ के अवसरों पर वैदिक काल के ऋषि वेद की ऋचाओं का गान करते थे। यह गान किसी नवीन ऋचा का भी हो सकता था और किसी प्राचीन ऋचा को भी गेय रूप देकर किया जा सकता था। किसी सामगान-कुशल वंश या सम्प्रदाय के ऋषि सामगान करते थे। ऋग्वेद में ऐसे वाक्य आते हैं, जिनसे अंगिरा के वंशजों द्वारा सामगान की चर्चा मिलती है।[४] भरद्वाज के द्वारा 'बृहत्' (सामभेद) का आवाहन,[५] वशिष्ठ के द्वारा 'रथन्तर' का धारण[६] और सुतसोम नामक यज्ञ में साम के द्वारा स्तुति,[७] ये तीनों ही ऋग्वेद में चर्चा का विषय बने हैं और भरद्वाज या वशिष्ठ ऋषियों को साम-विशेष का गायक सिद्ध करते हैं।

छन्दोबद्ध ऋचाओं को गानेवाले 'छन्दोग' कहलाते थे। उत्कृष्ट साम-गायकों को 'उद्गाता' कहा जाता था। पक्षियों के कलरव की, उद्गाता के सामगान से उपमा दी गई है।[८]

वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन बताता है कि वैदिक काल में संगीतजीवी जातियाँ भी उत्पन्न हो गई थीं। **सायणाचार्य** ने 'गान्धर्व' शब्द की निरुक्ति करते हुए कहा है कि गीतिरूप वचन ही 'गाः' है, उन्हें धारण करनेवाला ही गान्धर्व है।[९]

तैत्तिरीय आरण्यक में स्वान, भ्राट्, अन्धारि, बम्भारि, हस्त, सुहस्त, कृशानु, विश्वावसु, मूर्धन्वान्, सूर्यवर्चा और कृति नाम के ग्यारह गान्धर्वगणों की चर्चा है।[१०] तैत्तिरीयसंहिता के अनुसार, **स्वान** से **कृशानु** तक सात गान्धर्व सोमवल्ली-विक्रयी

---

१. गीतिषु सामाख्या। गीतिरूपाः मन्त्राः सामानि। इत्यादिवचनैः सामनाम्ना गीतिरूपा मन्त्रा लभ्यन्ते। सामशब्दस्तु सामान्यतः गानमात्र एव वर्त्तते।
—पूर्वार्चिक छन्दसी, पृ० ४६ (भाण्डारकर इंस्टीट्यूट)।

२. त्रिवृत् वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादित्रं च।—शांखायन ब्राह्मण (२६।५)।

३. गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते।—सं० र०, स्वर०, पृ० १३।

४. अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः। —ऋग्वेद, २।४३।२।

५. भरद्वाजो बृहदाचक्रे अग्ने। —उपरिवत्, १०।१८१।२।

६. उपरिवत्।

७. बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे।—उपरिवत्, ८।५५।१।

८. उद्गातेव शकुने साम गायसि। —उपरिवत्, २।४३।२।

९. गीतिरूपा वाचो गाः तान् धारयति इति गान्धर्वः।—अथर्ववेद, भाष्य, पृ० ७-८।

१०. तैत्तिरीय आरण्यक, १।९।३।

बताये गये हैं ।[1] तैत्तिरीयसंहिता में पुंजिकस्थला, कृतस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचन्ती, अनुम्लोचन्ती, विश्वाची, घृताची, उर्वशी और पूर्वचित्ति अप्सराओं के नाम आये हैं ।[2]

उर्वशी, मेनका और तिलोत्तमा नामक अप्सराएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं तथा चित्ररथ गन्धर्व की भी ख्याति पर्याप्त है ।

गायत्री छन्द में गान करनेवाले ऋषि **गायत्री**[3] और **गाथा** नामक सामभेद के गानेवाले **गाथी**[4] कहलाते थे । जिस ऋक्-समूह में किसी देवता-विशेष की प्रशंसा की जाती हो, उसे **गाथा** कहा जाता था । **सायण** के अनुसार, वे ऋचाएँ यमगाथाएँ हैं, जिनमें यम का यश गाया जाता है ।

गाथाओं का एक भेद 'नाराशंसी' भी था । तैत्तिरीय ब्राह्मण में नाराशंसी से सम्बद्ध एक मनोरंजक उक्ति है कि देवों ने वेद तथा अन्न का मल निकाल दिया । जो वेदों का मल था, वही **नाराशंसी** गाथा हुआ । अन्न के मल ने सुरा का रूप धारण किया । अतः, गायक एवं प्रमत्त से दान नहीं लेना चाहिए । जो लेगा, वह मल ग्रहण करेगा ।[5]

नाराशंसी गाथा का अर्थ आगे चलकर वह गान हो गया था, जिसमें राजा एवं अमात्य इत्यादि की प्रशंसा हो, फलतः इस कार्य को करनेवाले चाटुकारों और शराबियों के धन को अपवित्र माना जाने लगा था ।

देवताओं की प्रशंसा से युक्त गान वैदिक **साम** और लौकिक व्यक्तियों की प्रशंसा में गाया जानेवाला गान **गान्धर्व** था । इन दोनों प्रकार के गानों में निपुण गायकों की एकत्र गोष्ठियाँ भी हो सकती थीं ।

वैदिक संगीत से लौकिक संगीत की ओर :

किसी काल में ऋचाओं की भाषा लोकभाषा थी । कालान्तर में लोकभाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न हो गई । ऋचाओं के मूल रूप की रक्षा के लिए यह विधान किया गया था कि वैदिक वाक्यों के पर्यायवाची लौकिक वाक्यों को अदृष्ट फल की दृष्टि से वह महत्त्व नहीं दिया जा सकता, जो वैदिक संस्कृत में निबद्ध अनादि कहे जानेवाले वाक्यों को है । अतः, सामगान का रूप अक्षुण्ण रहा ।

एक युग में शैव सम्प्रदाय ने लौकिक वाक्यों का गान ऋक्, गाथा और साम की शैली में किया और वैदिक शैली में गीयमान लौकिक वाक्यों की संज्ञा भी **लौकिक ऋक्**,

---

१. तैत्तिरीयसंहिता, १।५।६ ।

२. उपरिवत् ।

३. गायन्ति त्वा गायत्रिणः ।—ऋ०, १।१०।१ ।

४. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् ।— ऋ०, १।७।१ ।

५. देवा वै ब्रह्मणश्चान्नस्य शमलमपाघ्नन् । यद् ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंस्यभवत् । यदन्नस्य सा सुरा । तस्माद्गायतः मत्तस्य च न प्रतिगृह्यम् । यत्प्रतिगृह्णीयात्, शमलं प्रतिगृह्णीयात् । —तै० ब्रा०, १।२।३ ।

लौकिक गाथा और **लौकिक साम** रखी। शैव सम्प्रदायों में कहा गया कि ऐसे गीतों का निर्माण **ब्रह्मा** ने **शिवस्तुति** के लिए किया है और इनसे मोक्षप्राप्ति होती है।

वैदिक छन्दों में गाने के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए 'ओंकार' और 'हिंकार' नामक अक्षरों का प्रयोग किया जाता था। लौकिक गीतों में प्रयोग के लिए इन दोनों वैदिक स्तोभाक्षरों का ग्रहण तो किया ही गया, दस और **स्तोभाक्षर** या **शुष्काक्षर** अस्तित्व में आये, जिन्हें ब्रह्मप्रोक्त कहा गया। इनका प्रयोजन छन्द और ताल में सामंजस्य स्थापित करना था।

शुष्काक्षरों तथा सार्थक वाक्यों से युक्त चौदह प्रकरण-गीतों की रचना हुई, जिनका विषय शिवस्तुति तक सीमित था।

इन प्रकरण-गीतों की चर्चा यथास्थान की जायगी। प्रकरण-गीतों में वैदिक छन्दों के 'वृत्त' नामक विकारों का उपयोग भी किया गया।

चौदहों प्रकरण-गीतों के वृत्तों की संज्ञा **ध्रुवा** थी, इसका सकारण विवेचन आगे किया जायगा।

नाट्य में संगीत :

प्रकरण-गीतों के प्रयोग को 'पूर्वरंग' में स्थान देकर इसका प्रयोजन शिव की प्रसन्नता बताया गया। 'ध्रुवा' की परिभाषा व्यापक हो गई और ध्रुवाओं में प्राकृत-भाषाओं का प्रयोग भी पात्र की हैसियत के अनुसार होने लगा।

नाट्य में छन्दों का विभाग **पाठ्य** एवं **नाट्य** दो वर्गों में कर दिया गया। ताल-योजना की दृष्टि से गेय छन्दों का चयन किया गया था। महाकाव्यों में प्रयुक्त अधिकांश छन्द पाठ्यमात्र हैं।

साथ ही, नाट्य में गृहीत संगीत में **रागों की जननी जातियों** का ग्रहण किया गया था और उनसे उत्पन्न रागों और उनमें विनियोज्य तालों का भी विकास एक सीमा तक हो चुका था।

प्रकरण-गीतों का समस्त संगीत नाटक के पूर्वरंग में मंगलार्थ ले लिया गया था, परन्तु प्रकरण-गीतों का उद्देश्य जहाँ शिवस्तुति था, वहाँ नाट्य में प्रयुज्यमान संगीत का प्रयोजन जन-मनोरंजन था। अदृष्ट फल की अपेक्षा इस दृष्टफल की ओर झुकाव नाट्य-संगीत की अपनी विशेषता है।

नाट्यवेद में सभी वर्णों को अधिकार दिया गया है। लोक-जीवन इसका आधार बना; क्योंकि सुखदुःखात्मक लोकावस्था का अभिनय ही नाट्य का क्षेत्र है।

मनुष्यों का गुणगान करनेवाले जिन कलाकारों को वैदिक युग में हेय दृष्टि से देखा गया, नाट्य में उनकी प्रतिष्ठा थी। नाट्यवेद के आदिम प्रयोक्ता **भरत** को ब्रह्मा का शिष्य कहा गया और उनका विशेषण **मुनि** हुआ। वे आप्त कोटि में रखे गये।

नाट्यशास्त्र में वर्णन है कि भरत के नाट्यवेद-कुशल पुत्रों ने ऋषियों की खिल्ली उड़ाई और उनकी चेष्टाओं का अभिनय करके उनका उपहास किया, परिणामतः भरत-पुत्रों को शाप मिला कि वे शूद्राचार हो जायेंगे। भरत-पुत्रों के इस कृत्य में वस्तुतः उस घृणा की प्रतिक्रिया है, जो संगीतजीवियों के प्रति वैदिकों के मन में थी।

अस्तु; नाट्य में नायक का महत्त्व सर्वाधिक था, जिसकी कुलीनता अनिवार्य थी। राजाओं को नायक मानकर नाटक लिखे गये। राजाओं के आश्रय में नाट्य, काव्य और संगीत का रूप फूला-फला।

'नाट्यशास्त्र' (काशी-संस्करण) के अनुसार, भगवान् वाल्मीकि भरत से नाट्यवेद के श्रवण करनेवाले ऋषियों में थे। लव-कुश के संगीतगुरु महर्षि वाल्मीकि ही थे, जिन्होंने अपने आदिकाव्य की रचना में श्रव्यता और गेयता दोनों का समावेश किया था।

नरेश या आश्रयदाता लोक में **इन्द्र** के स्थानीय थे। अतः, उनके आश्रित **वाग्गेयकार** (वाणी और गेय दोनों की रचना में निष्णात आचार्य) राजसभा के भरत मुनि, गायक गन्धर्व और गायिकाएँ अप्सराएँ, बनीं। इन्द्रसभा राजसभा के लिए आदर्श हो गई। जिसकी आशा मरने के पश्चात् की जाती थी, लौकिक रूप में उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए प्राणत्याग करना अनिवार्य न रहा।

महाकवि और संगीत :

काव्य में नाटक को सर्वश्रेष्ठ माना गया और जिन महाकवियों ने नाटक लिखे, वे संगीत-निष्णात थे। **भास, कालिदास** तथा अन्य महाकबियों के नाटक उनकी संगीत-मर्मज्ञता के प्रबल प्रमाण हैं।

नाट्य-रचना जिन्होंने न भी की, **वाल्मीकि** से **श्रीहर्ष** तक, वे कवि भी संगीत-निष्णात थे; क्योंकि कोई शब्द, कोई वाक्य, कोई कला ऐसी नहीं, जो काव्य का अंग न हो। 'वाल्मीकिरामायण' हो या 'नैषधीयचरित', ये महाकाव्य अपने रचयिताओं के संगीतनैपुण्य के प्रबल परिचायक हैं। इन्होंने सांगीतिक परिभाषाओं अथवा प्रयोगों की चर्चा चलते रूप में न करके साभिप्राय की है।

नाटक के समस्त अंगों के प्रगाढ परिचय के विना 'स्वप्नवासवदत्तम्' अथवा 'मालविकाग्निमित्रम्' की रचना असम्भव थी। राजाओं की गोद में खेलनेवाले इनके रचयिताओं को नाट्याचार्यों एवं कलाकारों का साहचर्य प्रतिक्षण प्राप्त था और उनकी दृष्टि मँजती रहती थी।

श्रव्यकाव्यों के राजाश्रित रचयिता संगीत-गोष्ठियों के प्राण थे, निपुण सुन्दरियाँ इनकी शिष्या होती थीं और अपने अभिनय से इन महाकवियों की कल्पनाओं को मूर्त्त रूप देती थीं। ये महाकवि झोंपड़ों में रहकर महलों के स्वप्न देखनेवाले नहीं थे। जिन महाकवियों के गेय काव्य प्राप्त नहीं, उन्हें असंगीतज्ञ समझना भारी भूल होगी। इनके श्रव्य-

काव्य तो पण्डित-परम्परा में सुरक्षित रहे, परन्तु न जाने इन जैसे महाकवियों की कितनी गेय रचनाएँ ऐसी होंगी, जिन्हें संगीतज्ञों के सम्प्रदाय अपनी निधि मानते होंगे।

आचार्य और संगीत :

भरत के रस-सम्बन्धी प्रसिद्ध सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' की कृपा से ही आज हमें जिन मीमांसक आचार्य **भट्टलोल्लट**, नैयायिक आचार्य **शंकुक**, सांख्यवादी आचार्य **भट्टनायक** एवं आलंकारिक आचार्य **अभिनवगुप्त** का नाम याद रह सका है, वे सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र के समर्थ व्याख्याता थे। इसमें अन्तिम आठ अध्यायों का विषय विशुद्ध संगीत है।

(ख) ध्रुवा और प्रबन्ध

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार चराचर जगत् नाद से उत्पन्न हुआ है, नाद ही जगत् में व्याप्त है, वही परायोनि है।[1] नादब्रह्म समस्त भूतों का चैतन्य है, उससे पृथक् चराचर प्रपंच की प्रतीति अविद्या के कारण होती है। आनन्दरूप नाद उपास्य है।[2]

ब्रह्मा, विष्णु, परा शक्ति एवं महेश्वर नादरूप हैं। इनके नादात्मक होने के कारण नाद की उपासना से ही इनकी उपासना भी स्वतः हो जाती है।[3]

नाद के दो भेद--'अनाहत' और 'आहत' हैं।[4] 'अनाहत' नाद महाशून्य में तथा मानव-हृदय में स्थित दहराकाश में स्वतः गुंजित होता रहता है। आहत की उत्पत्ति प्रयत्न से होती है। दूसरे शब्दों में हम 'अनाहत' को निर्गुण और 'आहत' को सगुण कह सकते हैं। निर्गुण की उपासना से 'मुक्ति' और सगुण की उपासना से भुक्ति की प्राप्ति होती है।[5]

कुछ कहने की इच्छा होने पर आत्मा से मन को प्रेरणा मिलती है, मन देह में स्थित वह्नि का आहनन करता है, आहत वह्नि वायु को प्रेरणा देती है। ब्रह्मग्रन्थि में स्थित वायु क्रमशः ऊर्ध्वमार्ग की ओर संचरण करता हुआ नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा में

---

१. ध्वनिर्योनिः परा ज्ञेया ध्वनिः सर्वस्य कारणम्।
आक्रान्तं ध्वनिना सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥--बृहद्देशी, पृ० २।

२. चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे॥--सं० र०, प्र० खं०, अ० सं०, पृ० ६२-६३।

३. नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनः।
नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वरः॥--बृहद्देशी, पृ० २।
नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः॥--सं० र०, प्र० खं०, पृ० ६३।

४. आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।--सं० र०, प्र० खं०, पृ० २१।

५. तत्र स्यात् सगुणाद् ध्यानाद् भुक्तिर्मुक्तिस्तु निर्गुणात्।--उपरिवत्, पृ० ६१।

ध्वनि का आविर्भाव करता है।[१] मानव के शरीर में आहत नाद की उत्पत्ति का यही प्रकार है।

आहत नाद की उपासना करने से भी अनाहत की प्राप्ति उसी प्रकार सम्भव है, जिस प्रकार मणि की प्रभा से आकृष्ट व्यक्ति के लिए मणि की प्राप्ति।[२]

आहत नाद के व्यवहार्य रूप दो हैं : 'भाषा' और 'गीत'। 'गीत' का पारिभाषिक अर्थ रंजक स्वरसन्निवेश-विशेष है।

'भाषा' और 'गीत' की पृथक्-पृथक् सत्ता है, दोनों का ही कार्य भावबोधन है और दोनों परस्पर पूरक हैं। 'गीत' भावमात्र का बोधक होता है, भाव के प्रगाढत्व अथवा परिमाण का बोधन 'गीत' का कार्य है, परन्तु वह भाव या क्रिया के काल अथवा पृथक्-पृथक् पदार्थों के बोधन में असमर्थ है। इसी वास्तविक उतार-चढ़ाव की सहायता के विना वाक्य वास्तविक अर्थ का बोध नहीं कराता, कभी-कभी तो विशिष्ट बल के अभाव अथवा अनुचित प्रयोग से अपेक्षित अर्थ से विपरीत अर्थ का बोधन भी कराने लगता है।

आंगिक चेष्टाएँ भी भावाभिव्यक्ति का साधन हैं।[३] मौन धारण करनेवाले, मूक या अत्यन्त दूर पर स्थित व्यक्ति आंगिक चेष्टाओं से अपने भाव की अभिव्यक्ति करते हैं।

गति से भी भाव-व्यंजना होती है।[४] प्रकृति (पात्र का स्वभाव), रस, अवस्था, देश और काल के भेद से 'गति' में भेद होता है। उत्तम पात्रों की गति धैर्ययुक्त, मध्यम पात्रों की गति मध्यम और अधम पात्रों की गति प्रायः द्रुत होती है। इस प्रकार, गति पात्रों के सत्त्व या स्वभाव का परिचय देती है।[५]

---

१. आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः।
देहस्थं वह्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वपथे चरन्।
नाभिहृत्कण्ठमूर्धास्येष्वाविर्भावयति ध्वनिम्॥—सं० र०, प्र० खं०, पृ० ६४।

२. परावाक् पर्यायस्य ब्रह्मशक्तेर्नादस्य ब्रह्मणोऽत्यन्तप्रत्यासन्नत्वात्तदुपासनायां कृतायां ब्रह्मप्राप्तिर्मणिप्रभाप्रवृत्तस्य मणिलाभवद्भवेदिति।—कलानिधि, प्रथम खण्ड, पृ० ६३।

३. तथैव व्यञ्जकत्वं... वाचकानां शब्दानामवाचकानां च गीतध्वनीनामशब्दरूपाणां च चेष्टादीनां यत्सर्वेषामनुभवसिद्धमेव तत्केनापह्नूयते।—ध्व०, कारिका ३३, वृ०, पृ० ३७२।

४ गतिश्च प्रकृतिं 'रसमवस्थां देशं कालं चापेक्ष्य वक्तव्या।'—अभिनव०, ना० शा०, गा० सं०, अध्याय १२, पृ० १२६।

५. धैर्योपपन्ना गतिरुत्तमानां मध्या गतिर्मध्यमसम्मतानाम्।
द्रुता गतिश्च प्रचुराधमानां लयत्रयं सत्त्ववशेन योज्यम्॥
—ना० शा०, गा० सं०, अ० १२, श्लोक १३।

'लय' भी भाव-व्यंजना में कारण है। 'हास' या 'रति' की स्थिति में हमारी क्रियाएँ मध्यमलय-युक्त होती हैं। करुणापूर्ण स्थिति में हमारी चेष्टाएँ शिथिल हो जाती हैं, फलतः हमारी समस्त क्रियाएँ विलम्बित होती हैं। उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा और भय की अवस्था में हमारी चेष्टाएँ द्रुत होती हैं। इसीलिए, शृंगार एवं हास्य में 'मध्यम', करुण में 'विलम्बित' तथा वीर, रौद्र, बीभत्स और अद्‍भुत एवं भयानक रसों में 'द्रुत' लय विनियुक्त हैं।[1]

ज्वरार्त्त, क्षुधार्त्त, तपःश्रान्त, भयान्वित, विस्मित, अवहित्थयुक्त (लज्जा, भय, पराजय, गौरव, कुटिलता इत्यादि भावों के कारण अपने आकार के प्रच्छादन में प्रयत्नशील), औत्सुक्ययुक्त, विरही, शोकयुक्त और स्वच्छन्द विहार के लिए घूमनेवाले व्यक्ति की गति भी विलम्बित होती है।

बान्धवों का अनिष्ट सुनने, त्रस्त होने, अद्‍भुत वस्तु के दर्शन की उत्सुकता एवं प्रयोजन के शीघ्र सम्पादन की इच्छा होने पर गति 'द्रुत' होती है।[2] चिन्तित व्यक्ति की गति मध्यम होती है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि चाल (गति) भी मानव की मनःस्थिति का बोध कराती है।

अन्धकार, नदी, नाव, प्रासाद पर चढ़ने-उतरने, वृक्ष पर चढ़ने इत्यादि के समय भी स्वभावतः गति में परिवर्त्तन हो जाता है। परिणामस्वरूप, 'गति' स्थान की भी परिचायिका है।

वार्द्धक्य, उन्मत्तता, पंगुता, वामनता इत्यादि से भी गति प्रभावित होती है, अतः उससे अवस्थाओं का बोध होता है।

---

१. द्रुतमध्यविलम्बितास्त्रयो लया रसेषूपपाद्याः। तत्र हास्यशृङ्गारयोर्मध्यलयः, करुणे विलम्बितो वीररौद्राद्‍भुतबीभत्सभयानकेषु द्रुत इति।—ना० शा०, गा० सं०, पृ० ३९९।

२. ज्वरार्त्ते च क्षुधार्त्ते च तपःश्रान्ते भयान्विते।
विस्मये चावहित्थे च तथौत्सुक्यसमन्विते॥
शृङ्गारे चैव शोके च स्वच्छन्दगमने तथा।
गतिः स्थितलया कार्याधिकलान्तरपातिता॥
पुनश्चिन्तान्विते चैव गतिः कार्या चतुष्कला।
अस्वस्थकामिते चैव भये वित्रासिते तथा।
आवेगे चैव हर्षे च कार्ये यच्च त्वरान्विते।
अनिष्टश्रवणे चैव क्षेपे चाद्‍भुतदर्शने॥
अपि चात्ययिके कार्ये दुःखिते शत्रुमार्गणे।
अपराद्धानुसरणे श्वापदानुगतौ तथा॥

—ना० शा०, गा० सं०, अ० १२, पृ० १३८-१३९।

ध्रुवालक्षण :

भाषा स्वर, गति इत्यादि आवश्यक व्यंजक तत्त्वों को लेकर 'ध्रुवा' की सृष्टि हुई। अभिनगुप्त का कथन है कि 'गीति' का आधार नियत 'पदसमूह' ध्रुवा कहलाता है।[1] वाक्य, वर्ण (विशिष्ट सांगीतिक स्वर-सन्निवेश), सांगीतिक अलंकार, यति, पाणि और लय के 'ध्रुव' (नित्य) रूप में अन्योन्याश्रित रूप को 'ध्रुवा' कहते हैं।[2] भरत का कथन है कि सप्तरूप के प्रमाण और अंग भी ध्रुवा कहलाते हैं और 'ऋक्' (गीतविशेष) 'गाथा' तथा 'पाणि' भी 'ध्रुवा' के ही अन्तर्गत हैं।[3]

प्रकरण-गीत :

प्रकरण-गीत चौदह हैं। इनमें से सात 'गीतक' और सात 'गीत' कहलाते हैं। गीतकों की ही संज्ञा 'सप्तरूप' भी है। इन चौदहों प्रकरण-गीतों का विनियोग ब्रह्मा ने 'शिवस्तुति' में किया है।[4]

ये प्रकरण-गीत तालप्रधान होते हैं, इसीलिए प्राचीन संगीताचार्यों ने इनकी गणना अपने ग्रन्थों के ताल-प्रकरण में की है। सप्तरूप गीतों के कुछ अंग छन्दोबद्ध भी हो सकते हैं, उनकी संज्ञा ध्रुवा है; क्योंकि ध्रुवा के लिए छन्दोबद्धता अनिवार्य है[5], परन्तु साथ-ही-साथ भरत की व्यवस्था यह भी है कि गान-समाश्रित पद अवृत्त होता ही नहीं।[6] छन्दोहीन शब्द की सत्ता सम्भव नहीं और न छन्द ही शब्दहीन होता है।[7]

---

१. 'ध्रुवा'—गीत्याधारो नियतः पदसमूहः।'—भ०, ना० शा०, गा० सं० २, अध्या० ६, पृ० २७०।

२. वाक्यवर्णा ह्यलङ्कारा यतयः पाणयो लयाः।
ध्रुवमन्योन्यसम्बद्धा यस्मात्तस्माद् ध्रुवाः स्मृताः॥—भ०, ब० सं०, पृ० ५३।

३. या ऋचः पाणिका गाथाः सप्तरूपाङ्गमेव च।
सप्तरूपप्रमाणं च तद्ध्रुवेत्यभिसंज्ञितम्॥—उपरिवत्, पृ० ५३३।

४. शिवस्तुतौ प्रयोज्यानि मोक्षाय विदधे विधिः।—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० २९।

५. यान्यङ्गानि कलाश्चैव गीतकान्तर्गतानि तु।
तानि छन्दोगतैर्वृत्तैर्विभाव्यन्ते ध्रुवास्तथा॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३३।
यानि चैव निबद्धानि छन्दोवृत्तविधानतः।
ध्रुवासंज्ञानि पूर्वाणि तानि सर्वाणि रञ्जयेत्॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३६।

६. नास्ति किञ्चिदवृत्तं तु पदं गानसमाश्रयम्।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५९७।

७. छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दः शब्दवर्जितम्।—ना० शा०, गा० सं० १, अ० १४, पृ० २३५।

सप्तरूप (गीतक) :

सप्तगीतकों की संज्ञा क्रमशः **मद्रक, अपरान्तक, उल्लोप्य, प्रकरी, ओवेणक, रोविन्दक** और **उत्तर** है ।[१]

सप्तगीत :

सप्तगीतों की संज्ञा **छन्दक, आसारित, वर्द्धमानक, पाणिक, ऋक्, गाथा** और **साम** है ।[२]

सप्तरूप में प्रयोज्य अंग :

सप्तरूपों में ताल की प्रधानता होती है । उनके कुछ विशिष्ट अंग छन्दोबद्ध होते हैं । ये अंग ताल, वाक्य, स्वर-सन्निवेश और छन्द के सामंजस्य के कारण 'ध्रुवा' कहलाते हैं । सप्तरूपों का छन्दोहीन भाग 'ध्रुवा' नहीं कहलाता ।

विभिन्न सप्तरूपों में आनेवाले 'अंग' निम्नांकित हैं :

मुख, प्रतिमुख, वैहायसिक, स्थित, प्रवृत्त, वज्र, सन्धि, संहरण, प्रस्तार, माषघात, उपवर्त्तन, उपपात, प्रवेणी, चतुरस्र, शीर्षक, संविष्टक, अन्ताहरण, महाजनिक ।[३]

सप्तगीतों में ध्रुवाएँ : सप्तगीतों में 'ऋक्', 'पाणिका' और 'गाथा' को 'ध्रुवा' कहा जाता है । इनका सम्पूर्ण रूप छन्दोबद्ध होता है । इनकी गणना लौकिक गान में है, परन्तु वैदिक गान से इनका सीधा सम्बन्ध है ।

'ऋक्'[४] : 'ऋक्' नामक गीत के गान में अष्टाक्षरचरणयुक्त अनुष्टुप् छन्द से द्वादशाक्षरचरणयुक्त 'जगती' छन्द तक का प्रयोग होता है । ये छन्द पाँच हैं :

---

१. ....तेषामाद्यं तु मद्रकम् ।
अपरान्तकमुल्लोप्यं प्रकर्यौवेणकं ततः ।
रोविन्दकोत्तरे सप्त गीतकानीत्यवादिषुः ।।—सं० र०, अ० स०, ताला०, पृ० २६ ।

२. छन्दकासारिते वर्द्धमानकं पाणिकं तथा ।
ऋचो गाथाश्च सामानि गीतानीति चतुर्दश ।।—उपरिवत् ।

३. मुखं प्रतिमुखं चैव वैहायसिकमेव च ।
स्थितप्रवृत्ते वज्रं च सन्धिः संहरणं तथा ।।
प्रस्तारो माषघातः स्यादुपवर्त्तनमेव च ।
उपघातः (उपपातः ?) प्रवेण्यौ (णी ?) च चतुरस्रं सशीर्षकम् ।
संपि (वि ?) ष्टकान्ताहरणे माहाजनिकमुच्यते (मेव च) ।।
ध्रुवाणामङ्गसंज्ञानि पञ्चानामपि नित्यशः ।—ना० शा०, ब० सं०, अ० ३२, पृ० ५३२-५३३ ।

४. आरभ्यानुष्टुभं वृत्तैर्जगत्यन्तैः पदैरपि ।
लौकिकैर्वैदिकैर्वापि गातव्या मृचमूचिरे ।।

अष्टाक्षरचरणयुक्त 'अनुष्टुभ्', नवाक्षरचरणयुक्त 'बृहती', दशाक्षरचरणयुक्त 'पंक्ति', एकादशाक्षरचरणयुक्त 'त्रिष्टुप्' तथा द्वादशाक्षरचरणयुक्त 'जगती' इन पाँचों छन्दों से उत्पन्न 'वृत्तों' का प्रयोग भी 'ऋक्' में होना चाहिए। इस प्रकार, वैदिक गान में प्रयोज्य इन छन्दों के मूल रूप तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले लौकिक वृत्त, दोनों ही 'ऋक्' में प्रयुक्त होते हैं।

'ऋक्' गीत में वैदिक संस्कृत का भी प्रयोग किया जा सकता है और लौकिक संस्कृत का भी।

तालशास्त्र की एक मात्रा का परिमाण पंचनिमेषकाल है, जिसकी संज्ञा 'लघु' है। इससे द्विगुण, अर्थात् दशनिमेषकाल को 'गुरु' या 'कला' कहते हैं।[१] 'ऋक्' में अड़तालीस 'कलाएँ' या छियानब्बे 'मात्राएँ' होती हैं। एक 'कला' में ही अक्षर का प्रयोग होना चाहिए।

छन्दःशास्त्र एवं शब्दशास्त्र में एक लघु अक्षर का परिमाण एक निमेष होता है और तालशास्त्र में 'पंचनिमेष'। छन्द का 'गुरु' अक्षर दो निमेषों का होता है और ताल का दस निमेषों का। अतः, तालशास्त्रीय 'गुरु' का प्रमाण छन्द के दस 'लघु' के समान होता है। इस बात को यों कहा जा सकता है कि छन्द का एक 'लघु' जब ताल के 'लघु' काल में प्रयुक्त होगा, तब उसका उच्चारण-काल पंचनिमेष होगा। इस काल में छन्द के 'प्लुत' का, एक 'गुरु' और एक 'प्लुत' का, पाँच लघुओं का, दो 'गुरु', एक 'लघु' का एवं एक गुरु तथा दो लघुओं का प्रयोग सुविधापूर्वक हो सकेगा।

एक 'कला' (तालशास्त्रीय गुरु, अर्थात् दशनिमेषकाल) में एक छन्दःशास्त्रीय अक्षर का गान 'ऋक्' में विहित है।

यदि पूर्वोक्त छन्दों में से किसी के अक्षरों से अड़तालीस कलाओं की पूर्त्ति न हो सके, तो ब्रह्मप्रोक्त 'स्तोभाक्षरों' से अवशिष्ट कलाओं की पूर्त्ति कर देनी चाहिए। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्थिति स्पष्ट होती है।

(अ) 'अनुष्टुप्' के एक चरण में आठ अक्षर होते हैं। ऐसे छह चरणों में अड़तालीस अक्षर होते हैं। अतः, अनुष्टुप् के छह चरणों का एक-एक अक्षर एक-एक कला में गाने से ऋक् की अड़तालीस कलाओं का सामंजस्य छन्द के साथ हो जाता है। यहाँ स्तोभाक्षरों के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं।

एकाक्षराः कला अष्टाचत्वारिंशदिहोदिताः।
कलानां पूरणं मन्त्रपदैः स्तोभाक्षरैरपि॥
तान्यत्र ब्रह्मगीतानि निर्दिश्यन्तेऽधुना यथा।
ओङ्कारश्च हकारोऽपि स्वरव्यञ्जनसंयुतः॥
त्रिकलः षट्कलो वात्र स्तोभः स्यान्मुनिसम्मतः।
प्रस्तावादीनि सप्तापि सामाङ्गान्यत्र चावदन्॥
यथाशोभं विदारी च वर्णांश्च रेचयेदिह। सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १२९।

१. निमेषाः पञ्च मात्रा स्यात्।—ना० शा०, ब० सं०, पा० टि० में पाठान्तर, पृ० ४७५।

२. मात्राद्वयं गुरुः।—सि० भू०, सं० र०, ताला०, पृ० ८।

(आ) 'बृहती' छन्द के एक चरण में नौ अक्षर होते हैं। ऐसे पाँच चरणों में अक्षर-संख्या पैंतालीस होती है, अड़तालीस कलाओं से सामंजस्य करने के लिए छन्द के पैंतालीस अक्षरों के साथ तीन स्तोभाक्षरों का प्रयोग तीन कलाओं में करने से छन्द और ताल में सामंजस्य हो जाता है।

(इ) 'पंक्ति' छन्द के एक चरण में दस अक्षर होते हैं। ऐसे चार चरणों की अक्षर-संख्या ४० होती है। इनमें स्तोभाक्षर सम्मिलित करने से छन्द और ताल का सामंजस्य हो जाता है।

(ई) 'त्रिष्टुप्' के एक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। ऐसे चार चरणों में चौआलीस अक्षर हुए। चार स्तोभाक्षर सम्मिलित करके अड़तालीस कलाओं से सामंजस्य बैठाया जाता है।

(उ) 'जगती' के एक चरण में बारह मात्राएँ होती हैं। ऐसे चार चरणों से अड़तालीस अक्षरों की संख्या पूरी हो जाती है। स्तोभाक्षरों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती।

स्तोभाक्षर : स्तोभाक्षरों से बने हुए पद दस हैं, जो ब्रह्मप्रोक्त हैं : १. झण्टुं, २. जगतिय, ३. वलितक, ४. कुचझल, ५. तितिझल, ६. पशुपति, ७. दिगिदिगि, ८. दिग्रे, ९. गणपति, १०. तितिधा।[1]

'झण्टुं' के स्थान पर 'ऋण्टुं', 'जगतिय' के स्थान पर 'जगतिप', 'वलितक' के स्थान पर 'वलिकित', 'तितिझल' के स्थान पर 'गितिकल', 'दिगिदिगि' के स्थान पर 'दिगिनिगि', 'दिग्रे' के स्थान पर 'वादिर्गो', अथवा 'वादिर्गो' और 'तितिधा' के स्थान पर 'तिचा' पाठ भी मिलता है। 'वादिर्गो' और 'तिचा' सर्वथा अशुद्ध है; क्योंकि प्रत्येक स्तोभपद का परिमाण छन्दःशास्त्रीय चार मात्राओं के बराबर होना चाहिए, जो इनमें पूरा नहीं होता।

व्यंजनयुक्त 'ओंकार' और 'स्वरसहित' 'हकार' का प्रयोग भी स्तोभाक्षर के रूप में होता है। वैदिक ऋचाओं के गान में यही स्तोभाक्षर होते हैं। व्यंजनयुक्त ओंकार तथा स्वरसहित हकार को तीन या छह कलाओं के काल में प्रयुक्त करना चाहिए। वैदिक ऋचाओं के गान में पदपूरण लौकिक स्तोभाक्षरों के स्थान पर मन्त्र के शब्दों से होना चाहिए।

---

१. (अ) 'झण्टुं जगतिय वलिकित कुछझल तितिझल पशुपति दिगिदिगि दिग्रे गणपति तितिधा।'—सं० र०, अ० सं० ताला०, पृ० १२९।

(आ) 'झण्टुं जगतिय वलितक कुचझल तितिझल पशुपति दिगिदिगि, वादिर्गो गणपति तितिधा'।—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० ४२६।

(इ) 'झण्टुं, जगतिप, वलितक, कुचझल, गितिकल, पशुपति, दिगिनिगि, दिग्रे, गणपति, तिचा।'—नान्यदेव, भ० को०, पृ० ७४।

गाथा[1]

गाथा में एक 'कला' के अन्तर्गत चार अक्षरों का प्रयोग विहित है। एक सौ अट्ठाईस कलाएँ 'गाथा' में होती हैं। कलाओं की पूर्ति 'मात्रावृत्तों' एवं 'स्तोभाक्षरों से होती है। 'एकक' नामक गीतांग का प्रयोग 'गाथा' में होता है तथा सामवेद के प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन नामक अंगों का प्रयोग-बाहुल्य होता है।

साम[2] : 'साम' नामक गीत में वैदिक साम की भाँति स्तोभ-शैली का प्रयोग होता है। वैदिक साम के पाँच अंग 'प्रस्ताव', 'उद्गीथ', 'प्रतिहार', 'उपद्रव' और 'निधन' की संज्ञा लौकिक साम में क्रमशः 'उद्ग्राह', 'अनुद्ग्राह', 'सम्बन्ध', 'ध्रुवक' और 'आभोग' हो जाता है। कलापूरण के लिए लौकिक 'साम' में वैदिक साम के ओंकार और हिंकार का प्रयोग होता है, अन्य स्तोभाक्षरों का नहीं।

षडक्षरचरण 'गायत्री' से चतुर्विंशत्यक्षरचरण 'संकृति' तक के छन्दों का प्रयोग लौकिक साम में होता है।

कुछ लोगों के मत में 'गाथा' में छियानब्बे कलाएँ होती हैं और 'साम' में उससे आधी, अर्थात् अड़तालीस कलाएँ।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सप्तरूपों, अर्थात् 'मद्रक' इत्यादि गीतकों में प्रयोज्य 'मुख', 'प्रतिमुख' इत्यादि अंगों में काव्यरचना की स्वतन्त्रता है। हाँ, उसका विषय 'शिवस्तुति' ही होना चाहिए। ऋक्, गाथा, पाणिका और साम में भी काव्यरचना के लिए स्वतन्त्रता है।

वैदिक पदों (शब्दों) के स्थान पर लौकिक पदों के प्रयोग की अनुमति हमें 'ऋक्', 'गाथा', 'पाणि' और 'साम' जैसे गीतों में भी है।

---

१. कला मुनिजनैरुक्ता गाथायाश्चतुरक्षरा।
अध्यष्टाविंशतिशतं कलानां तत्र कीर्त्तितम्॥
मात्रावृत्तैः कलानां च पूर्तिः स्तोभाक्षरैरपि।
कर्त्तव्यान्येककान्यत्रवर्णालंकारगीतयः ॥
सामाङ्गानि च भूयांसि विविधानामिहाल्पता।—सं० र०, अ०सं०, ताला०, पृ० १३१।

२. स्तोभभङ्गीं विजानीयात्साम्नो वैदिकसामवत्॥
ब्रह्मणा च पुरा गीतं प्रस्तावोद्गीथकौ तथा।
प्रतिहारोपद्रवौ च निधनं पञ्चमं मतम्।
ततो हिङ्कार ओङ्कारः सप्ताङ्गानीति तत्र तु।
उद्ग्राहः स्यादनुद्ग्राहः सम्बन्धो ध्रुवकस्तथा॥
आभोगश्चेति पञ्चानामाद्यानामभिधाः क्रमात्।
हिङ्कारोङ्कारयोस्तत्र कलापूरकता मता॥

वैदिक छन्दों से बने हुए अनेक वृत्तों का विनियोग भी गीतों में है। वैदिक शब्दावली और वैदिक छन्दों के स्थान पर लौकिक भाषा (संस्कृत) और लौकिक वृत्तों के विधान की स्थिति हमें बताती है कि लौकिक 'गीतकों' और 'गीतों' की, वैदिक गान से विकसित होने पर भी, स्वतन्त्र स्थिति अत्यन्त प्राचीन काल में थी, जबकि 'नाट्यवेद' का निर्माण भी नहीं हुआ था।

नाट्य में ध्रुवा का ग्रहण और उसके कारण :

'भाषा', 'अभिनय' और 'गीत' (स्वर-सन्निवेश) स्वतन्त्र या पृथक्-पृथक् रहकर भी व्यंजक और रसोद्बोध में कारण होते हैं। 'वाचक' शब्दों, 'अवाचक' गीतध्वनियों (स्वरसन्निवेश-विशेषों) का 'व्यंजकत्व' प्रत्यक्ष है। यदि ये तीनों मिल जायें, तो कहना ही क्या है। भाषा स्वर-संवलित होकर और भी प्रभावशाली हो जाती है तथा अंगचेष्टाएँ अमूर्त्त को मूर्त्त कर देती हैं।

इस स्थान पर आचार्यों की कुछ उक्तियों का स्मरण अप्रासंगिक न होगा।

नाद की व्यंजकता :

व्याकरण की दृष्टि से नाद का जो रूप निरर्थक है, वह भी भाव-व्यंजना करता है। तिर्यक् योनि में उत्पन्न प्राणी अपने भावों की अभिव्यक्ति नाद के द्वारा ही करते हैं। भाषा भले ही कभी-कभी ठीक-ठीक मनोभावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ न हो, परन्तु नाद कभी असफल नहीं होता। हर्ष, शोक इत्यादि चित्तवृत्तियों को व्यक्त करनेवाले नाद-रूप सार्वभौम हैं, वे भाषा की भाँति एकदेशीय नहीं।[1]

अवाचक 'गीत' (स्वर-सन्निवेश) की व्यंजकता एवं रसोद्बोधकता :

अभिधा एवं लक्षणा के माध्यम से भाषा व्यंजक होती है, परन्तु स्वरसन्निवेश-विशेष, अर्थात् 'गीत' अवाचक होने पर भी व्यंजक होता है।[2] विषयास्वाद अथवा भाषा से सर्वथा

गायत्रीप्रभृतिच्छन्दः सङ्कृत्यन्तमिहेष्यते।
ऋग्व्यूढमिति सामोक्तं गद्ये षण्णवतिः कलाः॥
एकाक्षराः सामगाने तदर्द्धमपरे जगुः।
अत्रापि मन्त्रस्तोभानामृचां च त्रिकलादिकम्॥
—सं० र०, अ० सं०, ताला०, पृ० १३१-१३२।

१. तथा च प्राण्यन्तरस्य मृगसारमेयादेरपि नादमाकर्ण्य भयरोषशोकादि प्रतिपद्यते, तदयं नादाच्चित्तवृत्त्यवगमोऽनुमानं तावत्। ये त्वेते वर्णविशेषास्ते तन्नादरूपसामान्यात्मकपदलग्न(न्तु) ग्रन्थिमया इव प्राच्यप्रयत्नातिरिक्तनिमित्तान्तरापेक्षाः, तत एवानभिप्रेतेऽन्यथापि प्रयोक्तुं शक्याः, अतएव दृष्टव्यभिचाराः। नादस्तु झटित्युद्भिन्नमुखरागपुलकस्थानीयो नान्यथासिद्धोऽन्यथासिद्धं शब्दार्थं बाधते।
—अभि० ना० शा०, गा० सं० १, अध्याय १७, पृ० ३८७।

२. नहि यैवाभिधानशक्तिः सैवावगमनशक्तिः। अवाचकस्यापि गीतशब्दादेः रसादिलक्षणार्थावगमात्।—ध्व०, कारि० ३३, पृ० ३४६; तथाहि गीतादि-

अपरिचित बालक भी 'गीत' से प्रभावित होकर रोते-रोते चुप हो जाता है।[1] कालिदास के मूलकाव्य का आनन्द असंस्कृतज्ञ व्यक्ति नहीं ले सकता, परन्तु 'गीत' प्रत्येक व्यक्ति के लिए आनन्ददायक होता है।

जो लोग स्वभाव से ही स्वच्छ दर्पण के समान हृदय से युक्त हैं, वे अपने मन को संसारोचित क्रोध, लोभ, इच्छा आदि के वशीभूत नहीं होने देते, उसके लिए रूपक के दस भेदों के श्रवणमात्र से वह 'रस' स्पष्ट होता है, जो साधारण रसनात्मक चर्वणा के द्वारा ग्राह्य है। जो लोग उतने विशुद्धान्तःकरण नहीं हैं, उन्हें भी सहृदयों के समान चर्वणा कराने के लिए नट इत्यादि की प्रक्रिया है। ऐसे लोगों के क्रोध, शोक आदि से ग्रस्त हृदय की ग्रन्थियों का भंजन करने के लिए महर्षि भरत ने गीत आदि (वाद्य, नृत्य, अभिनय) की प्रक्रिया विरचित की है।[2]

'ध्रुवा' गीति का आधार पदसमूह है। वाक्य (भाषा, अर्थात् काव्य), वर्ण (स्वर-सन्निवेश), 'अलंकार' (सांगीतिक एवं साहित्य-सम्बद्ध), 'यति' (छन्द), 'पाणि' (तालसंकेत) और 'लय' (गतिविशेष) उसके अनिवार्य तत्त्व हैं। इसीलिए, 'ध्रुवा' को नाट्य का प्राण कहा गया है। रसानुकूल ध्रुवाओं का प्रयोग नाट्य को उसी प्रकार सुशोभित करता है, जिस प्रकार नक्षत्र आकाश को शोभित करते हैं।[3]

नाट्यवेद के निर्माण में ब्रह्मा ने ऋग्वेद से 'पाठ्य', सामवेद से 'गीत', यजुर्वेद से 'अभिनय' और अथर्ववेद से 'रस' का ग्रहण किया।[4] 'रस' लक्ष्य है और पाठ्य, गीत तथा

शब्देभ्योऽपि रसाभिव्यक्तिरस्ति न च तेषामन्तरावाच्यपरामर्शः।—उपरिवत्, पृ० ३३४।

तथैव व्यञ्जकत्वं वाचकानां शब्दानामवाचकानां च गीतध्वनीनामशब्दरूपाणां च चेष्टादीनां यत्सर्वेषामनुभवसिद्धमेव केनापह्नूयते।—उपरिवत्, पृ० ३७६।

१. अज्ञातविषयास्वादो बालः पर्यङ्किकागतः।
रुदन् गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते॥
—सं० र०, अ० सं०, स्वरगता०, पृ० १६।

२. तत्र ये स्वभावतो निर्मलमुकुरहृदयास्त एवं संसारोचितक्रोधमोहाभिलाषपरवशमनसो न भवन्ति। तेषां तथाविधदशरूपकाकर्णनसमये साधारणरसनात्मकचर्वणाग्राह्यो रससञ्चयो नाट्यलक्षणः स्फुट एव। ये त्वतथाभूतास्तेषां प्रत्यक्षोचिततथाविधचर्वणालाभाय नटादिप्रक्रिया। स्वगतक्रोधशोकादिसङ्कटहृदयग्रन्थिभञ्जनाय गीतादिप्रक्रिया च मुनिना विरचिता।
—अभिनव०, गा० सं० २, अ० ६, पृ० २९१।

३. तथा रसकृता नित्यं ध्रुवाः प्रकरणाश्रयाः।
नक्षत्राणीव गगनं नाट्यमुद्योतयन्ति ताः॥—ना० शा०, ब० सं० अ० ३२।६०३।

४. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० २।

अभिनय उसके अभिव्यंजन के साधन है। 'ध्रुवा' में भाषा, अभिनय और गीत सभी होते हैं। 'वाद्य' गीत का अनुगामी होता है और नृत्य वाद्य का। गीत के पश्चात् वाद्य का और तत्पश्चात् नृत्य का विनियोग है। गीत, वाद्य और अंग (अभिनय और नृत्य) का संयोग ही नाट्य में प्रयोग कहलाता है।[1] अतः, रसोद्बोध में ध्रुवा का महत्त्व स्पष्ट है।

ध्रुवा-विकल्प में कारण[2] :

'ध्रुवा' के पाँच विकल्पों के पाँच कारण—'जाति', 'स्थान', 'प्रकार', 'प्रमाण' और 'नाम' हैं। ध्रुवा-प्रयोज्य 'वृत्तों' का प्रमाण ही जाति है। 'स्थान' के दो भेद 'आत्मस्थ' और 'परस्थ' हैं। पात्र के द्वारा गेय ध्रुवा 'आत्मस्थ' और 'नेपथ्य' में गेय ध्रुवा 'परस्थ' होती है। वृत्तों के 'सम', विषम' और 'अर्द्धसम' इत्यादि भेद 'प्रकार' कहलाते हैं। ताल की दृष्टि से 'षट्कल' और 'अष्टकल' भेद 'प्रमाण' कहलाते हैं और ध्रुवाओं की संज्ञाएँ 'नाम' कहलाती हैं।

ध्रुवायोजन में ध्यान देने योग्य तत्त्व :

वस्तु, प्रयोग, प्रकृति, रस, भाव, देश, काल और अवस्था को दृष्टि में रखकर 'ध्रुवा' का प्रयोग होना चाहिए।[3]

नगर अथवा वन में घटित हुई घटना या कवि का उद्देश्य 'वस्तु' कहलाता है। गीत, वाद्य और अंग का संयोग दो प्रकार का है : 'दिव्य' और 'मानुष'। पात्रों का उत्तम, मध्यम और अधम स्वभाव 'प्रकृति' कहलाता है। 'रस' और 'भाव' प्रसिद्ध हैं। कक्षा और

---

१. पूर्वं गानं ततो वाद्यं ततो नृत्तं प्रयोजयेत्।
गीतवाद्याङ्गसंयोगः प्रयोग इति संज्ञितः ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५१७।

२. जातिस्थानं प्रकारश्च प्रमाणं नाम चैव हि।
ज्ञेया ध्रुवाणां गीतज्ञैर्विकल्पाः पञ्चहेतुकाः ॥
वृत्ताक्षरप्रमाणं हि जातिरित्यभिसंज्ञितम्।
समार्द्धविषमाभिश्च प्रकारः परिकीर्त्तितः ॥
षट्कलाष्टकले चैव प्रमाणे द्विविधे स्मृते।
यथागोत्रकुलाचारैर्नृणां नामाभिधीयते ॥
एवं नामाश्रयोपेतं ध्रुवाणामपि चेष्यते।
—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५८८–५८९।

३. वस्तु प्रयोगं प्रकृतं (ति ?) रसभावाश्रितं च यत् (रसभावौ ऋतुर्वयः ?)।
देशं कालमवस्थां च ज्ञात्वा योज्या ध्रुवा बुधैः ॥—ना० शा०, अ० सं०, पृ० ५९३।
वस्तु प्रयोगं प्रकृतिं रसभावं ऋतुं वयः।
देशं कालमवस्थां च ज्ञात्वा तत्तद्विधा ध्रुवा ॥
प्रयोक्तव्या प्रयोगज्ञैः... ... ...। —वेम, भ० कौ०, पृ० ३०२।

दिशा के विभाग से 'देश' दो प्रकार का है; रात, दिन, ऋतु इत्यादि 'काल' हैं। शैशव, यौवन, वृद्धत्व इत्यादि आयु हैं तथा सुख एवं दुःख 'अवस्था' हैं।[1]

नाट्य में पंचविध ध्रुवागान[2] :

१. **प्रावेशिकी :** पात्रों के प्रवेशकाल में विभिन्न रसों और अर्थों से युक्त गाई जानेवाली ध्रुवा 'प्रावेशिकी' कहलाती है।[3]

२. **नैष्क्रामिकी :** अंक के अन्त में पात्रों के निष्क्रमण के समय गाई जानेवाली ध्रुवा 'नैष्क्रामिकी' कहलाती है।[4]

३. **आक्षेपिकी :** विधि के जाननेवाले प्रयोक्ता नाट्य में क्रम का उल्लंघन करके जिस ध्रुवा का प्रयोग करते हैं, वह आक्षेपिकी है।[5]

४. **प्रासादिकी :** जो ध्रुवा अपने प्रयोग के द्वारा अन्य रस को प्राप्त अवस्था का परिवर्त्तन करके रंगस्थल में प्रसन्नता ला देती है, उसकी संज्ञा 'प्रासादिकी' है।[6]

५. **अन्तरा :** पात्र के विषादयुक्त, विस्मृत, क्रुद्ध, सुप्त, मत्त, विश्रान्त या पतित होने पर दोषाच्छादन के लिए प्रयुज्यमान ध्रुवा 'अन्तरा' कहलाती है।[7]

---

१. वस्तूद्देश्यसमुत्थं तु नगरारण्यसम्भवम्।
प्रयोगश्चैव विज्ञेयो दिव्यमानुषसंश्रयः॥
उत्तमाधममध्या तु त्रिविधा प्रकृतिः स्मृता।
रसभावौ तु पूर्वोक्तावृतुः कालकृतस्तथा॥
शिशुयौवनवृद्धत्वं वयश्चैव प्रकीर्त्तितम्।
कक्षादिभावजनितो देशस्तु द्विविधः स्मृतः॥
कालो रात्रिन्दिवकृतो वासरादिविनिश्चितः।
अवस्था चैव विज्ञेया सुखदुःखसमुद्भवा॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६५।

२. प्रवेशाक्षेपनिष्क्रामप्रासादिकमथान्तरम्।
गानं पञ्चविधं विद्यात् ध्रुवायोगसमन्वितम्॥—उपरिवत्, पृ० ५८६।

३. नानारसार्थयुक्ता नृणां या गीयते प्रवेशेषु।
प्रावेशिकी तु नाम्ना विज्ञेया सा ध्रुवा तज्ज्ञैः॥—उपरिवत्, पृ० ५८६।

४. अङ्कान्ते निष्क्रमणे पात्राणां गीयते प्रयोगेषु।
निष्क्रामोपगतगुणां विद्यान्नैष्क्रामिकीं तां तु॥—उपरिवत्, पृ० ५८६।

५. क्रममुल्लङ्घ्य विधिज्ञैः क्रियते या द्रुतलयेन नाट्यविधौ।
आक्षेपिकी ध्रुवासौ द्रुता स्थिता वापि विज्ञेया॥—उपरिवत्, पृ० ५८६।

६. या च रसान्तरमुपगतमाक्षेपवशाद् द्रुतं प्रसादयति।
रागप्रसादजननीं विद्यात्प्रासादिकीं तां तु॥—उपरिवत्, पृ० ५८६।

७. विषसम्मूर्च्छिते श्रान्ते वस्त्राभरणसंयमे।
दोषप्रच्छादने या च गीयते सान्तराच्छदा॥—उपरिवत्।

ध्रुवा के नामगत छह भेद :

१. **शीर्षिका :** प्रयोग में शीर्षस्थानीय होने के कारण इसकी संज्ञा शीर्षिका या शीर्षिकी है। यह शृंगाररस में उत्तम प्रकृति के पात्रों का आश्रय होती है तथा इसमें मृदु वर्णों और पदों का प्रयोग होता है।[1]

२. **उद्गता (उद्धता) :** उद्धत होने के कारण इसकी संज्ञा 'उद्गता' है। प्रधानतया वीर एवं रौद्र रस में इसका प्रयोग होता है। उद्धत पात्रों में इसका विनियोग है। आश्चर्य-दर्शन, रोष, विषाद, सम्भ्रम, उत्पात, विशेष श्रम, प्रत्यक्षवेदन के समय में तथा भयानक रस में भी द्रुत लय में इसका प्रयोग विहित है।[2]

३. **अनुबन्ध (अनुबन्धा) :** यति, लय, वाद्यगति, पद, वर्ण, अक्षर, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव को गीत एवं रस में नियतरूपेण अनुबद्ध करने के कारण इस ध्रुवा की संज्ञा 'अनुबन्धा' है।[3]

४. **विलम्बिता :** पात्रों के मनोगत भावों का भली भाँति परिचय देनेवाली ध्रुवा 'विलम्बिता' कहलाती है। इसकी संज्ञा 'स्थिता' भी है। इसकी गति द्रुत नहीं होती। अपविद्ध (नृत्यगत कार्यविशेष), औत्सुक्य, विलाप, श्रम, दैन्य, चिन्ता और प्रत्यक्ष दुःख में विलम्बित लयवाली विलम्बिता ध्रुवा का प्रयोग कर्त्तव्य है।[4]

---

१. शिरःस्थानीयमेतद् हि यस्मात्तस्मात्तु शीर्षिका।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५९१।
शृङ्गाररससम्पूर्णा मृदुवर्णपदान्विता।
या चोत्तमाश्रिता सेयं शीर्षकी परिकीर्त्तिता॥—वेम, भ०, कौ० पृ० ५६३।

२. उद्गता (तैः ?) उद्धता यस्मात् तस्माज्ज्ञेया ध्रुवा बुधैः।
—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६।
वीररौद्रप्रधाना च स्फुटवर्णनिबन्धना।
उद्धतप्रायसञ्चारा सा भवेदुद्गता ध्रुवा॥
आश्चर्यदर्शने रोषे विषादे सम्भ्रमे तथा।
उत्पाते विश्रमे चैव प्रत्यक्षवेदने तथा॥
वीरे भयानके रौद्रे कार्य्या द्रुतलया ध्रुवा॥—वेम०, भ०, कौ०, पृ० ७६।

३. यतिलयौ वाद्यगति पदवर्णमथाक्षरम्।
विभावांश्चानुभावांश्च भावांश्च व्यभिचारिणः॥
गीते रसे च नियतमनुबध्नाति या क्रमात्।
सा ध्रुवा चानुबन्धाख्या नाट्यविद्भिर्निरूपिता॥—वेम, भ० कौ०, पृ० १५-१६।

४. (क) नातित्वरितसञ्चारा नाट्यधर्ममनुव्रता।
सविलम्बितसञ्चारा भवेदथ विलम्बिता॥ (शोधित पाठ)—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५९१।

५. **अड्डिता** : शृंगाररस-सम्भूत और शृंगारोत्पन्न गुणों से युक्त, सापेक्षभाव और मनोहर ध्रुवा 'अड्डिता' कहलाती है। दिव्यांगना तथा राजस्त्रियों में इस ध्रुवा का विनियोग होता है।[1]

६. **अवकृष्टा** : अवकृष्ट अक्षरों से युक्त होने के कारण इसकी संज्ञा 'अवकृष्टा' है। बद्ध, निरुद्ध, पतित और व्याधित अवस्था के प्रदर्शन के लिए करुण रस में इसका विनियोग है। तार स्वर से इसका आरम्भ होता है।[2]

पद : अक्षरसम्बद्ध प्रत्येक वस्तु पद कहलाती है।[3] उसके दो प्रकार 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध' हैं।[4] उसके दो अन्य प्रकार 'अताल' और 'सताल' भी हैं। 'ध्रुवा' में 'निबद्ध' और 'सताल' पद का ही प्रयोग होता है।[5] नियत अक्षरों से सम्बद्ध, छन्द एवं यति से युक्त और जिसके अक्षरों पर ताल पड़ता हो, ऐसा वाक्य 'निबद्ध' पद कहलाता है।[6]

ध्रुवापद : सभी छन्द 'गान' के लिए उपयुक्त नहीं होते। अतः, नाट्यशास्त्र में ध्रुवा-गेय छन्दों अथवा वृत्तों का विधान 'ध्रुवाध्याय' में पृथक् किया गया है।[7] यह 'वृत्त' तालान्वित होने पर 'पद' कहलाते हैं।[8]

ध्रुवा-प्रयोज्य त्रिविध वृत्त : विभिन्न 'गायत्री' इत्यादि 'जातियों' (छन्दों) से उत्पन्न वृत्त तीन प्रकार के होते हैं, १. 'गुरुप्राय', जिनमें दीर्घ अक्षरों की अधिकता हो; २. लघुप्राय,

---

(ख) अपविद्धे तथौत्सुक्ये विषादे परिदेविते।
श्रमे दैन्ये च चिन्तायां दुःखे प्रत्यक्षजे तथा ॥
स्थिता ध्रुवा प्रयोक्तव्या नाट्यलक्षणवेदिभिः।—वेम, भ० कौ०, पृ० ६१७।

१. अड्डिता तूत्कटगुणा शृङ्गाररससम्भवा।
यस्मात् स्थानप्रसन्ना च तस्मादेषाड्डिता स्मृता ॥—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५६२।
शृङ्गाररससम्भूता तद्भूतगुणशालिनी।
सापेक्षभावा हृद्या या सामवेदाड्डिता ध्रुवा ॥
अड्डिता तु ध्रुवा कार्या दिव्यपार्थिवयोषिताम्।—वेम० भ० कौ०, पृ० १०।

२. अवकृष्टाक्षरा ज्ञेया विकृष्टा करुणाश्रया।
अवकृष्टा ध्रुवा बद्धे निरुद्धे पतिते तथा ॥
व्याधिते सादितारा च प्रयोज्या करुणाश्रया।- वेम० भ० कौ०, पृ० ३६।

३. यत्स्यादक्षरसम्बद्धं तत्सर्वं पदसंज्ञितम्।—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ५३५।

४. निबद्धं चानिबद्धं च ह्येवमेतद् द्विधा स्मृतम्।—उपरित्, पृ० ५३५।

५ अतालं च सतालं च द्विप्रकारं तदुच्यते।
सतालं च ध्रुवार्थेषु निबद्धं सर्वसाधकम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५३५।

६. नियताक्षरसम्बद्धं छन्दोयतिसमन्वितम्।
निबद्धं तु पदे ज्ञेयं सतालपतनाक्षरम् ॥—उपरिवत्, पृ० ५३५।

७. ध्रुवायोगं तु वक्ष्यामि तेषामेव विकल्पनम्।—ना० शा०, गा० सं० १, अ० १५।२८।

जिनमें लघु अक्षरों की अधिकता हो और 'गुरुलघ्वक्षर', जिनमें गुरु एवं लघु अक्षर प्रायः समान संख्या में हों।

नाट्यशास्त्र के बत्तीसवें अध्याय में ध्रुवा-प्रयोज्य वृत्तों का सविस्तर वर्णन है।

ध्रुवा-प्रयोज्य भाषाएँ : आश्रय (दिव्य, मानुष) के अनुसार विभिन्न भाषाओं के प्रयोग का विधान ध्रुवा-प्रयोग में विहित है। 'शौरसेनी' जैसी लोकभाषा की ध्रुवा-प्रयोज्यता नाट्यशास्त्र में विहित है।[1]

प्रबन्ध:

रंजक स्वर-सन्दर्भ 'गीत' कहलाता है। उसके दो भेद 'गान्धर्व और 'गान'[2] हैं।

'गान्धर्व' और 'गान' : सात प्रकरण गीतक और सात प्रकरण गीत तथा अन्य ध्रुवा-प्रयोग की संज्ञा 'गान्धर्व' है। अनादिसम्प्रदाय होने के कारण 'गान्धर्व' की संज्ञा 'मार्ग' भी है।[3] पश्चाद्वर्ती आचार्य अनादिसम्प्रदाय 'मार्गसंगीत' को वेद के समान अपौरुषेय मानते थे।[4] गीत के 'गान्धर्व' और 'गान' जैसे दो भेद नाट्यशास्त्र में नहीं हैं। 'गान' का दूसरा नाम 'देशी' है। देश-देश में लोकरुचि के अनुसार जन्म लेने के कारण इसे 'देशी' कहा गया।[5]

गान : 'गान' के दो प्रकार हैं : 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध'। 'धातुओं' और 'अंगों' की दृष्टि से व्यवस्थित गान 'निबद्ध' कहलाता है और बन्धनहीन होने के कारण 'आलप्ति' 'अनिबद्धगीत' कहलाती है।[6] अनिबद्ध गान हमारे विचार-क्षेत्र से बाहर है। अतः, निबद्ध गान पर विचार किया जाता है।

---

१. भाषा तु शूरसेनी स्यात् ध्रुवाणां... ।—उपरिवत्, पृ० ५६८, पाठान्तर, १, २।

२. रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते ।
गान्धर्वगानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥—स० र०, अ० सं०, प्रबन्धा०, पृ० १८७।

३. अनादिसम्प्रदायं यद्गान्धर्वैः सम्प्रयुज्यते ।
नियतश्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्बुधाः ॥—उपरिवत्, पृ० १८८।
... ...तत्र मार्गः उच्यते ।
यो मार्गितो विरिञ्च्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥
—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४।

४. अनादिसम्प्रदायमित्यनेन गान्धर्वस्य वेदवदपौरुषेयत्वं सूचितं भवति ।—कल्लिनाथ, अ० सं०, प्रब०, पृ० १८८।

५. देशे देशे जनानां यद् रुच्या हृदयरञ्जकम् ।
गीतं च वादनं नृत्तं तद्देशीत्यभिधीयते ॥—सं० र०, अ० सं०, स्वरा०, पृ० १४–१५।

६. ... ...अधुना गानमुच्यते ।
निबद्धमनिबद्धं तद् द्वेधा निगदितं बुधैः ॥
बद्धं धातुभिरङ्गैश्च निबद्धमभिधीयते ।
आलप्तिर्बन्धहीनत्वादनिबद्धमितीरिता ॥—सं० र०, प्रब०, पृ० १८८।

निबद्धगान अथवा प्रबन्ध : निबद्ध गान की तीन संज्ञाएँ हैं—'प्रबन्ध', 'वस्तु' और 'रूपक'।[१] चार 'धातुओं' और छह 'अंगों' से प्रबद्ध होने के कारण निबद्धगान 'प्रबन्ध', नायक इत्यादि के आरोपण का कारण होने से 'रूपक' और 'उद्ग्राह' आदि धातुओं और 'स्वर' आदि छह अंगों का निवासस्थान होने के कारण 'वस्तु' कहलाता है।[२]

प्रबन्ध में चार धातु[३] : मानव-शरीर को धारण करने के कारण जिस प्रकार वात, पित्त और कफ की संज्ञा धातु है, उसी प्रकार 'उद्ग्राह', मेलापक', 'ध्रुव' और 'आभोग' प्रबन्ध के 'धातु' कहलाते हैं।[४] ये धातु प्रबन्ध के अवयव हैं।

१. **उद्ग्राह** : यह प्रबन्ध का प्रथम धातु है। गीत का 'उद्ग्राहण' या 'प्रारम्भ' इस धातु से होता है, अतः इसकी संज्ञा 'उद्ग्राह' है।[५]

२. **मेलापक** : प्रथम धातु 'उद्ग्राह' और तृतीय धातु 'ध्रुव' को मिलानेवाला होने के कारण यह धातु 'मेलापक' कहलाता है।[६]

३. **ध्रुव** : प्रबन्ध के दूसरे 'मेलापक' और चतुर्थ धातु 'आभोग' का लोप सम्भव है, परन्तु तृतीय धातु 'ध्रुव' का नहीं। इस अविलोप्यता अथवा नित्यता के कारण इसकी संज्ञा 'ध्रुव' है।[७]

---

१. संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वास्तुरूपकम्।—उपरिवत्, पृ० १८८।

२. चतुर्भिर्धातुभिः षड्भिश्चाङ्गैर्यस्मात्प्रबध्यते।
तस्मात्प्रबन्धः कथितो गीतलक्षणकोविदैः॥
रागाद्यारोपणे नेतुः स्यादस्मिन्रूपकाभिधा।
उद्ग्राहाद्यास्तु चत्वारि स्वरादीनि च षट् तथा॥
वसन्ति यत्र तज्ज्ञेयः प्रबन्धो वस्तुसंज्ञया।—पार्श्वदेव, सिंहभूपालोद्धृत, उपरिवत्, पृ० १९४।

३. प्रबन्धावयवो धातुः स चतुर्धा निरूपितः।
उद्ग्राहः प्रथमस्तत्र ततो मेलापकध्रुवौ॥
आभोगश्चेति... ...।—स० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १८८-१८९।

४. वातपित्तकफा देहधारणाद्धातवो यथा।
एवमेते प्रबन्धस्य धातवो देहधारणात्॥—उपरिवत्, पृ० १९०।

५. उद्ग्राहः प्रथमो भागः।—उपरिवत्, पृ० १८९; उद्गृह्यते प्रारभ्यते येन गीतं स उद्ग्राह इति प्रबन्धस्य प्रथमावयवोऽन्वर्थसंज्ञः।—कल्लिनाथ, उपरिवत्, पृ० १८९।

६. उद्ग्राहध्रुवयोर्मेलनकारकत्वान्मेलापक इति द्वितीयोऽप्यवयवोऽन्वर्थो द्रष्टव्यः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १८९।

७. तृतीयावयवस्य नित्यत्वं तावदुद्ग्राहव्यतिरिक्ततरापेक्षया सकलप्रबन्धेष्वनपायात्। तेन द्विधातुषु प्रबन्धेषु मेलापकाभोगयोस्त्रिधातुषु प्रबन्धेषु सर्वत्र मेलापकस्यैव परित्यागः। ध्रुवस्य न क्वचिदपि परित्याग इत्यर्थः।—उपरिवत्, पृ० १८९।

४. **आभोग**: आभोग शब्द का अर्थ परिपूर्णता है। प्रबन्ध का अन्तिम भाग या उसे पूर्ण करनेवाला अन्तिम धातु होने के कारण इस धातु की संज्ञा 'आभोग' है।[1]

'अन्तर' नामक एक पाँचवाँ धातु और है, परन्तु उसका प्रयोग कुछ विशिष्ट प्रबन्धों में 'ध्रुव' और 'आभोग' के मध्य में होता है।[2]

प्रबन्ध के छह अंग :

मानव-शरीर के अंगों की भाँति प्रबन्ध के भी अंग होते हैं। ये छह हैं : १. स्वर, २. विरुद, ३. पद, ४. तेनक, ५. पाट और ६. ताल।[3]

इनमें 'तेन' नामक अंग मंगलवाची है। 'ओं तत्सत्', 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों में 'तत्' शब्द ब्रह्म का वाचक है। 'तत्' शब्द की तृतीया विभक्ति में 'तेन' रूप होता है, जिसका अर्थ 'उस (ब्रह्म) ने' होता है। 'उसने, अर्थात् मंगलात्मा ब्रह्म ने यह प्रबन्ध अंकित किया है।[4] इस अर्थ की ध्वनि 'तेन' नामक अंग में है, जिसकी अनेक आवृत्तियाँ प्रबन्ध में होती हैं। 'तेन' नामक अंग प्रबन्धपुरुष का एक नेत्र है।

'पद' (सार्थक वाक्यसमूह) नामक अंग अर्थ का प्रकाशक है[5] और प्रबन्धपुरुष का दूसरा नेत्र है।

मृदंग इत्यादि वाद्यों में करों के आघात से उत्पन्न होनेवाली ध्वनियाँ 'पाट' कहलाती हैं। शंख इत्यादि मुखवाद्यों की ध्वनियाँ भी 'पाट' कहलाती हैं।[6] 'पाट' प्रबन्धपुरुष का एक हाथ है।

---

१. अन्तिमो धातुः प्रबन्धस्य परिपूर्ण(ता)हेतुत्वादाभोग इति कारणे कार्य्योपचार उक्तः। 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यभिधानादाभोगशब्दस्य परिपूर्णतावाचकत्वम्।—उपरिवत्, पृ० १८९।

२. ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः।
स तु सालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १८९।

३. ......अङ्गानि षट् तस्य स्वरश्च विरुदं पदम्।
तेनकः पाटतालौ च प्रबन्धपुरुषस्य......॥—सं० र०, अ० सं०, प्रबन्धा०, पृ० १९०।

४. (क) ओं तत्सदिति निर्देशस्तत्त्वमस्यादिवाक्यतः।
तदिति ब्रह्म तेनायं ब्रह्मणात्मना लक्षितस्तेन तेनेति...॥—सं० र०, अ० सं० प्रब०, पृ० १९२।

(ख) उपलक्षणे च तृतीया ततश्च तेनेन कल्याणरूपेण ब्रह्मोपलक्षितमर्थं वदति। तेन हेतुना तेनतेनेत्ययं शब्दो मङ्गलार्थप्रकाशको भवति॥—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १९६।

५. अर्थप्रकाशकं पदम्।—कल्लिनाथ०, उपरिवत्, पृ० १९१।

६. पाटोऽक्षराणि तावत्कराभ्यां मृदङ्गादिवादनादेव प्रभवन्ति।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १९५; पाटो वाद्याक्षरोत्करः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १९२।

नायक के गुणों को 'विरुद' कहते हैं ।[1] प्रबन्धपुरुष का यह दूसरा हाथ है । ताल और स्वर, प्रबन्ध की गति में कारण होने से प्रबन्धपुरुष के चरण हैं ।

प्रबन्धों की जातियाँ :

प्रबन्धों की पाँच जातियाँ—१. मेदिनी, २. आनन्दिनी, ३. दीपनी, ४. भावनी और ५. 'तारावली' हैं ।[2] छह अंगों की जाति 'मेदिनी', पाँच अंगों से युक्त जाति 'आनन्दिनी' चार अंगों से युक्त 'दीपनी', तीन अंगों से युक्त 'भावनी' और दो अंगों से युक्त जाति 'तारावली' है ।[3]

मतान्तर से प्रबन्धों की छह जातियाँ :

कुछ लोगों के मत में षडंग जाति का नाम 'श्रुति' है; क्योंकि 'श्रुति' अर्थात् वेद के भी छह अंग शिक्षा, ज्यौतिष, निरुक्त, निघण्टु, छन्द और व्याकरण हैं ।[4]

नीति : पंचांग जाति 'नीति' कहलाती है; क्योंकि कर्मारम्भ का उपाय, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकाल-विभाग, विनिपात-प्रतीकार और कार्यसिद्धि ये पाँच नीति के अंग हैं ।[5]

सेना : चतुरंग जाति को 'सेना' कहते हैं; क्योंकि सेना में चार अंग—हाथी, घोड़े, पैदल और रथ होते हैं ।[6]

कविता : तीन अंगोंवाली प्रबन्ध-जाति की संज्ञा 'कविता' है; क्योंकि 'कविता' के शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास ये तीन अंग होते हैं ।[7]

चम्पू : दो अंगोंवाला प्रबन्ध 'चम्पू' है; क्योंकि चम्पू में गद्य और पद्य दो अंग होते हैं ।[8]

---

१. गुणो नाम भुजबलभीमादिर्विरुदशब्देनोच्यते ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६५ ।

२. मेदिन्यथानन्दिनी स्याद्दीपनी भावनी तथा ।
तारावलीति पञ्च स्युः ...ते... ॥—सं० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १६६ ।

३. षड्भिरङ्गैर्बद्धा मेदिनीजातिः, पञ्चभिरानन्दिनी, चतुर्भिर्दीपनी, त्रिभिर्भावनी, द्वाभ्यां तारावलीति क्रमो द्रष्टव्यः ।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १६६ ।

४. श्रुतेर्वेदस्य शिक्षाज्यौतिषनिरुक्तनिघण्टुच्छन्दोव्याकरणानि षडङ्गानि ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६८ ।

५. नीतेः पञ्चाङ्गानि कर्मणामारम्भोपायः, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकालविभागः, विनिपातप्रतीकारः, कार्य्यसिद्धिश्च ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६८ ।

६. सेनायाश्चत्वार्यङ्गानि हस्त्यश्वरथपदातिरूपाणि ।—सिंह०, उपरिवत्, पृ० १६२ ।

७. कवितायास्त्रीण्यङ्गानि, शक्तिर्व्युत्पत्त्यभ्यासश्चेति ।—उपरिवत्, पृ० १६८ ।

८. चम्प्वा द्वे अङ्गे, गद्यं पद्यं चेति ।—उपरिवत्, पृ० १६८ ।

प्रबन्धों की एक और द्विविधता :

'अनिर्युक्त और 'निर्युक्त' ये प्रबन्धों के दो अन्य प्रकार हैं। छन्द और ताल के नियम से हीन 'अनिर्युक्त' और छन्द एवं ताल के नियम से युक्त प्रबन्ध 'निर्युक्त' है।[1]

प्रबन्धों की एक और त्रिविधता :

प्रबन्धों के अन्य तीन प्रकार हैं—'सूडस्थ', 'आलिसंश्रय' एवं 'विप्रकीर्ण'।[2]

सूड : एला, करण, ढेंकी, वर्त्तनी, झोम्बड, लम्भ, रास और एकताली ये आठ प्रकार सूड के हैं। 'सूड' एक देशज शब्द है, जो गतिविशेष के समूह का वाचक है। इन 'एला' आदि शब्दों में कुछ रूढ हैं और कुछ अन्वर्थ।[3]

आलिक्रमस्थ : वर्ण, वर्णस्वर, गद्य, कैवाड, अंकचारिणी, कन्द, तुरगलीला, गजलीला, द्विपदी, चक्रवाल, क्रौंचपद, स्वरार्थ, ध्वनिकुट्टनी, आर्या, गाथा, द्विपथक, कलहंस, तोटक, 'आलिघट, वृत्त, मातृका, रागकदम्बक, पंचतालेश्वर, तालार्णव ये चौबीस प्रबन्ध 'आलिक्रमस्थ' हैं।[4]

यदि इनमें से कोई सूडक्रम प्रबन्ध के मध्य में हो, तो वह भी आलिक्रमस्थ कहलाता है। सूडस्थ और आलिक्रमस्थ प्रबन्धों की सम्मिलित संख्या बत्तीस है।[5]

---

१. अनिर्युक्तश्च निर्युक्तः प्रबन्धो द्विविधो मतः।
छन्दस्तालाद्यनियमादाद्यः स्यान्नियमात्परः॥— सं० र०, प्रब०, पृ० १९६।

२. पुनः प्रबन्धास्त्रिविधाः सूडस्था आलिसंश्रयाः।
विप्रकीर्णाश्च ... ... ॥—उपरिवत्, पृ० १९६।

३. एलाकरणढेंकीभिर्वर्त्तन्या झोम्बडेन च।
लम्भरासैकतालीभिरष्टाभिः सूड उच्यते॥—सं० र०, प्र०, पृ० १९६।
सूड इति गीतविशेषसमूहवाची देशी शब्दः। अत्रोद्दिष्टानामेलादिशब्दानां मध्ये केषाञ्चिद्रूढत्वं केषाञ्चिदन्वर्थत्वं चेत्यवगन्तव्यम्।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १९७।

४. वर्णो वर्णस्वरो गद्यं कैवाडश्चाङ्कचारिणी।
कन्दस्तुरगलीला च गजलीला द्विपद्यपि॥
चक्रवालः क्रौञ्चपदः स्वरार्थो ध्वनिकुट्टनी।
आर्या गाथा द्विपथकः कलहंसश्च तोटकम्॥
घटो वृत्तं मातृका च ततो रागकदम्बकः।
पञ्चतालेश्वरस्तालार्णवः ... ... ॥
—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १९६–१९९।

५. ... ... इत्येषु कश्चन... ... . ।
सूडक्रमस्थमध्ये चेदसावालिक्रमो भवेत्॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १९७।

विप्रकीर्ण प्रबन्धों के भेद :

विप्रकीर्ण प्रबन्ध अनन्त हो सकते हैं। रत्नाकरकार ने यथानिर्दिष्ट छत्तीस प्रबन्ध गिनाये हैं—श्रीरंग, श्रीविलास, पंचभंगी, पंचानन, उमातिलक, त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी, वस्तु, विजय, त्रिपथ, चतुर्मुख, सिंहलील, हंसलील, दण्डक, झम्पट, कन्दुक, त्रिभंगी, हरविलास, सुदर्शन, स्वरांग, श्रीवर्द्धन, हर्षवर्द्धन, वन्दन, चच्चरी, चर्या, पद्धडी, राहडी, वीरश्री, मंगलाचार, धवल, मंगल, ओवी, लोली, ढोल्लरी और दन्ती।[१]

यद्यपि हमारे विचार की सीमा प्रबन्धों का विषय, भाषा और छन्द है, तथापि एक-आध प्रबन्ध का रूप इस अवसर पर समझ लेना अप्रासंगिक न रहेगा।

एला-प्रबन्ध का सामान्य लक्षण :

एला-प्रबन्ध में पहले-पहल तीन 'पादों' का गान होता है,[२] पाँच 'पद' मिलकर एक-'पाद' कहलाते हैं।[३]

पहले 'पाद' (अंघ्रि) में दो खण्ड होते हैं, जिन दोनों खण्डों में सानुप्रासता (दोनों खण्डों में अन्त्यानुप्रास) होती है, उन दोनों खण्डों में वाक्य-रचना विभिन्न होने पर भी स्वर-रचना सदृश होती है।[४]

इन दोनों खण्डों के पश्चात् 'प्रयोग' नामक अक्षरवर्जित 'गमकालप्ति' होती है।[५] तत्पश्चात् 'पल्लव' नामक पदत्रिक होता है। इन तीनों पदों में दो विलम्बित लय में गाये

---

१. श्रीरङ्गः श्रीविलासः स्यात्पञ्चभङ्गिरतः परम्।
पञ्चाननोमातिलकौ त्रिपदी च चतुष्पदी॥
षट्पदी वस्तुसंज्ञश्च विजयस्त्रिपथस्तथा।
चतुर्मुखः सिंहलीलो हंसलीलोऽथ दण्डकः॥
झम्पटः कन्दुकः स्यात्त्रिभङ्गिर्हरविलासकः।
सुदर्शनः स्वराङ्कः श्रीवर्द्धनो हर्षवर्द्धनः॥
वन्दनं चच्चरी चर्य्या पद्धडी राहडी तथा।
वीरश्रीर्मङ्गलाचारो धवलो मङ्गलस्तथा॥
ओवी लोली ढोल्लरी च दन्ती षट्त्रिंशदित्यमी॥
—सं० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० १९७।

२. एलायाः प्रथमं तावत्पादत्रयं गेयम्।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १९८।

३. पञ्चपदानि मिलित्वैकः पादः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १९९।

४. अङ्घ्रौ खण्डद्वयं सानुप्रासमेकेन धातुना।
—सं० र०, उपरिवत्, अ० सं०, प्रब०, १९८।

५. ततः खण्डद्वयानन्तरं ... प्रयोगोऽक्षरवर्जिता गमकालप्तिः कार्य्या।
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १९९।

जाते हैं और एक द्रुत लय में गीयमान होता है।[1] इतना भाग एक 'पाद' कहलाता है। इस प्रकार के तीन भाग मिलकर 'उद्ग्राह' कहलाते हैं, इन तीनों भागों में संगीत-रचना सदृश, परन्तु वाक्य-रचना असदृश होती है। तीसरे पाद में सम्बोधनयुक्त एक पद होता है।[2] इससे ध्वनित होता है कि प्रथम दो पादों में भी 'प्रयोग' के अन्तर्गत सम्बोधन-सहित एक-एक पद होता है, अन्यथा अर्थहीन होने के कारण प्रयोग को 'पद' ही नहीं कहा जा सकता।[3] पहले दोनों 'प्रयोगों' से भिन्न संगीत-योजना तृतीय 'प्रयोग' में होनी चाहिए। तीसरे भाग में 'पल्लव' नामक 'पद' की स्थिति भी नहीं होती, अतः इसमें दो पद ही होते हैं।[4]

एला-प्रबन्ध को त्रिधातुक माननेवाले आचार्य इन बारह पदों को मिलाकर 'उद्ग्राह' कहते हैं तथा इस प्रबन्ध को चतुर्धातुक माननेवाले सोमेश्वर इत्यादि आचार्य ग्यारह 'पदों' को 'उद्ग्राह' कहकर बारहवें पद को 'मेलापक' कहते हैं।[5]

तत्पश्चात् 'स्तुत्य' व्यक्ति के नाम से युक्त तीन पदों का गान करना चाहिए, जिनमें प्रथम दो का गान मध्य लय एवं तृतीय का विलम्बित लय में होना चाहिए। प्रथम दो पदों की संगीत-रचना सदृश और तीसरे पद की संगीत-रचना भिन्न होनी चाहिए। ये तीनों पद मिलकर 'ध्रुव' कहलाते हैं।[6]

ध्रुव के पश्चात् वाग्गेयकार को अपने नाम से युक्त 'आभोग' का गान करना चाहिए। इन पूर्वोक्त सोलहों पदों का दो बार गान करके 'ध्रुव' के अन्तर्गत तेरहवें पद पर समाप्ति कर देनी चाहिए।[7]

---

१. ... ... तदनुपल्लवाख्यं पदत्रयम्।
द्वे स्तो विलम्बिते तत्र तृतीयं द्रुतमानतः॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १९९।

२. एवं पादत्रयं गेयमुद्ग्राहे तुल्यधातुकम्।
केवलं तु तृतीयेऽङ्घ्रौ सम्बोधनपदान्वितः॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० १९९।

३. 'एतेन प्रथमद्वितीयाङ्घ्रिगतप्रयोगद्वयस्य सम्बोधनार्थैकपदयोगाभ्यनुज्ञा... विज्ञायते। अन्यथा ह्यक्षरवर्जितत्वात्प्रयोगाणामर्थवत्त्वाभावात्पदत्वं न सिद्ध्येत्।'
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० १९९।

४. प्रयोगोऽन्यो विधातव्यो न पल्लवपदस्थितिः।
—सं० रत्नाकर, उपरिवत्, पृ० २००।

५. एलाप्रबन्धस्य त्रिधातुकत्वमुपगच्छतामेतानि द्वादशपदान्युद्ग्राहो भवन्तीति मतम्। चतुर्धातुकमभ्युपगच्छन्तः सोमेश्वरादयस्त्वेकादशानामेवोद्ग्राहकत्वमुक्त्वा द्वादशपदं मेलापकमाहुः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २००।

६. स्तुत्यनामाङ्कितो मध्यविलम्बितपदत्रयः।
ध्रुवस्ततस्तत्र पूर्वमेकधातु पदद्वयम्॥
भिन्नधातु तृतीयं स्यात् ... ... ।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २००—२०१।

७. ... ... आभोगस्तदनन्तरम्।
गेयो वाग्गेयकारेण स्वाभिधानविभूषितम्॥
पुनर्गीत्वा ध्रुवे त्यागो ग्रहस्तु विषमो भवेत्।—उपरिवत्, पृ० २०२।

प्राचीन आचार्यों ने एला-सामान्य का यह लक्षण किया है। मण्ठ, द्वितीय कंकाल एवं प्रतिताल में इसकी योजना होती है।[1]

इस प्रबन्ध का विषय त्याग, सौभाग्य, शौर्य्य इत्यादि का वर्णन होता है। एला-प्रबन्धों के अनेक भेद हैं।

अकार का देवता विष्णु, इकार का कामदेव और लकार की लक्ष्मी हैं। 'एला' अकार, इकार और लकार वर्णों का समुच्चय है।

एला-प्रयोज्य सोलह पदों की संज्ञाएँ क्रमशः काम, मन्मथवत्, कान्त, जित, मत्त, विकारी, मान्धाता, सुमति, शोभी, सुशोभी, गीतक, उचित, विचित्र, वासव मृदु और सुचित्र हैं।

* सोलह पदों के देवता क्रमशः पद्मालया, पद्मिणी, रंजनी, सुमुखी, शची, वरेण्या, वायुवेगा, वेदनी, मोहिनी, जया, गौरी, ब्राह्मी, मातंगी, चण्डिका, विजया और चामुण्डा हैं।

इन सोलह पदों में दस प्राण समान, मधुर, सान्द्र, कान्त, दीप्त, समाहित, अग्राम्य, सुकुमार, प्रसन्न और ओजस्वी हैं।[2]

---

१. एलासामान्यलक्ष्मैतत्पूर्वाचार्य्यैरुदीरितम्।
मण्ठद्वितीयकङ्कालप्रतितालेषु कश्चन॥
तालोऽस्यां ... ... ।—उपरिवत्, पृ० २००।

२. ...अस्यां त्यागसौभाग्यशौर्यधैर्यादिवर्णनम्।
एलानां बहवः सन्ति विशेषास्तेषु केचन॥
व्युत्पत्तये निरूप्यन्ते मतङ्गादिमतोदिताः।
अकारे दैवतं विष्णुरिकारे कुसुमायुधः॥
लक्ष्मीर्लकार एलानामिति वर्णेषु देवताः।
काममन्मथवत्कान्तजितमत्तविकारिणः॥
मान्धातृसुमती शोभिसुशोभी गीतकोचितौ।
विचित्रो वासवमृदुसुचित्रा इति षोडश॥
नामान्येषां पदानां स्युः षोडशानामनुक्रमात्।
पद्मालया पद्मिणी च रञ्जनी सुमुखी शची॥
वरेण्या वायुवेगा च वेदिनी मोहिनी जया।
गौरी ब्राह्मी च मातङ्गी चण्डिका विजया तथा॥
चामुण्डैलापदेष्वेताः क्रमात्षोडश देवताः।
समानो मधुरः सान्द्रः कान्तो दीप्तः समाहितः॥
अग्राम्यः सुकुमारश्च प्रसन्नौजस्विनाविति।
—सं० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०२–३।

प्रबन्ध के सोलह पदों में प्राणों की योजना :

समान : समान नामक प्राण में अक्षर और स्वर अल्प होते हैं। इस प्राण की योजना प्रथम एवं द्वितीय पाद के 'मन्मथवत्' और 'मान्धाता' नामक पदों में करना चाहिए।[1]

मधुर : यह प्राण स्वल्पनाद-मूर्च्छना से युक्त होता है। आदिम स्वर के पश्चात् आरोह-गति अथवा अवरोह-गति में स्वरों का स्पर्शमात्र करके अन्तिम स्वर पर रुकने से मूर्च्छना स्वल्पनाद हो जाती है। इस प्राण की योजना प्रथम एवं द्वितीय चरण 'कान्त' और 'सुमति' नामक पदों में करना चाहिए, जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं।[2]

सान्द्र : इस प्राण में स्वरों की अपेक्षा अक्षरों की संख्या अधिक होती है। तार स्थान तक इसकी गति होती है। प्रथम एवं द्वितीय पाद के पल्लवों में स्थित 'जित' और 'शोभि' पदों में इस प्राण की योजना होती है, जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं।[3]

कान्त : इस प्राण में स्वरों का रंजन अत्यधिक होता है। दोनों पादों के पल्लव के अन्तिम पद 'मत्त' और 'सुशोभि' कान्त नामक प्राण से युक्त होते हैं, जिनका गान द्रुत लय में होता है।[4]

दीप्त : तार स्थान के स्वरों का प्रयोग इस प्राण में होता है। तीनों पादों में द्विखण्डात्मक 'काम' 'विकारि' एवं 'गीत' नामक पदों में इसकी योजना होती है।[5]

---

१. समानोऽल्पाक्षरध्वानः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०४।

२. मधुरः स्वल्पनादया अल्पमूर्च्छनया युक्तः।—सं० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०४। मूर्च्छनाया अल्पत्वं... आदिमस्वरमुच्चार्य्यारोहेण वावरोहेण वा क्रमेण मध्यस्थितानां स्वराणां स्पर्शमात्रेणान्तिमस्वरोच्चारणे सति भवतीति मन्तव्यम्।... अयं प्राणः प्रथमद्वितीयाङ्घ्रिगतयोर्विलम्बितमानयोः कान्तसुमतिसंज्ञयोः पल्लवपदेष्वादिमयोः पदयोर्योजनीयः।—कल्लि०, सं० रा०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०४।

३. सान्द्रस्तु निविडाक्षरः। अल्पध्वनिस्तारगतिः।—उपरिवत्, पृ० २०४। प्रथमद्वितीयाङ्घ्रिगतयोर्विलम्बितमानयोः पल्लवमध्यस्थितयोर्जितशोभिसंज्ञयोः पदयोः पूर्वपदापेक्षया किञ्चिदुच्चत्वेन सान्द्रप्राणाश्रयत्वं कर्त्तव्यम्।

—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

४. कान्तः कान्तध्वनिर्मतः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०५। अङ्घ्रिद्वयपल्लवान्तिमयोर्द्रुतमानयोर्मत्तसुशोभिसंज्ञयोः पदयोः कान्तो नाम प्राणो योजनीयः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

५. दीप्तस्तु दीप्तनादः स्यात्।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०५। अयं प्राणोऽङ्घ्रित्रयादिमेषु द्विखण्डात्मकेषु कामविकारिगीतसंज्ञकेषु पदेषु योजनीयः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

समाहित : 'स्थायी वर्ण' (गानक्रियाविशेष) में स्थित होने के कारण यह 'समाहित' कहलाता है। 'उचित' नामक बारहवें पद में इसकी योजना होती है।[1]

अग्राम्य : गीत के वाक्यावयवरूप पदों में जो अक्षर हों, उनमें पूर्व और अन्तिम दो या तीन अक्षरों का पश्चाद्वर्त्ती पदों से पूर्व चक्रवाल-रीति से उच्चारण और इसी प्रकार उन अक्षरों से सम्बद्ध स्वरों का उच्चारण 'अग्राम्य' नामक प्राण कहलाता है। इसकी योजना 'ध्रुव' के चित्र नामक प्रथम पद में होती है, जो मध्य लय में गाया जाता है।[2]

सुकुमार : अक्षर एवं स्वरों की कोमलता इस प्राण का अभिव्यंजन करती है। 'ध्रुवा' खण्ड के 'वासव' नामक द्वितीय पद में इसकी योजना होती है, जो मध्य लय में गाया जाता है।[3]

प्रसन्न : शब्द, स्थान, स्वर इत्यादि की स्पष्टता 'प्रसाद' है। प्रसादयुक्त प्राण प्रसन्न कहलाता है। इसकी योजना 'ध्रुव' के अन्तिम पद 'मृदु' में होती है, जो विलम्बित लय में गाया जाता है।[4]

ओजस्वी : शब्दों में समास की अधिकता और तानों में गठाव का नाम 'ओज है। ओजोयुक्त प्राण 'ओजस्वी' कहलाता है।[5] आभोग के पद सुचित्र में इस प्राण की योजना होती है।[6]

एला-प्रबन्ध का यह सामान्य लक्षण है। एला के मुख्य भेद 'गणैला', 'वर्णैला', 'मात्रैला' और 'देशाख्यैला' हैं। अक्षरों से निर्मित गणों से युक्त 'गणैला', मात्रानिर्मित गणों से युक्त 'मात्रैला', वर्णों (ह्रस्व-दीर्घ-नियम से रहित अक्षरों से) युक्त 'वर्णैला' और कर्णाट, लाट, गौड, आन्ध्र एवं द्राविड भाषाओं से युक्त एलाएँ 'देशाख्या' कहलाती हैं।

---

१. स्थायिस्थस्तु समाहितः।—सं० र०, अ० सं०, प्रब०, पृ० २०५।
पूर्वप्रयोगद्वयादन्यप्रयोगात्मके ह्युचितसंज्ञके द्वादशे पदे तत्र तत्रोचितान् स्थायिनः कृत्वा अक्षरवर्जितायां गमकालप्तौ कृतायां समाहिताख्यः प्राणस्तत्र योजितो भवति।
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

२. अग्राम्योऽक्षरनादानामावृत्त्या समुदाहृतः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०५।
एवं द्विविधया आवृत्त्या निष्पन्नोऽग्राम्यो नाम प्राणो ध्रुवखण्डादिमे मध्यलययुक्ते चित्राख्ये पदे योजनीयः।—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

३. सुकुमारो वर्णनादमूर्च्छनाकोमलत्वतः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०५।
अयं वासवाख्ये मध्यलययुक्ते ध्रुवखण्डस्य द्वितीये पदे योजनीयः।
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०५।

४. प्रसन्नः स्थात्पदस्थानस्वरादीनां प्रसादतः।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०५।
अयं प्राणो ध्रुवखण्डान्तिमे विलम्बितयुक्ते मृदुसंज्ञके पदे योजनीयः।
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० २०६।

५. ओजोबहुल ओजस्वी...।—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २०६।

६. अयमाभोगात्मनि सुचित्रसंज्ञके षोडशे पदे योजनीयः।—कल्लि० उपरिवत्, पृ० २०६।

एलां-सामान्य : एक दृष्टि में

धातु	पाद	पद	नाम	देवता	विशेषता	प्राण	प्राण का स्पष्टीकरण	लय
१	२	३	४	५	६	७	८	९
उद्ग्राह	प्रथम	१	काम	पद्मालया	दो खण्ड सानुप्रास तुल्य-धातुक, भिन्नमातुक प्रयोग, अक्षरवर्जित	दीप्त	दीप्तनाद	—
		२	मन्मथवत्	पत्रिणी	गमकालप्ति सम्बोधन-पद	समान	अल्पाक्षर ध्वनि	—
		३	कान्त	रंजनी	पल्लव (प्रथम)	मधुर	स्वल्पनाद-मूर्च्छनायुक्त	विल०
		४	जित	सुमुखी	पल्लव (द्वितीय)	सान्द्र	निबिडाक्षर, अल्पध्वनि, तारगति	विल०
		५	मत	शची	पल्लव (तृतीय)	कान्त	कान्तध्वनि-निर्मित	द्रुत०
द्वितीय		६	विकारी	वरेण्या	दो खण्ड-मानुप्रास तुल्यधातु, भिन्नमातु	दीप्त	दीप्तनाद	
		७	मान्धाता	वायुवेगा	प्रयोग, दूसरे पद के समान	समान	अल्पाक्षरध्वनि	
		८	सुमति	वेदिनी	पल्लव (प्रथम)	मधुर	स्वल्पनाद मूर्च्छनायुक्त	विल०
		९	शोभि	मोहिनी	पल्लव (द्वितीय)	सान्द्र	निबिडाक्षर अल्पध्वनि, तारगति	विल०
		१०	सुशोभि	जया	पल्लव (तृतीय)	कान्त	कान्तध्वनि-निर्मित	द्रुत
तृतीय		११	गीतक	गौरी	खण्डद्वय, मानुप्रास तुल्यधातु भिन्नमातु	दीप्त	दीप्तनाद	
		१२	अंचित (उचित)	ब्राह्मी	सम्बोधन-पदान्वित प्रयोग	समाहित	स्थायिस्थ	
ध्रुव		१३	विचित्र	मानंगी	तुल्यधातु, भिन्नमातु	अग्राम्य	अक्षरनादावृत्तियुक्त	मध्य०
		१४	वासव	चण्डिका	तुल्यधातु, भिन्नमातु	सुकुमार	वर्णनाद-मूर्च्छना-कोमलत्वयुक्त	मध्य०
		१५	मृदु	विजया	भिन्नधातु, भिन्नमातु	प्रसन्न	पदस्थान-स्वर, प्रसादयुक्त	विल०
आभोग		१६	सुचित्र	चामुण्डा	स्वाभिधानयुक्त	ओज	ओजोबहुल	

वर्णों अथवा मात्राओं के नियम का विनियोग प्रत्येक 'चरण' या 'पाद' के उन दोनों खण्डों के लिए है, जहाँ किसी पद में 'धातु' एवं 'मातु' के सम्बन्ध में निर्देश है। अन्य पदों में गण इत्यादि का नियम नहीं और वहाँ वाग्गेयकार को रचना की स्वतन्त्रता है।

एला-प्रबन्ध का यह रूप हमें बताता है कि प्रबन्धों के शिल्प में सार्थक, परन्तु तालहीन पद भी होते थे और सार्थक सताल पद भी। इनकी रचना में जहाँ काव्यशास्त्र की मर्मज्ञता आवश्यक थी, वहाँ संगीतशास्त्र की भी। गेय भाग छन्दोयुक्त हो सकते थे और अनिर्युक्त प्रबन्धों में भाषा का छन्दोहीन अथवा तालहीन रूप भी गेय होता था। यही नहीं, अर्थहीन 'पाटाक्षर' भी गेयत्व-संवलित होने पर षडंग प्रबन्धों का अनिवार्य अंग हो सकते थे।

प्रबन्ध के अर्थहीन अंगों का विचार प्रतिज्ञात सीमा-रेखा में नहीं है, परन्तु उसके सार्थक वाक्यों में काव्य की सभी विशेषताएँ यथास्थान आवश्यक होती हैं।

प्रबन्धों में गद्य :

अनेक प्रबन्धों में छन्द का बन्धन नहीं। यहाँतक कि गेय प्रबन्धों में एक प्रबन्ध का नाम ही 'गद्य' है। इसके निम्नांकित छह भेद हैं, जो कोष्ठक में स्पष्ट किये गये हैं :

गद्य-प्रबन्ध और उसकी विशेषताएँ[1]

संज्ञा	रस	वर्ण	देवता	रीति	वृत्ति
१	२	३	४	५	६
१. उत्कलिका	वीर	रक्त	रुद्र	गौडी	आरभटी

१. गद्यं निगद्यते छन्दोहीनं पदकदम्बकम्।
तत्षोढोत्कलिका चूर्णं ललितं वृत्तगन्धि च॥
खण्डं चित्रं च तेषां च प्रभवः सामवेदतः।
गातव्योत्कलिका वीरे रक्ता रुद्राधिदेवता॥
गौडीयरीतिरुचितां वृत्तिमारभटीं श्रिता।
चूर्णं शान्ते रसे पीतं गातव्यं ब्रह्मदैवतम्॥
वैदर्भरीतिसम्पन्नं सात्त्वतीं वृत्तिमाश्रितम्।
सितं मदनदैवत्यं शृङ्गाररसरञ्जितम्॥
ललितं कैशिकीं वृत्तिं पाञ्चालीं रीतिमाश्रितम्।
वृत्तगन्धि रसे शान्ते पीतं च मुनिदैवतम्॥
पाञ्चालरीतौ भारत्यां पद्यभागविमिश्रितम्।
खण्डं गणेशदैवत्यं सात्त्वतीं वृत्तिमाश्रितम्॥
श्वेतं हास्यकृतारम्भं वैदर्भीभङ्गिसम्भवम्।
शृङ्गारे वैष्णवं चित्रं चित्रकैशिकवृत्तिजम्॥
वैदर्भ्या रचितं रीत्या नानारीतिविचित्रया।

—सं० र०, प्रब०, पृ० २५१।

	संज्ञा	रस	वर्ण	देवता	रीति	वृत्ति
	१	२	३	४	५	६
२.	चूर्ण	शान्त	पीत	ब्रह्मा	वैदर्भी	सात्त्वती
३.	ललित	शृंगार	सित	मदन	पांचाली	कैशिकी
४.	वृत्तगन्धि	शान्त	पीत	मुनि	पांचाली	भारती (पद्यभाग-मिश्रित)
५.	खण्ड	हास्य	श्वेत	गणेश	वैदर्भी	सात्त्वती
६.	चित्र	शृंगार	श्वेत	विष्णु	वैदर्भी	चित्रकैशिकी

एक विशिष्ट सम्प्रदाय में गद्य के दो और भेद 'वेणी' तथा 'मिश्र' होते हैं। छहों प्रकार के गद्य से मिश्रित 'वेणी' तथा 'चूर्णक' एवं 'वृत्तगन्धि' भेदों से मिश्रित गद्य-प्रबन्ध 'मिश्र' कहलाता है।[1]

गद्य की छह गतियाँ निम्नांकित हैं[2] :

१. **द्रुता** : लघु अक्षरों के बहुल प्रयोग से द्रुता गति होती है।

२. **विलम्बिता** : लघु अक्षरों के अत्यल्प प्रयोग से विलम्बिता गति होती है।

३. **मध्या** : लघु और गुरु अक्षरों के समान प्रयोग से 'मध्या' गति होती है।

४. **द्रुतविलम्बिता** : प्रथम अर्द्ध भाग में लघु और अन्तिम अर्द्ध भाग में गुरु अक्षरों का प्रयोग द्रुतविलम्बिता गति को जन्म देता है।

५. **द्रुतमध्या** : पूर्वार्द्ध में लघु-गुरु अक्षरों का समसंख्य प्रयोग द्रुतमध्या का जनक है।

६. **मध्यविलम्बिता** : प्रथमार्द्ध में लघुओं तथा उत्तरार्द्ध में गुरुओं का प्रयोग मध्य-विलम्बिता का जनक है।

गद्य-प्रबन्ध के छत्तीस भेद :

पूर्वोक्त छह गद्य-प्रबन्धों में इन छह गतियों का योग प्रत्येक के साथ करने से गद्य-प्रबन्धों के छत्तीस प्रकार हो जाते हैं।[3]

---

१. वेणी मिश्रमिति प्राहुरन्ये भेदद्वयं परम्।
वेणी सर्वैः कृता मिश्रं चूर्णकैर्वृत्तगन्धिभिः॥—उपरिवत्, पृ० २५१।

२. द्रुता विलम्बिता मध्या द्रुतमध्या तथा परा।
गतिर्द्रुतविलम्बा स्यात्षष्ठी मध्यविलम्बिता।
इति गद्यस्य षट् प्रोक्ता गतयः पूर्वसूरिभिः॥
लघुभिर्बहुलैरल्पैः समैराद्यत्रयं क्रमात्।
पृथग्लगत्वे मिश्रैस्तु लगैस्तद्वत्परं त्रयम्॥—सं० र०, प्रब०, पृ० २५१।

३. प्रत्येकं गतिषट्केन षट्त्रिंशद्गद्यजा भिदाः।—उपरिवत्, पृ० २५२।

गद्य-प्रबन्ध का प्रयोग :

गद्य-प्रबन्ध में उद्ग्राह, ध्रुव और आभोग तीन भाग होते हैं। 'उद्ग्राह' नामक धातु ताल-रहित होता है, 'ध्रुव' नामक धातु सताल होता है, जिसके दो पदों को दो-दो बार गाया जाता है और 'आभोग' नामक अन्तिम धातु 'सताल' होता है, जिसके आरम्भ में अक्षर-हीन गमकों की 'प्रयोग' नामक आलप्ति होती है।

'उद्ग्राह' का आरम्भ 'ओंकार' से होता है, जिसमें समस्त गमकों तथा गान-क्रियाओं का प्रयोग विहित है, ताल-रहित शब्दों के अवसान पर स्वरों का प्रयोग होता है।

ध्रुव नामक धातु में प्रबन्ध का नाम तथा दो 'पद' होते हैं, जिनमें प्रत्येक दो बार गाया जाता है, इन दोनों पदों में से किसी एक में प्रयोज्य प्रबन्ध का नाम रखा जाता है। इस ताल-सहित धातु का गान विलम्बित लय में किया जाता है।

आभोग धातु भी सताल होता है, इसमें गायक और वर्णनीय व्यक्ति के नाम का गान होता है। इस धातु के आरम्भ में गमकालप्ति का प्रयोग जिस ताल में होता है, उससे भिन्न ताल में गायक एवं वर्ण्य का प्रयोग होता है।

इस समस्त प्रबन्ध का द्रुत लय में एक बार पुनः गान करके विलम्बित लय में प्रयुज्य-मान पदों के गान के पश्चात् समाप्ति होती है।[1] 'मुक्तावली' जैसे प्रबन्ध छन्दोहीन ही होते हैं।

गद्य अथवा पद्य के विकल्प से युक्त प्रबन्ध :

तुरंगलीला, चक्रवाल, क्रौंचपद, मातृका, तालार्णव इत्यादि प्रबन्ध गद्यज भी होते हैं और पद्यज भी।

गद्य-पद्य-मिश्र :

'निःसारु' नामक प्रबन्ध में गद्य-पद्य का मिश्रण होता है।

विभिन्न छन्दोयुक्त प्रबन्ध :

नन्द्यावर्त्त प्रबन्ध में चार 'वृत्तों' का एकत्र प्रयोग विहित है।

छन्दोविशेषयुक्त प्रबन्ध :

आर्या, तोटक, कलहंस इत्यादि प्रबन्धों के नाम अपने छन्द के कारण ही पड़े हैं। इन प्रबन्धों का सम्पूर्ण भाग ही छन्दोविशेषमय होता है।

---

१. प्रणवाद्यमतालं च गमकैरखिलैर्युतम्।
वर्णैश्चातालशब्दानां स्वरैरन्तेऽन्तरान्तरा।
प्रबन्धाङ्कं सतालं च पदद्वन्द्वं पृथक्ततः॥
द्विर्गीत्वा गीयते यत्र प्रयोगोऽपि विलम्बितः।
गातनाम सतालं च सतालं वर्ण्यनाम च॥
विलम्बितेन मानेन पुनरप्यविलम्बितम्।
गीत्वा विलम्बितालेन न्यासो गद्यं तदिष्यते॥—सं० र०, प्रब०, पृ० २५३।

प्रबन्ध-प्रयोज्य भाषाएँ :

देशाख्य एला-प्रबन्धों की चर्चा पहले आ चुकी है, भाषा-भेद के कारण ही जिनके पाँच भेद होते हैं। कन्द[१], त्रिपदी[२], षट्पदी[३], प्रबन्धों में कर्णाट-भाषा का प्रयोग विहित है। आर्या-प्रबन्ध में यदि प्राकृत-भाषा का प्रयोग किया जाय, तो उसकी संज्ञा 'गाथा' हो जाती है।[४] 'ओवी'-प्रबन्ध भी देशभाषा में गाया जाता है,।[५] महाराष्ट्र में 'ओवी' आज भी गाया जाता है, जिसे अज्ञान के कारण आज शास्त्रीयता की परिधि से बाहर निकाल दिया गया है।

'द्विपथ' अथवा 'दोधक' प्रबन्ध की संज्ञा ही आज से सात-आठ सौ वर्ष पूर्व लोकभाषा में 'दोहा' हो गई थी।[६] इसी प्रकार, चच्चरी प्रबन्ध की संज्ञा का अपभ्रंश है। 'दोहा' और 'चाचर' जैसे प्रबन्धों में संस्कृत-भाषा का प्रयोग अविहित है।

यमक-प्रयोग-युक्त प्रबन्ध :

'चतुष्पदी' जैसे प्रबन्धों में भिन्नार्थ-यमक का प्रयोग अनिवार्य है।[७]

अन्त्यानुप्रास-युक्त :

'एला'-प्रबन्ध के तीनों पादों के प्रथम पद में स्थित दोनों खण्डों को सानुप्रास (अन्त्यानुप्रास-युक्त) बताया जा चुका है। 'पद्धड़ी' जैसे प्रबन्धों के समस्त पदों में भी पादान्त्यानुप्रास की सत्ता अनिवार्य है।[८] 'चच्चरी' के सोलह पदों में दो-दो पदों की तुक मिलनी चाहिए।[९] 'ओवी' के तीन चरणों की 'तुक' एक होती है।[१०]

सालगसूड-प्रबन्ध और उनके भेद :

'सूड' देशज शब्द है और 'सालग' संस्कृत-शब्द 'छायालग' का अपभ्रंश है।[११] 'एला' इत्यादि प्रबन्ध 'मार्ग', 'गीतकों' और 'गीतों' की सदृशता के कारण औपचारिक रूप में 'शुद्ध'

---

१. कर्णाटिपदैः... ...कन्दः स्यात्... ।—उपरिवत्, सं० र०, प्रब०, पृ० २०५।
२. स्यात् त्रिपदी तालहीना कर्णाटभाषया... ।—उपरिवत्, पृ० २९१।
३. षट्पदी मता, कर्णाटभाषया... ।—उपरिवत्, पृ० २९३।
४. आर्य्यैव प्राकृते गेया...गाथेति... ।—उपरिवत्, पृ० २७२।
५. गीयते देशभाषया, ओवीपदं... ।—उपरिवत्, पृ० ३०९।
६. असौ द्विपथकः प्राकृते 'दोहा' इत्युच्यते ।—सिंह० उपरिवत्, पृ० २७५।
७. यस्यां भिन्नार्थयमकावद्धौ सा च चतुष्पदी ।—उपरिवत्, पृ० २९२।
८. चरणान्तसमप्रासा पद्धडीच्छन्दसा युता ।—उपरिवत्, पृ० ३०४।
९. यस्यां षोडशमात्राः स्युर्द्वौ द्वौ च प्राससंयुता ।
सा वसन्तोत्सवे गेया चच्चरी प्राकृतैः पदैः ।।—उपरिवत्, पृ० ३०२।
१०. खण्डत्रयं प्रासयुतं गीयते देशभाषया ।
ओवीपदं तदन्ते चेदोवी तज्ज्ञैस्तदोदिता ।।—उपरिवत्, पृ० ३०९।
११. सालग इतिच्छायालगशब्दस्यापभ्रंशोऽपि लोकप्रसिद्धया प्रयुक्त इति वेदितव्यः ।
—कल्लि०, प्रब०, पृ० ३१०।

कहलाते और 'शुद्ध सूड' प्रबन्धों में परिगणित होते हैं, परन्तु 'ध्रुव' इत्यादि प्रबन्धों में मार्ग-संगीत के नियमों का अतिलंघन होता है, अतः इनको 'सालगसूड' कहा जाता है।[1]

सालगसूड प्रबन्धों के सात भेद :

ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, निःसारुक, अड्डताल, रास और एकताली ये सात सालगसूड प्रबन्ध हैं।[2]

ध्रुव : ध्रुव-प्रबन्ध में, उद्ग्राह धातु की रचना में दो खण्ड होते हैं। इन दोनों की गेयता सदृश होती है और वाक्य-रचना भिन्न। तत्पश्चात् 'अन्तर' नामक धातु का निर्माण एक खण्ड से होता है, जो उद्ग्राह की अपेक्षा उच्च स्वरों में गाया जाता है। 'उद्ग्राह' और 'अन्तर' को दो बार गाने के पश्चात् 'आभोग' नामक धातु का गान होता है, जिसमें दो खण्ड होते हैं। इन दोनों खण्डों में से प्रथम खण्ड दो अवान्तर खण्डों में विभक्त है, जिनकी गेयता समान होती है। दूसरा खण्ड प्रथम खण्ड की अपेक्षा उच्चतर स्वरों में गाया जाता है। आभोग में स्तुत्य (नायक) का नाम रहता है। इतना गाने के पश्चात् उद्ग्राह का प्रथम खण्ड गाकर समाप्ति की जाती है।[3]

ध्रुव-प्रबन्ध के सोलह भेद होते हैं। ग्यारह अक्षरों के खण्ड से छब्बीस अक्षरों के खण्डवाले ध्रुव-प्रबन्धों का प्रयोग शास्त्रविहित है।

---

१. एलादिः शुद्ध इत्युक्तो ध्रुवादिः सालगो मतः।
छायालगत्वमेलादेर्यद्यप्याचार्य्यसम्मतम् ॥
लोके तथापि शुद्धोऽसौ शुद्धसादृश्यतो मतः।
जात्याद्यन्तरभाषान्तं शुद्धं प्रकरणान्वितम् ॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० २१०।
अतः शुद्धत्वमौपचारिकमेलादेः।
ध्रुवादेस्तु नियमातिलङ्घनात्सर्वथा सालगत्वमिति भावः।
—कल्लि०, उपरिवत्, पृ० ३१०।

२. आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठप्रतिमण्ठनिसारुकाः।
अड्डतालस्ततो रास एकतालीत्यसौ मतः ॥—सं० र०, उपरिवत्, पृ० ३११।

३. एकधातुर्द्विखण्डः स्याद्यत्रोद्ग्राहस्ततः परम्।
किञ्चिदुच्चं भवेत्खण्डं द्विरभ्यस्तमिदं त्रयम् ॥
ततो द्विखण्ड आभोगस्तस्य स्यात्खण्डमादिमम्।
एकधातु द्विखण्डं च खण्डमुच्चतरं परम् ॥
स्तुत्यनामाङ्कितश्चासौ क्वचिदुच्चैकखण्डकः।
उद्ग्राहस्याद्यखण्डे च न्यासः सध्रुवको भवेत् ॥
—सं० र०, प्रब०, पृ० ३१३।

ध्रुव-प्रबन्धों के सोलह भेद[1]

नाम	अक्षर-संख्या	ताल[1]	रस	फल
१. जयन्त	११	आदि-ताल	शृगार	नायक, श्रोता और गायक की आयु और श्री का वर्द्धन
२. शेखर	१२	निःसारु	वीर	ऋद्धि और सौभाग्य का दान
३. उत्साह	१३	प्रति-मण्ठ	हास्य	वंशवृद्धि
४. मधुर	१४	हय-लीला	करुण	भोग
५. निर्मल	१५	क्रीडा	शृंगार	प्रभावर्द्धन
६. कुन्तल	१६	लघु-शेखर	अद्‌भुत	अभीष्ट-सिद्धि

---

१. आदितालेन शृङ्गारे जयन्तो गीयते बुधैः।
स नेतृश्रोतृगातृणामायुः श्रीवर्द्धनो मतः॥
ऋद्धिसौभाग्यदो वीरे निःसारौ शेखरो भवेत्।
प्रतिमण्ठेन हास्ये स्यादुत्साहो वंशवृद्धिकृत्॥
मधुरो भोगदो गेयः करुणे हयलीलया।
क्रीडातालेन शृङ्गारे निर्मलस्तनुते प्रभाम्॥
लघुशेखरतालेन कुन्तलोऽभीष्टदोऽद्भुते।
कामलो विप्रलम्भे स्याज्झम्पातालेन सिद्धिदः॥
हर्षोत्कर्षप्रदश्चारो वीरे निःसारुतालतः।
नन्दनो वीरशृङ्गार एकताल्येष्टसिद्धिदः॥
वीरे हास्ये च शृङ्गारे प्रतिमण्ठेन गीयते।
अभीष्टफलदः श्रोतृगातृणां चन्द्रशेखरः॥
प्रतिमण्ठेन शृङ्गारे कामोदोऽभीष्टकामदः।
हास्ये द्वितीयतालेन विजयो नेतुरायुषे॥
हास्यशृङ्गारकरुणेष्वादितालेन गीयते।
कन्दर्पो भोगदो नृणां श्रीसवाशिवसम्मतः।
क्रीडातालेन शृङ्गारे वीरे च जयमङ्गलः॥
जयोत्साहप्रदः पुंसां ध्रुवकस्तिलकाभिधः।
रसे वीरे च शृङ्गारे एकताल्या प्रगीयते॥

—सं० र०, प्रब०, पृ० ३१५।

नाम	अक्षर-संख्या	ताल	रस	फल
७. कामल	१७	झम्पा	विप्रलम्भ	सिद्धिदायित्व
८. चार	१८	नि:सारु	वीर	हर्षोत्कर्ष-प्रदान
९. नन्दन	१९	एकताली	वीर, शृंगार	इष्टसिद्धि
१०. चन्द्रशेखर	२०	प्रतिमण्ठ	वीर, हास्य, शृंगार	अभीष्ट-फलप्राप्ति
११. कामोद	२१	प्रतिमण्ठ	शृंगार	,,
१२. विजय	२२	द्वितीय	हास्य	नायक की दीर्घायु
१३. कन्दर्प	२३	आदि	हास्य, शृंगार, करुण	भोग-प्राप्ति
१४. जयमंगल	२४	क्रीडा	शृंगार, वीर	जय, उत्साह
१५. तिलक	२५	एकताली	,,	,,
१६. ललित	२६	प्रतिमण्ठ	शृंगार	सर्वसिद्धि

ध्रुव नामक प्रबन्ध के सभी खण्डों की रचना यथाबोधित अक्षर-संख्या के अनुसार की जा सकती है और यह भी हो सकता है कि अक्षर-सख्या के नियम का पालन केवल प्रथम दो खण्डों मे किया जाय तथा अवशिष्ट खण्डों में अक्षर-सख्या यथारुचि रखी जाय। मुनिसत्तम (भरत) के कथनानुसार इन ध्रुव-प्रबन्धों का गान समस्त यज्ञों के फल का देनेवाला है।[1]

पन्द्रहवी शती ई० में 'ध्रुव' के जयन्त आदि सोलह भेदों मे अक्षर-संख्या के नियम का उल्लंघन होने लगा था। **कल्लिनाथ** ने यह कहकर इस दोष का परिहार किया है कि 'अक्षर' शब्द से 'पद' (शब्द) का भी ग्रहण हो जाता है। 'अक्षरार्थ' और 'पदार्थ' शब्द समानार्थवाची है। अत, जहाँ अक्षर-नियम न दिखाई दे, 'पदों' की संख्या देखनी चाहिए। जहाँ इस दृष्टि से भी नियम-राहित्य दिखाई दे, वहाँ समझना चाहिए कि ऐसे प्रबन्धों के गान से अदृष्टफल की प्राप्ति नही होगी, परन्तु जनरंजन इत्यादि दृष्टफल की

---

१. **स्याद्वर्णनियमः सर्वखण्डः खण्डद्वये तथा।**
यथोक्तान्यो जयन्तादीनायेन्निपुणया धिया॥
सर्वक्रतुफलं तस्येत्यवोचन्मुनिसत्तमः।
—सं० र०, प्रब०, पृ० ३१५।

प्राप्ति तो होगी ही। उद्ग्राह आदि अवयवों में अक्षरनियम-रहितता होने पर भी रस-तालयुक्तता के कारण 'ध्रुव' शब्द का व्यवहार तो होगा ही, भले ही उन्हे पूर्वोक्त संज्ञाओं में से कोई विशेष संज्ञा न दी जा सके।[1]

ध्रुवपद

एला इत्यादि शुद्ध सूड-प्रबन्धों के 'ध्रुव' नामक धातु में नियोजित पद तो 'ध्रुवपद' कहलाते ही थे, परन्तु 'ध्रुव-प्रबन्ध' में नियोजित पद भी 'ध्रुवपद' कहलाते थे। वहाँ 'पद' का खण्ड 'पक्ति' समझना चाहिए। 'ध्रुवपदों' में 'पद्यत्व' अनिवार्य नही था।

---

१. ननु जयन्तादिषु षोडशसु ध्रुवेषु योऽक्षरसङ्ख्यानियम उक्तः, स वर्त्तमानेषु केषुचिद्ध्रुवेषु न दृश्यते। तत्कथं तेषां लक्षणहीनत्वेऽपि लोके परिग्रह इति चेत्, सत्यमेतत्। अत्राक्षरशब्देन पदान्यप्युच्यन्ते। यथायमक्षरार्थं इति पदार्थो वर्ण्यते। तेन क्वचित्पदानां वा सङ्ख्यानियमो द्रष्टव्यः यत्र सोऽपि नास्ति तत्राक्षरादेः सङ्ख्यानियमाभावान्नियमोक्तादृष्टफलस्याभाव एव, न तु दृष्टफलस्य जनरञ्जनादेरपि। तेन तेषां लोकपरिग्रहोऽप्युपपन्न एव। अनियताक्षररसतालयुक्तस्योद्ग्राहाद्यवयवसन्निवेशस्याविशिष्टत्वेन तेषामपि लक्षणत्वाद्ध्रुवव्यवहारो न हीयत एव।

—कल्लि०, सं० र०, प्रब०, पृ० ३१२।

द्वितीय अध्याय

संगीत की अनादि परम्परा का उच्छेद और उसके कारण

दशम शती ई० के अन्त में वितस्ता नदी के तट पर स्थित प्रवरपुर के एक मठ में **महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त** ने 'नाट्यशास्त्र' पर 'अभिनवभारती' की रचना की। इस टीका का अध्ययन यह बताता है कि आचार्य अभिनवगुप्त के समय नाट्यशास्त्र की परम्परा कश्मीर में भली भाँति प्रचलित थी। महामाहेश्वर आचार्य अभिनव स्वयं एक महान् वैणिक थे।[1]

इस युग में भारत पर **महमूद गजनवी** के आक्रमण आरम्भ हुए। उसका प्रथम अभियान सन् १००० ई० में हुआ और अन्तिम अभियान सन् १०२६ ई० में। इन सत्रह अभियानों में महमूद ने वाहिद-नरेश **जयपाल** को पेशावर में पराजित किया, पंजाब के शासक **आनन्दपाल** को रौंदा, मुलतान के शासक **अबुलफतह् दाऊद** का मान-मर्दन किया, नगरकोट जीता, नारदीन अथवा नन्दनाथ के शासक **भीमपाल** को आक्रान्त किया, कश्मीर को लूटा, थानेश्वर को जीतकर नरमेध किया, कन्नौज को पददलित किया, मथुरा और वृन्दावन मे विनाश-लीला की, चन्देल-शासक **राज्यपाल** को वशवर्त्ती बनाया, ग्वालियर जीता, सोमनाथ पर आक्रमण किया और नमक के पहाड पर बसे हुए जाटों पर आक्रमण किया।

भारत पर महमूद के आक्रमणो का वर्णन करते हुए उसके आश्रित इतिहासकार **अलबेरूनी** ने लिखा है कि महमूद ने इस देश की समृद्धि को पूर्णतया समाप्त कर दिया तथा ऐसा आश्चर्यजनक उत्पीडन किया कि जिससे हिन्दू-जाति चतुर्दिक् बिखरे हुए धूलिकणों के समान हो गई और किंवदन्तियों का विषयमात्र रह गई। इस जाति के अवशिष्ट अश अपने मन में मुसलमान-मात्र के प्रति घोर घृणा की भावनाओं का पोषण करने लगे है। यही कारण है कि भारतीय विद्याएँ उन स्थानों से बहुत दूर हट गई है, जिनको हमने जीत लिया है और ऐसे स्थानों में पलायन कर गई है, जहाँतक अभी हमारे हाथ नही पहुँचे है।[2]

सस्कृत की एक उक्ति है कि जब राष्ट्र शस्त्र के द्वारा रक्षित होता है, तभी शास्त्र-चिन्तन होता है, अतः विद्वान् लोग अपने अमूल्य ग्रन्थों को लेकर सुरक्षित प्रदेशों में चले गये। सगीत को आश्रय देनेवाले राजा थे, अथवा मन्दिरों में सगीतज्ञों को आश्रय मिलता था। राजाओं की पराजय और मन्दिरों के ध्वंस ने कलाकारों को भी निराश्रय बनाकर इधर-उधर पलायन के लिए विवश कर दिया।

---

१. **भरत का संगीत-सिद्धान्त**, पृ० २६८।

२. **मध्ययुग का इतिहास**, पृ० १०२।

महमूद गजनवी ने आनेवाली पीढ़ियों को लूट-मार का मार्ग दिखा दिया था। हिन्दुस्तान का पर्याप्त भाग गजनी-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था, पेशावर मुलतान, भटिण्डा, कॉगड़ा इत्यादि इसके अभिन्न अंग बन गये थे।

महमूद की मृत्यु सन् १०३० ई० के ३० अप्रैल को हुई। महमूद के भाई **मसऊद खिलजी** ने महमूद के ज्येष्ठ पुत्र **मुहम्मद** को हटाकर सन् १०३१ ई० में सिंहासन पर अधिकार किया।

दक्षिण में अभीतक मुसलमानो की शनिदृष्टि नही पड़ी थी। प्रसिद्ध कवि **बिल्हण** के आश्रयदाता **परमर्दी सोमेश्वर** (शा० का० सन् १०७६—११२६ ई०), इनके पुत्र और कुण्डलीनृत्त के आविष्कारक **सोमेश्वर** (रा० का० सन् ११२७—११३४ ई०) तथा इनके पुत्र **जगदेकमल्ल** सगीत के साधक, विद्वान् और ग्रन्थकार थे। उत्तर से दूर होने के कारण इनपर मुसलमानों के आक्रमण का कोई साक्षात् प्रभाव नही पडा।

महाराज सोमेश्वर ने 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' की रचना की, जिसे विश्वकोश समझा जाना चाहिए। इस ग्रन्थ के चौथे प्रकरण मे सगीतविषयक एक सहस्र एक सौ सोलह श्लोक है। छियानव्बे देशी रागों का इनके द्वारा किया हुआ वर्णन साक्षी है कि दक्षिण में इनकी राजधानी 'कल्याण' में सगीत की प्राचीन परम्परा प्रचार में थी। महाराज जगदेकमल्ल का ग्रन्थ 'संगीतचूडामणि' में रागजननी जातियों के ध्यान भी हैं और वर्णन का विषय प्रबन्ध, ताल, राग, वाद्य एवं नृत्य है।

सौराष्ट्र-नरेश **महाराज हरिपाल** भी चालुक्यवंशीय क्षत्रिय थे। इनकी राजधानी अभिनवपुर (वर्त्तमान नवानगर) थी। ये महाराज भीमदेव के पुत्र थे। 'सगीतसुधाकर' इनकी प्रौढ रचना है, जो बताती है कि सौराष्ट्र में उस समय प्राचीन सम्प्रदाय प्रचलित था।

सम्राट् **अजयपाल** और **भीमपाल** के वेत्राधिपति **सोमराजदेव** ने सन् ११८० ई० के लगभग अपने ग्रन्थ 'संगीतरत्नावली' की रचना की, जिसमें स्वर, ग्राम, प्रबन्ध, राग, ताल और वाद्य का विवेचन है। ये सभी ग्रन्थ समस्त भारत मे प्रचलित एक ही परम्परा के प्रभाव हैं। ग्यारहवी और बारहवी शती ई० में विरचित इन सभी ग्रन्थों का आधार 'नाट्यशास्त्र' है।

मुहम्मद गोरी ने **गजनी** के साम्राज्य पर सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया। सन् ११८१ ई० में वह लाहौर पर चढ़ आया और उसने गजनवी-वंश के **खुसरो मल्लिक** को धर दबाया। खुसरो मल्लिक सन्धि करने के लिए विवश हुआ और उसे जमानत के रूप में अपना चतुर्वर्षीय पुत्र मुहम्मद गोरी के पास रखना पड़ा। सन् ११८६ ई० में उसने लाहौर पर पुनः आक्रमण किया। झूठे वचन और आश्वासन देकर खुसरो मल्लिक को बाहर बुलाया गया और बन्दी बनाकर गजनी भेज दिया गया।

इसी आक्रमण के समय प्रसिद्ध सूफी **ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी** भी मुहम्मद गोरी की सेनाओं के साथ लाहौर आये। इनका जन्म ईरान में और पालन-पोषण खुरुसान मे हुआ था। इन्हे हारून, बगदाद, हमदाद, इस्फहान, तबरेज, खरकान, अस्तराबाद, हिरात,

बलख और गजनी के ऐसे अनेक सूफियो का सहयोग और आशीर्वाद प्राप्त था, जिनकी प्रसिद्धि भारतीय मुसलमानों में भली भाँति हो चुकी थी। सभी मुस्लिमों की श्रद्धा **शेख मुईनुद्दीन** चिश्ती को प्राप्त था और इनके चमत्कारों की अनेक कहानियाँ जनता में प्रचलित हो रही थी।

लाहौर से शेख मुईनुद्दीन चिश्ती दिल्ली आये और वहाँ से अजमेर। **पृथ्वीराज** इनकी ओर से सशक था। उसने इनसे अजमेर छोडकर कही बाहर जाने के लिए कहलवाया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि मै पृथ्वीराज के हाथ बाँधकर उसे किसी अन्य बादशाह के हाथ मे दे दूँगा।[१]

सन् ११९१ ई० मे थानेश्वर से १४ मील दूर तराइन के मैदान में **मुहम्मद गोरी** और **पृथ्वीराज** मे मुठभेड़ हुई, जिसमें मुहम्मद गोरी की घोर पराजय हुई और वह भागकर गजनी पहुँचा।

सन् ११९२ ई० में मुहम्मद गोरी ने पुन. आक्रमण किया। युद्ध हुआ, पृथ्वीराज की पराजय हुई और उन्होंने युद्ध मे वीरगति प्राप्त की। मुहम्मद गोरी ने सिरसुती, सामाना, कुहराम तथा हाँसी पर सरलतापूर्वक अधिकार कर लिया। अजमेर पहुँचकर लूट-मार, नरमेध, मन्दिर-ध्वस इत्यादि कृत्य किये। मस्जिदे बनवाई गईं; मकतबों (पाठशालाओं) की स्थापना हुई, अजमेर का शासन पृथ्वीराज के एक पुत्र को सौप दिया गया, जिसने नियमित रूप से कर देने का वचन दिया।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती का वचन सत्य हुआ, वे उस समय अजमेर मे ही विराजमान थे।

अपने भारतीय प्रदेशों का शासन अपने विश्वस्त नायक **कुतुबुद्दीन ऐबक** को सौपकर मुहम्मद गोरी गजनी लौट गया।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को कुतुबुद्दीन ऐबक ने जागीर में गाँव दिये। कहा जाता है कि शेख मुईनुद्दीन चिश्ती ने अपने जीवनकाल में एक करोड़ हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। वे गान-सभाओं का आयोजन करते थे, जिनमें उनके विचारों को प्रचारित करने-वाली कव्वालियाँ भारतीय भाषा में गाई जाती थी। मुहम्मद गोरी की विजय की अपेक्षा शेख निजामुद्दीन चिश्ती की धार्मिक विजय का महत्त्व अधिक और गम्भीर था। इन्होंने-अजमेर के एक शिया मुसलमान **सैयद हुसेन मशहदी** की कन्या से विवाह कर लिया था।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने थोड़े ही समय मे मेरठ, कोल (अलीगढ के समीप एक स्थान) तथा दिल्ली को जीतकर दिल्ली को राजधानी बनाया।

सन् ११९३ ई० मे मुहम्मद गोरी गजनी से चला। भारत पहुँचते ही वह कन्नौज और बनारस की ओर बढा और उसने सन् ११९४ ई० मे जयचन्द को परास्त किया, जयचन्द मारा गया।

---

१. चेहलरोजः, पृ० ९००-१००० ।

सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाला के **राजा भीमदेव** को परास्त किया। सन् ११९७ ई० में कुतुबद्दीन ऐबक के प्रसिद्ध सेनापति **मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी** ने बिहार पर अधिकार करके अपने स्वामी के दर्शन किये। प्राय: सन् ११९९ ई० मे बगाल पर अधिकार कर लिया गया, नदिया नगर नष्ट कर दिया गया और गौड को इस प्रदेश की राजधानी बनाया गया। सन् १२०२ ई० मे कालिंजर भी कुतुबद्दीन ऐबक के अधिकार मे आ गया।

सन् १२०६ ई० मे मुहम्मद गोरी का देहान्त हो गया और कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट् हुआ। महोबा और बदायूँ भी दिल्ली-साम्राज्य मे मिला लिये गये।

सन् १२०१ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक का देहान्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् राज्य चार भागों मे बँट गया, परन्तु सन् १२१० ई० मे **शम्सुदीन इल्तुतमिश** दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था, उसने शीघ्र ही विभक्त राज्य को पराक्रम के बल पर एक कर लिया। बगाल, बिहार, जाजनगर, कामरूप, निरहुत, गौडप्रदेश, रणथम्भौर, मण्डोर इत्यादि पर दिल्ली-साम्राज्य का पुन अधिकार हो गया। बगदाद के खलीफा ने **शम्सुद्दीन अल्तमश** के राज्याधिकार को प्रमाणित किया। सन् १२३५ ई० मे मुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश की मृत्यु हुई।

शम्सुद्दीन अल्तमश शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के खलीफा (शिष्य, उत्तराधिकारी) **ख्वाजा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी** का बडा प्रभाव था। इन्ही की स्मृति मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया, जिसे शम्सुद्दीन अल्तमश ने पूरा किया।[१] शम्सुद्दीन अल्तमश के प्रतिनिधि अजमेर के शासक ने जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की वह जागीर जब्त कर ली, जो उन्हे कुतुबुद्दीन ऐबक से मिली थी, तब वे इस जागीर को छुडाने के लिए दिल्ली आये और अपने खलीफा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के पास ठहरे। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने जब शम्सुद्दीन अल्तमश के पास जाकर सारा हाल कहा, तब शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को उनकी जागीर वापस मिली।[२]

ये घटनाएँ इन सूफी महापुरुषों के प्रभाव और दरबार के साथ इनके सम्बन्धों का परिचय देती है। सगीत के विद्यार्थी के लिए इन घटनाओं का बडा महत्त्व है, क्योंकि चिश्ती फकीरों की इसी परम्परा के कारण भारतीय सगीत मे महान् परिवर्त्तन हुआ। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का स्वर्गवास कव्वाली सुनते-सुनते ही हुआ।

मुलतान के प्रसिद्ध सूफी **शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी** (जन्म : सन् ११८२ ई०; मृत्यु : सन् १२६७ ई०) शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से भली भाँति परिचित थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुलतान को मुस्लिम-विद्याओं का केन्द्र बना दिया था। शेख जकरिया मुलतानी सगीत के महान् मर्मज्ञ और 'मुलतानीश्री' राग के आविष्कारक थे। इन लोगों की परम्परा में सगीत को गणित की एक शाखा माना जाता था। शम्सुद्दीन की मृत्यु (सन् १२३५ ई०) के समय शेख बहाउद्दीन जकरिया की आयु तिरपन वर्ष की थी।

---

१. **मध्ययुग का इतिहास, पृ० ५२९।**

२. **चेहलरोज:, पृ० १००–१०१।**

मुलतान, दिल्ली, अजमेर इत्यादि में जब कव्वाली का भली भाँति प्रचार हो चुका था और पेशावर, लाहौर, मुलतान, उच्छ, भक्कर, सिन्ध, अनहिलवाड, उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, बदायूँ, बुलन्दशहर, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, लखनौती, गौड आदि सभी जब दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे, तब देवगिरि में सिहण-नरेश के आश्रित कश्मीरी विद्वान् **शाङ्गदेव** क्षत-विक्षत भारतीय संगीत-पद्धति को एकत्र सँजोने के लिए प्राय. सन् १२३० ई० में 'सगीतरत्नाकर' का प्रणयन कर रहे थे।

देवगिरि पर उस समय तक विदेशी आक्रान्ताओ की शनिदृष्टि नहीं पडी थी। आचार्य शाङ्गदेव के पितामह **भास्कर** बारहवी शती ई० में कश्मीर छोडकर देवगिरि में जा बसे थे। उनके पुत्र **सोढल** देवगिरि-नरेश **भिल्लम** और तत्पश्चात् **सिहण** (रा० का० सन् १२१०–१२४७ ई०) के आश्रित थे। सिहण और शम्सुद्दीन अल्तमश का राज्यारोहण-वर्ष एक ही है।

पृथ्वीराज और कन्नौज की पराजय शाङ्गदेव की किशोरावस्था मे हुई। उत्तर के विध्वस की कहानियाँ उनसे छिपी न थी, वे कश्मीर-निवासी आनुवशिक विद्वान्, राजनीतिज्ञ, वेदान्ती, आयुर्वेदज्ञ और सगीतमर्मज्ञ थे। प्राचीन आचार्यो के ग्रन्थ के अतिरिक्त बारहवी शती ई० मे लिखे हुए ग्रन्थ भी उनके पास थे, अत. उन्होंने अनेक दृष्टियो से 'सगीतरत्नाकर' का प्रणयन आवश्यक समझा। सिहण के मृत्यु-वर्ष में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु नौ वर्ष की थी और उनका पालन-पोषण एव शिक्षण उत्तरप्रदेश के एक नगर बदायूँ में हो रहा था। 'सगीतरत्नाकर' की रचना करके एक ओर आचार्य शाङ्गदेव एक महान् कार्य कर रहे थे और दूसरी ओर भवितव्यता 'सगीतरत्नाकर' के भविष्य पर मुस्करा रही थी।

'संगीतरत्नाकर' की रचना (प्रायः सन् १२३० ई०) से केवल ६५-७० वर्ष बाद **अलाउद्दीन खिलजी** के आक्रमण ने सन् १२९६ ई० मे देवगिरि-नरेश **रामदेव** पर अकस्मात् आक्रमण करके देवगिरि-वंश की जडे हिला दी। 'संगीतरत्नाकर' की रचना से प्रायः चौबीस वर्ष बाद व्रज के एटा जिले के अन्तर्गत पटियाली ग्राम में **अमीर खुसरो** का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्नों का परिणाम भारतीय संगीत-सम्प्रदाय का उच्छेद सिद्ध हुआ।

बलबन (सन् १२६६–१२८६ ई०) :

शमसुद्दीन अल्तमश के पुत्र **रुक्नुद्दीन** (मृ० का० सन् १२३६ ई०), पुत्री **रजिया** (मृ० का० सन् १२४० ई०) और पुत्र **नासिरुद्दीन महमूद** (रा० का० सन् १२४६–१२६६ ई०) के बाद **बलबन** दिल्ली के सिहासन पर बैठा।

बलबन **बाबा फरीदुद्दीन गंजशकर** का बडा भक्त था, जो कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के खलीफा (आध्यात्मिक प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी) थे। चिश्ती सूफियों के प्रति दिल्ली के सुलतानों की भक्ति सदैव रही और दरबार पर सूफियों का प्रभाव सदा रहा।

सन् ११९७ ई० में कुतुबुद्दीन ने नेहरवाला के **राजा भीमदेव** को परास्त किया। सन् ११९७ ई० मे कुतुबद्दीन ऐबक के प्रसिद्ध सेनापति **मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी** ने बिहार पर अधिकार करके अपने स्वामी के दर्शन किये। प्राय: सन् ११९९ ई० मे बगाल पर अधिकार कर लिया गया, नदिया नगर नष्ट कर दिया गया और गौड को इस प्रदेश की राजधानी बनाया गया। सन् १२०२ ई० मे कालिजर भी कुतुबद्दीन ऐबक के अधिकार मे आ गया।

सन् १२०६ ई० में मुहम्मद गोरी का देहान्त हो गया और कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट् हुआ। महोबा और बदायूँ भी दिल्ली-साम्राज्य मे मिला लिये गये।

सन् १२०१ ई० मे कुतुबुद्दीन ऐबक का देहान्त हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् राज्य चार भागों मे बँट गया, परन्तु सन् १२१० ई० मे **शम्सुदीन इल्तुतमिश** दिल्ली के सिहासन पर बैठा था, उसने शीघ्र ही विभक्त राज्य को पराक्रम के वल पर एक कर लिया। बगाल, बिहार, जाजनगर, कामरूप, तिरहुत, गौडप्रदेश, रणथम्भौर, मण्डोर इत्यादि पर दिल्ली-साम्राज्य का पुन. अधिकार हो गया। बगदाद के खलीफा ने **शम्सुद्दीन अल्तमश** के राज्याधिकार को प्रमाणित किया। सन् १२३५ ई० में सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश की मृत्यु हुई।

शम्सुद्दीन अल्तमश शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के खलीफा (शिष्य, उत्तराधिकारी) **ख्वाजा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी** का बडा प्रभाव था। इन्ही की स्मृति मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ कराया, जिसे शम्सुद्दीन अल्तमश ने पूरा किया।[१] शम्सुद्दीन अल्तमश के प्रतिनिधि अजमेर के शासक ने जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की वह जागीर जब्त कर ली, जो उन्हे कुतुबुद्दीन ऐबक से मिली थी, तब वे इस जागीर को छुड़ाने के लिए दिल्ली आये और अपने खलीफा शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के पास ठहरे। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने जब शम्सुद्दीन अल्तमश के पास जाकर सारा हाल कहा, तब शेख मुईनुद्दीन चिश्ती को उनकी जागीर वापस मिली।[२]

ये घटनाएँ इन सूफी महापुरुषों के प्रभाव और दरबार के साथ इनके सम्बन्धो का परिचय देती है। सगीत के विद्यार्थी के लिए इन घटनाओं का बडा महत्त्व है; क्योंकि चिश्ती फकीरों की इसी परम्परा के कारण भारतीय सगीत मे महान् परिवर्त्तन हुआ। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का स्वर्गवास कव्वाली सुनते-सुनते ही हुआ।

मुलतान के प्रसिद्ध सूफी **शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी** (जन्म: सन् ११८२ ई०; मृत्यु: सन् १२६७ ई०) शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से भली भाँति परिचित थे। शेख बहाउद्दीन जकरिया ने मुलतान को मुस्लिम-विद्याओ का केन्द्र बना दिया था। शेख जकरिया मुलतानी सगीत के महान् मर्मज्ञ और 'मुलतानीश्री' राग के आविष्कारक थे। इन लोगों की परम्परा में संगीत को गणित की एक शाखा माना जाता था। शम्सुद्दीन की मृत्यु (सन् १२३५ ई०) के समय शेख बहाउद्दीन जकरिया की आयु तिरपन वर्ष की थी।

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ५२९।

२. चेहलरोजः, पृ० १००–१०१।

मुलतान, दिल्ली, अजमेर इत्यादि में जब कव्वाली का भली भाँति प्रचार हो चुका था और पेशावर, लाहौर, मुलतान, उच्छ, भक्कर, सिन्ध, अनहिलवाड, उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, बदायूँ, बुलन्दशहर, अयोध्या, बनारस, प्रयाग, लखनौती, गौड आदि सभी जब दिल्ली-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे, तब देवगिरि में सिंहण-नरेश के आश्रित कश्मीरी विद्वान् **शाङ्गर्देव** क्षत-विक्षत भारतीय संगीत-पद्धति को एकत्र सँजोने के लिए प्राय: सन् १२३० ई० मे 'सगीतरत्नाकर' का प्रणयन कर रहे थे ।

देवगिरि पर उस समय तक विदेशी आक्रान्ताओ की शनिदृष्टि नही पडी थी। आचार्य शाङ्गर्देव के पितामह **भास्कर** बारहवीं शती ई० में कश्मीर छोडकर देवगिरि में जा बसे थे। उनके पुत्र **सोढल** देवगिरि-नरेश **भिल्लम** और तत्पश्चात् **सिंहण** (रा० का० सन् १२१०–१२४७ ई०) के आश्रित थे। सिहण और शम्सुद्दीन अल्तमश का राज्यारोहण-वर्ष एक ही है।

पृथ्वीराज और कन्नौज की पराजय शाङ्गर्देव की किशोरावस्था मे हुई। उत्तर के विध्वस की कहानियाँ उनसे छिपी न थी, वे कश्मीर-निवासी आनुवंशिक विद्वान्, राजनीतिज्ञ, वेदान्ती, आयुर्वेदज्ञ और संगीतमर्मज्ञ थे। प्राचीन आचार्यो के ग्रन्थ के अतिरिक्त बारहवी शती ई० मे लिखे हुए ग्रन्थ भी उनके पास थे, अत. उन्होंने अनेक दृष्टियो से 'सगीतरत्नाकर' का प्रणयन आवश्यक समझा। सिहण के मृत्यु-वर्ष में शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु नौ वर्ष की थी और उनका पालन-पोषण एव शिक्षण उत्तरप्रदेश के एक नगर बदायूँ में हो रहा था। 'सगीतरत्नाकर' की रचना करके एक ओर आचार्य शाङ्गर्देव एक महान् कार्य कर रहे थे और दूसरी ओर भवितव्यता 'संगीतरत्नाकर' के भविष्य पर मुस्करा रही थी।

'संगीतरत्नाकर' की रचना (प्रायः सन् १२३० ई०) से केवल ६५-७० वर्ष बाद **अलाउद्दीन खिलजी** के आक्रमण ने सन् १२९६ ई० में देवगिरि-नरेश **रामदेव** पर अकस्मात् आक्रमण करके देवगिरि-वंश की जडें हिला दी। 'संगीतरत्नाकर' की रचना से प्राय चौबीस वर्ष बाद व्रज के एटा जिले के अन्तर्गत पटियाली ग्राम में **अमीर खुसरो** का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्नों का परिणाम भारतीय सगीत-सम्प्रदाय का उच्छेद सिद्ध हुआ।

बलबन (सन् १२६६–१२८६ ई०) :

शमसुद्दीन अल्तमश के पुत्र **रुक्नुद्दीन** (मृ० का० सन् १२३६ ई०), पुत्री **रजिया** (मृ० का० सन् १२४० ई०) और पुत्र **नासिरुद्दीन महमूद** (रा० का० सन् १२४६–१२६६ ई०) के बाद **बलबन** दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

बलबन **बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर** का बडा भक्त था, जो कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के खलीफा (आध्यात्मिक प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी) थे। चिश्ती सूफियों के प्रति दिल्ली के सुलतानों की भक्ति सदैव रही और दरबार पर सूफियों का प्रभाव सदा रहा।

बलबन के काल में निजामुद्दीन चिश्ती

बाबा फरीद के 'खलीफा' अपने पीर के प्रतिनिधि के रूप में सन् १२६१ ई० मे दिल्ली आ चुके थे। उस समय बलबन **नासिरुद्दीन महमूद** का महामन्त्री था। सन् १२६१ ई० में **शेख निजामुद्दीन चिश्ती** (जन्म · सन् १२३८ ई०) की आयु तेईस वर्ष की थी और बलबन के राज्यारोहण के समय वे अट्ठाईस वर्ष के थे। उस समय **अमीर खुसरो** और प्रसिद्ध कवि **हसन** शेख निजामुद्दीन चिश्ती से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। अमीर खुसरो (जन्म . सन् १२५४ ई०) की आयु उस समय बारह वर्ष की थी। शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी तबतक जीवित थे और अगले वर्ष ही उनकी मृत्यु हुई।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती सगीत के मर्मज्ञ थे। उस युग मे सगीत के ज्ञान के विना गणित का ज्ञान अपूर्ण समझा जाता था। चौबीस वर्ष की आयु तक अमीर खुसरो और हसन निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे रहे। इन दोनों की काव्य-प्रतिभा की चर्चा बलबन के पुत्र मुहम्मद के कान में पडी, वह अपने पिता की ओर से मुलतान का सूबेदार था। मुहम्मद ने खुसरो और हसन दोनों को अपने पास बुला लिया। पाँच वर्ष तक ये दोनों मुलतान में रहे। मगोलों द्वारा मुहम्मद के वध के पश्चात् वन्दी होने पर इन्हें दो वर्ष हिरात और बलख मे रहना पडा। इकतीस वर्ष की आयु मे अमीर खुसरो बलबन की सेवा में आये। मुहम्मद की मृत्यु के सम्बन्ध में अपने द्वारा रचित शोक-काव्य खुसरो ने बलबन को सुनाया, जिसे सुनकर वह अत्यन्त शोकाकुल हुआ और सन् १२८६ ई० मे उसका देहान्त हो गया।

निजामुद्दीन चिश्ती के शिष्यों की मुलतान में नियुक्ति और बलबन के द्वारा खुसरो का सम्मान दोनों ही बातें बलबन और उसके पुत्र पर सूफी प्रभाव का परिचय देती है।

कैकुबाद (सन् १२८६—१२९० ई०) :

सत्रह वर्ष की आयु में दिल्ली के कोतवाल मलिक फखरुद्दीन के प्रयत्नों से **कैकुबाद** दिल्ली के सिंहासन पर विठाया गया। वह ललित-कलाओं का मर्मज्ञ था, शीघ्र ही विलास में डूब गया। कैकुबाद का पिता **बुगरा खाँ** सेनाओं-सहित बंगाल से दिल्ली रवाना हुआ। निजामुद्दीन चिश्ती के संकेत पर अमीर खुसरो ने कैकुबाद और उसके पिता बुगरा खाँ में सन्धि करा दी। इस सन्धि के विषय में अमीर खुसरो ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'क़िरानुस्सादैन' लिखा।

भारतीय नारियों और विदेशी मुसलमानों के विवाह से उत्पन्न सन्तानों में परस्पर अत्यधिक स्नेह होता था। कैकुबाद और अमीर खुसरो दोनों ने ही भारतीय नारियों के गर्भ से जन्म लिया था, अत कैकुबाद अमीर खुसरो से स्नेह करता था। उसने सन् १२८८ ई० में खुसरो को अपना राजकवि नियुक्त किया था। 'किरानुस्सादैन' से ज्ञात होता है कि अमीर खुसरो ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे।

कैकुबाद का वध करके उसका शव यमुना में फेंक दिया गया और सन् १२९० ई० के १३ जून को **जलालुद्दीन खिलजी** तख्त पर बैठा।

जलालुद्दीन खिलजी (सन् १२९०—१२९६ ई०) :

सिंहासन पर बैठने के समय जलालुद्दीन खिलजी की आयु ७० वर्ष थी। वह अत्यन्त दयालु एवं करुणहृदय व्यक्ति था, अत. उसके काल में उच्छृंखलता बढ गई थी।

बाबा फरीद के एक 'मुरीद' सूफी **सीदी मौला** उस समय दिल्ली में रहते थे। ये मुक्त हस्त से प्रतिदिन निर्धनों को ऐसा भोजन कराते थे, जिसका आयोजन कोई खान या मलिक भी न कर सकता था। लोगों का विचार था कि सीदी मौला सिद्धिबल अथवा पारस पत्थर के प्रभाव से इतना धन जुटा लेते है। **काजी जलाल काशानी** की प्रेरणा से यह निश्चित हुआ कि जलालुद्दीन को सामूहिक नमाज के समय मारकर सीदी मौला को बादशाह बनाया जाय। भेद खुल गया और सीदी मौला को बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। शेख **अबूबक्र तुर्सी** के शिष्य दरवेशों मे एक ने सीदी मौला पर उस्तरे से आक्रमण किया और शाहजादा **अरकुली खाँ** के सकेत पर सीदी मौला को हाथी से कुचलवा दिया गया।

जलालुद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो के वेतन में वृद्धि की थी और उनकी प्रतिष्ठा बढाई थी। जलालुद्दीन खिलजी ने छद्म वेश में निजामुद्दीन चिश्ती से मिलना चाहा, परन्तु वे चुपचाप अजोधन चले गये। सीदी मौला शेख निजामुद्दीन चिश्ती के पीरभाई थे। कुछ लोगों का विचार था कि सीदी मौला निर्दोष थे और षड्यन्त्रकारियों से उनका सम्बन्ध न था। कारण कुछ भी हो, निजामुद्दीन चिश्ती ने लोकापवाद की आशका से अथवा अपनी कुशल-कामना की दृष्टि से जलालुद्दीन खिलजी को दूर ही रखना उचित समझा। जलालुद्दीन खिलजी के हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी पर निजामुद्दीन चिश्ती का परम अनुग्रह रहा। अतः, यह अनुमान किया जा सकता है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती जलालुद्दीन खिलजी से सम्भवतः सन्तुष्ट न थे। यह सब कुछ होने पर भी अमीर खुसरो जलालुद्दीन खिलजी के दरबार में प्रतिष्ठित थे।

अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२९६–१३१६ ई०) :

अपने श्वशुर और चाचा जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके **अलाउद्दीन खिलजी** दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा। अलाउद्दीन का वजीर **खतीरुद्दीन, कोतवाल अलाउल्मुल्क, युवराज शादी खाँ**, उसका छोटा भाई **खिज्र खाँ** तथा अन्य अनेक अमीर और सरदार ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। अमीर खुसरो को अलाउद्दीन ने ही 'खुसरू ए शाइरॉ' की उपाधि दी थी। हॉ, उनका वेतन अवश्य घटा दिया था।

अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के प्रसिद्ध सेनापति **मलिक काफूर** की विजयो का वर्णन 'खजाइनुल-फुतूह' मे और 'मिफ़्तातुल् फुतूह' में अलाउद्दीन की विजयों का वर्णन किया। खुसरो द्वारा लिखित 'तारीखे अलोई' मे अलाउद्दीन के युग का इतिहास है।

दिल्ली पर घेरा डालनेवाला दूसरा मंगोल नायक **तरगी** भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रभाव में था और अलाउद्दीन भी उनका कृपापात्र था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के ही सकेत पर तरगी दिल्ली का घेरा उठाकर लौट गया था।

पूर्व मे गौड, पश्चिम में सिन्ध और गुजरात, उत्तर मे पंजाब और पेशावर और दक्षिण में मदुरा तक अलाउद्दीन का साम्राज्य विस्तृत था। अलाउद्दीन खिलजी के प्रताप ने समस्त भारत में चिश्ती-सम्प्रदाय के सूफियों के विचारो के प्रचार और कव्वालो की कव्वालियो के लिए द्वार खोल दिये थे।

गुजरात की विजय और अलाउद्दीन के अन्त पुर में गुजरात की रानी के प्रवेश के कारण सन् १२९७ ई० मे ही गुजरात की परवार, परवारी, बरवार, बरावॅ अथवा फरादू नामक एक सुन्दर संगीतजीवी जाति के सैकडों नरनारी बन्दी बनाकर लाये गये थे, अत. गुजराती संगीत दिल्ली मे आ गया था। गुजरात के राजा कर्ण और उसकी पुत्री देवलदेवी ने देवगिरि में राजा रामचन्द्र का आश्रय लिया था, परन्तु सन् १३०७ ई० में राजा रामचन्द्र को अलाउद्दीन की सेवा मे उपस्थित होना पडा, देवलदेवी पकड़ी गई और उसका विवाह अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खॉ के साथ कर दिया गया। इस अवसर पर दक्षिण के कलाकार भी दिल्ली आये।

गुजरात और देवगिरि पर राजनीतिक विजयो के कारण वहाँ के सगीतज्ञों को दिल्ली आना पडा। द्वारसमुद्र और मदुरा पर राजनीतिक विजय का परिणाम भी दक्षिण की प्रतिभाओं का दिल्ली मे विवश होकर आगमन था।

मलिक काफूर के दक्षिण अभियान मे अमीर खुसरो काफूर के साथ थे, मलिक काफूर 'खम्बात' से एक हजार दीनार में खरीदकर लाया गया एक गुलाम था, जो गुजराती, तुर्की इत्यादि भाषाओ को भली भाँति बोलता और समझता था। अमीर खुसरो जैसे प्रतिभाशाली गुणग्राही मलिक काफूर के साथ थे। किसी भी प्रकार से दक्षिण के विद्वानो और कलाकारों को दिल्ली का भक्त बनाना इन लोगो का ध्येय था।

स्वर्गीय के० वासुदेव शास्त्री के अनुसार, चौदहवी-पन्द्रहवी शती ई० में भी हिन्दू विद्वानों, वैज्ञानिकों और शिल्पियों को बलात् मुसलमान बनाया गया और उन्हे पकड़ा गया। पकडे जाने और बलात् धर्मभ्रष्ट किये जाने के भय से अपने ज्ञान को छिपाने के लिए अनेक विद्वानों, वैज्ञानिकों और शिल्पियों ने अपने ग्रन्थ जला दिये अथवा भूमि मे गाड़ दिये।[1]

अस्तु; कारण कोई भी हो, अलाउद्दीन खिलजी के युग में दिल्ली विद्याओं का केन्द्र हो गया था। इतिहासकार बरनी (जो कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद, दिल्ली के कोतवाल अलाउल् मुल्क का भतीजा और अमीर खुसरो का मित्र था), कहता है कि अलाउद्दीन के युग मे इतने विद्वान्, कलाकार और गण्य-मान्य व्यक्ति दिल्ली मे एकत्र हो गये थे कि राजधानी उनसे भरी पडी थी। परन्तु, अलाउद्दीन ने उन प्रतिष्ठित लोगो के सम्मान की ओर उचित ध्यान न दिया। एक बार अल्लाउद्दीन ने अपनी महफिल में गर्व करते हुए कहा था कि मेरे राज्य में इतने अद्वितीय कलाकार एकत्र हो गये है कि

---

१. दी साइंस ऑव म्यूजिक, पृ० २१।

इनमे से यदि कोई भी किसी अन्य राज्यकाल में होता, तो भगवान् ही जानता है कि उसका कितना आदर-सम्मान होता।[1]

अस्तु, अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु १३१६ ई० की २ जनवरी को हुई।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मलिक काफूर ने अलाउद्दीन खिलजी के छह वर्ष के एक पुत्र उमर खा को दिल्ली का बादशाह घोषित किया और स्वय उसका सरक्षक बन बैठा, परन्तु मलिक काफूर का वध करके अलाउद्दीन का पुत्र **मुबारक कुतुबुद्दीन खिलजी** के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

कुतुबुद्दीन खिलजी (सन् १३१६—१३२० ई०) :

कुतुबुद्दीन खिलजी गुजरात की पूर्वोक्त संगीतजीवी परवार-जाति के निकट सम्पर्क में था और इस जाति का एक परम सुन्दर नवमुस्लिम नवयुवक, खुसरो खॉ कुतुबुद्दीन खिलजी का परम कृपापात्र और प्रेमपात्र था।

कुतुबुद्दीन खिलजी ने इस गुजराती युवक खुसरो खॉ को दरबार मे अच्छा पद दिया। खुसरो खॉ ने तैलंगाना और वारंगल पर कुतुबुद्दीन खिलजी की आज्ञा से एक अत्यन्त सफल अभियान किया था। अमीर खुसरो ने इस अभियान का वर्णन अपने ग्रन्थ 'नूह-सिपहर' में किया है।

कुतुबुद्दीन खिलजी का अधिकार सगीत और नृत्य पर भली भाँति था। वह नर्त्तकी-वेष मे नृत्य करता था और रूपाजीवाओ की कला का सम्मान भी। कुतुबुद्दीन खिलजी ने अमीर खुसरो के एक कसीदे पर प्रसन्न होकर एक हाथी के भार के बराबर स्वर्ण और रत्न अमीर खुसरो को दिये थे। खुसरो खॉ का प्रभाव कुतुबुद्दीन खिलजी पर इतना था कि कुतुबुद्दीन खिलजी के काल में लिखित अपने ग्रन्थ 'नूह सिपहर' मे अमीर खुसरो भारत, भारतीय सगीत, भारतीय भाषाओ इत्यादि के विषय में खुलकर अपने मन की बात प्रशसात्मक रूप में कह सके। अमीर खुसरो पर जहाँ कुतुबुद्दीन खिलजी की इतनी कृपा थी, वहॉ **शेख निजामुद्दीन** कुतुबुद्दीन खिलजी से सन्तुष्ट न थे। कुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके उसका प्रेमपात्र खुसरो खॉ सन् १३२० ई० मे **'नासिरुद्दीन'** उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा।

खुसरो खाँ नासिरुद्दीन (शासनकाल कुछ महीने)

खुसरो के विषय मे उस युग के मुसलमान-इतिहासकारो ने लिखा है·

१. मस्जिदो मे मूर्त्तियों की स्थापना की गई और कुरान की प्रतियों को इन मूर्त्तियों का आसन बनाया गया।

२ शाही हरम की तथा अमीरों और सरदारो की स्त्रियों को खुसरो खॉ के सजातीयो ने परस्पर बॉट लिया।

---

१. खिलजी-कालीन भारत, पृ० १६५।

३ लोगों को अपने अनुकूल करने के लिए उन्हे धन तथा मूल्यवान् उपहार दिये गये।

४ हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया गया।

हमारी दृष्टि मे यह उन कार्यो की प्रतिक्रिया-मात्र थी, जो कार्य जन्मत. हिन्दू खुसरो खॉ की जन्मभूमि मे केवल बीस वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति **उलुग खॉ** और **नुसरत खॉ** ने सन् १२९७ ई० मे किये थे। उन कार्यो की सूची इस प्रकार है :

१. महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् ब्राह्मणो ने सोमनाथ के मन्दिर मे जिस मूर्त्ति की स्थापना की थी, वह मूर्त्ति विजय-चिह्न के रूप मे दिल्ली भेजी गई थी।

२. गुजरात की रानी **कर्णवती** को बलात् अलाउद्दीन खिलजी के अन्त:पुर मे भेजा गया था। उसकी पुत्री देवलदेवी का विवाह भी अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खॉ के साथ बलात् किया गया था और खुसरो खॉ के सजातीय नर-नारियों को बलात् बन्दी बनाकर दिल्ली मे उनका उच्छृंखल उपयोग किया गया था।

३ कुतुबुद्दीन खिलजी स्वय खुसरो खॉ को अपनी काम-वासना का साधन बनाता था।

'चेहलरोज' के अनुसार, खुसरो खॉ ने अपनी जाति के चालीस हजार लोग दिल्ली में जमा कर लिये थे। वह हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के लिए निजामुद्दीन चिश्ती के हिन्दू मुरीद **हरदेव** से विचार-विनिमय भी किया करता था।

इन सब बातो से यही प्रतीत होता है कि अपने राजा-रानी, राजकुमारी और जाति के अपमान का घूॅट खुसरो खॉ मन-ही-मन पी रहा था। उसने जान-बूझकर कुतुबुद्दीन खिलजी को विलासप्रिय और दुश्चरित्र बना दिया, उसके संरक्षण मे युद्ध-कला की शिक्षा ली, तैलंगाना और वारगल के राजाओं को कुचलकर शिक्षा दी, जो गुजरात के विनाश और अपमान को चुपचाप देखते रहे थे।

मलिक काफूर की स्थिति भी यही थी, वह भी पकडकर बलात् मुसलमान बना दिया गया था। अपने अप्रतिम सौन्दर्य के कारण वह अलाउद्दीन खिलजी की काम-वासना की पूर्त्ति का साधन था। गुजरात के अपमान और विनाश को चुपचाप देखनेवाले और बलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को अस्पृश्य समझनेवाले हिन्दुओ को कुचलने में उसे भी आनन्द आता था, परन्तु अवसर मिलते ही उसने अलाउद्दीन खिलजी की बेगम को बन्दी बना लिया, अलाउद्दीन के पुत्र **खिज्र खॉं और शादी खॉ** की ऑखे निकलवा लीं, अलाउद्दीन के सरदारों को पदच्युत किया, उनके पदो की पूर्त्ति नीचकुलोत्पन्न लोगों से की, कुतुबुद्दीन खिलजी के भी वध का असफल प्रयत्न किया, परन्तु उसी के सेवकों ने विश्वासघात करके उसका वध कर दिया।

खुसरो खॉ को हिन्दू-राजाओं से सहायता न मिली। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कथन है कि यदि उस समय कोई हिन्दू-शासक अपने साथी राजाओं का संघ बनाकर दिल्ली पर

चढ आता, तो उसे दिल्ली पर अधिकार करने में कोई कठिनाई न होती और मुसलमानो की शक्ति सरलतापूर्वक समाप्त हो गई होती।[1]

संगीत के विद्यार्थी की दृष्टि मे तो केवल यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि सन् १२९७ से १३१६ ई० तक, अर्थात् उन्नीस वर्ष तक गुजरात का मलिक काफूर और गुजरात का ही खुसरो खाँ क्रमश. अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन खिलजी को अपने रूपजाल मे वेश्याओ की भाँति फँसाकर नचाते रहे और परवारी-जाति के नर-नारियो ने दिल्ली के समाज को अपनी कला से इतना प्रभावित किया कि कुतुबुद्दीन खिलजी नर्त्तकी-वेष मे नाचने लगा।

मलिक काफूर और खुसरो खाँ की कृपा से अमीर खुसरो को असख्य भारतीय कलाकारों से निकट सम्पर्क का अवसर मिला।

गाजी मलिक ने खुसरो खाँ को पराजित करके उसका वध कर दिया और वह सन् १३२० ई० में **गयासुद्दीन तुगलक** के नाम से गद्दी पर बैठा।

गयासुद्दीन तुगलक (सन् १३२०–१३२५ ई०) :

गयासुद्दीन तुगलक के राज्यकाल का इतिहास अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'तुगलक-नाम' में लिखा है। गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रति सदैव रोष प्रकट किया। खुसरो खाँ ने शासन की बागडोर सँभालने पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे भी पाँच लाख तके भिजवाये थे। सिहासनासीन होने पर गयासुद्दीन तुगलक ने वह धन निजामुद्दीन चिश्ती से वापस मँगवाये, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह धन अनाथों और दरिद्रों को बँटवा दिया गया।[2]

कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। उसके वध में अँगरेज-इतिहासों को शेख निजामुद्दीन के संकेत की गन्ध आई है और गयासुद्दीन तुगलक के वध मे भी। अस्तु; यह वास्तविकता है कि चेहलरोजः के अनुसार गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को सदैव एक अवाछनीय व्यक्ति समझा, परन्तु खुसरो को अपने दरबार मे रखा और बगाल के अभियान में वह अमीर खुसरो को अपने साथ ले गया।

सुलतान जब दिल्ली लौटा, तब एक प्रवेशद्वार से दबकर, एक षड्यन्त्र के फलस्वरूप, उसकी मृत्यु हो गई।

मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५–१३५१ ई०) :

मुहम्मद तुगलक शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम भक्त था और उसे शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम अनुग्रह प्राप्त था। मुहम्मद तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के एक मुरीद **अहमद अयाज** (देवगरि-वश के राजकुमार हरदेव) के साथ अपनी पुत्री का विवाह किया था और अन्त मे उसे 'ख्वाजा जहाँ' की पदवी देकर अपना महामन्त्री बनाया था।

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २५३।

२. चेहलरोजः, पृ० २८४।

मुहम्मद तुगलक के राज्यारोहण के कुछ महीने पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती का स्वर्गवास हो गया.और कुछ ही समय बाद उसी वर्ष अमीर खुसरो दिवगत हो गये। दिल्ली की दरगाह में दोनो के मजार पास-पास है।

फीरोज तुगलक (सन् १३५१—१३८८ ई०) :

फीरोज तुगलक के पिता गयासुद्दीन का भाई रजब और माँ अबूहर के भट्टी-राजपूत सरदार **रणमल्ल** की पुत्री थी। फीरोज तुगलक को **शेख नसीरुद्दीन चिराग देहली** का आशीर्वाद और समर्थन प्राप्त था, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा थे। फीरोज तुगलक धर्मान्ध, विद्यानुरागी और सगीतरसिक बादशाह था। यह मद्यप भी था। बगाल, नगरकोट, थट्टा इत्यादि पर इसने अभियान किये। फीरोजाबाद इसी ने बसाया था।

इसका मन्त्री **खानजहाँ मकबूल** जन्मत तैलगाना का एक हिन्दू था, उसके अन्त पुर मे दो सहस्र स्त्रियाँ थी, जिनके बच्चे पर्याप्त थे। सन् १३७० ई० मे इस योग्य मन्त्री का देहान्त हुआ।

फीरोज के युग मे दिल्ली-साम्राज्य और भी विघटित हुआ। सन् १३८८ ई० मे अपने पौत्र **फतह खाँ** को राजदण्ड सौपकर फीरोज तुगलक मर गया।

इसके दुर्बल उत्तराधिकारी **द्वितीय गयासुद्दीन तुगलक, अबूबक्र, राजकुमार मुहम्मद हुमायूँ, नासिरुद्दीन महमूद** इत्यादि का राज्यकाल अल्प अवधि का रहा।

सन् १३९८ ई० मे तैमूर का विनाशकारी आक्रमण हुआ।

सन् १३९९ ई० मे **नुसरतशाह** ने दिल्ली पर अधिकार किया। थोड़े ही दिनों के बाद इकबाल ने दिल्ली का अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

तुर्कवंश का अन्तिम सुलतान **महमूद** सन् १४१२ ई० में मरा।

सन् १४१४ ई० में खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार करके सैयद-वंश के शासन का आरम्भ किया।

फीरोज तुगलक और संगीत :

संगीत की ग्राह्यता और त्याज्यता के विषय में सूफियों अथवा मौलवियों का मत कुछ भी हो, परन्तु बादशाह, दरबारी तथा सैनिक भली भाँति सगीत का आनन्द लेते थे। आदर्श मुसलमान कहे जानेवाले फीरोज तुगलक के युग के विषय मे शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम भक्त और अमीर खुसरो का परम मित्र इतिहासकार **जियाउद्दीन बरनी** कहता है : 'दरबार का प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति सुन्दर गानेवाली रूपवती दासियों के सम्भोग का आनन्द लेने तथा चिन्ता से मुक्त होने के लिए उन्हे सैनिक अभियानों मे साथ ले जाया करता था। प्रत्येक शिविर मे गायक गाने गाया करते थे। सेना में अत्यधिक सम्पन्नता, सुख, आनन्द और निश्चिन्तता के कारण बहुत-से मुसलमान सुलतान के साथ फिरा करते थे, उन्हें सेना से लौटना अच्छा न लगता था।'[1]

---

१. तुगलक-कालीन भारत, भाग २, पृ० १२०।

फीरोज तुगलक जैसा धर्मान्ध व्यक्ति शुक्रवार की नमाज के पश्चात् गायकों का गाना सुनता था। सुलतान से प्राप्त होनेवाला पुरस्कार गायक-वर्ग के प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति को बाँटा जाता था, अतः दिल्ली के गायक-वादक अपने चार-पाँच वर्ष के पुत्रों तक को अपने साथ फीरोजाबाद ले जाते थे। सुलतान का आदेश था कि आयु तथा अन्य किसी दृष्टि से इनमें भेद-भाव न किया जाय।[1]

ईद के उत्सव मे समस्त गायक केसरिया वस्त्र धारण करते थे, उनके सिर पर जडाऊ पगडी होती थी। नर्त्तकियाँ जडाऊ बहुमूल्य वस्त्र धारण करती थी, जिनका मूल्य चालीस-चालीस हजार तक होता था। कव्वाल वाद्य हाथ मे ले लेते थे, नर्त्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ कर देती थीं। कव्वालों और नर्त्तकियों को पारिश्रमिक मिलता था।[2] यह चित्र खिलजियों और तुगलकों के युग मे संगीत की स्थिति का परिचायक है।

फीरोज तुगलक के द्वारा स्थापित मदरसे मे 'प्रधान' **मौलाना जलालुद्दीन रूमी** थे, उनकी प्रसिद्धि बुखारा, समरकन्द, हिजाज, यमन और नज्द तक थी। ये चौदहो विज्ञान जानते थे। अन्य अध्यापक भी अनुपम और सकल कलाओ के मर्मज्ञ थे। सभी लोग शाम के लबादे और मिस्र की पगड़ियाँ पहनते थे।[3]

चिश्ती-परम्परा और संगीत

निजामुद्दीन चिश्ती और राजनीतिक स्थिति :

निजामुद्दीन चिश्ती के पूर्वज चंगेज खाँ का आक्रमण होने पर बुखारा से लाहौर आये और वहाँ से उत्तरप्रदेश के नगर बदायूँ मे आकर बसे। यद्यपि इनके नाना **सैयद अरब** सम्पन्न व्यक्ति थे, तथापि इनकी विधवा माँ ने इनके अनाथ होने पर पिता के घर से कोई सहायता न ली और इन्हें सूत कात-कातकर पाला।

इनके पिता सैयद अहमद इन्हे बच्चा छोड़कर ही मर गये। शेख निजामुद्दीन का जन्म सन् १२३८ ई० में हुआ, उस समय दिल्ली के सिहासन पर **रजिया बेगम** (राज्यकाल : सन् १२३६–१२४० ई०) का शासन था।

बदायूँ में इनकी शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हुई, तो इनकी आयु सोलह वर्ष की थी। इनके विद्यागुरु बदायूँ-निवासी **मौलाना अलाउद्दीन उसूली** थे।

सोलह वर्ष की आयु मे यह दिल्ली आये, इनकी माता **बीबी जुलेखा**, बहन **बीबी जैनब** और दासी इनके साथ थे। दिल्ली मे इनका आगमन सन् १२५४ ई० मे हुआ। इस समय दिल्ली पर **नासिरुद्दीन महमूद** का शासन (रा० का० सन् १२४६ से १२६६ ई०) था। सन् १२५० ई० मे ये अजोधन जाकर **बाबा फरीद** के मुरीद हुए और सन् १२६१ ई० मे इन्हें अपने पीर की खिलाफत मिली।

---

१. तुगलक-कालीनभारत, पृ० १४५–१४६।

२. उपरिवत्।

३. उपरिवत्, पृ० ४०६।

सन् १३२४ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। **बलबन** (रा० का० सन् १२६६–१२८६ ई०), **कैकुबाद** (सन् १२८६–१२९० ई०), **जलालुद्दीन खिलजी** (सन् १२९०–१२९६ ई०), **अलाउद्दीन खिलजी** (रा० का० सन् १२९६–१३१६ ई०), **कुतुबुद्दीन खिलजी** (रा० का० सन् १५१६–१५२० ई०) और **गयासुद्दीन तुगलक** (रा० का० सन् १३२०–१३२५ ई०) के राज्यकाल में यह चिश्ती-परम्परा के प्रतिनिधि रहे। **मुहम्मद तुगलक** (रा० का० सन् १३२५-१३५१ ई०) के शासनकाल के आरम्भ मे ही इनका स्वर्गवास हो गया।

तेईस वर्ष की आयु में यह अपने पीर के खलीफा हुए। बलवन की मृत्यु के समय इनकी आयु प्रायः अडतालीस वर्ष, कैकुबाद की मृत्यु के समय बावन वर्ष, जलालुद्दीन खिलजी की मृत्यु के समय अट्ठावन वर्ष, अलाउद्दीन की मृत्यु के समय अठहत्तर वर्ष, कुतुबुद्दीन खिलजी की मृत्यु के समय बयासी वर्ष और गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के समय सत्तासी वर्ष थी।

अमीर खुसरो का जन्म सन् १२५४ ई० मे हुआ था, प्रायः दस वर्ष की आयु मे ये निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद हुए। चौबीस वर्ष की आयु तक ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती से पढते रहे, **अला हसन संजरी** इनके सहपाठी थे। निजामुद्दीन चिश्ती खिलाफत मिलने के पर्याप्त समय पश्चात् तक अध्ययन-कार्य करते रहे थे।

बलबन का युवराज **मुहम्मद सुलतान** मुलतान का सूबेदार था। निजामुद्दीन चिश्ती के शिष्य अमीर खुसरो और **अला हसन संजरी** की काव्य-प्रतिभा की चर्चा उस तक पहुँची। निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति से वह इन दोनो को सन् १२७९ ई० मे मुलतान ले गया।

निजामुद्दीन चिश्ती के 'पाँच प्यारो' में इन दो का दिल्ली के युवराज के दरबार मे प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

राजदरबारों के विषय मे सूफियों का दृष्टिकोण यह था कि बादशाह लोगों को यदि यह आशंका हो जाये कि किसी व्यक्ति से उनकी बादशाहत को खतरा है, तो वे उसका विनाश ही करके छोड़ते हैं, भले ही वह व्यक्ति उनका पिता, भाई, पुत्र, भतीजा, भानजा, गुरु, पीर कोई भी क्यो न हो। बादशाहो के इस दृष्टिकोण और आचरण को वे बादशाही कानून के अन्तर्गत एक प्रकार से उचित मानते थे, परन्तु समाज और धर्म के कल्याण और अपने लक्ष्य की पूर्त्ति के लिए, वे राजसत्ता को अपने प्रभाव मे रखना अवश्य चाहते थे।[1]

बादशाहों के विषय में यही नीति निजामुद्दीन चिश्ती की भी थी। इसी नीति के परिणाम-स्वरूप उन्होंने अमीर खुसरो की प्रतिभा और विश्वसनीयता का भरपूर उपयोग किया। कैकुबाद का आश्रय अमीर खुसरो को सन् १२८८ ई० में मिला। इस समय निजामुद्दीन चिश्ती की आयु प्रायः पचास वर्ष और अमीर खुसरो की आयु चौतीस वर्ष थी।

---

१. **खुसरो की उक्ति, चेहलरोजः, पृ० २१।**

कैकुबाद की मृत्यु के समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती बावन वर्ष के थे और खुसरो छत्तीस वर्ष के। जलालुद्दीन खिलजी के मृत्युकाल, अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी के राज्यरोहण-काल सन् १२९६ ई० मे शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आयु अट्ठावन वर्ष और अमीर खुसरो की आयु बयालीस वर्ष थी।

अट्ठावन वर्ष से अठहत्तर वर्ष की आयु तक शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अलाउद्दीन खिलजी और उसके दरबार को प्रभावित रखा और इस काल मे बयालीस वर्ष से बासठ वर्ष की आयु तक अमीर खुसरो ने अपने पीर को योग दिया।

बलबन की मृत्यु के समय उसका पुत्र बुगरा खाँ बगाल का सूबेदार था, अतः बलबन के पोते मुईजुद्दीन कैकुबाद ने दिल्ली के सिहासन पर अधिकार कर लिया। उसका पिता उसके विरुद्ध सेना लेकर आया, तो अमीर खुसरो के परामर्श से कैकुबाद ने अपने पिता से सन्धि कर ली। अपने ग्रन्थ 'क़िरानुस्सादैन' में अमीर खुसरो ने इसी घटना का वर्णन किया है। यह सन्धि शेख निजामुद्दीन के प्रभाव का ही परिणाम थी।

कैकुबाद की माँ हिन्दू थी और खुसरो भी हिन्दू माँ की सन्तान थे, अतः कैकुबाद खुसरो से अत्यन्त स्नेह करता था। कैकुबाद ने यमुना के किनारे एक प्रासाद बनवाया था, जिसका नामकरण 'कैलोकहरि' खुसरो ने किया था। इसमें 'कै' कैकुबाद के नाम का आद्यक्षर, 'लोक' बादशाहत की ओर संकेत करनेवाला अथवा आवास शब्द का पर्याय और 'हरि' ईश्वरवाची शब्द था। संस्कृत-भाषा के शब्द 'लोक' और 'हरि' का महल के नामकरण मे प्रयोग खुसरो और कैकुबाद की रुचि का परिचायक है। 'कैलोकहरि' आज की भाषा मे 'किलोखडी हो गया है।[1]

जलालुद्दीन खिलजी ने कैकुबाद का वध करके दिल्ली के सिहासन पर अधिकार किया और अमीर खुसरो को आश्रय दिया, उनका वेतन भी वढा दिया। इस समय जलालुद्दीन खिलजी की आयु सत्तर वर्ष की थी। उसने निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे उपस्थित होने की इच्छा की, परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अनुमति नही दी। जब जलालुद्दीन ने छद्म वेश मे शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे उपस्थित होना चाहा, तब अमीर खुसरो ने बादशाह के इस सकल्प की सूचना, शेख निजामुद्दीन को दे दी। वे अजोधन चले गये। जब बादशाह को पता चला कि उसके संकल्प का भण्डाफोड खुसरो ने किया है, तब वह खुसरो पर बिगड उठा। उन्होंने उत्तर दिया कि आपका रहस्य प्रकट करने मे जान का अन्देशा था और छिपाने मे ईमान का। मैने जान के मुकाबले मे ईमान को अधिक महत्त्व दिया।[2]

जलालुद्दीन के सामने भरी सभा मे युवराज अरकुली खाँ के सकेत पर प्रसिद्ध सूफी सन्त सीदी मौला और उसके अनुयायियों का हाथियो से कुचलवाकर वध करा दिया

१. खुसरो की उक्ति, चेहलरोजः, पृ० ३०; ह० नि०, पृ० ४५।

२. ह० नि०, पृ० ४७।

गया था। कुछ लोगों को यह भ्रम था कि सीदी मौला स्वय बादशाह होना चाहते है, जब कि वे सर्वथा निर्दोष थे।[१]

सीदी मौला के वध का कलक जलालुद्दीन खिलजी के माथे पर था, ऐसी स्थिति मे उसका सामीप्य लोक-संग्रह की दृष्टि से उचित न था। सम्भवत:, इसीलिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती जलालुद्दीन खिलजी से दूर रहते थे, वरना उसपर दृष्टि रखने के लिए उन्होने अमीर खुसरो को जलालुद्दीन खिलजी के दरबार मे नौकरी करने की अनुमति दे दी थी।

जलालुद्दीन के हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी पर निजामुद्दीन चिश्ती की अत्यन्त कृपा थी। अलाउद्दीन खिलजी का महामन्त्री खतीरुद्दीन, कोतवाल अलाउल् मुल्क, युवराज खिज्र खाँ और उसका अनुज शादी खाँ तथा अलाउद्दीन के अनेक अमीर और सैनिक सरदार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे, निजामुद्दीन चिश्ती इस प्रकार अलाउद्दीन के कार्य-कलाप पर दृष्टि रखते थे और अलाउद्दीन खिलजी के जासूस भी छद्म वेश मे निजामुद्दीन चिश्ती की गोष्ठियों में आया करते थे।[२]

खुसरो की एक उक्ति के अनुसार, अलाउद्दीन खिलजी जानता था कि सारा भारतवर्ष शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मुट्ठी में है और अलाउद्दीन के राज्य का मंगल और विनाश शेख निजामुद्दीन चिश्ती की अँगुलियो के इशारे पर है।[३]

जब अलाउद्दीन खिलजी के युग मे दिल्ली पर मुगलो का आक्रमण हुआ, तब अलाउद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे युवराज खिज्र खाँ, मलिक नुसरत और अमीर खुसरो को भेजकर निवेदन किया कि इस विपत्ति से रक्षा कीजिए। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपने एक मुगल मुरीद को आक्रान्ताओं के सेनापति तरगी के पास भेजा। तरगी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के दूत का अत्यन्त सम्मान किया, भेंट के लिए अशर्फियाँ भेजी और अगले दिन ही वह दिल्ली का घेरा उठाकर वापस चला गया।

कहा जाता है कि मुगलों के वापस लौट जाने की भविष्यवाणी शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने घेरा उठाने से एक दिन पूर्व ही कर दी थी और अपना रूमाल तरगी के पास भेज-कर मुँह पर डालने के लिए कहा था। उसपर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया था और तरगी के देशवासी उसे सहायता के लिए पुकार रहे थे।[४]

अस्तु; वास्तविकता जो भी हो, इस बात से शेख निजामुद्दीन चिश्ती की प्रभाव-शालिता सिद्ध होती है।

अलाउद्दीन खिलजी को भी अपना एक रूमाल शेख निजामुद्दीन ने अलाउल्मुल्क के द्वारा भिजवाया था। उसे सोते समय मुँह पर डाल लेने से अलाउद्दीन खिलजी के सम्मुख

१. खुसरो की उक्ति, चेहलरोज:, पृ० ३०-३४।
२. उपरिवत्, पृ० ३५।
३. उपरिवत्।
४. चेहलरोज:, पृ० ८४–८६।

समस्त देश और दिल्ली के घर-घर का दृश्य आ जाता था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती का आदेश था कि बादशाह जो कुछ इस रूमाल के द्वारा देखे, उसे गुप्त रखे और दीनो-दुखियो की सहायता करें।[१]

अलाउद्दीन खिलजी ने जब एक नया धर्म चलाना चाहा और विश्वविजय की इच्छा प्रकट की, तब निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद अलाउल्मुल्क कोतवाल ने ही अलाउद्दीन खिलजी को समझा-बुझाकर इन दोनों सकल्पों से विरत किया था।

अलाउद्दीन खिलजी की दृष्टि सब ओर रहती थी। निजामुद्दीन चिश्ती के एक हिन्दू मुरीद राजकुमार हरदेव को जासूसी के आरोप मे गिरफ्तार करके अलाउद्दीन खिलजी के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था, परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कहने पर ससम्मान मुक्त कर दिया गया। कुछ और हिन्दुओं को मुलतान से पकडकर लाया गया था, उनपर जासूसी का आरोप सिद्ध हो गया था, अलाउद्दीन खिलजी ने उनके वध का आदेश भी दे दिया था; परन्तु शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कहने पर उन्हे भी क्षमा मिल गई थी।[२]

अलाउद्दीन खिलजी का अत्यन्त प्रेमपात्र मलिक काफूर शेख निजामुदीन चिश्ती का विरोधी था और शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी सूफी फकीरों के प्रभाव मे था।[३] अलाउद्दीन खिलजी और उसके दरबारियो पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव मलिक काफूर के हित में बाधक था। अलाउद्दीन खिलजी की रुग्णावस्था मे उसने अलाउद्दीन की बेगम, निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद युवराज खिज्र खाँ और उसके छोटे भाई शादी खाँ को ग्वालियर के किले में कैद करा दिया था, अलाउद्दीन खिलजी को समाप्त करके स्वय बादशाह बनने का संकल्प उसने किया था। कहा जाता है कि उसी ने अलाउद्दीन को विष देकर मार डाला, उसके सप्तवर्षीय पुत्र को राजसिहासन पर बिठाया और स्वय उसके प्रतिनिधि के रूप मे शासन करने लगा। मलिक काफूर ने इस प्रकार पैंतीस दिन शासन किया और इसी अवधि में ग्वालियर के किले मे बन्द खिज्र खाँ को अन्धा करा दिया।

मलिक काफूर के दो सेवकों, **मुबश्शिर** और **बशीर** ने ही उसका वध रात के समय कर दिया, जबकि मलिक काफूर ने इन दोनों को कुतुबुद्दीन खिलजी के वध के लिए तैयार किया था। मुबश्शिर और बशीर अपने साथियो के साथ पुरस्कार के लोभ में कुतुबुद्दीन खिलजी के साथ मिल गये थे।

सम्राट् होते ही कुतुबुद्दीन खिलजी ने विश्वासघाती **मुबश्शिर** और **बशीर** का वध करा दिया।[४]

---

१. चेहलरोजः, पृ० १६०-१६१।

२. उपरिवत्, पृ० २०१-२०६।

३. उपरिवत्, पृ० २२०।

४. उपरिवत्, पृ० २२५-२२७।

कुतुबुद्दीन खिलजी ने ग्वालियर के किले मे बन्द खिज्र खाँ और शादी खाँ का भी वध करा दिया, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। अपने सब भाइयो का निर्दयतापूर्वक वध कराकर कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोध में लग गया; क्योंकि उसे भय था कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती अपने प्रभाव से दिल्ली के सिहासन पर अधिकार कर लेंगे।[1]

कुतुबुद्दीन ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोध के लिए कमर बाँध ली। उसके परामर्शदाताओं ने कहा कि दिल्ली के चिश्तियो और मुलतान के सुहरवर्दियों मे परस्पर विरोध है, अतः **शेख बहाउद्दीन जकरिया** के पोते **शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी** को यदि दिल्ली में बुला लिया जाय, तो अमीर और सरदार उनकी ओर उन्मुख हो जायेगे और शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव घट जायगा।[2]

कुतुबुद्दीन खिलजी के निमन्त्रण पर शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी दिल्ली आये, तो एक पड़ाव आगे जाकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उनकी अगवानी की। अगले दिनशेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी शेख निजामुद्दीन चिश्ती से मिलने आये और उन्होंने दिल्लीवासियों के सम्मुख निजामुद्दीन चिश्ती को 'शहशाहे दीन' कहा। शेख रुक्नुद्दीन के साथ उसके भाई भी थे।[3]

शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी और उनके साथियो के साथ बैठकर भोजन किया और उन्हे सौ अशर्फियाँ भेट की। जब शेख निजामुद्दीन चिश्ती और शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी मे मनमुटाव न हुआ, तब कुतुबुद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अन्य विरोधियों की खोज की। उस समय दिल्ली मे तीन प्रधान सूफी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे : **हजरत अहमद जाम** के वंशज **शेख शहाबुद्दीन, मौलाना जियाउद्दीन रूमी** और **शेख नूरुद्दीन फिरदौसी**।[4]

इन तीनों मे मौलाना जियाउद्दीन रूमी का प्रभाव दिल्ली में सबसे अधिक था। कुतुबुद्दीन खिलजी ने मौलाना जियाउद्दीन रूमी को बुलाया और वह उनका मुरीद हो गया। बादशाह के सकेत पर मौलाना जियाउद्दीन रूमी ने **शेखजादे फरजाम शहाबुद्दीन** और शेख नुरुद्दीन फिरदौसी को भी साथ में लेकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती का विरोध आरम्भ कर दिया।[5]

कुतुबुद्दीन खिलजी ने इसके पश्चात् एक दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश भेजा कि आप अपने आडम्बर को साथ लेकर दिल्ली छोड़ दें। आप अपरिग्रही होने का दावा

---

१. चेहलरोजः, पृ० २२८–२३०।
२. उपरिवत्, पृ० २३१।
३. उपरिवत्, पृ० २३३–२३६।
४. उपरिवत्, पृ० २३७-२३८।
५. उपरिवत्, पृ० २३८।

करते है, परन्तु आपके अस्तबल में घोडे सोने की मेखों से बाँधे जाते है। निजामुद्दीन चिश्ती ने उस आदेशपत्र पर लिख दिया कि मैने सोने की मेखे मिट्टी मे गाडी हैं, अपने दिल मे नही।[१]

निजामुद्दीन चिश्ती ने मौलाना जियाउद्दीन रूमी को भेजकर कहलवाया कि अपने मुरीद बादशाह को समझा दे कि वह दरवेशो को न सताये। राजकुमार हरदेव ने जियाउद्दीन रूमी के घर जाकर सुना कि मुरीद होने पर बादशाह ने पाँच हजार अशर्फियाँ भेजी थी, उन्ही के बँटवारे पर मौलाना रूमी की पत्नियो और उनकी सन्तानो मे झगडा हो रहा है। मौलाना रूमी ने एक पत्नी के घर खाना खाया था, तभी से बहुत बीमार है। अगले दिन जियाउद्दीन रूमी की मृत्यु हो गई।[२]

मौलाना जियाउद्दीन रूमी के तीजे के दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती भी गये। कुतुबुद्दीन खिलजी वहाँ बैठा हुआ कुरान का पाठ कर रहा था। कुतुबुद्दीन खिलजी ने निजामुद्दीन चिश्ती से कहलवाया कि चाहे, तो उस समय बादशाह से मिल सकते है। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिलवा दिया, पवित्र कुरान के पाठ में विघ्न उचित नही। कुछ देर बाद कुतुबुद्दीन खिलजी वक्र दृष्टि से शेख की ओर देखता हुआ चला गया।[३]

कुछ दिनों के बाद अपने अमीरों के द्वारा कुतुबुद्दीन खिलजी ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती से कहलवाया कि चाँदरात को सभी सूफी मुझे सलाम करने और दुआ देने आते है, आप अपने स्थान पर अपने दास **ख्वाजः इकबाल** को भेज देते है, इसमें सम्राट् का अपमान है, इस चाँदरात को आप भी आये। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिलवाया, दुआ के लिए एकान्त आवश्यक है, दरबारों मे जाकर दुआ देना मेरी परम्परा के विरुद्ध है।[४] चाँदरात आने पर कुतुबुद्दीन खिलजी ने आदेश दिया कि यदि शेख निजामुद्दीन चिश्ती दुआ देने के लिए दरबार में स्वय न आये, तो उन्हे तलवार के जोर से लाया जाय।

यद्यपि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अनेक मुरीद सशस्त्र होकर शेख की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गये थे, तथापि शेख ने उन्हे अपने-अपने घर भेज दिया और **रफीउद्दीन हारून, ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम** और **राजकुमार हरदेव** के साथ भोजन करके नमाज पढी और उस दिन नमाज की जमात मे राजकुमार हरदेव को भी सम्मिलित किया। हरदेव यद्यपि मुसलमान हो चुका था, तथापि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उससे कहा था कि वह अपने मुसलमान होने का समाचार अभी गुप्त रखे।[५]

---

१. चेहलरोजः, पृ० २३९-२४०।
२. उपरिवत्, पृ० २४१-२४२।
३. उपरिवत्, पृ० २४२-२४३।
४. उपरिवत्, पृ० २४८-२४९।
५. उपरिवत्, पृ० २४९।

अगले दिन यह समाचार नगर मे फैल गया कि खुसरो खाँ नामक नवमुस्लिम नवयुवक कुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके सम्राट् दीन मुहम्मद नासिर के नाम से तख्त पर बैठ गया हैं और सब अमीरो और सरदारो ने उसे बादशाह मान लिया है।[१]

ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कुतुबुद्दीन खिलजी ने भी अमीर खुसरो को अपने दरबार में सम्मानपूर्वक रखा। उनके एक कसीदे पर प्रसन्न होकर हाथी के भार के बराबर स्वर्ण और रत्न अमीर खुसरो को दिये। कुतुबुद्दीन खिलजी के शासनकाल का वृत्तान्त अमीर खुसरो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में लिखा।

कुतुबुद्दीन खिलजी संगीत और नृत्य में प्रवीण था। गुजरात से आई हुई परवार नामक एक संगीतजीवी हिन्दू-जाति का एक परम सुन्दर नवयुवक कुतुबुद्दीन खिलजी का प्रेमपात्र था। ऐसी परिस्थिति में लिखे हुए ग्रन्थ 'नूह सिपहर' मे खुसरो ने स्वय को ब्राह्मणों का शिष्य और ब्राह्मणों को अरस्तू के समान कहा है। ब्राह्मणो से लाभ न उठानेवालो पर व्यंग्य किया है, भारत को ससार-भर के देशो मे श्रेष्ठ कहा है, भारतीय संगीत को अनुपम और अरब के सगीत की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है।

खुसरो का कार्य अत्यन्त कठिन था। अपने पीर के घोर विरोधी बादशाह को भी सन्तुष्ट रखना और पीर के प्रति अनन्य भक्ति भी बनाये रखना तलवार की धार पर चलना था।

अँगरेज-इतिहासकारों ने मत प्रकट किया है कि कुतुबुद्दीन खिलजी का वध शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सकेत पर हुआ था।[२]

'चेहलरोज:' से यह सिद्ध है कि राजकुमार हरदेव के साथ हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना की बाते 'खुसरो खाँ' (नवमुस्लिम गुजराती युवक) करता रहता था। निजामुद्दीन चिश्ती से यह वृत्तान्त हरदेव ने उस रात को कहा, जिस रात को कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या हुई। हरदेव ने खुसरो खाँ के लक्ष्य से मतभेद नही प्रकट किया, अपितु उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने को अयोग्य और अशक्त बताया।[३]

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हरदेव के मुसलमान हो जाने पर भी उसकी घोषणा शेख निजामुद्दीन चिश्ती के आदेश पर ही न की गई। हरदेव को कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या के तत्काल बाद अपने माँ-बाप के साथ निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति से दिल्ली छोडकर भागना पडा।

हरदेव के मुसलमान होने की घोषणा गयासुद्दीन तुगलक के बादशाह होने पर हुई और उसका मुसलमान नाम 'अहमद अयाज' शेख निजामुद्दीन चिश्ती के द्वारा रखा गया।

---

१. चेहलरोज:, पृ० २५१–२५४।
२. हसन निजामी : निजामी बंसरी, पृ० २५७।
३. चेहलरोज:, पृ० २४९-२५०।

अँगरेज-इतिहासकारों के मत पर हमारे द्वारा कोई मत प्रकट किया जाना उचित नहीं, परन्तु उपर्युक्त परिस्थितियाँ किसी के मन मे सन्देह अवश्य उत्पन्न कर सकती है।

खुसरो खाँ के बादशाह होने पर पाँच लाख तंके (टक) शेख निजामुद्दीन चिश्ती को भी भेजे गये थे, जो उन्होंने मुहताजों और गरीबों को बँटवा दिये।[१] खुसरो खाँ (गुजराती नवयुवक) का समर्थक तो शेख निजामुद्दीन चिश्ती को कदापि नही कहा जा सकता, परन्तु राजनीति में लोग एक काँटे को दूसरे काँटे से तो निकालते ही हैं।

दिल्ली के मुसलमान खुसरो खाँ के 'हिन्दू-साम्राज्य' की स्थापना को कदापि अच्छा नही समझ सकते थे। सम्भव है, उन लोगों ने हरदेव पर भी खुसरो खाँ (गुजराती युवक) का सहयोगी होने का सन्देह किया हो और तभी वह अपने माँ-बाप के साथ देवगिरि भागा हो।

गयासुद्दीन तुगलक ने खुसरो खाँ का वध करके गद्दी सँभाली। वह खिलजियों की ओर से मुलतान का शासक था, अपनी वीरता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था, इसका नाम था **गाजी मलिक**। इसका पिता तातारी और माँ हिन्दू थी और इसके पुत्र **मलिक जूना** (मुहम्मद तुगलक) की माँ भी हिन्दू थी। यह सुहरवर्दी परम्परा के सूफियों के प्रति श्रद्धावान् था और इसने अपना मकबरा भी **शेख बहाउद्दीन जकरिया** की समाधि के पास बनवाया था।[२]

गयासुद्दीन तुगलक भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का विरोधी रहा। खुसरो खाँ के द्वारा भेजे हुए पाँच लाख तंके उसने शेख निजामुद्दीन चिश्ती से वापस मँगाये थे, तो उसे जवाब मिला, वह लंगर में जमा न किये गये, गरीबों को बाँट दिये गये। सम्भव है, उसके मन में गाँठ पडी रह गई हो।[३]

शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिस में कुछ यात्री एक दिन आये और इस बात पर आपत्ति करने लगे कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सामने उनके भक्त 'सज्द.' (जमीन तक झुककर प्रणाम) करते हैं। निजामुद्दीन चिश्ती ने उन्हें समझाया कि उपासना के भाव से 'सज्द:' केवल नमाज में ईश्वर के सम्मुख किया जाता है, परन्तु सम्मान-प्रदर्शन का 'सज्द.' तो पैगम्बर यूसुफ के सामने उनके माँ-बाप ने भी किया था और ईश्वर की आज्ञा से ऐसा 'सज्द:' फरिश्तों ने हजरत आदम के सामने किया था, परन्तु वे यात्री फिर भी कोलाहल करते रहे और अन्त में बक-झक करके चले गये।[४]

कुछ दिनो बाद एक खेमे में शेख निजामुद्दीन चिश्ती कव्वाली करा रहे थे, वहाँ कुछ 'मुहतसिब' (इस्लाम-विरुद्ध कार्यों से लोगों को विरत करनेवाले कर्मचारी), काजी

१. चेहलरोज:, पृ० २८४।
२. उपरिवत्, पृ० २७५।
३. हसन निजामी, पृ० २७३।
४. चेहलनाम:, पृ० २८४-२८६।

नियाउद्दीन सन्नामी और उनके बेटे कुछ हथियारबन्द सिपाहियों के साथ वहां आये और उन्होने चिल्लाकर कहा कि कव्वाली बन्द करो, बादशाह का आदेश है कि इस इस्लाम-विरुद्ध कार्य को तलवार के बल पर रोका जाय। लोगों ने ध्यान न दिया और कव्वाली जारी रही।

कहा जाता है कि सिपाहियो ने खेमे के रस्से काट दिये, परन्तु वह न गिरा, तब काजी साहब ने कहा कि मैं 'बादशाह के आदेश का पालन कर रहा हूँ, तुम मुझे चमत्कार क्यों दिखा रहे हो?' यह सुनकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कव्वालों को गाने से रोका और कहा कि हमलोग ईश्वरोपासना मे सलग्न हैं, मैंने कोई चमत्कार नही किया है।[1]

काजी साहब लौट गये और उनके दोनो बेटे किसी घातक रोग से ग्रस्त होकर तत्काल मर गये, कुछ समय के पश्चात् उसी दिन काजी साहब भी मर गये।[2]

दो-तीन दिन बाद बादशाह गयासुद्दीन तुगलक का एक आदेश आया, जिसमें कहा गया था कि आप गाना सुनते है, गाना 'शरीअत' (मुस्लिम विधि-विधान) के विरुद्ध है, आप इस सम्बन्ध में मेरी और नगर के अन्य विद्वानों की उपस्थिति में मुफ्ती आजम से शास्त्रार्थ कीजिए। यदि आपने गाने का औचित्य सिद्ध कर दिया, तो हम भी गाना सुनना आरम्भ कर देंगे, अन्यथा आपको यह पाप-कर्म छोड़ना होगा।

निजामुद्दीन चिश्ती ने उत्तर दिया कि अपनी परम्परा के अनुसार मैं किसी बादशाह के दरबार मे न तो जाता हूँ, न अपने पास आने देता हूँ, मैं 'शरीअत' के इस दरबार में उपस्थित होने के लिए प्रस्तुत हूँ; परन्तु बादशाह को इस दरबार में सब आलिमों के साथ ही बैठना होगा, उनसे ऊँचे स्थान पर नहीं। बादशाह यह शर्त्त मान गया।

मौलाना शमसुद्दीन याह्या, मौलाना अलाउद्दीन नीली, मौलाना फखरुद्दीन जरादी, काजी मुहीउद्दीन काशानी जैसे अखिलभारतीय ख्याति के शास्त्रार्थ-महारथी शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। इन्होंने साथ चलने की अनुमति शेख निजामुद्दीन चिश्ती से माँगी, अनुमति न मिली, तो वे लोग चुपचाप पीछे-पीछे वहा गये। **ख्वाजः मुहम्मद इमाम, ख्वाजः सैयद मूसा** और **हरदेव** भी गये।

संयोगवश वहाँ **शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी** के पोते **शेख इल्मुद्दीन** भी पधारे और उन्होंने भी निजामुद्दीन चिश्ती के पक्ष का समर्थन किया, बादशाह उनके साथ अपने महल की ओर चला गया।

शेखजादः फरजाम, हाकिम शरअ और उनके साथियों ने कोलाहल करना आरम्भ किया, वे शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विषय मे अपशब्द कहने लगे। उनके पास बैठे हुए मुल्लाओं ने छुरियाँ और खंजर निकाल लिये और शेख निजामुद्दीन पर आक्रमण करने का संकल्प किया।

---

१. चेहलरोजः, पृ० २८७-२८८।
२. उपरिवत्, पृ० २८८-२८९।

हरदेव, ख्वाजः सैयद इमाम, ख्वाजः रफीउद्दीन हारून इत्यादि ने भी विरोधियो का यह सकल्प देखकर खजर निकाल लिये। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इनलोगो को रोका। ये सब शेख निजामुद्दीन चिश्ती के साथ अपने-अपने घोड़ो पर सवार होकर लौट आये।[1]

लौटने के पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने मौलाना फखरुद्दीन से कहा कि वे कव्वाली के औचित्य के सम्बन्ध मे एक पुस्तक लिखें। शेख निजामुद्दीन को विश्वास हो गया था कि नगर में विरोधियों की सख्या पर्याप्त है और लोग उनके बाद उनके अनुयायियो को तंग करेंगे।[2] शेख निजामुद्दीन की आशंका पर अमीर खुसरो बहुत रोये, और सब लोग भी रोने लगे। निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा कि पुस्तक जनता के लिए होगी। हम लोगों के लिए तो अपने बुजुर्गों का अनुकरण पर्याप्त है, जो सार्वजनिक रूप में बाजों के साथ गाना सुनते थे। कुरान शरीफ मे गाना सुनने का निषेध कही नही है।[3]

गयासुद्दीन तुगलक अपने बड़े बेटे जूना उलुग खाँ से कुछ अप्रसन्न था और अपने छोटे बेटे महमूद को युवराज बनाना चाहता था। अकस्मात् गयासुद्दीन तुगलक बंगाल के विद्रोह दबाने के लिए जाने को विदा हुआ। अमीर खुसरो और गयासुद्दीन तुगलक का पुत्र महमूद भी गयासुद्दीन तुगलक के साथ गये। इसके पश्चात् जूना उलुग खाँ ने फकीरों के वेश में निजामुद्दीन चिश्ती के समक्ष आने की अनुमति शेख निजामुद्दीन की खानकाह के प्रबन्धक **ख्वाजः इकबाल** से ले ली। ख्वाजः मुहम्मद इमाम और हरदेव भी इस तथ्य से परिचित थे। उसी दिन ख्वाजा निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिस में फटे-पुराने कपड़े पहने हुए कुछ दरवेश (फकीर) आये, जिनमें जूना उलुग खाँ भी था। ख्वाजः मुहम्मद इमाम और हरदेव ने उनमें उलुग को पहचान लिया। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाज मुहम्मद इमाम से कहा कि इन दरवेशों को लंगर में खाना खिलाओ। दरवेशों के लंगर मे खाना खानेवालों का मनोरथ पूर्ण होता है। खाना खाने के बाद वे दरवेश पुन. शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने सज्दः करने के पश्चात् जाने की अनुमति चाही। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाज. सैयद मुहम्मद इमाम से कहा कि दरवेशों को जाने की अनुमति दो, एक बादशाह आता है और दूसरा बादशाह जाता है। यह सुन उलुग खाँ ने पुनः सम्मान-प्रदर्शन किया और शिष्टाचारपूर्वक विदा हो गया।[4]

इसके कुछ ही दिनों पश्चात् **अहमद अयाज** (हरदेव) को उलुग खाँ ने बुलाया, उसे 'ख्वाजा जहाँ' की पदवी दी, उसके हाथों में सोने के कंगन पहनाये और उसे प्रासाद-निर्माण-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया। उस विभाग के कर्मचारियों से विभाग का कार्य

---

१ चेहलरोजः, पृ० २८६–२६५।
२. उपरिवत्, पृ० २६७।
३. उपरिवत्, पृ० २६७।
४. उपरिवत्, पृ० ३०२-३०३।

समझकर हरदेव दिन में अपनी नौकरी का कार्य करने लगा और सन्ध्या के समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे उपस्थित रहता था ।[१]

कुछ दिनो के पश्चात् शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने काजी सैयद मुहीउद्दीन काशानी और सैयद हुसेन किरमानी को 'यारों के चबूतरे' के पास एक बावली बनवाने के लिए प्रबन्ध करने का आदेश दिया । **नसीरुद्दीन महमूद** (चिराग देहली), **रफीउद्दीन हारून और ख्वाजा मुहम्मद इमाम** भी बावली बनाने के कार्य मे नियुक्त हुए ।[२]

एक दिन ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम ने हरदेव से कहा कि एक पत्र के द्वारा गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश दिया है कि मेरे दिल्ली पहुँचने से पूर्व दिल्ली छोडकर चले जाओ । मै नही चाहता कि दिल्ली पहुँचने पर मै एक ऐसे व्यक्ति को वहाँ देखूँ, जो स्वय मनुष्य होने पर भी अपने सामने मनुष्यो से सज्द· कराता है, **अबूहनीफः** का अनुयायी होनेपर भी अबूहनीफ: की व्यवस्था के विरुद्ध गाना सुनता है और खुल्लमखुल्ला गाने-बजाने की मजलिस करता है । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उसी आदेशपत्र पर लिख दिया · 'हनोज दिल्ली दूर अस्त', अर्थात् 'अभी दिल्ली दूर है ।' यही उत्तर लेकर गयासुद्दीन तुगलक का दूत लौट गया ।[३]

शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे उलुग खॉ की उपस्थिति, शेख निजामुद्दीन चिश्ती के वाक्य 'एक बादशाह जाता है, दूसरा बादशाह आता है' तथा 'मीर इमारत' के पद पर हरदेव की नियुक्ति का समाचार गुप्तचरो द्वारा बगाल मे गयासुद्दीन तुगलक तक पहुँच चुका था और वह एक पत्र के द्वारा उलुग खॉ को डॉट चुका था । इस पत्र की सूचना हरदेव को हसन ईरानी (इसे शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने दकन का बादशाह कहा था और भविष्य मे भी बहमनी-राज्य का संस्थापक हुआ, यह भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था) ने दी थी ।[४]

गयासुद्दीन तुगलक ने एक अन्य पत्र में उलुग खॉ को लिखा कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती की बावली बनाने वही मजदूर जाते है, जो दिन में शहर और किला बनाने का काम करते है, अत: राज-मजदूरो को बावली बनाने के काम से रोक दिया जाय । वे 'अमीर इमारत' हरदेव के कारण बावली बनाने जाते है । यह पूरा समाचार असत्य था, अत:, जॉच करने के बाद उलुग खॉ ने वास्तविकता-सूचक पत्र गयासुद्दीन तुगलक को लिख दिया ।[५]

गयासुद्दीन तुगलक ने उलुग खॉ को पुन: एक आदेश भेजा कि जो राज-मजदूर भी शेख निजामुद्दीन चिश्ती की बावली बना रहे है, उन्हे इस कार्य से रोका जाय, नगर के

---

१. चेहलरोज:, पृ० ३१४-३१५ ।
२. उपरिवत्, पृ० ३१५-३१६ ।
३. उपरिवत्, पृ० ३१६-३१७ ।
४. उपरिवत्, पृ० ३१७ ।
५. उपरिवत्, पृ० ३१८ ।

समस्त व्यापारियों को आदेश दिया जाय कि वे निजामुद्दीन चिश्ती के अनुयायियों को तेल न दे, जिससे कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के अनुयायी रात मे प्रकाश करके बावली न बना सकें। शेख निजामुद्दीन चिश्ती को आदेश दिया जाय कि वे बादशाह के पहुँचने से पूर्व दिल्ली छोड दे, बादशाह बगाल से प्रस्थान कर चुका है।[1]

बादशाह की इस आज्ञा का अक्षरश पालन किया गया। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपना पुराना उत्तर दुहरा दिया . 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' और अपने अनुयायियो को आदेश दिया कि वे लोग स्वयं राज-मजदूरो का काम करे, बावली से निकले हुए जल को कूँडों मे भरकर दीपक की भाँति जलाये।[2]

ऐसी स्थिति मे हरदेव ने अपनी नौकरी पर जाना बन्द कर दिया और शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद राज-मजदूरो को साथ लेकर बावली बनाने के काम मे जुट गये, जहाँ मौलाना नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली), सैयद मुहीउद्दीन काशानी जैसे 'खलीफा' लोग भी अपने गुरु-बन्धुओं के साथ कमर बाँधकर बावली बनाने का कार्य कर रहे थे। रात आने पर बावली का पानी तेल की भाँति कूँडो में जलने लगा। सात दिन मे बावली तैयार हो गई।[3]

सात दिन बाद हरदेव अपनी नौकरी पर गया और उसने उलुग खाँ के सामने अपनी अनुपस्थिति का कारण स्पष्ट किया, उलुग खाँ मुस्करा पडा, वह शेख निजामुद्दीन चिश्ती का पक्ष न्यायसम्मत समझता था।

उलुग खाँ ने हरदेव को आदेश दिया कि नगर से तीन कोस दूर अफगानपुर गाँव में बादशाह के स्वागत के लिए एक महल बनाया जाय, जिसमे दिल्ली पहुँचने से पूर्व बादशाह का स्वागत हो और उनकी सेवा में मेरी ओर से उपहार प्रस्तुत किये जाये।

हरदेव ने तीन दिन मे लकड़ी का एक सुन्दर महल तैयार कर दिया, उसकी सजावट अत्यन्त आकर्षक ढंग से की गई। दिल्ली के निकट पहुँचने पर गयासुद्दीन तुगलक ने यह महल देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। बादशाह के लिए तत्काल भोजन भी मँगवाया गया। बादशाह के सब सरदार और अमीर भी वहाँ थे, जो बादशाह को उलुग खाँ के विरुद्ध भड़काते रहते थे। उलुग खाँ का छोटा भाई महमूद भी था, शेख रुक्नुद्दीन अबुलफतह मुलतानी भी थे।

खाने के बाद उलुग खाँ ने हरदेव को बादशाह की सेवा में प्रस्तुत किया, उसका परिचय कराया और यह भी बताया कि यह मुसलमान हो चुका है और इसी ने यह महल केवल तीन दिन मे तैयार कराया है। उलुग खाँ ने शेख रुक्नुद्दीन को याद दिलाई कि नमाज का वक्त हो गया है, और वे नमाज के लिए बाहर चले गये।[4]

---

१ चेहलरोजः, पृ० ३१८–३१९।

२. उपरिवत्, पृ० ३१९।

३. उपरिवत्, पृ० ३१९-३२०।

४. उपरिवत्, पृ० ३२०–३२२।

उलुग खाँ और हरदेव महल से बाहर आये और उन्होने उपहार के हाथी महल के अन्दर भेजे। मकान नया था, फर्श लकड़ी का था। हाथियो के अन्दर घुसते ही लकडी का फर्श दबा और वह महल अकस्मात् ढह गया, जिसमे बादशाह, उसका चहेता लड़का महमूद और उलुग खाँ के विरोधी सभी दबकर मर गये। मलवे को हटाने के लिए मजदूरों का पता दूर-दूर तक न था। मकान गिरने की आवाज से शेख रुक्नुद्दीन मुलतानी भी नमाज पढ़े बगैर लौट आये, जहाँ उलुग खाँ मजदूरों को बुलाने के लिए चिल्ला रहा था।

रातो-रात गयासुद्दीन तुगलक को मलवे से निकालकर उस मकबरे मे दफन कर दिया गया, जो उसने अपने किले के करीब अपने लिए बनवाया था।[1]

'इब्नेबतूत' के अनुसार, शेख रुक्नुद्दीन मुलतानी ने नमाज के लिए उठते समय गयासुद्दीन तुगलक को उठने का सकेत किया, परन्तु उसने सकेत को नही समझा। शेख रुक्नुद्दीन ने यह भी 'इब्नेबतूत' के आधार पर कहा है कि उलुग खाँ ने लोगो को संकेत कर दिया था कि मजदूर विलम्ब से आये। मलवा हटाये जाने पर गयासुद्दीन के अतिरिक्त अन्य सब व्यक्ति मर चुके थे। उलुग खाँ के संकेत पर लोगों ने बादशाह को समाप्त कर दिया।[2]

अँगरेज-इतिहासकारो ने लिखा है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने गयासुद्दीन तुगलक के विरुद्ध उलुग खाँ से मिलकर षड्यन्त्र किया और शेख के संकेत पर ही हरदेव ने ऐसा मकान बनाया, जो फर्श पर हाथियों का बोझ पडने से ढह जाय।[3]

'शवाहिद निजामी' नामक एक पुस्तक मे लिखा है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने किलोखड़ी-निवासी सैयद महमूद से अभिचार (टोना टोटका) कराकर गयासुद्दीन तुगलक को मरवा दिया।[4]

ख्वाजा हसन निजामी अँगरेजो की आशका को निराधार और अभिचार-कर्म को कपोल-कल्पना मानते है।

अपनी बादशाहत के लिए बाप, बेटे, भाई, भतीजे, पीर इत्यादि की हत्या कर डालना उस युग में सामान्य बात थी। यदि उलुग खाँ अपने पिता को मरवाकर मुहम्मद तुगलक के नाम से तख्त पर बैठा, तो न तो यह दिल्ली के तख्त के लिए नई बात थी और न दिल्ली की जनता के लिए।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती भले ही इस षड्यन्त्र मे लिप्त न हों, परन्तु उनके अनुयायियों ने अपने पीर के घोर विरोधी और शत्रु गयासुद्दीन तुगलक को दुनिया से उठा देने मे उलुग खाँ को सहयोग दिया हो, तो कोई आश्चर्य नही।

---

१. चेहलरोजः, पृ० ३२२।

२. हसन निजामी, पृ० ३२३-३२४।

३. ख्वा० ह० नि०, पृ० ३२३।

४. ख्वा० ह० नि०, पृ० ३२४।

मनोरंजक बात यह है कि अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के साथ दिल्ली न लौटे, अपनी जागीर पटियाली में रुक गये।

गयासुद्दीन तुगलक की अनुपस्थिति में हरदेव को 'ख्वाजा जहाँ' की उपाधि देना, गयासुद्दीन का आदेश होने पर भी हरदेव को उसके पद 'मीर इमारत' से न हटाना, हरदेव की अनुपस्थिति को हँसकर टाल देना और गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् हरदेव को अपना दामाद बनाना इत्यादि ऐसे कृत्य है, जो यह सिद्ध करते हैं कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती के कुछ अनुयायी गयासुद्दीन तुगलक के वध की योजना के मूल कारण थे।

शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी ने उलुग खाँ के अपराध को जानते हुए भी भविष्य में उलुग खाँ (मुहम्मद तुगलक) से अच्छे सम्बन्ध रखे और हरदेव के सामने मुहम्मद तुगलक का यह प्रस्ताव रखा कि वह मुहम्मद तुगलक की इच्छा के अनुसार उसकी कन्या का पाणि-ग्रहण कर ले और इस कार्य के लिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती की अनुमति ले। शेख निजा-मुद्दीन चिश्ती इस प्रस्ताव से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने हरदेव को बधाई दी।[१] मुहम्मद तुगलक ने गुप्त रूप से अपनी लड़की का विवाह हरदेव के साथ कर दिया।[२]

मुहम्मद तुगलक ने हरदेव को पंजाब की ओर अभियान मे सेनापति बनाकर भेजा था। गुजरात के अभियान मे भी हरदेव को सेनापति बनाया। कुछ समय के पश्चात् हरदेव को क्रमशः 'नायब वजीर' और अन्त में 'वज़ीरे आजम' बना दिया गया।[३]

गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु के प्राय: डेढ महीने बाद शेख निजामुद्दीन का भी स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास से पूर्व उन्होने अपने खलीफा मौलाना सैयद नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली) को अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी नियुक्त किया और खानकाह में संचित सभी सम्पत्ति गरीबों के लिए लुटा दी, एक दाना तक न रखा। भाण्डार का भावी अधिकारी अपनी बहन के पोते, अर्थात् ख्वाजः सैयद मुहम्मद के पुत्र रफीउद्दीन को बनाया।[४] शेख निजामुद्दीन चिश्ती की वसीयत के अनुसार उनके जनाजे के आगे-आगे कव्वाल शेख सादी की यह गजल गाते हुए चल रहे थे :

ऐ तमाशागाहे आलम रूए तू, तू कुजा बहरे तमाशा मी रवी।

मुहम्मद तुगलक ने जनाजे में बड़ी देर तक कन्धा लगाया, जनाजे की नमाज शेख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी ने पढाई। दिल्ली के हजारों सूफी, फकीर और अमीर जनाजे के साथ रोते हुए चल रहे थे। जो लोग संगीत सुनना इस्लाम के विरुद्ध समझते थे, वे भी कव्वाली सुनते हुए जनाजे के साथ चल रहे थे।[५]

१. चेहलरोजः, पृ० ३२९-३३०।
२. उपरिवत्, पृ० ३३३।
३. ख्वा० हृ० नि०, पृ० ३२६।
४. चेहलरोजः, पृ० ३३३।
५. उपरिवत्, पृ० ३३७।

निजामुद्दीन के तीजे के दिन भी मुहम्मद तुगलक आया। उसने सब प्रबन्ध के विषय मे पूछताछ की। प्रसंगवश ख्वाज. सैयद मुहम्मद इमाम ने मुहम्मद तुगलक से कहा कि स्वर्गीय शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कई बार इतने अच्छे शब्दो मे मुहम्मद तुगलक की प्रशंसा की, जितने अच्छे शब्दो मे अन्य किसी बादशाह की भी प्रशसा न की। मुहम्मद तुगलक ने कहा कि हजरत की दुआ ने सदा साथ दिया है।[1]

इस दृष्टि से हम देखते है कि कैकुबाद से गयासुद्दीन तुगलक तक के काल मे शेख निजामुद्दीन चिश्ती का प्रभाव या तो दिल्ली के बादशाह पर रहा या उनके दरबारियो पर। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के भक्त बादशाहो में कैकुबाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक कहे जा सकते है और विरोधियों मे कुतुबुद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक। कुतुबुद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक दोनो की ही मृत्यु के षड्यन्त्रों मे अँगरेज-इतिहासकार शेख निजामुद्दीज चिश्ती की योजना देखते है।

निजामुद्दीन चिश्ती और खुसरो :

शेख निजामुद्दीन चिश्ती अपने युग की समस्त विद्याओ के पण्डित थे। वे गणित मे भी निष्णात थे, सगीत जिसका अग समझा जाता था। जफर (भविष्य बतानेवाला एक अरब-शास्त्र) की शिक्षा उन्होंने ख्वाज सैयद मुहम्मद इमाम, अमीर खुसरो और हरदेव को गयासुद्दीन के राज्यकाल में दी थी। अमीर खुसरो और हसन अला सजरी बचपन से ही निजामुद्दीन के मुरीद और शिष्य थे, क्योंकि खिलाफत मिलने से पूर्व और पश्चात् पर्याप्त समय तक शेख निजामुद्दीन चिश्ती की आय का साधन अध्यापन था।

अमीर खुसरो बहुत छोटी आयु में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद हो गये थे। शेख निजामुद्दीन जब (सन् १२६१ ई० मे) अजोधन से बाबा फरीद के प्रतिनिधि (तेईस वर्ष की अवस्था में) होकर आये, तब **शेख नजीबुद्दीन मुतवक्कल** के मकान के पास रहते थे। अमीर खसरो के पिता **अमीर सैफुद्दीन महमूद** के मन मे यह इच्छा हुई कि मैं अमीर खुसरो और उनके बड़े भाई को शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद कराऊँ। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मकान के पास पहुँचकर अमीर खुसरो ने अपने पिता से कहा कि आप मेरे भाई को लेकर अन्दर जाइए और मुझे बाहर रहने की अनुमति दीजिए। उनके पिता ने ऐसा ही किया। खुसरो ने बाहर बैठे-बैठे शेख निजामुद्दीन चिश्ती को मन-ही-मन सम्बोधित करके एक 'शेर' की रचना की, जिसका अर्थ है :

"तू ऐसा बादशाह है कि अगर तेरे महल के कगूरे पर कबूतर आकर बैठे, तो वह तेरे अनुग्रह से बाज हो जाये। एक प्रार्थी तेरे द्वार पर आया है, वह अन्दर आये या लौट जाये?"

अमीर खुसरो ने सोचा कि यदि शेख निजामुद्दीन चिश्ती सिद्ध हैं, तो मेरे मन का भाव जानकर स्वयं मुझे अन्दर बुला लेंगे।

---

१. चेहलरोजः, पृ० ३३१।

थोड़ी देर के बाद निजामुद्दीन चिश्ती के एक सेवक ने बाहर आकर खुसरो से पूछा, क्या तुम तुर्क हो ? खुसरो के 'हाँ' कहने पर सेवक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की ओर से खुसरो को एक शेर सुनाया, जिसका भावार्थ है :

'सत्य के क्षेत्र के वीर, अन्दर चला आ, जिससे कि कुछ समय हमारा विश्वसनीय और सहचर बन जा। यदि आनेवाला नासमझ है, तो जिस मार्ग से आया है, उसी से लौट जाये।"

खुसरो तत्काल अन्दर गये और उन्होने दौडकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती के चरणों मे सिर रख दिया। शेख साहब ने खुसरो से कहा :

"आ जा, आ जा, ऐ मर्दे हकीकत आ जा, एक दम के लिए हमारा हमराज बन जा।"

यह सुनते ही अमीर खुसरो ने मुरीद होने की प्रार्थना की, शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने उन्हे तत्काल मुरीद कर लिया।

कुछ ही दिनों के पश्चात् हजरत अमीर खुसरो के पिता का स्वर्गवास हो गया, उसके पश्चात् भी अमीर खुसरो शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में निरन्तर उपस्थित होते रहे।[1]

एक बार हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने अमीर खुसरो से कहा था :

"मै सबसे तग हो जाता हूँ, यहाँतक कि अपने-आप से भी तंग हो जाता हूँ, परन्तु तुझसे कभी कोई तंग नही होता।"

एक अन्य अवसर पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती खुसरो से बोले :

"मेरी सलामती की दुआ माँग, क्योंकि तेरी सलामती मेरी सलामती पर मुनहसर है। तू मेरे बाद जल्द ही दुनिया से रुख्सत हो जायगा। यह भी दुआ कर कि लोग तुझे मेरे करीब ही दफन करे।"

निजामुद्दीन हजरत अमीर खुसरो को 'तुर्क अल्लाह' कहकर पुकारते थे। पत्रों में भी 'तुर्क अल्लाह' लिखते थे।

अपनी एक रुबाई मे शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अमीर खुसरो के विषय में कहा है :

"गद्य और पद्य लिखने मे अनुपम खुसरो काव्योक्तियों का सम्राट् है।"[2]

शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने एक बार अमीर खुसरो को सम्मति दी थी कि अपने काव्य मे इस्फहान के कवियों का रंग रखे, अर्थात् उसमे प्रेम और भक्ति प्रधान हो। अमीर खुसरो ने इस सम्मति के अनुसार आचरण किया और वे लोकप्रिय हुए।

एक दिन खुसरो के काव्य से प्रसन्न होकर शेख निजामुद्दीन ने कहा कि माँग, क्या माँगता है ? अमीर खुसरो ने कहा, अपने काव्य मे माधुर्य चाहता हूँ। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने अपनी चारपाई के नीचे रखा हुआ शक्कर-भरा थाल खुसरो से मँगवाया और उस

१. चेहलरोजः, पृ० २९९–२०१।
२. उपरिवत्, पृ० ४०२-४०३।

थाल मे से थोडी-सी शक्कर अमीर खुसरो को खिलाई और वह थाल अमीर खुसरो के सिर पर रख दिया। उस समय से खुसरो के काव्य मे माधुर्य और सरसता आ गई।

अमीर खुसरो ने अपना दीवान 'तुहफतुस्सग्र' और दूसरा दीवान 'निहायतुल् कमाल' **मौलाना काजी माजुद्दीन पायचा** की मारफत शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में प्रस्तुत किया था। उसके बाद वे निरन्तर शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में, जो भी नया ग्रन्थ लिखते, प्रस्तुत करते। शेख निजामुद्दीन चिश्ती आशीर्वाद देते और कही-कही सुधार भी करते थे।[१]

एक बार शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा : "यदि मेरे तुर्क (खुसरो) को मुझसे अलग करने के लिए मेरे माथे पर आरा रख दिया जाय, तो भी मैं अपने तुर्क को अलग न करूँगा।"

वे खुशी से बोले : "मैं 'तू' हो गया, तू 'मैं' हो गया, मैं शरीर हो गया, तू प्राण हो गया।"

यह सुनते ही खुसरो ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती के चरण पकडकर कहा : "जिमसे कि बाद में कोई यह न कह सके कि 'तू' और है और 'मैं' और हूँ।"[२]

एक बार निजामुद्दीन चिश्ती ने हरदेव, ख्वाज· हसन संजरी, अमीर खुसरो, ख्वाज सैयद मुहम्मद, ख्वाजः सैयद मूसा, ख्वाज· सैयद रफीउद्दीन हारून, सम्भलदेव, सीतलदेव एवं जीतलदेव को बुलाया और कहा कि तुम सब मिलकर एक भाषा बनाओ, जिसमें भारतीय हिन्दू और विदेश से आये हुए मुसलमान परस्पर विचार-विनिमय और लेन-देन करें। निजामुद्दीन औलिया ख्वाज. मुहम्मद और अमीर खुसरो से यह बात पहले भी कह चुके थे। उन्होंने कहा कि हम आपके आदेश के अनुसार आचरण कर रहे है। अमीर खुसरो ने यह भी कहा कि मैं बच्चों की शिक्षा के लिए एक पुस्तक लिख रहा हूँ, जिसका प्रस्तावित नाम 'खालक बारी' है। अमीर खुसरो ने उस पुस्तक की कुछ पक्तियाँ भी सुनाई। सुनकर हजरत निजामुद्दीन प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि यह बहुत उपयोगी पुस्तक है, परन्तु ऐसी चीजें भी हिन्दी में लिखो, जिन्हे लोग गाया करें। तत्पश्चात् सैयद मुहम्मद से कहा कि तुम और अमीर खुसरो संगीत के मर्मज्ञ हो, अतः ऐसे गीत भली भाँति तैयार कर सकते हो। सैयद रफीउद्दीन हारून, ख्वाजः सैयद मूसा और ख्वाजः हसन संजरी को भी यही आदेश दिया। उपर्युक्त चारों हिन्दुओं को भी यही आदेश हुआ। इसके बाद हजरत औलिया ने कहा कि आजकल हमारी फारसी और खुसरो की तुर्की भाषा मे हिन्दुओं की बोलचाल के अनेक शब्द आ गये हैं, घरों और गोष्ठियों में भी लोग हिन्दी के शब्द बोलने लगे हैं, परन्तु कुछ लोग फारसी, अरबी और तुर्की में हिन्दी-शब्दों का मिश्रण ठीक

---

१. सैरुल् औलिया, पृ० २९९।

२. "मन तू शुदम् तू मन शुदी, मन तन शुदम् तू जाँ शुदी,
ताकस न गोयद बाद अर्जी मय दीगरम् तू दीगरी।"—चेहलरोजः, पृ० २१३।

नही समझते । ऐसे लोगों को समझाया जाना चाहिए कि उनके राज्य का लाभ इसी मे है कि वे भारतीयों को अपनी बात समझा सके और उनकी बात समझ सके । यह तभी सम्भव होगा, जब हठ छोड़कर वे हिन्दी बोलचाल को बढ़ावा दे ।[1]

अमीर खुसरो को शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने आदेश दिया था कि वे हिन्दी-भाषा मे काव्य-रचना किया करें, खुसरो ने एक बार निजामुद्दीन चिश्ती को पूर्वी हिन्दी का भी अपना काव्य सुनाया था ।[2]

निजामुद्दीन और संगीत :

निजामुद्दीन चिश्ती के सगीत-गुरु कौन थे ? इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है, परन्तु भावमग्न होकर ये नृत्य करते थे, कव्वाली की परम्परा को देखते हुए निश्चित है कि यह नृत्य असगत या लयविहीन गात्र-विक्षेप कदापि नही हो सकता था ।

निजामुद्दीन चिश्ती सन् १२५७ ई० मे पाकपट्टन (अजोधन) पहुँचे और अपने पीर की सेवा में चार वर्ष रहे । वहाँ ये ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम के पिता और बाबा फरीद के दामाद **मौलाना ख्वाजाः बदरुद्दीन** इसहाक से शिक्षा भी ग्रहण करते थे । शेख बदरुद्दीन ने समस्त विद्याओं और कलाओं की शिक्षा दिल्ली मे ली थी और वे बाबा फरीद की कृपा से सभी विषयों मे पारदर्शी हुए थे । बाबा फरीद के आदेश से ही ख्वाज: बदरुद्दीन इसहाक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती को शिक्षा देना आरम्भ किया था ।

इस स्थिति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती को गणित के एक अंग संगीत की शिक्षा ख्वाज. बदरुद्दीन इसहाक से पारम्परिक रूप में मिली होगी ।

ख्वाज. बदरुद्दीन इसहाक के पुत्र ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम और ख्वाज. सैयद मूसा दोनो ही सगीत के महान् मर्मज्ञ और गायक थे । अपने पिता की मृत्यु के समय ये दोनों भाई छोटे थे । शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन दोनों को और इनकी माँ को दिल्ली बुला लिया था । इन दोनों भाइयों की शिक्षा-दीक्षा निजामुद्दीन चिश्ती के सरक्षण मे हुई । यह स्थिति भी सिद्ध करती है कि शेख निजामुद्दीन चिश्ती को संगीत की शिक्षा अपनी गुरु-परम्परा से ही मिली थी ।

निजामुद्दीन चिश्ती के पीर बाबा फरीद की शिक्षा-दीक्षा मुलतान मे हुई थी, जो उस युग मे सभी विद्याओं का केन्द्र था । स्पष्ट है कि बाबा फरीद को गणित और उसके अग संगीत की भी शिक्षा मिली होगी । यही शिक्षा पारम्परिक रूप में शेख निजामुद्दीन चिश्ती तक आई होगी ।

अमीर खुसरो, ख्वाजः सैयद मुहम्मद इमाम और सैयद मूसा के संगीत-गुरुओं की चर्चा पृथक् रूप में कहीं न मिलना और इनका महान् संगीतमर्मज्ञ होना यह सिद्ध करता है कि संगीत इन लोगों की परम्परा में था ।

---

१. चेहलरोजः, पृ० १८४ ।

२. उपरिवत्, पृ० २७ ।

निजामुद्दीन चिश्ती के जीवन की संगीत-विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इस प्रकार है :

हरदेव ने ख्वाजः मुहम्मद को श्रीकृष्ण-चरित्र सुनाया था। यह भी कहा था कि ब्रह्म एक है। इसके अतिरिक्त सगुण और निर्गुण रूप के विषय में भी कुछ बताया था। बहुदेववाद की भी सुनी-सुनाई चर्चा की थी। उसे हिन्दू-धर्म के विषय में तात्त्विक ज्ञान न था, अत वह ख्वाजः मुहम्मद की कुछ शंकाओ का समाधान न कर सका।[1]

अगले दिन प्रात काल हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने इन दोनो को बुलाया। जब ये दोनों पहुँचे, तब वे अपने खास मुरीद और खलीफा हजरत नसीरुद्दीन महमूद (हजरत चिराग देहली) से कुछ कह रहे थे। वे इन दोनों के देखकर मुस्कराये और हाथ के सकेत से इन दोनो को बुलाकर समीप बिठा लिया और बोले, हम मुसलमान लोग ईश्वर के गुणों का उससे पृथक् नही समझते। हमलोगो को यह विचार करने का अवकाश नही कि हिन्दुओ का विश्वास क्या है और मुसलमानों का क्या। हम तो इसी से आश्चर्यचकित है कि नदी 'हुबाब' (बुलबुले) मे कैसे समा गई! हम ईश्वर मे है और वह हममे है, सुगन्ध गुलाब मे भी है और उसके बाहर भी। सुगन्ध गुलाब से पृथक् नही है, परन्तु पृथक् भी है। गणित में जो 'मद' की रेखा खीची जाती है, वह व्यर्थ भी है और सार्थक भी। लिपि बोलती भी है और मूक भी है। हमलोग दुःख से रोते है, सुख से हँसते है, परन्तु हमारा यह हँसना और रोना नीद मे मग्न बच्चे के रोने और हँसने के समान है, जो वस्तुत न तो रोता है और न हँसता है। वास्तविक सत्य आत्मबोध है। हमलोग बहिर्मुख रहते है और आत्मबोध की उपेक्षा भी करते है। हम विद्यमान है भी और नही भी। हम व्यर्थ भी है, सार्थक भी। यह दृश्यमान जगत् एक ही शक्ति के नाना रूपो की अभिव्यक्ति है।

यह सुनकर सभी के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलकने लगे। हजरत निजामुद्दीन औलिया ने चुपचाप रहकर हरदेव को देखा। उनकी आँखों में भी प्रेमाश्रु थे। उन आँसुओं मे हरदेव को समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई दिया। हरदेव उनकी ओर बढना चाहा, परन्तु वह किसी आन्तरिक प्रवृत्ति से नाचने लगा, उसे पृथ्वी और आकाश नाचते प्रतीत हुए। यद्यपि हरदेव को पूरा होश था, तथापि वह अपने नाचने का कारण न जानता था। सभी उपस्थित सज्जन खड़े हो गये। ख्वाजः मुहम्मद ने बडे अच्छे स्वर में शेख नसीरुद्दीन का 'मक्तअ' गाना आरम्भ कर दिया :

दर सीनः नसीरुद्दीं जुज इश्क नमी गुंजद,
ईं तर्फः तमाशाबीं दरिया ब हुबाब अन्दर।

ख्वाजः मुहम्मद 'जुज इश्क नमी गुजद' को पुनः-पुनः दुहराते थे। वे बहुत सुन्दर गा रहे थे। निजामुद्दीन औलिया की आँखों से आँसू बह रहे थे। हरदेव की टकटकी

१. चेहलरोजः, पृ० ६६–७४।

उनकी ओर लगी थी और उसे हजरत औलिया के आँसुओ मे अवर्णनीय दृश्य दिखाई दे रहे थे। उसने अपने देश, माता-पिता इत्यादि को देखा। वंशीवादन करते हुए श्रीकृष्ण को देखा, जिनकी वशी के स्वर ख्वाज मुहम्मद के गाने के स्वरो मे मिल रहे थे। हरदेव को ऐसा लगता था कि भगवान् श्रीकृष्ण मुरली भी बजा रहे हैं और उसके साथ नाच भी रहे है। उन सबका प्रतिबिम्ब भी निजामुद्दीन औलिया के आँसुओं में हरदेव को दिखाई दे रहा था। उसे भगवान् कृष्ण भी 'जुज़ इश्क नमी गुजद' दुहराते हुए दिखाई दिये।[१]

थोडी देर बाद नाचते-नाचते हरदेव बेहोश हो गया। होश मे आने पर शेख नसीरुद्दीन महमूद (चिराग देहली) और ख्वाज. महमूद सहारा देकर उसे ले गये। ख्वाज महमूद के घर पहुँचने पर भी हरदेव को 'जुज इश्क नमी गुजद' सभी ओर से सुनाई देता रहा। कुछ देर बाद शेख नसीरुद्दीन महमूद चले गये और ख्वाज मुहम्मद के छोटे भाई मुहम्मद मूसा ने कुरान शरीफ की उन आयतो का सुन्दर पाठ करना आरम्भ किया, जिनमें पैगम्बर यूसुफ और जुलेखा के प्रेम का वर्णन है। प्रेमविषयक वर्णन से हरदेव भावावेश में आया था, अतः उसी विषय का गान उसके समक्ष किया था। यदि कोई कव्वाल विषयान्तर करके भावमग्न व्यक्ति के सम्मुख गाये, तो भावमग्न व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है।[२]

एक बार निजामुद्दीन चिश्ती गयासपुर से हजरत ख्वाज. कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की समाधि के दर्शन के लिए जा रहे थे। ख्वाज. मुहम्मद, उनके भाई सैयद मूसा, अमीर खुसरो, ख्वाज. हसन सजरी और मौलाना नसीरुद्दीन महमूद भी साथ थे। रास्ते मे एक कुआँ पड़ा। चरस से खेत मे पानी दिया जा रहा था। पानी उलीचनेवाला कुएँ की चरखी के पास खडा था। जब डोल कुएँ से बाहर आता, तब चरखी के पास खडा हुआ हिन्दू उच्च स्वर मे गाता : '**बारिहि लाइयो, राम मनाइयो**।' यह सुनकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाजः मुहम्मद और अमीर खुसरो से इस वाक्य का अर्थ पूछा। उन दोनों ने कहा कि इस वाक्य का अर्थ है कि 'पानी निकलो और राम को मनाओ'। यह सुनते ही शेख निजामुद्दीन औलिया ने उच्च स्वर से 'अल्लाह' कहा और वे भावमग्न होकर नृत्य करने लगे। यह देखते ही ख्वाजः मुहम्मद, अमीर खुसरो और हसन अला संजरी ने मिलकर 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' गाना आरम्भ कर दिया और इस वाक्य के विषय से सम्बद्ध अरबी और फारसी के शेर भी मिलतेरहे। शेख निजामुद्दीन चिश्ती और मौलाना शेख नसीरुद्दीन महमूद भी देर तक भावमग्न रहे और भी अनेक व्यक्ति भावमग्न रहे। हजरत औलिया उसी कुएँ के पास ठहर गये, गाना होता रहा। ख्वाज. इकबाल खानकाह से फर्श और खाने का सामान ले आये। खानकाह के बहुत-से कव्वाल भी आ गये। खाने और नमाज के लिए सभा स्थगित हो जाती थी और पुनः आरम्भ हो जाती थी। हसन सजरी और अमीर खुसरो शाही नौकरी के कारण चले गये। अवशिष्ट व्यक्ति हजरत औलिया के साथ तीन रात और तीन दिन वही

१. चेहलरोजः, पृ० ७८।
२. उपरिवत्, पृ० ७६।

रहे। 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' के साथ नाचना और गाना होता रहा। तीन दिन के बाद **ख्वाजः कुतुब साहब** की समाधि के दर्शन के लिए प्रस्थान हुआ।[1]

जब हजरत निजामुद्दीन ख्वाज कुतुब की समाधि पर उपस्थित हुए और उनकी 'जानमाज़' (वह बिछौना, जिसपर बैठकर नमाज पढी जाती है) समाधि की पायँत के नीचे बिछाई गई। उन्होने नमाज पढी और ख्वाज मुहम्मद और सैयद मूसा को बुलाकर उनके सामने एक 'आयत' पढकर कहा कि इस 'आयत' के साथ 'बारिहि लाइयो, राम मनाइयो' भी मिलाकर गाओ। ऐसा किये जाने पर निजामुद्दीन औलिया पुन भावमग्न हो गये और वे खडे होकर नाचने लगे। शान्त होने पर उन्होने ख्वाज मुहम्मद और सैयद मूसा को पास बिठाकर कहा कि कुएँवाला कुएँ की गहराई से पानी ऊपर लाता था और बाहर के सूखे वृक्षों को जल से सींचकर उन्हे जीवन-दान देता था। ऐसे ही हमें भी अपनी साँस के अन्दर ईश्वर की चर्चा करनी चाहिए। जब हम अन्दर से साँस बाहर लाये और बाहर से अन्दर ले जाये, तो इसमें ईश्वर का स्मरण करें और यह समझें कि अन्दर से ईश्वर-स्मरण के साथ जो साँस बाहर आती है, वह सूखे खेतो को हरा करती है।[2]

वसन्तपचमी के दिन हरदेव ने देखा कि हिन्दू लोग अपने-अपने हाथ मे सरसों के फूल लिये कालिकाजी के मन्दिर की ओर जा रहे है। उसके मन में भी मेले में जाने की इच्छा हुई, परन्तु वह सकोच और भय के कारण वहाँ न गया। इतने मे ही उसे हज़रत निजामुद्दीन औलिया की खानकाह की ओर से अमीर खुसरो आते दिखाई दिये। उनके हाथ में भी सरसों के फूल थे। वे हजरत औलिया को समर्पित करने के लिए ये फूल लाये थे, परन्तु वे 'चार यारों के चबूतरे' पर गये हुए थे, जहाँ उनकी बहन के पोते **ख्वाजा सैयद तक़ीउद्दीन नूह** की समाधि थी। अमीर खुसरो ख्वाज. मुहम्मद, ख्वाजा सैयद मूसा और हरदेव निजामुद्दीन औलिया की सेवा में पहुँचे। वे एक पत्थर पर बैठे थे, उनका सिर झुका हुआ था और वे भूमि की ओर देख रहे थे। अमीर खुसरो ने अपनी टोपी टेढी की और नृत्य की मुद्रा में झूमने लगे। हजरत औलिया ने देखा और वे मुस्कराये। अमीर खुसरो ने सरसों के फूल उनके चरणों में रख दिये और कहा : 'अरब यार, तोरी बसन्त मनाई।' आज हिन्दू अपने देवता पर फूल चढ़ाने जा रहे है, मै भी अपने उपास्य पर सरसो के फूल चढ़ाने आया हूँ। यह कहकर अमीर खुसरो ने एक फारसी शेर गाना आरम्भ किया। **ख्वाजः सैयद मुहम्मद और सैयद मूस** भी उनके साथ गाने लगे। हजरत निजामुद्दीन औलिया के नेत्रो मे प्रेमाश्रु छलक आये और वे खड़े होकर नृत्य करने लगे। वे तीनों उस शेर के साथ हिन्दी और फारसी के शेर मिलाते जाते थे। थोडी देर के बाद शान्ति होने पर हजरत औलिया ने अमीर खुसरो के लाये हुए फूल पृथ्वी से उठा लिये, वे सबको साथ लेकर नूर की समाधि पर गये और उन्होंने वे फूल समाधि पर चढा दिये।[3]

---

१. चेहलरोज:, पृ० ८१-८२।

२. उपरिवत्, पृ० ८३।

३. उपरिवत्, पृ० २०६–२१२।

हैदरिया-परम्परा के सूफियों को खानकाह से निमन्त्रण आया। वहाँ कव्वाली की गोष्ठी थी। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने ख्वाजः सैयद मुहम्मद, उनके भाई तथा उस्ताद हरदेव को वहाँ चलने का आदेश भेजा।

भोजन इत्यादि से निवृत्त होने के पश्चात् पचास-साठ साथियों के साथ हजरत निजामुद्दीन चिश्ती खानकाह में पहुँचे। वहाँ अनेक व्यक्ति एकत्र थे। कव्वाली आरम्भ हुई, परन्तु किसी को कुछ आनन्द न आया। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा, कव्वाली सुनने की तीन शर्त्तें है: अख्वान, मकान और ज़मान। सुननेवालों के विचार एक जैसे हों और वे सुनने के लिए उत्सुक हों, यह 'अख्वान' है। कव्वाली सुनने का स्थान आम सडक या मस्जिद के समीप न हो, जिससे कि श्रोताओं को एकाग्रता मे विघ्न पड़े, यह 'मकान' है। खाने, सोने अथवा नमाज का समय न हो, यह 'ज़मान' है। इस समय तीनो ही विरोधी स्थितियाँ विद्यमान है, फिर भी गोष्ठी मे आनन्द नही आया। ऐसी स्थिति में सन्तों की चर्चा की जाय और सुननेवाले भावमग्न हो जायँ, तो आनन्द अवश्य आयगा। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने पहले सन्तों के संस्मरण सुनाने आरम्भ किये और ख्वाज. मुहम्मद को संकेत किया कि वे गोष्ठी में अन्दर आकर बैठे। ख्वाजः मुहम्मद न तो सामान्य गोष्ठियो मे गाते थे और न नमाज पढ़ाते थे, परन्तु हजरत के संकेत पर उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरों मे गाना आरम्भ किया और सभी तड़पने लगे। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने भावमग्न होकर नृत्य किया। हैदरिया-परम्परा के हजरत अली जोबेली आदि भी नाचने लगे और हरदेव भी नाचा।

अन्त मे, हजरत निजामुद्दीन चिश्ती ने कहा कि यह हजरत शेखुल् आलम की आत्मा का प्रभाव था कि उनके दौहित्र के गाने से हम सबको आनन्द आया। मेरे गुरु का देवता सगीत भली भाँति जानता है और उसके हृदय मे भक्ति भी है।[1]

खुसरो और तत्कालीन परिस्थितियाँ

खुसरो का जन्म जिस युग (सन् १२५४ ई०) मे हुआ, उस समय भारत में रक्त की दृष्टि से मुसलमानों के निम्नांकित प्रकार थे :

१. वे मुसलमान, जो मुस्लिम देशो से दिल्ली में आकर बसे थे और जिनके रक्त मे भारतीय रक्त का मिश्रण नहीं हुआ था।
२ वे मुसलमान, जिनके पिता विदेशी रक्त के थे और जिनकी माताएँ भारतीय थी।
३ वे मुसलमान, जिनका रक्त विशुद्ध भारतीय था।
४. वे मुसलमान, जो मिश्रित रक्तवाले भारतीय मुसलमानो की सन्तान थे।

इन प्रकारों मे वे मुसलमान स्वय को श्रेष्ठ समझते थे, जिनका रक्त अमिश्रित था। हिन्दू माँ और मुस्लिम पिता की सन्तान मुसलमानों का एक विशिष्ट वर्ग बन गया था। दिल्ली-सम्राट् कैकुबाद और अमीर खुसरो इसी वर्ग में थे। अमीर खुसरो

१. चेहलरोजः, पृ० २२३।

कैकुबाद के विशिष्ट कृपापात्र इसलिए थे कि दोनो की माताएँ हिन्दू थी। मुहम्मद तुगलक की माँ भी हिन्दू थी और पत्नी भी। गयासुद्दीन की माँ भी हिन्दू थी। मुहम्मद तुगलक ने अपनी कन्या का विवाह देवगिरि-राजवश के एक राजकुमार हरदेव के साथ किया था।

मुस्लिम आतक के कारण भले ही इस वर्ग के मुसलमानो की जीभ मे ताला पडा रहता हो, परन्तु मातृपक्ष के भारतीय होने के कारण वे भारतभूमि, भारतीय आचार-विचार, रीति-नीति इत्यादि का सर्वथा बहिष्कार नही कर सकते थे और न ऐसा करने की चेष्टा इन्हे अच्छी प्रतीत होती थी।

जिन मुसलमानों का रक्त सर्वथा भारतीय था, वे बलात् धर्मच्युत होने पर भी हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखते रहते थे और इस कार्य के लिए यथासम्भव प्रयत्न भी करते थे। बलात् मुसलमान बनाये हुए खुसरो खा (गुजरात की परवार नामक एक सगीतजीवी हिन्दू-जाति के सुन्दर युवक) के द्वारा कुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या करके दिल्ली का सम्राट् बनना और हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने के विषय मे अहमद अयाज (राजकुमार हरदेव) से विचार-विनिमय करना इस वर्ग के मुसलमानों की प्रवृत्ति के परिचायक है।

यद्यपि इस्लाम मे ऊँच-नीच की भावना नही, तथापि कुतुबुद्दीन खिलजी के द्वारा खुसरो खाँ को सेनापति की पदवी देकर सैनिक अभियानों पर भेजना अमिश्रित रक्त के अमीरों को अच्छा नही लगता था।

मिश्रित रक्त के मुसलमान सूफियों की ओर अधिक आकृष्ट होते थे, क्योकि इनका दृष्टिकोण मौलवियों से भिन्न था। सूफी फकीर भारत की लोकभाषा को प्रोत्साहन देते थे। उनके खलीफा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने विदेशी होने पर भी अपने खलीफा के चरण-चिह्नों पर चलकर कव्वाली को आश्रय दिया और उनका स्वर्गवास भी कव्वाली सुनते-सुनते हुआ। उनके खलीफा बाबा फरीद काकी का कार्यक्षेत्र पजाब रहा और वे भी संगीतानुरागी रहे।

सूफी लोग ईश्वर को सर्वव्यापी मानते थे, जबकि मौलवी लोग ईश्वर को सर्वज्ञ तो मानते थे, सर्वव्यापी नही। सूफी लोग 'अनलहक' (मैं ब्रह्म हूँ) कहते थे, जब कि मौलवी लोग मनुष्य को ईश्वर की सृष्टि मानते थे, अ श नही। सूफी लोग प्रेम को ईश्वर-प्राप्ति का साधन और 'पीर' को ईश्वर तक पहुँचानेवाला मानते थे, परन्तु मौलवी लोगों की दृष्टि मे 'दीक्षा' जैसी वस्तु का कोई महत्त्व न था और गुरु के समक्ष नतमस्तक होना वे इस्लाम-विरुद्ध कृत्य समझते थे। प्रेम का कोई महत्त्व मौलवियों के लिए न था।

सूफी फकीरो की खानकाहो (मठों) तक प्रत्येक व्यक्ति पहुँच सकता था। उनके विचार भारतीय भक्तिमार्ग और वेदान्त के विचारों से मिलते थे, इसलिए भारतीय हिन्दू एवं भारतीय नारियों की, मुसलमानों से उत्पन्न सन्तानें सूफियों की ओर आकृष्ट होती थी।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती का रंग गेहुँआ था और वे बदायूँ मे उत्पन्न हुए, जो ब्रज-प्रदेश से अधिक दूर नही है। निजामुद्दीन चिश्ती सोलह वर्ष की आयु तक बदायूँ मे रहे। गंगा-यमुना के दोआबे की संस्कृति में पलने-बढने और घुलने-मिलने का अवसर उन्हे मिला, अत: उनका भारत-प्रेम अपनी जन्मभूमि की देन था।

खुसरो पर इन सभी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा था। खुसरो व्रजभूमि के पटियाली स्थान में उत्पन्न हुए। उनके हृदय मे ब्राह्मणों की विद्या के प्रति सम्मान था। वे हिन्दू-धर्म की विशषताओं से परिचित थे, हिन्दू-त्योहारों से उन्हें मोह था। वसन्त जैसे त्योहारों का प्रवेश चिश्ती-परम्परा में उन्ही के कारण हुआ था। भारतीय संगीत के प्रचलित रूप से उनका प्रगाढ परिचय था। वे थोड़ी-बहुत संस्कृत जानते थे। मुसलमान लोग उन्हे 'बुतपरस्त' कहते थे।

ऐसी परिस्थितियो मे उन्हे अपना काम करना था। हिन्दुओ की दृष्टि मे वे म्लेच्छ थे और मुसलमानो की दृष्टि में वे और उनके पीर निजामुद्दीन चिश्ती इस्लाम-विरोधी और हिन्दुओ के पक्षपाती थे।

चौबीस वर्ष की आयु तक खुसरो दिल्ली मे रहे। वे वहाँ काव्य-रचना करते और शिक्षा लेते। निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह में कव्वाल अनेक थे। ख्वाज: सैयद मुहम्मद इमाम और ख्वाज. मुहम्मद जैसे सगीत-मर्मज्ञों का भी यह बाल्यकाल था। खुसरो भी अन्य विद्याओं के साथ संगीत सीखते रहे।

चौबीस वर्ष की आयु मे अपने मित्र हसन अला संजरी के साथ वे बलवन के बेटे मुहम्मद सुलतान के दरबार में मुलतान चले गये और पाँच वर्ष वहाँ रहे। उस युग में इनकी ख्याति **महाकवि शेख सादी** तक पहुँच गई थी और शेख सादी ने इनकी भरपूर प्रशसा की थी। मुलतान उस समय विद्याओ का केन्द्र था। जहाँ खुसरो के दादा पीर बाबा फरीद की भी शिक्षा-दीक्षा हुई थी, वहाँ के कव्वालों का निकट संसर्ग इन्हे भली भाँति प्राप्त हुआ ही होगा।

उनतीस वर्ष की आयु में मुगलो के द्वारा मुहम्मद का वध किये जाने पर ये और हसन अला सजरी मुगलों के हाथो बन्दी हुए और हिरात एव बलख में दो वर्ष रहे। इकतीस वर्ष की आयु मे लौटकर बलवन के पास आये। बलवन की मृत्यु के पश्चात् **अमीर अली जामदार** के साथ अवध गये, जो वहाँ का सूबेदार नियुक्त हुआ था। अवधी-भाषा और रीति-नीति से सुपरिचित होने का अवसर इन्हे तभी मिला।

सन् १२८८ ई० में कैकुबाद ने इन्हे बुलाया और आश्रय दिया। यही से इनके राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का राजद्वार खुलता है। अपने पीर शेख निजामुद्दीन चिश्ती के संकेत पर इन्होने कैकुबाद को समझाया और उसके पिता बुगरा खाँ से उसकी सन्धि कराई, जबकि कैकुबाद का मन्त्री कैकुबाद को उसके पिता के विरुद्ध भड़का

रहा था। कैकुबाद और बुगरा खाँ की सन्धि के सम्बन्ध में खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी 'किरानुस्सादैन' लिखी।

किरानुस्सादैन' मे खुसरो ने लिखा है कि मुझे ईरानी सगीत के चार उसूलों और बारह पदों का ज्ञान है।[1]

कैकुबाद की हत्या करके जलालुद्दीन खिलजी सत्तर वर्ष की आयु में बादशाह हुआ। यह निजामुद्दीन चिश्ती का भक्त था, परन्तु इसके सिर पर प्रसिद्ध सूफी सीदी मौला के वध का कलंक था। निजामुद्दीन चिश्ती उससे दूर रहे, परन्तु उसने खुसरो का सम्मान किया और उनका वेतन बढ़ा दिया। इसके युग मे खुसरो 'नदीमों' (मुसलमान भाटो) के नेता थे और उनका कर्त्तव्य नाचनेवालियो और सुन्दर किशोरो के रूप और हाव-भाव का वर्णन करना था। वैसे इस दरबार में वे अपने पीर की 'आँख' थे।

सन् १२९६ ई० मे जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके अलाउद्दीन खिलजी तख्त पर बैठा। इस समय अमीर खुसरो की आयु बयालीस वर्ष की थी। अलाउद्दीन ने बीस वर्ष शासन किया। यह युग अमीर खुसरो के लिए बड़ा कठिन और महत्त्वपूर्ण था।

अलाउद्दीन खिलजी ने एक ओर तो खुसरो का वेतन घटाकर उनके महत्त्व को कम किया। वह खुसरो का न तो विशिष्ट सम्मान ही करता था और न उनकी प्रतिष्ठा का ही ध्यान रखता था। खुसरो तो अपने 'पीर' के दूत, प्रतिनिधि या 'आँख' थे। कोतवाल अलाउलमुल्क, महामन्त्री खतीरुद्दीन, युवराज खिज्र खा और शादी खाँ तथा अन्य अमीर और सैनिक सरदार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के मुरीद होने के कारण खुसरो के सहयोगी थे। जब अलाउद्दीन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और विश्व-विजय की इच्छा प्रकट की, तब उसे मार्ग पर लाने का कार्य इसी वर्ग ने किया था।

दूसरी ओर अलाउद्दीन का प्रसिद्ध सेनापति मलिक काफूर था, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी और अलाउद्दीन का प्रेमपात्र और उसे प्राणों के समान प्रिय था। जैसा पहले कहा गया, मलिक काफूर गुजरात के बाजार से एक हजार दीनार में खरीदा हुआ एक हिजड़ा था। यह कर्पूर के समान गौर होने के कारण मलिक काफूर कहलाता था। दक्षिण भारत और गुजरात की भाषाओं का इसे अच्छा ज्ञान था। यह भारतीय था और भारतीय भूगोल, रीति-नीति, आचार-विचार इत्यादि से भली भाँति परिचित था। इसी ज्ञान के बल पर यह दक्षिण भारत को अलाउद्दीन की ओर से रौंदने में सफल हुआ।

मलिक काफूर उन सूफियों का मुरीद हो गया था, जो निजामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे। वास्तव में, वह अलाउद्दीन खिलजी और उसके वंश का विनाश करके दिल्ली का बादशाह बनना चाहता था। अलाउद्दीन खिलजी उसके रूप और सौन्दर्य पर घोर आसक्ति के कारण इस ओर से सर्वथा अन्धा हो गया था।

---

१. खुसरो : वहीद, पृ० २३८।

कूटनीतिज्ञ अमीर खुसरो ने 'तारीखे अलाई' और 'मिफ्तातुल्-फुतूह' जैसे इतिहास-ग्रन्थ लिखकर अलाउद्दीन खिलजी को प्रसन्न किया। अपने पीर के परम विरोधी मलिक काफूर के सफल अभियानों का वर्णन 'खजाइन्-उल्-फुतूह' मे करके उसे सन्तुलित रखा।

अलाउद्दीन खिलजी को प्रसन्न करके उससे 'खुसरू-ए-शाइरॉ' की पदवी पाई और दरबारी वातावरण को अपने पीर के अनुकूल रखकर 'पीर' की कृपा निरन्तर प्राप्त की।

सगीत की दृष्टि से अलाउद्दीन खिलजी के शासन में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई। गुजरात से परवार नामक एक अत्यन्त सुन्दर सगीतजीवी जाति के अनेक नर-नारियों को बन्दी करके दिल्ली लाया गया। कालान्तर मे इस जाति के चालीस हजार व्यक्ति दिल्ली आ बसे। गुजरात की रानी कर्णवती बन्दिनी होकर अलाउद्दीन के अन्तःपुर में आ गई, जिसके कारण गुजराती सगीतजीवियो का प्रवेश दरबार और अन्त.पुर में हो गया। यहाँतक कि अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र कुतुबुद्दीन खिलजी पर इस गुजराती जाति के एक सुन्दर नवयुवक का अत्यन्त प्रभाव हो गया। इस लडके की आसक्ति में कुतुबुद्दीन खिलजी आकण्ठ मग्न हो गया। इस गुजराती नवयुवक का नाम 'खुसरो खॉ' रखा गया। अपने और अपनी जाति के अपमान की आग इसके मन मे चुपचाप सुलगती रही।

गुजरातियों के आगमन के फलस्वरूप अमीर खुसरो को गुजरात मे प्रचलित भारतीय संगीत और गुजराती कलाकारों से सुपरिचित होने का अवसर मिला।

दूसरी घटना देवगिरि के राजा रामचन्द्र राय का पराजित होकर दिल्ली आना और गुजरात की भूतपूर्व रानी कर्णवती की पुत्री देवलदेवी का विवाह अलाउद्दीन के युवराज खिज्र खाँ के साथ होना है, जो निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था। इस विवाह के सम्बन्ध मे खुसरो ने मसनवी 'खिज्रनामः' लिखी है, जिससे ज्ञात होता है कि दक्षिण के अनेक संगीतज्ञ भी दिल्ली आये, जिनके साथ सम्भवतः **गोपाल नायक** भी आये। अलाउद्दीन खिलजी के प्रताप-वर्णन से युक्त गोपाल नायक-रचित एक ध्रुवपद प्राप्त है।

इस प्रकार ईरान, गुजरात और दक्षिण के संगीतज्ञ दिल्ली में एकत्र हो गये और अमीर खुसरो को इन सबके सम्पर्क में आने का अवसर मिला।

मलिक काफूर ने अलाउद्दीन की बेगम, खिज्र खॉ और शादी खाँ को ग्वालियर के किले मे कैद कर लिया और थोडे ही दिनों बाद विष देकर अलाउद्दीन की हत्या भी कर दी। पैंतीस दिन बाद मलिक काफूर की हत्या करके कुतुबुद्दीन खिलजी सिंहासन पर बैठा। इस समय खुसरो की आयु इकसठ वर्ष की थी।

कुतुबुद्दीन खिलजी शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। इसलिए, दरबार मे अमीर खुसरो का दायित्व बहुत अधिक बढ़ गया।

कुतुबुद्दीन खिलजी स्वय कलाकार था और निरन्तर राग-रंग मे डूबा रहता था, गुजराती नवयुवक खुसरो खाँ उसका प्राण था। और उसने खुसरो खाँ को दक्षिण-अभियान में सेना का उच्च पदाधिकारी बनाकर भेजा था।

इस स्थिति मे खुसरो ने अपना ग्रन्थ 'नूह-सिपहर' लिखा, जिसमे भारत को संसार मे सर्वश्रेष्ठ देश, भारतीय सगीत को संसार मे सर्वोत्तम और ब्राह्मणो को 'अरस्तू' के समान बताते हुए स्वयं को सगीत की भारतीय शैली का मर्मज्ञ बताया है।[1]

कुतुबुद्दीन का वध करके, खुसरो खाँ दिल्ली के तख्त पर बैठा। पाँच महीने बाद ही उसे मारकर गयासुद्दीन तुगलक ने शासन सँभाला। गयासुद्दीन तुगलक मौलवियों से घिरा रहता था, यह 'वहाबी'-सम्प्रदाय का था। इसपर मुलतान की सुहरवर्दी-परम्परा का प्रभाव था और यह शेख निजामुद्दीन चिश्ती का परम विरोधी था। खुसरो इसके दरबार में भी रहे और उन्होंने इसके युग में 'तुगलकनामः' लिखा।

गयासुद्दीन तुगलक ने शेख निजामुद्दीन चिश्ती की मजलिस में अपने गुप्तचर भेजकर अभद्रता कराई, काजी जियाउद्दीन के साथ सशस्त्र सिपाही भेजकर शेख मुईनुद्दीन के द्वारा एक तम्बू मे आयोजित कव्वाली की मजलिस पर आक्रमण कराया, खुले दरबार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती को बुलाकर सगीत की वैधता के सम्बन्ध मे शास्त्रार्थ कराया और सशस्त्र एव अभद्र मुल्लाओं की दया पर शेख निजामुद्दीन को छोडकर अपने महल मे चला गया। यह सब होने पर भी हम खुसरो को मौन पाते है, परन्तु गयासुद्दीन का पुत्र उलूग खाँ (मुहम्मद तुगलक) शेख निजामुद्दीन चिश्ती की ओर निरन्तर उन्मुख होता रहा। सम्भव है, अमीर खुसरो उसके प्रेरक रहे हों।

गयासुद्दीन तुगलक जब बंगाल के अभियान में खुसरो को साथ ले गया, तब उसके पुत्र उलूग खाँ ने हरदेव को 'मीर इमारत' बना दिया, जो नित्य सन्ध्या समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा मे जाता था। गयासुद्दीन तुगलक के द्वारा खुसरो को अपने साथ ले जाना इस ओर संकेत करता है कि खुसरो के माध्यम से उलूग खाँ और शेख निजामुद्दीन चिश्ती में जो सम्पर्क बना रहता है, वह टूट जाय और खुसरो की अनुपस्थिति मे उलग खाँ ने वह काम हरदेव से लेना आरम्भ कर दिया, जो शेख निजामुद्दीन चिश्ती के विश्वासपात्र के रूप मे अमीर खुसरो करते थे।

गयासुद्दीन के द्वारा अपने पुत्र को हरदेव की बर्खास्तगी का आदेश दिया जाना और उलूग खाँ द्वारा इस आदेश की उपेक्षा भी इस आशका को जन्म देती है कि उलूग खाँ किसी माध्यम के द्वारा शेख निजामुद्दीन चिश्ती के साथ निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना चाहता था।

गयासुद्दीन के वध की योजना उसका पुत्र उलूग खाँ बना चुका था। गयासुद्दीन के साथ खुसरो न लौटे और अपनी जागीर पटियाली चले गये। यहाँ यह सन्देह किया जा

१. खुसरो : वहीद, पृ० २३८।

सकता है कि सम्भवतः, गयासुद्दीन के वध की योजना की गन्ध खुसरो को मिल गई हो और वे अपनी नीति के अनुसार तटस्थ रहे हों।

इन्द्रप्रस्थ-मत के उद्गम और प्रसार का कारण :

अमीर खुसरो ने हरदेव से कहा था कि मेरे पिता अमीर सैफ़ुद्दीन महमूद लाचीन नस्ल के तुर्क थे और मेरे नाना हिन्दू थे, अतः मेरी मातृभाषा हिन्दी है और पितृभाषा फ़ारसी और तुर्की है।[1]

अमीर खुसरो की माँ पटियाली (व्रजप्रदेश) की कन्या थी, अत. उनकी गोद मे खेले हुए अमीर खुसरो व्रज की भाषा, आचार-विचार, रीति-नीति इत्यादि से भली भाँति परिचित थे। ब्राह्मणों के सम्पर्क के कारण उन्हें हिन्दू-धर्म की विशेषताओं का भी ज्ञान था। वे व्रज के लोक-सगीत से भी परिचित थे। ईरानी संगीत के सिद्धान्त और व्यवहार से प्रगाढ परिचय भी उन्हे प्राप्त था। गुजरात और दक्षिण के संगीतज्ञो से भी वे घुले-मिले थे। भारतीय संगीत की 'मार्ग' (वेदाश्रित और अपरिवर्त्तनीय)-पद्धति से सम्भवत वे परिचित न थे; क्योकि भारतीय आचार्यो ने 'विकार' की आशका से मार्ग-सगीत के 'ग्रामरागो' का, मनोरंजन के लिए, प्रयोग निषिद्ध कर दिया था।[2] ब्रह्महत्या जैसे पापों तक से भी मुक्ति दिलानेवाली 'जातियाँ' (रागजननी स्वरमालिकाएँ) मूर्त्तिभंजक और मन्दिरध्वंसी म्लेच्छों को नही बताई जा सकती थी। अतः, खुसरो को भारतीय सगीत की देशी पद्धति के परिचय से ही सन्तुष्ट होना पड़ा होगा।

ग्यारहवी शती मे मुसलमानो के आक्रमण से उत्पन्न अस्थिरता के कारण भारत की सगीत-पद्धति बिखर भी चुकी थी, जिसे एकत्र सँजोने की चेष्टा तेरहवी शती मे कश्मीरी पण्डित **शार्ङ्गदेव** ने राजकुमार हरदेव के जन्मस्थान देवगिरि में की थी,[2] परन्तु शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ 'संगीतरत्नाकर' से उस समय उत्तर भारत परिचित न था। शार्ङ्गदेव के आश्रयदाता देवगिरि-नरेश सिहण (राज्यकाल : सन् १२१०–१२१७ ई०) थे, जिनकी मृत्यु अमीर खुसरो के जन्मकाल (सन् १२५४ ई०) से केवल सैंतीस वर्ष पहले हुई थी।

इन परिस्थितियों मे भारतीय संगीत के देशी रूप से परिचित होने तथा ईरानी और भारतीय सगीत की विशेषताओं को समझने के लिए अमीर खुसरो खुरासान और भारत के कलाकारो मे प्रतिस्पर्द्धा भी कराते थे। इस तथ्य की पुष्टि 'इजाजे खुसरवी' नामक ग्रन्थ से होती है।[3]

---

१. चेहलरोजः, पृ० २८।

२. 'शार्ङ्गदेवोदयात्पूर्वं खिला सङ्गीतपद्धतिः।
अभूत्सा शार्ङ्गदेवेन स्फुटमेकपदीकृता ॥'—सिंहभूपाल, सुधानिधि, पृ० ६।

३. खुसरो : वहीद, पृ० २३८।

खुसरो ईरानी रागों को भी भारत मे प्रचलित करना चाहते थे और भारतीय रागो को मुसलमानो मे लोकप्रिय बनाना चाहते थे। जहाँ उनका कार्य मुसलमानो के 'अहं' को सन्तुष्ट करना था, वहाँ वे भारतीय रागो को भी खानकाहो के निकट लाना चाहते थे। जिस प्रकार 'खालिक बारी' नामक कोश मे उन्होने फारसी और व्रजभाषा के पर्यायवाची शब्द एकत्र करके मुसलमानों को व्रजभाषा और हिन्दुओ को फारसी के निकट लाने का प्रयत्न किया, वही हिन्दू-मुसलमानो को एकत्र करने के लिए उन्होने संगीत सीखने और सिखाने की एक ऐसी शैली को जन्म देने का प्रयत्न किया, जिसमे ईरानी और भारतीय रागो का वर्गीकरण एक ही ढग से हो सके। वर्गीकरण की इस समान पद्धति की उद्भावना का श्रेय अमीर खुसरो को है। कालान्तर मे यही पद्धति दक्षिण में 'विद्यारण्य-मत' और 'मेलकर्त्ता-पद्धति' और उत्तर में 'ठाठ-पद्धति' कहलाई। मुगल-दरबारो मे इसे 'खुसरो का इल्म' कहा गया।

दो-चार या दस-पाँच नवीन रागों की उद्भावना से कोई व्यक्ति 'युगप्रवर्त्तक' नही हुआ करता और न उसका कोई पृथक् सम्प्रदाय हुआ करता है। सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। जिस पद्धति को उन्नीसवी शताब्दी मे 'इन्द्रप्रस्थ-मत' कहा गया, वह एक ऐसी उद्भावना है, जो आज समस्त भारत को अपना ग्रास बना चुकी है।

'इण्डो-पर्शियन' संस्कृति को प्ररोहित, पल्लवित एवं पुष्पित करने के लिए शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने खुसरो का मार्ग-दर्शन किया। खुसरो के मिश्रित रक्त ने अपने इस पीर की प्रेरणा के अनुसार कार्य किया और राजतन्त्र की अनुकूलता और चिश्ती-परम्परा के सन्तों और कव्वालों ने इन्द्रप्रस्थ-मत को भारत के कोने-कोने मे पहुँचा दिया।

मुहम्मद तुगलक ने सम्भवत अपने प्रधानमन्त्री ख्वाजः जहाँ अहमद अयाज (देवगिरि के राजकुमार हरदेव) की सम्मति से देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया। राजधानी के सभी निवासियो को देवगिरि (दौलताबाद) जाने का आदेश हुआ और इस आदेश का पालन कठोरता से कराया गया। हजारों व्यक्ति इस यात्रा मे मर गये। कुछ वर्षों के पश्चात् राजधानी के रूप में देवगिरि उपयुक्त न प्रतीत हुआ, तब समस्त प्रजा को पुनः दिल्ली चलने का आदेश हुआ, सब लोग दिल्ली गये और मार्ग में अनेक मर गये।

राजधानी के इस परिवर्त्तन का एक परिणाम यह अवश्य हुआ कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे ही, सन् १३३६ ई० मे स्थापित विजयनगर-साम्राज्य में 'इन्द्रप्रस्थ-मत' पहुँच गया। इसी मत के अनुसार, विजयनगर के राजगुरु श्रीविद्यारण्य ने उस समय प्राप्त केवल पचास रागों का वर्गीकरण किया। यह वर्गीकरण कालान्तर में 'विद्यारण्य-मत' कहलाया।

मुहम्मदशाह तुगलक के ही शासन में एक ईरानी शाहजादे हसन ने बहमनी-साम्राज्य की स्थापना कर ली थी। हसन शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुरीद था और विजयनगर-साम्राज्य का जन्मजात शत्रु। इसके दरबार मे खुसरो की गजले गानेवाले

सैकड़ों कव्वाल थे। इस वंश को शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा राजू कत्ताल का समर्थन प्राप्त था।

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली-साम्राज्य बिखर गया, परन्तु इन्द्रप्रस्थ-मत का प्रचार शेख निजामुद्दीन चिश्ती के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी ख्वाजा नसीरुद्दीन महमूद 'चिराग देहली' की परम्परा के द्वारा पंजाब, राजपूताना, गुजरात और दक्षिण में हुआ। इनके पीर भाई **ख्वाजा मखदूम अली सिराज** की सिराजिया-परम्परा ने बिहार, बंगाल और असम मे इन्द्रप्रस्थ-मत का प्रचार किया।

दिल्ली-साम्राज्य के बिखरने के पश्चात् जहाँ-जहाँ मुस्लिम-राज्यों की स्थापना हुई, वहाँ-वहाँ चिश्तिया-परम्परा के सूफी गये और कव्वालों को अपने साथ लेते गये।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् दिल्ली के शासन की सीमाएँ सिकुडती ही चली गई। मुहम्मद तुगलक (सन् १३२५—१३५१ ई०), फीरोजशाह तुगलक (सन् १३५१—१३८८ ई०) के बाद गयासुद्दीन द्वितीय ने केवल पाँच महीने, नासिरुद्दीन मुहम्मद ने चार वर्ष और हुमायूँ ने पच्चीस दिन शासन किया। महमूद तुगलक (सन् १३९४—१४१२ ई०) के शासनकाल में **तैमूर** का आक्रमण सन् १३९८ ई० में हुआ और दिल्ली मे प्रलय आ गया।

छत्तीस वर्ष तक दिल्ली पर सैयद-वंश का शासन रहा। इस वंश का प्रथम शासक सन् १४२१ ई० में मर गया और अन्तिम शासक **अलाउद्दीन बहलोल लोदी** को सिंहासन सौंपकर बदायूँ चला गया।

छिहत्तर वर्ष तक लोदी सुलतानो ने दिल्ली की गद्दी सँभाली। बहलोल लोदी (सन् १४५१—१४८८ ई०), सिकन्दर लोदी (सन् १४८८—१५१७ ई०) और इब्राहीम लोदी (सन् १५१७—१५२६ ई०) इस वंश के बादशाह हुए। सन् १५२६ ई० में **बाबर** ने इब्राहीम लोदी को पराजित किया।

दिल्ली मे खुसरो का सम्प्रदाय भली भाँति चलता रहा।

भारतीय रागों के वर्गीकरण का मुस्लिम-आधार

इन्द्रप्रस्थ-मत :

ईरानी पद्धति में मन्द्र, मध्य और तार स्थान में स्वरों की संख्या बारह थी। ये बारहों, स्वतन्त्र स्वर माने जाते थे। इनमें कोई स्वर किसी अन्य स्वर का विकार न था। **वाजिद अलीशाह** के दरबारी लेखक **मुहम्मद करम इमाम** ने भी कहा है कि जब पृथक्-पृथक् ध्वनियाँ बारह हैं, तब उनके नाम भी स्वतन्त्र होने चाहिए। मुहम्मद करम इमाम ने बारह ध्वनियों के बारह नाम भी दिये है, जो उसके अनुसार कुछ ही लोगों को ज्ञात थे। उसने बारह स्वर-संज्ञाओं का आधार मुकाम-पद्धति को बताया है।[1] उन

---

१. मअ़्दन्-उल्-मूसिकी, पृ० ७५-७६।

बारह ध्वनियों के ईरानी, वाजिद अलीशाह-कालीन, आधुनिक हिन्दुस्तानी और दाक्षिणात्य नाम इस प्रकार हैं :

ईरानी	वाजिद०	हिन्दुस्तानी	दाक्षिणात्य
१. रास्त	खरज	स	षड्ज
२. शहनवाज	जरज	रे̲	शुद्ध ऋषभ
३. दोका	रिखब	रे	शुद्ध गान्धार, चतुःश्रुति ऋषभ
४. कुर्द	चन्धार	ग̲	साधारण गान्धार
५. सीका	गन्धार	ग	अन्तर-गान्धार
६. गिरका	तद्धम	म	शुद्ध मध्यम
७. हिजाज	मद्धम	म॑	प्रतिमध्यम
८. नवा	पंचम	प	पंचम
९. हिसार	हैवत	ध̲	शुद्ध धैवत
१०. हुसेनी	धैवत	ध	शुद्ध निषाद, चतुःश्रुति धैवत
११. अगनू	लिखाद	नि̲	कैशिक-निषाद
१२. नीम माहुर	निखाद	नि	काकली-निषाद

अरबी-फारसी स्वर :

फाराबी (मृत्यु : सन् ९५० ई०) और मुहम्मद शीराजी (मृत्यु : सन् १३१५ ई०) ने सत्तह स्वर बताये हैं। इनका निर्धारण अब्दुल कादिर (चौदहवी शती) ने किया है। इनकी स्थिति इस प्रकार है :

नाम	सेवर्ट्स	भिन्न	पूर्ण संज्ञाएँ
१. स	०		
२. रे̳	२३	२५६/२४३	अतिकोमल ऋषभ
३. रे	४६	१०/९	भरतोक्त त्रिश्रुति ऋषभ
४. रे॑	५१	९/८	शुद्ध ऋषभ (भातखण्डे)
५. ग̳	७४	३२/२७	भरतोक्त शुद्ध गान्धार, अतिकोमल ग̳
६. ग	९७	५/४	अन्तर-गान्धार, स्वयम्भू
७. ग॑	१०२	८१/६४	अष्टश्रुति गान्धार
८ म	१२५	४/३	मध्यम

नाम	सेवर्ट्स	भिन्न	पूर्ण संज्ञाएँ
९. मं	१४८	$\frac{४५}{३२}$	तीव्र मध्यम
१०. प्	१७१	$\frac{४०}{२७}$	मध्यमग्रामीय त्रिश्रुति पंचम
११. प	१७६	$\frac{३}{२}$	षड्जग्रामीय पंचम
१२. ध	१९९	$\frac{१२८}{१८१}$	अतिकोमल धैवत
१३. ध	२२२	$\frac{५}{३}$	भरतोक्त त्रिश्रुति धैवत
१४. धं	२२७	$\frac{२७}{१६}$	शुद्ध धैवत, भातखण्डे
१५. नि	२५०	$\frac{१६}{९}$	भरतोक्त निषाद, अतिकोमल निषाद
१६. नि	२७३	$\frac{१५}{८}$	काकली-निषाद
१७. स्	२९६	$\frac{१६०}{८१}$	च्युत षड्ज
सं	३०१	२	तार षड्ज

इन सत्रह स्वरों में, 'रे-रें', ग-गं, प्-प, ध-धं, और 'स्-सं' में केवल एक 'प्रमाण-श्रुति' का अन्तर है। इतने सूक्ष्म अन्तरों को बतानेवाली दो सारिकाओं का स्थापन सर्वथा असम्भव है, अतः सारिका-वाद्यो के लिए केवल बारह ध्वनियाँ रह गईं। 'रे, ग, प्, ध, स्'' का परित्याग करने के पश्चात् बारह सारिकाएँ रह गई। सारिका-हीन अवशिष्ट पाँच ध्वनियों की प्राप्ति मींड के द्वारा ही सम्भव रह गई। स्थूल दृष्टि से बारह ध्वनियाँ ही मानी गईं।

भरत का शुद्ध षड्ज ग्राम तथा अन्तर और काकली तथा भरत का ही मध्यम ग्राम और उसके अन्तर और काकली इन सत्रह स्वरों में जैसे-के-तैसे विद्यमान हैं।

इन सत्रह स्वरों में विशिष्ट स्वर विशिष्ट मुकामों की सृष्टि इस प्रकार करते है·

१. **रास्त मुकाम** (मध्यम ग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना, अथवा षड्ज ग्राम की प्रथम सान्तरा मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरो मे से लिये हुए स्वर	१	३	६	८	११	१३	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ षड्जग्रामीय	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
मध्यमग्रामीय संज्ञाएँ	म	प	ध	नि	स	रे	ग	म
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में ऊँचाई	०	४६	९७	१२५	१७६	२२२	२५०	३०१

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, इस मुकाम के आविष्कर्त्ता अमीर खुसरो है। यदि यह सत्य है, तो खुसरो अप्रत्यक्ष रूप में ग्राम और मूर्च्छना के भेद से परिचित थे; परन्तु खुसरो के पूर्ववर्त्ती फाराबी और शीराजी के द्वारा इन स्वरो का निरूपण यह बताता है कि ईरानी सगीत पर भारतीय स्वरशास्त्र का प्रभाव था।

'षड्ज' स्वर के लिए भी 'रास्त' शब्द का प्रयोग होता है। इसका अर्थ यह है कि मुकाम-पद्धति मे प्रथम मूर्च्छना वही है, जो भारतीय मध्यम ग्राम की प्रथम शुद्ध मूर्च्छना है। उत्तरभारतीय बीन के 'प्, ध्, नि्, स, रे, ग, म, प' मे रास्त मुकाम बोल रहा है।

२. इराक मुकाम :

इराक प्रदेश की राजधानी बगदाद है। यह प्रदेश अरब के पूर्वीय भाग मे है। इराक मुकाम में रास्त मुकाम के सभी स्वर है तथा च्युत षड्ज भी है। मुहम्मद करम इमाम ने इसका सम्बन्ध 'आदम' से बताया है, जो मुसलमानो के विश्वास के अनुसार, स्वर्ग से 'स्वर्णद्वीप' (लंका) मे उतारे गये थे।

३. हिजाज मुकाम (मध्यम ग्राम की षड्जादि शुद्ध मूर्च्छना) :

जहाँ मक्का और मदीना है, अरब का वह प्रदेश 'हिजाज' है। इस प्रदेश के नाम पर ही 'हिजाज़ मुक़ाम' का नामकरण हुआ है :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	५	१२५	१०	१३	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	स
मध्यमग्रामीय स्वर-सज्ञाएँ	म	प	ध	नि	स्	रे	ग	म
आदिम स्वर से सेवर्ट्स मे ऊँचाई	०	४६	७४	१२५	१७१	२२२	२५०	३०१

बीन के 'रे, ग, म, प, ध, नि, स, रे' मे हिजाज की स्वरावली गूँजती है।

४. रहावी मुकाम (षड्ज ग्राम की पंचमादि मकाकली मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	६	८	१०	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	म	रे	ग	म	प्	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में ऊँचाई	०	४६	९७	१२५	१७१	१९९	२५०	३०१

बीन के 'रे, ग, म, प, ध, नि, स, रें' में रहावी मुकाम के ही स्वर है।

५. हुसेनी मुकाम (षड्ज ग्राम की पंचमादि शुद्ध मूर्च्छना) ·

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों मे से लिये हुए स्वर	१	३	५	८	१०	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	प	ध	नि	स	रे	ग	म	प
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में दूरी	०	४६	७४	१२५	१७१	१९९	२५०	३०१

बीन के 'रे, ग, म, प, ध, नि, स, रें' में हुसेनी मुकाम के स्वर बोलते हैं।

६. **कीचक मुकाम** (मध्यम ग्राम की षड्जादि सकाकली मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	३	५	८	१०	१२	१३	१६	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प्	ध	ध	नि	स
आदिम स्वर से सेवर्ट्स मे ऊँचाई	०	४६	७४	१२५	१७१	१९९	२२२	२७३	३०१
मध्यमग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	×	ध	नि	सं

७. **बुजुर्ग मुकाम** (षड्ज ग्राम की निषादादि शुद्ध मूर्च्छना) :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरो मे से लिये हुए स्वर	१	४	६	८	११	१४	१६	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
षड्जग्रामीय स्वर-संज्ञाएँ	नि	स	रे	ग	म	प	ध	नि
आदिम स्वर से सेवर्ट्स मे दूरी	०	५१	९७	१२५	१७६	२२७	२७३	३०१

बीन के 'म़, प़, ध़, नि, स, रे, ग, म' में बुजुर्ग मुकाम बोल रहा है। दाक्षिणात्यों का शंकराभरण और भातखण्डे का बिलावल यही है।

८. **इस्फहान मुकाम :**

इस्फहान ईरान का एक प्राचीन और प्रसिद्ध नगर है। उस नगर के नाम पर इस मुकाम का नामकरण किया गया है :

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	६	८	१०	१३	१५	१७	१
स्वर-सज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	स्	सं
आदिम स्वर से सेवर्ट्स में दूरी	०	५१	९७	१२५	१७१	२२२	२५०	२९६	३०१

इस मुकाम में च्युत षड्ज और षड्ज दोनों है।

९. **जंगूल· मुकाम :**

जंगूल· फारसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ झाँझ तथा घुँघरू है। इस्फहान में से यदि च्युत षड्ज निकाल दिया जाय, तो जंगूल. हो जाता है।

१० **उश्शाक मुकाम :**

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों मे से लिये हुए स्वर	१	४	७	८	११	१४	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में	०	५१	१०२	१२५	१७६	२२७	२५०	३०१

११. **नवा मुकाम :**

पूर्वोक्त सत्रह स्वरों में से लिये हुए स्वर	१	४	५	८	११	१२	१५	१
स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प	ध	नि	सं
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स मे	०	५१	७४	१२५	१७६	१९९	२५०	३०१

१२. बूसलीक मुकाम :

स्वर-संज्ञाएँ	स	रे	ग	म	प्	ध	नि	स
आदिम स्वर से दूरी सेवर्ट्स में	०	२३	७४	१२५	१७१	१९९	२५०	३०१

बीन और दाक्षिणात्य वीणा पर मुकाम, मूर्च्छना, ठाठ और मेल के स्वर :

	पूर्वोक्त १७ स्वरों में से लिये हुए स्वर	ष० ग्राम-स्वर	हिन्दु० स्वर	दाक्षिणात्य स्वर	सेवर्ट्स	बुजुर्ग मुकाम
मेरु	१	नि	म्	स	०	स
पहला परदा	२	नि्	म्	शु० ऋषभ	२३	
दूसरा परदा	४	स	प्	शुद्ध गान्धार	५१	रे
तीसरा परदा	५×		ध्	सा० गान्धार	७९	
चौथा परदा	६	रे	ध	अन्तर-गान्धार	९७	ग
पाँचवाँ परदा	८	ग	नि	शु० मध्यम	१२५	म
छठा परदा	९	अन्तर ग	नि	प्रति मध्यम	१४८	
साँतवाँ परदा	११	म	स	पंचम	१७६	प
आठवाँ परदा	१२		रे	शु० धैवत	१९९	
नवाँ परदा	१४	प	रे	शुद्ध निषाद	२२७	ध
दसवाँ परदा	१५×		ग	कैशिक-निषाद	२५५	
ग्यारहवाँ परदा	१६	ध	ग	काकली-निषाद	२७३	नि
बारहवाँ परदा	१	नि	म	षड्ज	३०१	स
तेरहवाँ परदा	२	काकली नि	मं	शु० ऋषभ	३२४	
चौदहवाँ परदा	४	स	प	शु० गान्धार	३५२	

'×' चिह्नित स्वर ईरानी स्वरों से पाँच सेवर्ट्स चढे हुए है, इनका अन्तराल पूर्ववर्त्ती स्वर से २८ सेवर्ट्स हैं, जो ईरानियो के छठे-आठवें, नवें-ग्यारहवें तथा सोलहवे और पहले स्वरों में प्राप्त है। सारिकाओं के अचल करने के कारण यह स्थिति आई है। स्वर-मण्डल में तन्त्रियों को यथास्थान मिलाया जा सकता है।

भरत के विधान मे श्रुतियों के प्रकार तीन है। महती श्रुति=२३ सेवर्ट्स, उपमहती श्रुति=१८ सेवर्ट्स और प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्ट्स।

चतु:श्रुतिक स्वर=५१ सेवर्ट्स, त्रिश्रुतिक=४६ सेवर्ट्स और द्विश्रुतिक स्वर=२८ सेवर्ट्स है।

चतु:श्रुतिक स्वरों मे श्रुतिक्रम ५+१८+२३+५=५१ सेवर्ट्स, त्रिश्रुतिक स्वरों में श्रुतिक्रम १८+२३+५=४६ सेवर्ट्स और द्विश्रुतिक स्वरों में श्रुतिक्रम २३+५=२८ सेवर्ट्स हैं।

२३ सेवर्ट्स उपमहती=१८, और प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्ट्स का योग भी है। यह अन्तराल इस दृष्टि से द्विश्रुतिक भी है और महती=२३ सेवर्ट्स के रूप में एकश्रुतिक भी।

मतंग ने चतु.श्रुतिक स्वर के स्थान पर त्रिश्रुतिक और त्रिश्रुतिक स्वर के स्थान पर चतु:श्रुतिक स्वरों के प्रयोग को सह्य माना है।[1] मतंग की किन्नरी में सारिकाएँ जमी हुई थी, अत.उन्हे यह सुविधा लेनी पडी। स्वर-मण्डल जैसे वाद्यों मे इस सुविधा की आवश्यकता नही।

चतु:श्रुतिक=५१ सेवर्ट्स और त्रिश्रुतिक स्वर=४६ सेवर्ट्स मे केवल प्रमाण-श्रुति=५ सेवर्ट्स का अन्तर है। वैणिक लोग सारिका-स्थापन की सुविधा के लिए इस अन्तर को नगण्य अथवा सह्य मानते है। रागविबोधकार **सोमनाथ** ने इसीलिए कहा है कि एक श्रुति की अधिकता अथवा न्यूनता दोष का कारण नही होती।[2]

गायक लोगों को इस सुविधा की आवश्यकता नही होती और न स्वर-मण्डल बजानेवालों को।

बीन पर ऐसे दो परदों की स्थापना असम्भव है, जिनकी ध्वनियों में ५ सेवर्ट्स, अर्थात् एक प्रमाण-श्रुति का अन्तर हो, अत: सारिका-वाद्यों के बजानेवाले ऐसी दो ध्वनियों में एक का ग्रहण कर लेते है, जिनमें परस्पर केवल एक प्रमाण-श्रुति, अर्थात् पाँच सेवर्ट्स का अन्तर हो। अत: मन्द्र, मध्य और तार स्थान में स्थिर बारह-बारह ध्वनियाँ रह जाती हैं जो मुकाम-पद्धति का प्रसाद है।

मतंग, अहोबल रामामात्य, सोमनाथ और **वेंकटमखी** सारिकायुक्त वाद्यों के कारण ही सुविधावादी हुए है। **भातखण्डे** ने वैणिक न होते हुए भी इन लोगों का अनुकरण किया है। स्वर-विषयक सूक्ष्म दृष्टि रखनेवाले गायक इन सुविधावादियों के सदा विरोधी रहे है। निष्कर्ष यह है कि मेल-पद्धति अथवा ठाठ-पद्धति के जन्म का कारण मुकाम-सिद्धान्त एवं प्रमाण-श्रुति के अन्तर की अवहेलना करना है।

षड्ज के पश्चात् मध्यमग्रामीय पंचम की दूरी १७१ सेवर्ट्स और षड्जग्रामीय पचम की दूरी १७६ सेवर्ट्स है, अर्थात् षड्जग्रामीय और मध्यमग्रामीय पचम में केवल पाॅच सेवर्ट्स का अन्तर है। इस अन्तर को जब नगण्य अथवा सह्य मान लिया, तब ग्राम-भेद का आधार ही नष्ट हो गया। ईरानी सत्रह स्वरों मे भी इन दोनों पचमों का अस्तित्व है।

आंजनेय के अनुसार, देशी रागों में श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति इत्यादि का नियम नही होता। इस व्यवस्था ने सुविधावादियों को बहुत बल दिया।

आजनेय की इस व्यवस्था से भी नैसर्गिक संवाद-सिद्धान्त को निर्मूल नही किया जा सका और सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति अपनी बात कहते ही रहे।

देशी रागो मे ऐसे अनेक है, जिनका वर्गीकरण मूर्च्छनाओ मे सम्भव नही। अत., मुकाम-सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ; परन्तु अकृत्य यह हुआ कि जिन रागों का वैज्ञानिक वर्गीकरण मूर्च्छनाओं में सम्भव था, सुविधावादियो ने उन्हे भी ठाठों मे ठूॅस दिया।

---

१. बृहद्देशी, अनुवादिप्रयोग, पृ० १५, अनन्तशयन संस्कृत-ग्रन्थावलि।

२. रागविबोध, अडयार-संस्कृत-ला०, पृ० ६८।

ईरानी बारह मुकाम, उनकी राशियाँ, समय और प्रभाव

मिलता-जुलता ठाठ	नाम	समय	प्रभाव	राशि	राशियों के अरबी नाम	मास
खमाज	१. इस्फहान	नवा के बाद	प्रसन्नता-दायक	वृष	सौर	वैशाख
खमाज	२. इराक	दोपहर तक	,,	मिथुन	जौजा	ज्येष्ठ
	३. कोचक	सूर्यास्त से तीन घण्टे पूर्व	करुण	कर्क	सतनि	आषाढ
बिलावल	४. बुजुर्ग	जंगूलः के बाद	,,	सिंह	असद	श्रावण
काफी	५. हिजाज	इस्फहानी के बाद	मनोरजक	कन्या	सम्बुलः	भाद्रपद
भैरवी	६. बूसलीक	दोपहर के बाद	उत्साहजनक वीरता	तुला	मीजान	आश्विन
खमाज	७. उश्शाक	सूर्यास्त के समय	,,	वृश्चिक	अकरब	कार्त्तिक
आसावरी	८. हुसेनी	,,	मनोरजक	धनुष	कौस	मार्गशीर्ष
खमाज	९. जगूलः	,,	करुण	मकर	जदी	पौष
आसावरी	१०. नवा	आधी रात	उत्साहजनक	कुम्भ	दलव	माघ
	११. रहावी	सूर्योदय तक	करुण	मीन	हूत	फाल्गुन
खमाज	१२ रास्त	दोपहर	आकुलतामय	मेष	हमल	चैत्र

यहाँ ठाठों के साथ मुकामों का सादृश्य केवल स्थूल रूप में दिखाया गया है और प्रमाण-श्रुति का सूक्ष्म अन्तर छोड़ दिया गया है।

भारत और ईरान के परस्पर मिलते-जुलते राग

भारतीय राग		ईरानी राग	सम्बन्ध
खट	...	मुकाम गिजाल	दोनो एक
रामकली	...	मुखालिफ	परस्पर अनुकूल
कल्याण	...	नैरेज	समीपतर
बड़हंस	...	अशीरान	परस्पर निकट
शुद्ध तोडी	...	मुकाम जूकाह	परस्पर निकट
सारंग	...	नवा	एक
नट	...	रास्त	समान
पूरिया धनाश्री	...	उरियान	परस्पर निकट
बरवा	...	मजावात	निकटतर
श्री	...	शहनाज	सदृश
वसन्त	...	मगलूब	सदृश

यह सादृश्य मुहम्मद करम इमाम (सन् १८५४ ई०) के अनुसार है। करम इमाम के ये शब्द भी ध्यान देने योग्य है :

आहंग, सौत, नगम, रकब और गिजाल का सादृश्य भारतीय खट और धनाश्री से है।

जूकाह, मुकाम हुसेनी एवं नौरोज अजम का सादृश्य सारग से है।

सिगाह, चहारगाह, मगलूब और मुकाम जगूल टोडियों से सादृश्य रखते है।

जाबिल, मुखालिफ और मुकाम उश्शाक गौरी, पूरबी, पूरिया, गौरा, आसा और भटियाल से मिलते है।

मुकाम इराक और शोबा ओज गुनकली और मालश्री से मिलते है।

इस्फहान और शोब. नीशापूर जीलफ और भैरवी से मिलते है।

नैरेज कबीर और नैरेज सगीर का सादृश्य भोपाली, विभास और जैत के साथ है।

कुछ लोगो की दृष्टि मे उश्शाक और नट समान है।

नौरोज अजम, हुसेनी और जूकाह काफी से मिलते है। कुछ लोगों की दृष्टि में हुसेनी और धनाश्री में साम्य है।

नवा और केदारा सदृश है। कुछ लोगों की दृष्टि मे इस्फहान और सारंग मे साम्य है। कुछ लोगो की दृष्टि में इराक और कानडा सदृश है, गिजाल और आसावरी समान है, जूकाह और जैतश्री सदृश है। रहावी मुकाम और गोशा गुलिस्तान कानडा से मिलते है। मुकाम बुजुर्ग माली गौरा से मिलता है। कुछ लोगो ने सिगाह और बिलावल में तथा चहारगाह और भैरव मे सादृश्य बताया है।

बंगाल और बिहार में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा :

सन् १३३६-३७ ई० में पूर्वी बंगाल के राज्यपाल **बहरामशाह** की हत्या करके उसका कवचवाहक **फखरुद्दीन** बगाल का स्वतन्त्र बादशाह हो गया था। **इब्नबतूता** के अनुसार, फखरुद्दीन दानी व्यक्ति था और उसे धार्मिक व्यक्तियो की सगति मे सुख मिलता था। इसके शासन मे बंगाल खूब समृद्ध हुआ, वहाँ की आर्थिक दशा सुधर गई और जनता सुखपूर्ण जीवन बिताने लगी। खाद्य पदार्थ एवं अन्य वस्तुएँ इतनी सस्ती हो गई कि फारस से आनेवाले लोग बगाल को 'अच्छी चीजो से भरपूर नरक' कहने लगे। इसके शासनकाल में बगाल में फकीरों की १५० गद्दियाँ थी।[1]

मौलाना अखी सिराज : ये बगाल के रहनेवाले थे और आरम्भ से ही शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में एक कोने में पड़े रहते थे। शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हें 'हिन्दुस्तान का दर्पण' कहा था। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के सकेत पर इन्होंने **मौलाना फखरुद्दीन** जरादी से विभिन्न विद्याओं की शिक्षा ली। 'सेरुल् औलिया' के लेखक इनके सहपाठी थे। शिक्षा पूर्ण होने पर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हे बगाल के लिए

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २८०-२८१।

अपना खलीफा (आध्यात्मिक उत्तराधिकारी) बनाया, परन्तु ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् भी तीन वर्ष तक उनके मजार पर रहे और तत्पश्चात् बंगाल चले गये, जहाँ इन्होने 'निजामिया सिराजिया'-परम्परा का प्रवर्त्तन किया।

बगाल का बादशाह फखरुद्दीन इनका 'मुरीद' हुआ और बगाल एवं असम के लोग इनके भक्त हो गये। इन्होने 'उस्मानी' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था।

समय-समय शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने जो वस्त्र इन्हे दिये थे, उन सबको भूमि में गाडकर इन्होंने उसपर एक गुम्बद बनवाया और वसीयत की कि मरने पर उन्हे इस गुम्बद के पास ही दफनाया जाये। इस वसीयत का पालन किया गया। इनका मजार माल्दा (बंगाल) में है।[1]

शेख जलालुद्दीन तबरेजी : ये पण्डुआ मे सबसे पहले दिल्ली से आकर बसे। ये मक्का से हजरत मुहम्मद का चरण-चिह्न लाये थे। इनके सम्मान में **अलीशाह** ने एक दरगाह बनवाई, जो २२००० बीघे की धर्मादा भूमि होने के कारण बाईसहजारी कहलाती है। मुहम्मद तुगलक का एक अनुदान-पत्र दिनाक ३ अगस्त, १३३७ ई० का इसके पास है।[2]

अलाउल् हक : ये निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा थे। पहले इनका नाम शेख अहमद था और बाद में **मखदूम शेख नूर्-उल्-हक** हो गया था। इनका यश दूर-दूर तक फैल गया था और दूर-दूर के लोग इनका आशीर्वाद लेने आते थे।[3]

ख्वाजा करीमुद्दीन बयाना : ये खुरासान के महामन्त्री **शेख कमालुद्दीन समरकन्दी** के पुत्र थे। ये स्वभाव और आकृति दोनो से ही सुन्दर थे। इन्होने बाबा फरीद गजशकर के धेवते **मौलाना सैयद मुहम्मद इमाम** की पुत्री का पाणिग्रहण किया था। ये अत्यन्त विद्वान् और गुणग्राहक थे। अपने विवाह के पश्चात् ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में रहने लगे। विभिन्न विद्वान् अपनी रचनाएँ इनके पास ले जाते थे और ये उन्हें अच्छा पारिश्रमिक देकर खरीद लेते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार **जियाउद्दीन बरनी** भी अपनी रचनाएँ इन्हें देते थे और भली भाँति पुरस्कृत होते थे।

शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने इन्हें सतगावाँ प्रदेश दिया।

एक सतगावाँ सिलहट जिले में है और बिहार के गया जिले में भी। **ख्वाजा हसन निजामी** का अनुमान है कि इनसे सम्बद्ध सतगावाँ गया जिले मे है।

अमीर हसन अला संजरी : ये अमीर खुसरो के सहपाठी और परम मित्र थे। गयासुद्दीन तुगलक के पुत्र मुहम्मद के दरबार मे अमीर खुसरो के साथ पाँच वर्ष रहे और मुहम्मद के मारे जाने पर मंगोलों के बन्दी होकर अमीर खुसरो के साथ हिरात और बलख

---

१. निजामी बंसरी, पृ० ३९०-३९१।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३६४।

३. उपरिवत्।

गये। मुहम्मद के मारे जाने पर इन्होंने गद्य में एक करुण रचना की थी। मुहम्मद तुगलक के दरबार में रहकर इन्होने अपना दीवान लिखा और शेख निजामुद्दीन चिश्ती की उक्तियों को अक्षरश. लिपिबद्ध किया।

सन् १२९६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इन्हें कर वसूल करने के लिए देवगिरि भेजा, जहाँ देवगिरि के यादव-वंश का एक राजकुमार हरदेव इनके मुँह से निजामुद्दीन चिश्ती की प्रशंसा सुनकर दिल्ली आया और धीरे-धीरे निजामुद्दीन चिश्ती का कृपापात्र हो गया। मुहमद तुगलक के युग के आरम्भ में ही हरदेव मुसलमान हुआ। उसका नाम अहमद अयाज रखा गया। मुहम्मद तुगलक ने अपनी बेटी उसे देकर महामन्त्री बनाया। 'चेहलरोज:' हरदेव की कृति है। जिस द्वार के नीचे दबकर गयासुद्दीन तुगलक मरा, वह हरदेव की देखरेख में बनवाया गया था।

हरदेव के मार्गप्रदर्शक हसन अला संजरी अपनी आयु के अन्तिम भाग में देवगिरि चले गये और वही इनका देहान्त हुआ।

काजी शरफुद्दीन उर्फ फीरोज घई : ये मौलाना हसामुद्दीन मुलतानी के विशिष्ट मित्रों में थे और अत्यन्त साधारण ढंग से जीवन-यापन करते थे। ये दौलताबाद गये थे। वही इनका देहान्त हुआ। हैदराबाद (दक्षिण) में इनका मजार जिस स्थान पर है, वह 'बाबा शरफुद्दीन की पहाडी' कहलाता है।

दक्षिण में शेख निजामुद्दीन चिश्ती के खलीफा :

मौलाना फखरुद्दीन जरादी : ये बहुत बडे विद्वान् थे। 'उसूलुस्सिमाअ' नामक ग्रन्थ इन्ही की रचना है, जिसमें कव्वाली सुनने के औचित्य और नियमों का वर्णन है। ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख खलीफाओं में थे। गयासुद्दीन तुगलक के सम्मुख संगीत के औचित्य के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ के समय ये भी शेख निजामुद्दीन के पीछे विद्यमान थे।

सुलतान मुहम्मद तुगलक के हुक्म से ये देवगिरि (दौलताबाद) गये और वही से हज के लिए चले गये। लौटते समय जहाज डूब जाने के कारण इनकी मृत्यु हो गई।[1]

मौलाना बुरहानुद्दीन गरीब : शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने इन्हें चार सौ सूफियों के साथ दक्षिण भेजा था। इनके साथ जानेवालों में प्रसिद्ध सूफी **बन्दानवाज गेसूदराज** के पिता शाह राजू कत्ताल (कव्वाल) भी थे।[2] ये शेख निजामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख खलीफाओं में थे। इन्होंने जीवन-भर निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह की ओर पीठ नही की। देवगिरि में इनका देहान्त हुआ और इनका मजार भी वही हैं।

ख्वाजा सैयद हुसेन किरमानी : इन्हें शेख निजामुद्दीन चिश्ती का मुँहबोला बेटा समझा जाता था। सब खलीफाओं की ओर से शेख निजामुद्दीन चिश्ती की सेवा में

---

१. सैरुल् औलिया : निजामी बंसरी, पृ० ३८८ पर उद्धृत।

२. दक्खिनी हिन्दी, पृ० ३३।

आवश्यक निवेदन ये ही करते थे। खिलाफतनामे भी इनकी ही लेखनी से लिखाये जाते थे। ये सुन्दर वेश-भूषा के निहायत शौकीन थे। कपडों का ढंग सूफियो जैसा ही होता था, परन्तु वे वस्त्र बहुमूल्य होते थे। पान खाने के निहायत शौकीन थे, भले ही एक पान दस रुपये में मिले। शेख निजामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् भी बहुत दिनों जीवित रहे। प्रधानमन्त्री होने के बाद ख्वाजा जहाँ (हरदेव) ने इन्हे देवगिरि बुलाया, जो उस समय राजधानी था। ये इस शर्त्त पर वहाँ गये कि न तो ये अपने वस्त्रों में परिवर्त्तन करेगे और न नौकरी करेगे। इनका स्वर्गवास सन् १३५१ ई० मे हुआ और इन्हे इनके पिता ख्वाजा सैयद मुहम्मद किरमानी के मजार के पास दफन किया गया।[1]

शेख निजामुद्दीन चिश्ती का भक्त बहमनी-साम्राज्य (सन् १३४७-१५१८ ई०) :

बहमनी-साम्राज्य का सस्थापक हसन फारस के बहमनशाह का वशज था, यह विपन्न होकर आजीविका की खोज मे दिल्ली आया, परन्तु असफल होकर एक दिन शेख निजामुद्दीन चिश्ती की खानकाह के बाहर आकर बैठ गया। शेख निजामुद्दीन ने इसे बुलाया और प्रबन्धकों से इसके लिए भोजन लाने के लिए कहा। रोटी के कुछ टुकड़े भाण्डार में बचे थे। उनमे से एक टुकडा लेकर शेख निजामुद्दीन चिश्ती ने हसन के हाथ में देकर कहा कि यह दकन की बादशाही का राजमुकुट है। हसन ने वह टुकडा खा लिया और चला गया।

मुहम्मद तुगलक के यौवराज्य-काल में उसके पास एक हिन्दू-ज्यौतिषी नौकर था। हसन अपने भविष्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस दैवज्ञ के पास गया। दैवज्ञ ने हसन के भाग्य मे राज्य करना बताया और उसे अपने पास हल चलाने पर नौकर रख लिया। खेत जोतते समय अशर्फियों से भरी एक हाँडी भूमि से निकली, जो हसन ने भूमि के स्वामी दैवज्ञ को सौंप दी। हसन की ईमानदारी की चर्चा मुहम्मद तुगलक (उलूग खाँ) से जब दैवज्ञ ने की, तब मुहम्मद तुगलक ने हसन को बुलाकर सौ सैनिको का सरदार बना दिया और आदेश दिया कि हसन प्रतिदिन उसकी सेवा मे उपस्थित हो। हसन ने इस आज्ञा का पालन किया।[2]

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में ही साम्राज्य बिखरने लगा था। मुहम्मद तुगलक के साम्राज्य के विरुद्ध विदेशी अमीरों (अमीरान-ए-सदा) ने विद्रोह करके देवगिरि में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। सन् १३४७ ई० के १३ अगस्त को हसन इस बहमनी-साम्राज्य के प्रथम सुलतान के रूप में गद्दी पर बैठा। हसन **बहमन-बिन इस्फन्दियार** का वंशज था, अतः यह साम्राज्य 'बहमनी-साम्राज्य' कहलाया। हसन की उपाधि **अलाउद्दीन हसन बहमनशाह** हुई।

---

१. **निजामी बंसरी, पृ० ४०२।**

२. **उपरिवत्, पृ० ३०३-३०६।**

शासन-दण्ड ग्रहण करने पर हसन ने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया और शासन-प्रबन्ध में जुट गया। उसके शासन के अन्तिम भाग में बहमनी-साम्राज्य दौलताबाद के पूर्व से भोंगीर तक तथा उत्तर में बैनगगा से दक्षिण मे कृष्णा नदी तक फैल गया।

सन् १३५६ ई० में हसन का देहान्त हुआ।

मुहम्मदशाह प्रथम (सन् १३५८–१३७३ ई०) :

हसन बहमनशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम गद्दी पर बैठा। सन् १३६६ ई० में मुहम्मदशाह प्रथम ने विजयनगर-साम्राज्य पर आक्रमण किया। आक्रमण करने के लिए जो बहाना बनाया गया, उसकी कहानी इस प्रकार है :

मुहम्मदशाह प्रथम की सभा मे खुसरो की रचनाएँ गानेवाले तीन सौ कव्वाल थे। एक दिन गायकों का एक वृन्द बादशाहों की प्रशसा से युक्त दो शेर गा रहा था। ये अमीर खुसरो की रचना थे। सुलतान ने अत्यन्त प्रसन्न होकर **सैफुद्दीन गोरी** को आदेश दिया कि इन गायकों के लिए पारितोषिक विजयनगर के राजा से वसूल किया जाय और इस प्रयोजन के लिए विजयनगर के राजा के नाम एक हुण्डी लिखी जाय। सैफुद्दीन गोरी ने समझा कि बादशाह नशे की झोंक में यह आदेश दे रहा है। उसने हुण्डी लिखी तो, परन्तु भेजी नही। अगले दिन जब बादशाह ने उस हुण्डी के भेजने के विषय मे पूछताछ की, तब सैफुद्दीन सन्न रह गया। बादशाह ने कहा, मै नशे में चूर होकर कोई आदेश नही देता। सैफुद्दीन गोरी ने तत्काल हुण्डी पर शाही मुद्रा अकित की और एक द्रुतगामी विशेष दूत के द्वारा हुण्डी विजयनगर भेज दी।

विजयनगर-नरेश **बुक्क** यह हुण्डी पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने बहमनी दूत को गधे पर चढ़ाकर विजयनगर में घुमाया और अपमानित करके लौटा दिया।[1]

यह घटना एक भयानक युद्ध का कारण हुई। **फरिश्ता** के अनुसार, इस अवसर पर दो लाख हिन्दू मारे गये, विजयनगर की पराजय हुई। पराजित होकर विजयनगर पूर्वोक्त गायकों को पुरस्कार देने के लिए विवश हुआ।

मुहम्मदशाह प्रथम की मृत्यु सन् १३७३ ई० मे हुई।

मुजाहिदशाह (सन् १३७३–१३७८ ई०)

मुहम्मदशाह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् मुजाहिदशाह सिहासनासीन हुआ। मुजाहिदशाह ने सन् १३७७ ई० में विजयनगर पर आक्रमण किया, परन्तु बुरी तरह हारा। वयोवृद्ध सैफुद्दीन गोरी ने दोनों पक्षो मे सन्धि करा दी, परन्तु मुजाहिदशाह को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला। मुजाहिदशाह की बहन रूह परवर आगा ने दाउद का भी वध करा दिया।

---

१. ए फारगॉट्न एम्पायर, पृ० ३३।

मुहम्मदशाह द्वितीय (सन् १३७८–१३९७ ई०) :

मुहम्मदशाह द्वितीय अत्यन्त शान्तिप्रिय, विद्याव्यसनी एवं दानी था। इसकी दानशीलता से आकृष्ट होकर एशिया-भर के विद्वान् उसकी सभा मे आने लगे। उसका निमन्त्रण पाकर फारसी के कवि हाफिज भारत की ओर चल पड़ा, परन्तु समुद्र और असंख्य आपत्तियों के कारण उसने अपना विचार बदल दिया और सुलतान की सेवा में अपनी एक कविता भेज दी। सुलतान ने उसे प्रभूत पुरस्कार भेजे। सन् १३९७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

सुलतान की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र **गयासुद्दीन** और **शम्सुद्दीन** क्रमशः सिहासन पर बैठे। शम्सुद्दीन से त्रस्त अमीरों ने **हसनशाह बहमनी** के पोतो, **फीरोज खाँ** और **अहमद खाँ** को सागर से बुला भेजा।

फीरोज खाँ ने अकस्मात् गुलबर्गा पहुँचकर शम्सुद्दीन को बन्दी बना लिया और वह १३९७ ई० की १४ फरवरी को गद्दी पर बठा।

फीरोजशाह (सन् १३९७–१४२२ ई०) :

फीरोजशाह घोर मद्यप और विलासी था, उसके अन्त:पुर में विभिन्न जातियो की स्त्रियाँ बहुत बडी संख्या मे थीं। 'मुताह'-पद्धति से उसने अपनी असंख्य पत्नियाँ जमा कर लीं। कहा जाता है कि उसके अन्तःपुर में प्रतिदिन ८०० स्त्रियाँ भरती होती थीं। फीरोजशाह अत्यन्त निश्छल और विनोदी था। वह सामाजिक उत्सवों में भाग लेता था, परन्तु उस समय राजनीतिक विषयों की चर्चा न आने देता था।[1]

सन् १३९८ ई० में विजयनगर के नरेश **हरिहर द्वितीय** ने मुद्गल-दुर्ग पर अधिकार करने के लिए रायचूर दोआब पर चढ़ाई की, फीरोज भी आगे बढ़ा। हरिहर ने कृष्णा नदी के किनारे व्यूह-रचना की और **फीरोज** की प्रतीक्षा करने लगा।

उस समय गुलबर्गा मे गीत, वाद्य और नृत्य में निपुण व्यक्तियों की कमी न थी। यहाँतक कि फीरोज का काजी **सिराज** स्वर-मण्डल द्वारा संगति करने और नाचने आदि में अत्यन्त निपुण था। बहमनी सुलतान चिश्तिया-परम्परा के अनुयायी होने के कारण स्वयं संगीतानुरागी और कलाकारों के आश्रयदाता थे, फलत. यह स्थिति हो गई थी।

शत्रुसेना में गडबड़ी उत्पन्न करने के लिए काजी सिराज ने एक योजना बनाई और उसकी स्वीकृति फीरोज से ले ली।

इस योजना के साथ काजी सिराज अपने सात साथियों के साथ छद्म वेश मे शत्रुसेना की नर्त्तकियों के शिविर के पास पहुँच गया। प्रधान नर्त्तकी के साथ स्वर-मण्डल पर सुन्दर संगति करके काजी ने प्रधान नर्त्तकी को इतना सन्तुष्ट कर लिया कि उसे विश्वास हो गया कि स्वर-मण्डल की ऐसी संगति से राजकुमार के समक्ष उसकी

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७९।

कला खूब चमकेगी। प्रधान नर्त्तकी के साथ ये लोग नारी-वेश में हरिहर द्वितीय के पुत्र की संगीत-गोष्ठी में पहुँच गये। इन्होंने अपनी मुस्कराहट, नृत्य और हाव-भावों से राजकुमार को वशीभूत कर लिया।

कुछ देर पश्चात् ये लोग दक्षिण की रीति के अनुसार हाथ मे नगी तलवारें लेकर नाचने लगे। इन्होने परम्परा के अनुसार, नाचते-नाचते आगे बढना, पीछे हटना और चारों ओर घूमना आरम्भ कर दिया और अकस्मात् आगे बढकर उन लोगों ने अपनी तलवारें राजकुमार के सीने मे घुसेड दी।[1]

पुत्रवध से दुःखी विजयनगर-नरेश को क्षीण प्रतिरोध के पश्चात् भागना पड़ा और सन्धि करके, युद्ध में बन्दी ब्राह्मणों को मुक्त कराने के लिए दस लाख 'हुन' (चार लाख पाउण्ड) देने पड़े।[2]

सन् १४०६ ई० में विजयनगर के साथ फीरोज का एक और युद्ध हुआ। उस समय विजयनगर का शासक **देवराय प्रथम** था। इस युद्ध में देवराय प्रथम को अत्यन्त अपमानजनक पराजय का मुँह देखना पड़ा।

देवराय की कन्या फीरोज के साथ ब्याही गई। बंकापुर का दुर्ग दहेज में दिया गया। हाथी, घोडे तथा अन्य अनेक उपहार साथ मे दिये गये। यह कथा इस प्रकार है :

"यद्यपि कर्नाटक के लोगों ने इससे पूर्व अपनी कन्या अपनी जाति के अतिरिक्त अन्यत्र कही नही ब्याही थी, इसलिए नवीन व्यक्तियों को अपनी पुत्री देना उसके लिए अत्यन्त अपमानजनक था, तथापि अत्यन्त विवश होकर देवराय अपनी कन्या एक मुसलमान को देने के लिए विवश हुआ।

दोनों पक्षो की ओर से विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो गई। चालीस दिन तक विजयनगर और सुलतान के शिविर के बीच यातायात होता रहा।

सड़क के दोनों ओर दूकाने लगाई गई और आवास बनाये गये। उन आवासों मे विजयनगर के मदारी, भाँड़, नर्त्तक और स्वाँग करनेवाले बहुरुपिये यात्रियो का मनोरजन कर रहे थे।

खानखाना और मीर फजलुल्लाह प्रथा के अनुसार नववधू के लिए उपहार लेकर विजयनगर गये और वहाँ एक सप्ताह व्यतीत करने के पश्चात् राय की ओर से सुलतान के लिए बहुमूल्य उपहारों के साथ नववधू को ले आये। देवराय ने सुलतान के दर्शन की इच्छा अभिव्यक्त की। फीरोज ने स्वीकृति दे दी।

यात्रा के लिए एक दिन निश्चित हुआ और फीरोज सुलतान के साथ विजयनगर चला और शिविर का अधिकार खानखाना को दे गया। मार्ग मे ही वह बडी शान के साथ देवराय से मिला।

---

१. ए फॉरगॉट्न एम्पायर, पृ० ५३-५४; मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७८।

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७८।

नगर के द्वार से राजप्रासाद छह मील था। मार्ग में अत्यन्त बहुमूल्य कपडों के पाँवड़े बिछे थे। दोनो नरेश साथ-साथ घोडों पर चल रहे थे। सुन्दर लडकों और लड़कियो की पक्तियाँ दोनो ओर से उनपर सोने और चाँदी से बने हुए फूल लुटा रही थी, बटोरने-वाले सामान्य जन उन्हें बटोर रहे थे।

इसके पश्चात् नागरिको ने अपने पद और हैसियत के अनुसार उन्हे भेंटे दी। नगर के मध्य का चौराहा पार करने पर, भीड में सम्मिलित देवराय के सम्बन्धियो ने अभिवादन किया और आगे-आगे चलनेवाले घुडसवारों में सम्मिलित होकर मार्ग दिखाते हुए पैदल चलने लगे।

प्रासाद के द्वार तक आने पर दोनों नरेश घोड़ों से उतरे और एक रत्नजटित शानदार पालकी पर सवार हो गये, जो उन्हे वर-वधू के स्वागत के लिए प्रस्तुत एक विशिष्ट कक्ष में ले गई। देवराय विदा लेकर अपने महल मे चला गया।

तीन दिन शानदार अतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् सुलतान ने विदा ली। देवराय ने सुलतान को अत्यन्त बहुमूल्य उपहार दिये और मीलों तक मार्ग में सुलतान का साथ देकर लौट गया।"[१]

मनोरजक बात यह है कि सुलतान फिर भी प्रसन्न न हुआ और इस बात पर रुष्ट हो गया कि देवराय उसे उसके शिविर तक पहुँचाने क्यों नही आया। उसने फजलुल्लाह से कहा कि मै एकदिन इस उपेक्षा का बदला अवश्य लूँगा। सुलतान की यह घोषणा जब देवराय के कानो मे पहुँची, तब उसने भी कुछ कटु शब्द कहे और पारस्परिक कटुता कम न हुई।[२]

सन् १४२० ई० मे फीरोज ने पंगल-दुर्ग पर अकारण आक्रमण किया। विजयनगर के साथ पुनः युद्ध छिड़ गया। घेरा दो वर्ष चला। सुलतान की सेना में महामारी फैल गई। मुसलमान-सेना का नायक मीर फजलुल्लाह युद्ध में मारा गया, सुलतान जान बचाकर भागा।

हिन्दुओं ने निर्दयतापूर्वक मुसलमानों का वध किया, उनके प्रदेश उजाड़े और मस्जिदे नष्ट की।

इस पराजय से फीरोज का मनोबल टूट गया और अपने भाई अहमद को राज्याधिकार सौपकर वह सन् १४२२ ई० में मर गया।

प्रसिद्ध फकीर जलालुद्दीन हसानी (गेसूदराज) ने भविष्यवाणी की थी कि फीरोज का उत्तराधिकारी अहमद होगा।

अहमदशाह (सन् १४२२–१४३५ ई०):

अहमदशाह ने फीरोज की पराजय का बदला लेने के लिए विजयनगर पर आक्रमण किया और २०००० पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों का वध करवा दिया और इस नरसंहार

१. ए फारगॉट्न एम्पायर, पृ० ६०-६१।
२. उपरिवत्, पृ० ६१।

पर उत्सव किया गया। विजयनगर के सारे मार्ग रोक दिये गये। विवश होकर देवराय द्वितीय (रा० का० सन् १४१९-१४४६ ई०) ने पराजय स्वीकार की, और अपने पुत्र को मूल्यवान् वस्तुओं से लदे हुए ३० हाथियों के साथ शाही शिविर में भेजा।

अहमदशाह ने वारंगल का बहुत-सा भाग अपने राज्य में मिला लिया। मालवा से युद्ध छेड दिया, हुशंगशाह् को भगाकर उसके दो सहस्र सैनिको का वध कर दिया और लौटकर बीदरनगर की नीव डाली, जो भविष्य मे बहमनी-राज्य की राजधानी बना। अहमदशाह ने कोंकण पर आक्रमण किया, जिससे कि उसे गुजरात के शासक से उलझना पडा। उसका अन्तिम अभियान तैलगाना पर हुआ। सन् १४३५ ई० में इसका देहान्त हुआ।

अलाउद्दीन द्वितीय (सन् १४३५-१४५७ ई०) :

अहमदशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय के नाम से सिंहासनासीन हुआ।

सन् १४३६ ई० मे सुलतान ने कोंकण के हिन्दू-राजा को पराजित करके उसकी पुत्री से विवाह कर लिया। अलाउद्दीन के ससुर खानदेश के शासक **नासिर खाँ** ने गुजरात के शासक अहमदशाह की सहायता से अलाउद्दीन पर असफल आक्रमण किया।

सन् १४४२ ई० के लगभग देवराय द्वितीय ने अपने प्रमुख अमात्यों तथा सरदारो की सभा करके मुसलमानों की विजय का रहस्य पूछा। लोगों ने कहा कि मुसलमानों के घोड़े अच्छे है और उनके धनुर्धर भी अच्छे है।

खुसरो की पद्धति से प्रभावित विजयनगर-साम्राज्य :

अलाउद्दीन के देवगिरि-आक्रमण (सन् १२९६ ई०) से पूर्व दक्षिण भारत मे देवगिरि पर यादव-वंश, वारगल पर काकतीय वश, द्वारसमुद्र पर होयसल वल्लाल-वश और मदुरा पर पाण्ड्य-वश का शासन था। अलाउद्दीन एव मलिक काफूर के आक्रमणो ने इन चारों वशों को कान्तिहीन और निर्धन बनाकर मृत्यु एवं विनाश का भयानक ताण्डव किया।

साम्राज्य एवं धन की लिप्सा से उद्दीप्त मुसलमान-सेनाएँ जहाँ भी पहुँची, मृत्यु एव विनाश फैलाती गईं। उन्होंने सुदूर दक्षिण तक के हिन्दुओं को विपन्न और असहाय बना दिया। दक्षिण के इन विजित प्रान्तों के सुशासन के लिए मुसलमानों ने कोई नवीन शासन-प्रणाली प्रचलित नही की। विजित देशों की जनता के प्रति उनमे धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था और दिल्ली-साम्राज्य के प्रान्तीय प्रतिनिधि शासक अपनी-अपनी सीमा में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र शासक के-से अधिकारों का उपभोग करते थे।[१]

ब्राह्मणों, विद्वानों, कलाकारों और शिल्पियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का कार्य मुस्लिम आक्रान्ता उत्साहपूर्वक करते थे। अपना धर्म बचाने के लिए अनेक विद्वान्

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ४०८।

और कलाकार बौरे बन गये, उन्होंने अपने ग्रन्थ जला दिये। फलत', कला-सम्बन्धी सम्प्रदाय लुप्त हो गये।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे दिल्ली-साम्राज्य उत्तर में लाहौर और सरहिन्द से प्रारम्भ करके दक्षिण में मदुरा तक और पूरव मे लखनौती से पश्चिम मे गुजरात और सिन्ध तक विस्तृत था। इस युग मे निजामुद्दीन चिश्ती की परम्परा के कव्वाल और सूफी साम्राज्य-भर मे फैल गये थे।

सन् १३२६-२७ ई० मे मुहम्मद तुगलक ने देवगिरि को राजधानी बनाया, जहाँ मुस्लिम सूफी और कव्वाल निजामुद्दीन चिश्ती के द्वारा पहले ही पहुँच चुके थे।

वारंगल के काकतीय नरेश **प्रताप रुद्रदेव** को सन् १३१० ई० में भयानक रूप से मलिक काफूर पराजित कर चुका था। मलिक काफूर प्रताप रुद्रदेव को सर्वथा कोपहीन करके कोप के भार से कराहते हुए एक सहस्र ऊँट लेकर दिल्ली पहुँचा था। सन् १३२३ ई० में वारंगल पूर्णतया आक्रान्त हो गया और प्रताप रुद्रदेव के कोपागार मे कार्य करनेवाले दो भाई हरिहर और **बुक्क** भागकर अनागोंडी के राजा की सभा मे पहुँच गये थे। थोडे दिनों के पश्चात् अनागोंडी पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया, तब हरिहर और बुक्क बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। अनागोंडी में दिल्ली-साम्राज्य के प्रतिनिधि **मलिक नाइब** के विरुद्ध जब वहाँ के हिन्दुओं ने विद्रोह किया, तब दिल्ली-साम्राज्य हरिहर और बुक्क को मुक्त करने के लिए विवश हुआ। हरिहर और बुक्क अनागोंडी में दिल्ली-साम्राज्य के प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

मुसलमानों के अत्याचारों एव उत्पीडनो से त्राण पाने के लिए हरिहर और बुक्क ने श्रृंगेरी-मठ के अधिपति **शंकराचार्य माधव (विद्यारण्य)** की सहायता से सन् १३३६ ई० में तुंगभद्रा के तट पर विजयनगर की नीव डाली और हरिहर इस नये वंश का शासक हुआ।[१]

विद्यारण्यजी ने अनेक हिन्दू-शास्त्रों का पुनरुद्धार किया, परन्तु उस समय तक दक्षिण में प्राचीन संगीत-सम्प्रदाय का पूर्णतया उच्छेद हो चुका था। चिश्ती सूफियों, कव्वालों और दक्षिण में साम्राज्य के प्रतिनिधि मुस्लिम-शासकों के प्रभाव से, खुसरो की मुकाम-पद्धति प्रचार पा चुकी थी। संगीत के प्राचीन भारतीय ग्रन्थ सम्प्रदाय के उच्छेद के कारण सर्वथा दुर्बोध हो चुके थे, अतः प्राप्त पचास रागों का वर्गीकरण करने के लिए उन्होंने खुसरो की पद्धति का आश्रय लिया और फारसी शब्द 'मुकाम' के लिए 'मेल' शब्द का प्रयोग किया। विद्यारण्य के द्वारा स्वीकृत पन्द्रह मेलों में एक मेल 'हेजुज्जी' भी है, जो अरबी के शब्द 'हिजाज' का अपभ्रंश है। विद्यारण्य के द्वारा स्वीकृत मेल 'हेजुज्जी' रामामात्य का 'नादराम क्रिया' और वेंकटमखी का 'धेनुक' हो गया।

खुसरो का भैरव ठाठ विद्यारण्य का 'गुर्जरी मेल' हुआ, रामामात्य का 'हेजुज्जी' बना और वेंकटमखी का 'मालव गौड' हो गया।

---

१. **मध्ययुग का इतिहास, पृ० ४११।**

विजयनगर-साम्राज्य में यह कार्य हो ही रहा था कि सन् १३४७ ई० में निजामुद्दीन चिश्ती के एक कृपापात्र ईरानी युवक हसन ने दक्षिण मे बहमनी-साम्राज्य की नीव डाली, जिसकी राजधानी 'गुलबर्गा' थी। बहमनी-साम्राज्य के इस प्रथम सुलतान **अलाउद्दीन हसन बहमनशाह** की मृत्यु सन् १३५६ ई० में हुई। उसका पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम बहमनी-सम्राट् हुआ।

विजयनगर के प्रथम शासक हरिहर की मृत्यु सन् १३५३ ई० मे हो चुकी थी और उसका उत्तराधिकारी विजयनगर-सम्राट् बुक्क हुआ। बुक्क परम पराक्रमी था, परन्तु सन् १३६६ ई० में उसपर मुहम्मदशाह प्रथम ने आक्रमण किया। इस आक्रमण के परिणाम-स्वरूप भीषण नरसहार हुआ। बुक्क की भयानक पराजय हुई और बुक्क उन तीन सौ कव्वालों को पुरस्कार देने पर विवश हुआ, जो मुहम्मदशाह प्रथम की सभा मे खुसरो की गजले गाते थे। यह घटना विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना के बीस वर्ष पश्चात् हुई।

सन् १३७३ ई० में बहादुरशाह प्रथम की मृत्यु हुई और मुजाहिदशाह गद्दी पर बैठा। सन् १३७७ ई० में इसने विजयनगर पर आक्रमण किया और यह पराजित हुआ। सन् १३७८ ई० में मुजाहिदशाह को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला, उसका भी वध मुजाहिदशाह की बहन ने करा दिया और मुहम्मदशाह द्वितीय बहमनी सुलतान हुआ। यह अत्यन्त विद्याव्यसनी और शान्तिप्रिय था। इसने सन् १३९७ ई० तक राज्य किया और विजयनगर से इसने सघर्ष नही किया।

विजयनगर-नरेश बुक्क का देहावसान सन् १३७९ ई० मे हुआ और हरिहर द्वितीय उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरिहर द्वितीय और मुहम्मदशाह द्वितीय मे कोई सघर्ष नही हुआ।

मुहम्मदशाह द्वितीय की मृत्यु सन् १३९७ ई० में हुई और फीरोजशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरिहर द्वितीय और फीरोजशाह मे सन् १३९८ ई० मे सघर्ष हुआ। फीरोजशाह का काजी सिराज गान, वादन और नृत्य मे अत्यन्त निपुण था। यह अपने साथियों-सहित नारी-वेश मे हरिहर द्वितीय के पुत्र की नर्त्तकी के शिविर में पहुँचा और इसने स्वर-मण्डल पर उस नर्त्तकी की इतनी अच्छी संगति की कि वह नर्त्तकी छद्मवेशधारी काजी और उसके साथियो को अपने साथ युवराज की सभा मे गई। वहाँ काजी और उसके साथियों ने नर्त्तकी-वेश में परम्परा के अनुसार खड्ग हाथ मे लेकर नृत्य किया और अकस्मात् आगे बढ़कर युवराज की हत्या कर दी। इस घटना से हरिहर द्वितीय की सेना अव्यवस्थित हो गई, उसकी पराजय हुई। हिन्दुओ का भयानक सहार हुआ। बन्दी किये हुए ब्राह्मणों को मुक्त कराने के लिए हरिहर द्वितीय ने दस लाख हुन फीरोज को दिये।

सन् १४०४ ई० मे हरिहर द्वितीय का देहान्त हुआ और देवराय प्रथम उसका उत्तराधिकारी हुआ।

सन् १४०६ ई० मे देवराय प्रथम फीरोजशाह से बुरी तरह पराजित हुआ और उसे अपनी पुत्री का विवाह फीरोजशाह के साथ करना पड़ा।

सन् १४१० ई० में देवराय प्रथम की मृत्यु हुई, उसके पश्चात् नौ वर्ष तक उसके पुत्र विजय ने शासन किया, तत्पश्चात् सन् १४१६ ई० मे देवराय द्वितीय विजयनगर के सिंहासन का अधिकारी हुआ।

सन् १४२२ ई० मे फीरोजशाह की मृत्यु हुई और उत्तराधिकारी अहमदशाह हुआ। इसके हाथों देवराय द्वितीय को सदा पराजय का मुँह देखना पडा। विजयनगर के प्रदेशो की खूब दुर्दशा हुई। स्त्रियाँ, बच्चे और बूढे तक अहमदशाह के द्वारा किये हुए नरसहार के शिकार हुए।

सन् १४३५ ई० मे अहमदशाह मरा और अलाउद्दीन द्वितीय उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसने कोकण के हिन्दू-राजा को पराजित करके उसकी पुत्री से विवाह किया। हरिहर द्वितीय ने भी सगीत और नृत्य मे निपुण दो सौ दासियाँ अलाउद्दीन द्वितीय को उपहार में दी।

सन् १४४२ ई० मे हरिहर द्वितीय के मन्त्रियों ने कहा कि मुसलमान अपने शक्तिशाली घोडों और योग्य धनुर्धरो के कारण युद्ध मे जीतते है। देवराय द्वितीय ने हिन्दू-धनुर्धरों को शिक्षा देने के लिए दो सहस्र मुसलमान-धनुर्धरों को नौकर रखा। अपनी राजसभा में एक उच्च पीठ पर कुरआन शरीफ को स्थान दिया, मुसलमानों को जागीरे दी, विजयनगर में एक मस्जिद बनवाई और मुसलमानो को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता दी। फलत, साठ हजार हिन्दू और दो सहस्र मुसलमान-धनुर्धर विजयनगर की सेना मे हो गये। इसी युग मे ईरान का राजदूत अब्दुर्रज्जाक भी विजयनगर मे था।

इसी वर्ष देवराय द्वितीय के भाई ने एक षड्यन्त्र करके देवराय द्वितीय के प्रधान सामन्तों और प्रमुख अधिकारियों की हत्या करा दी थी और देवराय पर भी घातक आक्रमण किया। देवराय का दण्डनायक विजयनगर से बाहर होने के कारण बच गया था। इस परिस्थिति में बहमनी सुलतान अलाउद्दीन ने विजयनगर पर आक्रमण किया। देवराय द्वितीय का पुत्र मारा गया। पराजित देवराय द्वितीय अलाउद्दीन को कर देने पर विवश हुआ।

दक्षिण के संगीत पर मुस्लिम-प्रभाव :

मुस्लिम गुणी वर्त्तमान कल्याण ठाठ को प्रथम ठाठ मानते है। विद्यारण्य के भाई **माधव** ने कल्याण ठाठ की स्वरावलि को अपने युग मे लौकिक स्वर कहा है और उनसे सामवेद की स्वरावलि का सादृश्य दिखाते हुए सामविधान-ब्राह्मण के भाष्य मे कहा है कि लोक मे अवरोह की ओर निपाद आदि जो सप्त स्वर होते है, वे ही सामवेद मे 'क्रुष्ट' इत्यादि सप्त स्वर होते है, जैसे निपाद 'क्रुष्ट', धैवत 'प्रथम', पंचम 'द्वितीय', मध्यम 'तृतीय' गान्धार 'चतुर्थ', ऋषभ 'मन्द्र' और षड्ज 'अतिस्वार्य' है।

सायण का यह विधान नारद के विधान से भिन्न है; क्योंकि सायण ने अपने युग में प्रचलित लौकिक स्वरों के साथ सामवेद के स्वरों का सादृश्य दिखाया है। सायण के विधान का निष्कर्ष इस प्रकार है :

वैदिक संज्ञाएँ :	अतिस्वार्य	मन्द्र	चतुर्थ	तृतीय	द्वितीय	प्रथम	क्रुष्ट	अतिस्वार्य
लौकिक संज्ञाएँ :	स	रे	ग	मं	प	ध	नि	स
षड्जग्रामीय संज्ञाएँ :	ग	म	प	ध	नि	स	रे	ग
श्रुति-संख्या :	०	४	४	३	२	४	३	२
अभिनवगुप्त के अनुसार :	अनुदात्त	उदात्त	उदात्त	स्वरित	अनुदात्त	उदात्त	स्वरित	अनुदात्त

यह स्थिति बताती है कि सायण के युग में कल्याण ठाठ की स्वरावलि दक्षिण में भी मूल स्वरावलि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। यह स्वरावलि षड्जग्राम की गान्धारादि शुद्ध मूर्च्छना है।

कल्याण ठाठ के रागों को **रामामात्य** और **वेंकटमखी** दोनों ने ही तुरुष्कप्रिय कहा है, अतः यह निर्विवाद है कि सायण के पूर्वोक्त विधान पर स्पष्ट मुस्लिम-प्रभाव है।

'संगीतसुधा' के लेखक **गोविन्द दीक्षित** ने उन रागों का विवेचन किया है, जो उनके अनुसार **विद्यारण्य** के युग से प्रचार में आये थे, अर्थात् विद्यारण्य का युग किसी नवीन परम्परा का प्रवर्त्तक है। वह नई परम्परा और कुछ नही, अपितु मुकाम-पद्धति को मेल-पद्धति के नाम से स्वीकृत करना है; क्योंकि विद्यारण्य के युग में दक्षिण, संगीत की अनादि परम्परा को समाज की क्षत-विक्षत और सगीत के लिए सर्वथा प्रतिकूल अवस्था के कारण एकदम भुला चुका था।

विद्यारण्य के युग में प्राप्त पचास रागों को विद्यारण्य के द्वारा पन्द्रह मेलों में वर्गीकृत करने की बात केवल गोविन्द दीक्षित ने कही है और अपने राग-वर्गीकरण को विद्यारण्य के मत के अनुसार कहा है।

विद्यारण्य के युग से प्रायः सौ वर्ष के पश्चात् **कल्लिनाथ** ने कहा है कि मेरे युग मे प्रत्येक राग 'स' से आरम्भ किया जाता है, पंचम सदैव षड्ज का सवादी रहता है (अर्थात्, मध्यमग्रामीय पचम व्यवहार मे नही रहा है, षड्ज-पचम अचल हो गये है)। श्रीराग मे ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद अपने मूल (षड्जग्रामीय) स्थान से एक-एक श्रुति चढ़ गये है (अर्थात्, श्रीराग में आधुनिक काफी ठाठ का प्रयोग होने लगा है)। क्रियाग 'रामक्री' में मध्यम दो श्रुति चढ गया है (अर्थात्, तीव्र मध्यम का जन्म हो गया है)। नट्ट और देवक्री में ऋषभ ने अन्तर-गान्धार की और धैवत ने काकली-निषाद की दो-दो श्रुतियाँ ले ली है (अर्थात्, 'स ग ग म प नि नि स' में 'ग' को ऋषभ और 'नि' को धैवत कहा जाने लगा है और पंचश्रुतिक ऋषभ और पंचश्रुतिक धैवत जैसी अवैदिक स्वर-सज्ञाओं का जन्म हो चुका है)। कर्णाट गौड में षड्ज के स्थान पर निषाद अश हो गया है (अर्थात्, इस राग का ठाठ बदल चुका है), हिन्दोल में ऋषभ-धैवत के लोप के स्थान पर ऋषभ-पंचम का लोप होने लगा है। कही-कहीं षाडव और औडव रागों में लोप्य स्वर का प्रयोग भी किया जाने लगा है, कही-कही **जन्य और जनक के मेलन** में भेद हो गया है तथा राग के अनुसार रस आदि के विनियोग मे अनियम देखा जाता है।

दक्षिण पर अलाउद्दीन के आक्रमण के डेढ सौ वर्ष पश्चात् विजयनगर की सांगीतिक स्थिति का चित्रण इम्मडिदेवराय (कुन्हन राजा के अनुसार, शासनकाल . सन् १४४६–१४६५ ई०) के आश्रित कल्लिनाथ ने पूर्वोक्त विवरण मे किया है।

स्पष्ट है कि भारतीय संगीत में यह परिवर्त्तन सगीत का नैसर्गिक विकास नही, अपितु मुस्लिम-प्रभाव का बलात् आरोपित परिणाम है। राजनीतिक कारणो से ही भारतीय सगीत की अनादि-परम्परा उच्छिन्न हुई और राजनीतिक दबाव ही मुसलमानों के मुकाम-सिद्धान्त को दक्षिण में प्रतिष्ठित करने का साधन बना। प्राचीन सम्प्रदाय के उच्छिन्न होने के कारण, प्रचार मे अवशिष्ट पचास रागो को वर्गीकृत करने का एकमात्र उपाय मुकाम-पद्धति का आश्रय लेना था; क्योंकि उपलब्ध गुणी इसी पद्धति का अवलम्बन करते थे। भले ही विद्यारण्यजी ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से परिचित हों, परन्तु लौकिक मनोविनोद के लिए उस युग मे प्रचलित लौकिक स्वरावलि का आश्रय लेना ही उन्हे उचित लगा। वेदाश्रित ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति की चर्चा तक विधर्मियो के समक्ष नहीं की जा सकती थी।

अस्तु, यह सिद्ध है कि कल्लिनाथ के युग तक विजयनगर मे ग्राम-विभाग का दर्शन भी न होता था और अवैदिक मेल-सिद्धान्त भली भाँति प्रतिष्ठित हो चुका था।

मुहम्मद करम इमाम ने 'कल्लिनाथ-मत' के अनुसार राग-रागिनी-वर्गीकरण की एक सारणी दी है और कल्लिनाथ को हनुमन्मत का अनुयायी कहा है। सम्भव है, कल्लिनाथ ने प्रचलित संगीत पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो।

तृतीय अध्याय

ध्रुवपदकारों के आश्रयदाता

भक्तिकालीन आश्रयदाता

अलाउद्दीन : अलाउद्दीन की विस्तृत चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। भले ही संगीत की ओर अलाउद्दीन की ऐसी रुचि न हो, जैसी कि रसिक नरेशों की होती है, परन्तु **अमीर खुसरो** एव **गोपाल नायक** जैसे व्यक्तियों का नाम अलाउद्दीन से सम्बद्ध है। अलाउद्दीन ही ऐसा नरेश है, जिससे सम्बद्ध हिन्दी-रचनाएँ हमें मिलती है।

गीतों में अलाउद्दीन खिलजी :

प्रताप : अलाउद्दीन अपने प्रबल गर्जन से सहसा दलन करनेवाला, सिह के समान नाद और बल से युक्त होने के कारण बाँकुरों में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली शत्रुओं को वह उनकी छावनियों से मिला देता है। उसका धनुष गतिशील रहता है और वह स्वयं स्थिर। विद्या में श्रेष्ठ नायक गोपाल उसकी प्रशसा में गीत गाता है दिल्ली-नरेश शाहंशाह अलाउद्दीन प्रतापयुक्त हो रहा है, पृथ्वी जिसके अधिकार मे है, इस तथ्य को तू भली भाँति धारण कर ले।[१]

उदारता : शाह अलाउद्दीन 'मौज दरिया' (नद की तरगों के समान उमडते हुए स्वभाववाला) 'रौशन जमीर' (विवेकी), 'रसूल आलम' (ससार के लिए पैगम्बर के समान) है। मै गरीब और तू 'गरीबनवाज' (दीनवत्सल) हो, 'नेमत' (निधि) दो।[२]

हुसेनशाह शर्की : चौदहवी शती ई० के अन्तिम दशक मे **मलिक सरवर ख्वाजा जहाँ** ने जौनपुर-राज्य की स्थापना की थी। दिल्ली के सुलतान महमूद तुगलक की ओर से पूर्वोक्त मलिक को 'मलिकुश्शक' (पूर्व का सरदार) की उपाधि मिली थी, अत. यह राजवंश 'शर्की' (पूर्वी) प्रसिद्ध हुआ।

इस वंश का सर्वाधिक प्रतिभाशाली शासक **इब्राहीम शर्की** सन् १४०२ ई० मे सिंहासन पर बैठा था, यह कलाप्रेमी और विद्याव्यसनी था।

इस वंश का अन्तिम शासक **हुसेनशाह** हुआ, जो **बहलोल लोदी** (सन् १४५१–१४८८ ई०) द्वारा युद्ध मे पराजित हुआ।

हुसेनशाह शर्की सगीत-कला मे ऐसा निष्णात था कि किसी गवैये को कुछ नही समझता था। इसे बारह रागिनियों का आविष्कारक कहा जाता है। इसकी मृत्यु सन् १४९९ ई० मे हुई।

---

१. परिशिष्ट अ, १।

२. रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ६१।

मानसिंह तोमर · मानसिंह के विषय में इतिहासकारो का कथन निम्नांकित है :

अबुल फजल का कथन है कि 'राजा मानसिंह के शासनकाल मे उसके तीन संगीतज्ञो– **नायक बख्शू, मझू** और **भन्नू** ने ऐसे गीतों का एक संकलन किया था, जो जनता के प्रत्येक वर्ग की रुचि के अनुकूल था। जब मानसिंह की मृत्यु हो गई, तब बख्शू और मझू **सुलतान बहादुरशाह गुजराती** की सेवा मे उपस्थित हो गये और उसके द्वारा समादृत होकर इन कलाकारों ने वे गीत उस दरबार मे प्रस्तुत किये।[१]

'बादशाहनाम.', 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' और 'मिराति आफ़तावनुम:' के आधार पर **मौलाना अर्शी** कहते है : 'यह (मानसिंह) मूसिकी (सगीत) का बड़ा कद्रदान था, बल्कि खुद भी इस फन के कामिलों (चूडान्त मर्मज्ञो) मे शुमार किया जाता था। **नायक बैजू**, जो अपने जमाने का बेनजीर (अनुपम) और मशहूर मूसीकार (सगीतज्ञ) है, इसका दरबारी गवैया था और नायक बख्शू ने इससे तर्बियत (प्रशिक्षण) प्राप्त की थी। उसने ग्वालियर को मूसिकी का दारुल्-इल्म (विद्या-केन्द्र) बना दिया था, चुनाचे अकवरी दरबार के चौतीस नामी गवैयों में से सोलह ग्वालियर के रहनेवाले थे। यह पहला शख्श है, जिसने ग्वालियरी जुबान (भाषा) में नज्मे (कविताएँ) लिखी और एक जदीद तर्ज (नूतन शैली) का मूजिद (आविष्कारक) हुआ। इसी ने कृष्णजी के मुतअल्लिक (सम्बद्ध) तसनीफात (रचनाओं) की मदह (प्रशंसा) या मरातिब इश्क (प्रेम की दशाओं) के तज्किर· (चर्चा) के मुतअल्लिक नज्मों को 'स्तुति' और 'ध्रुवपद' नाम दिया।[२]

ध्रुवपदों में मानसिंह तोमर

प्रताप : 'तेरा समाचार सुनते ही उसके पग डगमगा गये, तेरा बखान क्या करूँ, तू महाज्ञानी है। ओ दिल्ली-नरेश, तू गुणियों को गजदान देता है। अरे, तेरा डंका बजा, फौजों के साथ चढ़ाई करके तूने 'अमान' (व्यक्ति-विशेष) को ललकार कर ले डाला (अथवा शान्ति प्राप्त की)। तूने ललकार कर आक्रमण किया। तू सूर्य-भानु की भाँति उदित हुआ। ओ चक्रवर्ती राजा मान, नायक गोपाल धारू गा रहा है।'

टिप्पणी : राजा मानसिंह को 'दिल्ली-नरेश' कहकर 'गोपाल' पर तोमरो का वैध अधिकार घोषित कर रहे है। ग्वालियर के पास शताब्दियों से एक कहावत 'फिर दिल्ली तौरों (तोमरो) की, तौंर गये तो औरों की' प्रसिद्ध है। यह भी सम्भव है कि जब मानसिंह

---

१. In the reign of Rajah Mansingh of Gwaliar, three of his musicians, named Naik Bukhshoo Mujhoo and Bhannu, formed a collection of songs suited to the taste of every class of people. When Mansingh died, bukhshoo and Mujhoo went into the service of Sultan Bahadur Gujrati and being highly esteemed by that prince, Introduced into his court his kind of songs ! —Ain, Glad, p. 130

२. **'आजकल' (उर्दू), मूसिकी-नम्बर, अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३।**

तोमर ने सिकन्दर लोदी को जौरा नामक ग्राम के निकट बुरी तरह ठोक-पीटकर भगा दिया, तब गोपाल नायक ने मानसिंह का विरुद गाते हुए उसे दिल्ली-नरेश कहा हो।

यह रचना **गोपाल द्वितीय** की प्रतीत होती है, जो मानसिंह तोमर के दरबारी गायक **बख्शू** के शिष्य थे।[1]

राजा मान को सम्बोधित करते हुए गोपाल नायक का एक अन्य ध्रुवपद भी प्राप्त है।[2] राजा मान को सम्बोधित करते हुए एक 'धारू' की भी रचना गोपाल ने की है।[3]

सुलतान मुजफ्फर गुजराती : यह **सुलतान महमूद बीगड़ा** का बेटा और गुजरात का आठवाँ बादशाह था। प्रकृति ने इसे विद्या, दाक्षिण्य, निष्पक्षता एवं न्याय के गुणो से विभूषित किया था, अत. प्रजा को अत्यन्त प्रिय था। संगीत-विद्या में इसने अत्यन्त निपुणता प्राप्त की थी और इसका कण्ठ बहुत अच्छा था। प्रत्येक वाद्य के वादन पर इसका अधिकार था। इसके युग के उस्ताद लोग इसके शिष्य कहलाना गर्व की बात समझते थे और इसे संगीत के समस्त अंगों में निष्णात मानते थे। इसने अपने सरक्षण से गुजरात को सगीत का केन्द्र बना दिया था। सन् १५२६ ई० मे जब इसका देहान्त हुआ, तब यह ५६ वर्ष का था।[4]

सुलतान बहादुरशाह : गुजरात का सुलतान बहादुरशाह, **मुजफ्फर** का पुत्र और संगीत का प्रेमी था। 'मिराति सिकन्दरी' के अनुसार, नायक बैजू और बख्शू इसके दरबारी कलाकार थे।[5]

दरिया खाँ : बहादुरशाह के पुत्र (सन् १५५४ ई०) के मन्त्री दरिया खाँ ने सगीत को अत्यधिक प्राश्रय दिया था। परिणाम यह हुआ कि इसके मन्त्रित्व-काल (सन् १५३८–१५५४ ई०) मे अहमदाबाद के दरोदीवार से गीत गूँजने लगे और घर-घर गाने-बजाने की चर्चा हो गई। 'मिराति सिकन्दरी' मे इसके आश्रित निम्नाकित कलाकारो की चर्चा है :

१. **नायक अब्भू** : इसका गान गोपाल नायक की मुर्दा हड्डियों में प्राण फूँकता था।
२. **नायक हुसेनी** : यह नायक बख्शू का बेटा था और अपने युग का बहुत बड़ा गायक माना जाता था।
३-४. **रँग खाँ और मल्ही** : ये दोनो **नायक चतुर** के बेटे थे।
५. **खेम हरमन** : यह भी बला का गवैया था।[6]

---

१. परिशिष्ट अ, २।
२. परिशिष्ट अ, ३।
३. परिशिष्ट अ, ४।
४. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३।
५. उपरिवत्।
६. उपरिवत्, पृ० १०३-१०४।

इस्लामशाह : यह शेरशाह सूरी का पुत्र था, इसे ही **सलीमशाह** भी कहा जाता था। **मंझन** ने अपना ग्रन्थ 'मधुमालती' इसी के राज्यकाल मे लिखा था। सूरियो में यह अन्तिम प्रतापी बादशाह था। इसके उत्तराधिकारी ऐसे न हुए। इस्लामशाह का राज्यकाल सन् १५४५—१५५४ ई० है। इस समय शेरशाही शासन-व्यवस्था चलती रही। सूरी बादशाहों के दरबार में संगीत-चर्चा भली भाँति प्रचलित थी। इस्लामशाह का साला **मुबारिज खाँ** बहुत बड़ा संगीतमर्मज्ञ था, जो इस्लामशाह के द्वादशवर्षीय पुत्र की हत्या करके गद्दी पर आसीन हुआ और **मुहम्मद आदिल शाह** या **अदली** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस्लामशाह की मुद्रा से अंकित कुछ ध्रुवपद मिलते है। एक ध्रुवपद मे किसी नायिका से कहा गया है :

'अवसर पाकर तूने **नागर सलेम** (सलीमशाह) **सुलतान** को रिझा लिया। तू ही विचित्र स्त्री है, तू ही चतुर है, पिया तुमसे ही परम सुख पाता है।'[1] एक अन्य ध्रुवपद में कोई नायिका प्रियतम का स्वागत इस प्रकार कर रही है : "पिया का मुख देखते ही हे सखि, मुझे आनन्द हुआ और प्राणों को सुख मिला। जो कुछ व्यथा मुझ विरहिणी पर व्याप्त हो रही थी (वह व्यथा और) तन-मन के दुःख भूल गये। मैं तो (हे प्रियतम,) तुम्हारा सुख चाहती हूँ, (मैंने) निछावर किया है, तुम्हारे चरण-स्पर्श से मेरे रोम-रोम में सन्तोष होता है। बादशाह सलीमशाह जब मनोरथ पूर्ण करते है, तब परम सुख होता है।"[2]

"(हथेली पर कपोल टिकाकर) तू हाथ में चन्द्रमा लिये हुए है। तेरे ही आनन पर जीवन आश्रित है। यौवन के कारण ही तू ही मत्त गयन्द जैसी चाल चलती है। तेरा रूप दर्शनीय है, वर्णनीय नही। **असलमशाह** (सलीमशाह : इस्लामशाह) आनन्द-पूर्वक तेरे ही चारों ओर चक्कर लगाता रहता है, और तू उसके मन को बाँध रही है।"[3]

इस्लामशाह के दरबार मे **बाबा रामदास** गायकों में थे।[4] **महापात्र** भी इस्लामशाह के दरबारी गायक थे। अन्त मे, ये दोनों अकबरी दरबार में रहे। महापात्र को एक बार उड़ीसा के **मुकुन्ददेव** के पास राजदूत बनाकर भेजा गया था।[5] **नरहरि महापात्र** ने **इस्लामशाह** के विषय मे कहा है :

---

१. **परिशिष्ट अ, १७।**

२. **परिशिष्ट अ, १८।**

३. **परिशिष्ट अ, १९।**

४. "Ramdas of Lucknow, who was one of musicians of Aslimshah."

—Munt., Vol. II, p. 37.

५. "Islamshah also was a patron of music, his two great singers were Ramdas and Mahapatra. Both entered subsequently Akbar's service. Mahapatra was once sent on ambassador to Mukund Rao of Orrisa."

—Ain. Bloch. Foot note, p. 90.

प्रथम जम्पि जगदीस कर करहु कवित रचनेमु।
जस निर्मल चिर चिर जिवे, छत्रपति साहि सलेमु ।।

दौलत खाँ : मिश्रबन्धुओं ने इन्हें भ्रमवश शेरशाह का पुत्र लिखा है, परन्तु 'मुन्तखबुत्तवारीख' के आधार पर मिश्रबन्धुओं का खण्डन करते हुए काजी मेराज धौलपुरी का कथन है : "इसके मुतल्लिक (सम्बद्ध) अरबाबे कलम (लेखकों) को गलतफहमियाँ (भ्रन्तियाँ) हुई हैं। हकीकतन (वस्तुत:) यह शेरशाह सूर का लडका नहीं था, बल्कि उसके सलीमशाह का 'मंजूरे नज़र' (प्रेमपात्र) था, जिसको सलीमशाह पल-भर के लिए भी जुदा नहीं कर सकता था। नज़अ़ (अन्तिम समय) के आलम (दशा) में भी उसका ओझल हो जाना सलीम को गवारा नही था। खजान:दार (कोषाध्यक्ष) को हुक्म था कि वह एक लाख तंक (मुद्राविशेष) हर रोज वगैर पूछे दौलत खाँ को दे दिया करे।"[१]

'मआसिरुल् उमरा', भाग ४, पृ० १४६ की पादटिप्पणियों से ज्ञात होता है कि बाजबहादुर मालवाधिपति के पिता शुजाअ़त खाँ (सजावत खाँ) का एक दत्तक पुत्र भी दौलत खाँ था। बाजबहादुर ने अपने पिता की मृत्यु होने पर अपने एक सहोदर मूसा (मुस्तफा) तथा दौलत खाँ को मार डाला था। बाजबहादुर का सम्बन्ध इस्लामशाह के साथ भली भाँति था। सम्भव है कि इसके पिता का दत्तक पुत्र दौलत खाँ ही इस्लामशाह का प्रेमपात्र हो।

दौलत खाँ के सम्बन्ध में दो ध्रुवपद मिले है, जिनमें कहा गया है : "भाई, प्रियतम की मूर्त्ति का मुख-प्रकाश किसी से कहा नही जाता, मन-ही-मन उसका ग्रहण किया जा सकता है। उसकी जितनी सराहना करने की इच्छा होती, करनेवाले का मन ही उसे जानता है। उसे किसी की उपमा नही दी जाती, यदि वैसा किसी ने (विधाता ने) बनाया हो, तो उसके समझने मे वाणी की गति हो। दौलत खाँ प्यारा ऐसा है कि उसके संग को सुख और जीवन का फल मानना चाहिए।"[२]

"प्यारे, तुम मुझसे रूठते ही क्यों हो, यदि मुझसे कुछ भूल हुई हो, तो उसका सुधार करनेवाले तुम ही हो। तुम प्रतिवचनों का परित्याग करके अलग हो गये, अब तो गले से लगाने के लिए मै मन मे उतावली हो गई हूँ। हाय रे! तुम्हे यह सीख किसने दी है, तुमने मन मे क्या ठान ली है, मेरे साथ यह कैसा व्यवहार है? (नेत्रों) के प्रकाश दौलत खाँ हँसकर पहेलियाँ बुझा रहे हो, उत्तर क्यों नही देते।"[3] काजी मेराज धौलपुरी ने तानसेन को दौलत खाँ का प्रेमी बताया है।[४]

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० ६३।
२. परिशिष्ट अ, २०।
३. परिशिष्ट अ, २१।
४. 'आजकल' (उर्दू) अगस्त, १९५६ ई०, पृ० ६३।

मोहम्मद आदिलशाह 'अदली' · मोहम्मद आदिलशाह सन् १५४९ ई० में अपने द्वादशवर्षीय भाँजे फीरोज खाँ की हत्या करके गद्दी पर बैठा, जो शेरशाह का पौत्र और इस्लामशाह का पुत्र था। आदिलशाह शेरशाह के छोटे भाई निजाम खाँ का बेटा था। वह 'आदिल' या 'अदली' (न्यायप्रिय) कहलाना चाहता था, किन्तु इसके अन्धाधुन्ध कामों के कारण लोग उसे 'अँधली' कहते थे। वह अपने समय का वाजिद अली शाह था।[1]

अदली महान् संगीतमर्मज्ञ था और मियाँ तानसेन और बाजबहादुर जैसे संगीत-महारथी इसके शिष्य थे।

बाजबहादुर : यह शुजाअत खाँ सूर (सजावत खाँ) का पुत्र था और इसका वास्तविक नाम 'बापजीद' था। बाजबहादुर ९६३ हिजरी (सन् १५५५ ई०) मे पिता के मरने पर राज्य का अधिकारी हुआ। अगले वर्ष इसने छत्र धारण किया और शत्रुओ को परास्त करके अपने नाम से 'खुतवा' पढवाया। समस्त मालवा पर इसका अधिकार हो गया। गढ पर चढाई की, तो रानी दुर्गावती से हारा और चुप बैठ गया।[2]

अकबर के राज्य के छठे वर्ष ९६८ हि० (सन् १५६० ई०) में अरहम खाँ को मालवा-विजय के लिए भेजा गया। बाजबहादुर ने अपने निवासस्थान 'सारगपुर' से दो कोस दूर मोर्चा बाँधा और सिपाहियों की अप्रसन्नता के कारण पराजित हुआ।

अपनी स्त्रियों और रखेलियों की रक्षा के लिए यह कुछ विश्वसनीय व्यक्तियों को इसलिए छोड गया था कि पराजय का समाचार आने पर वे भारतीय प्रथानुसार स्त्रियों को शत्रुओं के हाथ मे न पडने देने के लिए मार डालें। कुछ मार डाली गई और कुछ के मारे जाने से पूर्व ही शाही सेना नगर मे पहुँच गई। अरहम खाँ इनपर अधिकार करके बाजबहादुर की प्रसिद्ध प्रेयसी रूपमती (वेश्या) को खोजने लगा, जो अत्यन्त ही आहत हो चुकी थी। उसने विष खाकर प्राण दे दिये।[3]

मालवा का शासन पीर मुहम्मद को मिलने पर बाजबहादुर ने सेना एकट्ठी करके चढ़ाई की और हारकर भाग गया। खानदेश के सुलतान मुबारकशाह की सेना लेकर इसने पीर मुहम्मद खाँ को परास्त किया, जो कि नर्मदा पार करते समय डूब गया। बाजबहादुर का अधिकार मालवा पर दूसरी बार हो गया।

सन् १५६३ ई० में जब मालवा पर अब्दुल्ला खाँ उजबक की नियुक्ति की गई, तब बाजबहादुर भागकर बगलाना के जिमीदार से भेंट की, तत्पश्चात् शेर खाँ और चंगेज खाँ गुजराती की शरण मे गया। वहाँ से निजामुल्मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँचा। वहाँ से भी दु:खित होकर भागा और राणा उदयसिंह के सरक्षण में रहने लगा।

---

१. अकबर, पृ० ३७-३८।

२. मआसिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० १४८।

३. उपरिवत्, पृ० १५०।

सन् १५७१ ई० में अकबर ने हुसन खाँ खजांची को भेजकर इसपर कृपा की और इसे बुलवा लिया। आरम्भ में, इसे एकहजारी मनसब मिला और अन्त तक दोहजारी जात एवं सवार के मनसब तक पहुँचा।[१]

बाजबहादुर के मृत्युकाल तथा सन्तान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता। 'मुन्तखबुत्तवारीख' से इसकी मृत्यु के काल का सन् १५९४ ई० से पूर्व होना सूचित होता है।[२]

बाजबहादुर और रूपमती, मआसिरुल् उमरा के अनुसार, उज्जैन के तालाब के बीच पुश्ते पर आराम कर रहे हैं[३], परन्तु 'तारीखे मालवा' के अनुसार, बाजबहादुर की कब्र सारंगपुर में है।[४]

बाजबहादुर स्वय गान-वादन-कला में निष्णात था और पातुरों को एकत्र करने में लगा रहता था, जो गाने में अपनी निपुणता के लिए प्रसिद्ध थी। रूपमती इनमें सबसे बढ़कर थी। कहते हैं कि यह पद्मिनी थी, जो नायिकाओं के चार भेदों मे प्रथम है। इस प्रकार के भेद हिन्दू के विद्वानों ने किये है। तात्पर्य यह है कि स्त्रियो के सभी अच्छे गुण इसमें थे। बाजबहादुर को इससे अत्यन्त प्रेम था। इसके प्रेम में हिन्दी-कविता कहकर यह अपने हृदय का उद्गार निकालता था। इन दोनों के सौन्दर्य और प्रेम की कहानियाँ अबतक लोगों की जबान पर है।[५]

'मुन्तखबुत्तवारीख' के अनुसार, बाजबहादुर ने संगीत-कला अदली से सीखी थी।[६] बाजबहादुर और रूपमती दोनों ही ध्रुवपदकार थे। रूपमती के वियोग में दुःखी बाजबहादुर की एक रचना प्राप्त होती है। उसका भावार्थ है ·

'यौवन दगा दिये जाता है। तुझसे और रगों की क्या कहूँ, कसूमी रंग जैसे हैं। काले काग (केश) चले गये और श्वेत बगुले (सफेद बाल) आ गये। ओ रूपमती के बाजबहादुर, सदा कोई नही जीवित रहता।'[७]

---

१. मआसिरुल्उमरा, प्रथम भाग, पृ० १५१–१५२।
२. उपरिवत्, पृ० १५२ (पाद-टिप्पणी)।
३. उपरिवत्।
४. उपरिवत्।
५. उपरिवत्, पृ० १४९–१५०।
६. "Bazbahadur who was also one of the most gifted man of his age and had no equal in this life wasting accomplishment acquired the art (of music) from Adli"—Munt. Vol I, p. 55.
७. "जोबन जात दियें दगा। और रंगनि की कहा कहों तोसों जैसे कसूमी रंगा।
...कारे काग गये घर अपने आये सेत बगा।
रूपमती के बाजबहादुर कोउ न जीवै सदा।।"—परिशिष्ट अ, २४।

राजा रामचन्द्र बघेला (मृत्यु : सन् १५८५ ई०) : ये भट्टाप्रान्त के भू-स्वामी और हिन्दुस्थान के बड़े राजाओं मे थे। तानसेन नामक कलावन्त, जो गानविद्या का आचार्य था और जिसके समान आवाज और सूक्ष्म विचार उसके पहले किसी मे सुनने मे नही आया था, इसी के दरबार मे था। राजा उसका गुणग्राहक और प्रेमी था। जब उसके गुणो की प्रशंसा अकबर ने सुनी, तब सातवे वर्ष (सन् १५६२ ई० ?) मे जलाल खाँ शस्त्राध्यक्ष को उसके पास भेजकर तानसेन को बुलवाया। राजा ने विद्रोह करना अपनी शक्ति से बाहर समझ इन्हे पूरे साज और सामान के साथ बादशाह के लिए भेट आदि देकर विदा किया। जब यह बादशाह के पास पहुँचा, तब पहले दिन दो करोड़ दाम (जो उस समय के दो लाख रुपयों के बराबर होगा) पुरस्कार मे दिये। इस प्रकार के पुरस्कारो के प्रलोभन से वह यही फँस गया। उसकी रचनाएँ (अनुवाद मे 'तसानीफ़' का अशुद्ध अनुवाद 'ग्रन्थ' किया गया है), जो बहुधा अकबर के नाम पर है, आजतक प्रचलित हैं।[1]

अकबर के आठवे राज्यवर्ष (सन् १५६३ ई०) मे जब गाजी खाँ तन्नोज राजा रामचन्द्र की शरण मे गया, तब उसकी रक्षा के लिए राजा रामचन्द्र को युद्ध करना पड़ा। युद्ध में गाजी खाँ मारा गया और राजा रामचन्द्र ने प्रान्त के दृढतर दुर्ग 'बान्धव' मे आश्रय लिया। जब अकबर के दरबारी राजाओं ने विश्वास दिलाया कि राजा रामचन्द्र आकर बादशाही सेवको मे परिगणित हो जायेगे, तब उनके प्रान्त पर अधिकार करने का विचार छोड़ दिया।[2]

सन् १५६९ ई० मे जब दुर्ग घेरा गया और दुर्गवाले कष्ट पाने लगे, तब राजा रामचन्द्र ने दुर्ग से बाहर निकलकर दुर्ग की कुजी और उपयुक्त भेटे अकबर के पास भेजी। राजा रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र दरबार मे आये। सन् १५८३ ई० तक राजा रामचन्द्र अकबरी दरबार में उपस्थित नहीं हुए। अकबर ने सेना भेजनी चाही, परन्तु वीरभद्र ने दरबारियों द्वारा अकबर से कहलवाया कि किसी विश्वसनीय सरदार को भेजकर बुलवाने पर राजा रामचन्द्र अवश्य आयेगे। बादशाह ने जैब खाँ कोका और राजा वीरबल को भेजा। राजा रामचन्द्र दरबार में आये और उन्हें १०१ घोड़े पुरस्कार में मिले।[3]

अकबर के ३०वे राज्यवर्ष (सन् १५८५ ई०) मे राजा रामचन्द्र का स्वर्गवास हो गया।[4]

ये अत्यन्त उदार थे और मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी का कथन है कि इन्होंने एक बार तानसेन को एक करोड स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार में दी थी।

---

१. मआसिरुल् उमरा, प्र० भा०, पृ० ३३०–३३१।

२. उपरिवत्, पृ० ३३१।

३. उपरिवत्।

४. उपरिवत्, पृ० ३३२।

इनकी प्रशंसा में रचित ध्रुवपद इनकी विद्वत्ता, गुणग्राहिता, वीरता एवं उदारता के प्रमाण हैं।

ध्रुवपदों में राजा रामचन्द्र बघेला

प्रताप : वीरभानु के पुत्र बघेले वीर **राजा रामचन्द्र** के प्रस्थान करते समय शेष कलमलाता है। वह शक्तिमान् तपोबल एवं खड्गबल से युक्त है, पराये दुःख को दूर करनेवाला है। तानसेन की प्रार्थना है कि वह सप्तद्वीपों के समान अचल रहे।[१]

दरबार : इन्द्र जैसी लीला, इन्द्र जैसी शोभा और इन्द्र जैसा दरबार देखकर मुनि विस्मित हो गये हैं। खण्डो में भरतखण्ड और द्वीपो में जम्बूद्वीप इस प्रकार शोभित होते हैं, जिस प्रकार समुद्र में हीरा शोभित होता है। जरबफ्त और रेशमी वस्त्र किसी को बुलाकर देते है और किसी को बख्श देते है। राजा 'राम' ने तुम्हारे दर्शन किये, जिनके सम्मुख गुणी क्रीडा करते है।[२]

दानशीलता, विद्वत्ता : राजा राम बघेला ऐसा वीर है कि जिसके दान से पृथ्वी थर्राती है।[३] राजाधिराज के दिये हुए अमूल्य तुरंग जड़ाऊ जीनों से जगमगा रहे है। पानेवालों ने बातों-ही-बातों में हाथी पा लिये, जो ऐरावत के समान है और जिनकी गणना नही हो सकती। षड्दर्शननिवास परम ज्ञानी (राजा राम) ने करोड़ों दान में दिये। **छत्रपति राजा राम** 'मौज दरिया' (तरंग आने पर उमड़नेवाला नद) और दारिद्र्य का भंजन करनेवाला है।[४]

राजा राम राजाओं का राजा महाराजाधिराज और चतुर्दशविद्यानिधान है। चिन्तन करते ही मनुष्य अभीष्ट वस्तु उससे प्राप्त करता है। विधाता ने (राजा) कर्ण जैसे कार्य करने के लिए उसकी रचना की है। वह लाज का जहाज (लज्जा की रक्षा करने-वाला) है, दीनबन्धु है, दीनों के मनोरथ उसके घर पर पूर्ण हो जाते है। वह अशरण-शरण और दुःखियों के दुःख को दूर करनेवाला है। तानसेन उसका नाम लेकर गाता है।[५]

पराक्रम : यदि राजा रामचन्द्र भी दीनो पर दया न करके यवनों की परवाह करे, तो कोलाहल में मग्न दरिद्र व्यक्तियों के भय का हरण कौन करे। यदि कुछ व्यक्ति छत्रपति नरेश हो भी गये, तो क्या हुआ? राजा रामचन्द्र का प्रसाद पाये विना विपत्ति-सागर से कौन पार उतारे और कौन उतरे? जो बलि, वेन और सत्य हरिश्चन्द्र हो गये है, उनकी कीर्त्ति का उद्धार कौन करे? वीरभाव का पुत्र दुःख-द्वन्द्व के

---

१. परिशिष्ट अ, ३१।
२. परिशिष्ट अ, ६।
३. परिशिष्ट अ, ३१।
४. परिशिष्ट अ, ९।
५. परिशिष्ट आ, ३२।

फन्दों को काटनेवाला है। तानसेन विनती करते हुए डरता है। राजा राम दान में तभी कृपणता कर सकता है, जब सूर्य अपनी दिशा से उतरकर पश्चिम में उगने लगे।[१]

संगीतज्ञता : तानसेन कहते है कि मैंने धर्म-कर्म से युक्त आलाप का बाजार लगाया है। मैं गुण में पूर्ण हूँ और व्यापार करने बैठा हूँ। आकार (गले से लगने वाले आकारान्त स्वर) की डण्डी बनाकर 'ग्राम' (षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम) की डोरियों से 'जोत' (डण्डी के साथ पलडों को बाँधनेवाली रस्सी) स्थिर की है, 'ताल' की पट्टी लेकर चटपट पीछे डाल दी है, अक्षर अर्थमूलक है, अच्छे ध्रुवपद तौल रहा हूँ, जिनकी तुकें भारी है। इस गुण का ग्राहक रामचन्द्र है और मैं व्यापारी हूं।[२]

नाद-सागर का मार्ग अगम और अथाह है। उसमें शरीर को जहाज, आहत और अनाहत नाद को खम्भे, इक्कीस मूर्च्छनाओ को बादबान (मरुत्पट) समझकर बाईस श्रुतियों से चलाना चाहिए। काव्य, रीति, सगीत, गीत, प्रबन्ध, ध्रुवपद, धारू, तत, वितत को समझकर उसमे बैठने के पश्चात् षड्ज को लगर और सातों स्वरो को मन्दराचल समझे। उनचास कूरतानों को शुद्ध रूप मे फिराकर नाद-सागर का मन्थन करे और चौदहो रत्न निकालकर नाम गिनाये। तीनो ग्रामो मे औडव, षाडव, सम्पूर्ण, वादी, संवादी, अतीत, अनाघात, सम, विषम करके दिखाये। दस प्रकार के गमक लेकर मन्द, मध्य एवं तार स्थान मे आरोह-अवरोह करके स्फुरित और प्रत्याहित में उपज करे। ढरन, मुख, अलापचारी और वर्जित स्वरों को जाने, चारो स्थानो का विचार करके सगीतरत्नाकर से अनेक राग निकाल लेने पर ध्रुव, माठा इत्यादि तालो के समेत गाकर रिझाये, तब गुणी राजा रामचन्द्र को भला प्रतीत होता है।[३]

उत्सवप्रियता : अच्छी घड़ी में, अच्छा दिन, अच्छा मुहूर्त्त पाकर, अच्छे गुणियों ने वसन्त की स्थापना की है। मालिन ने गुलाल के रग का लाल फूल प्रातःकाल ही दिया, सोनजुही दी, फिर पंचम का आलाप हुआ। वैसे ही रगो के वस्त्र सुशोभित हो रहे है। विद्याधरों का गान श्रवणों में व्याप्त हो गया। प्रतापी राजा रामचन्द्र जब रीझे, तब उन्होंने समस्त याचकों को भाँति-भाँति के दान दिये।[४]

बहुपत्नीकत्व : तू विदुषी है और प्रिय का अनुग्रह पाकर तुझे यौवन का गर्व हो गया है। तेरे प्रताप एव तेज के समक्ष सपत्नियाँ दीप-ज्योति की भाँति मलिन पड़ जाती है। अन्य स्त्रियाँ अच्छी नही प्रतीत होतीं। चन्दन, कुन्दन और चम्पे के समान तेरे वर्ण और छवि को देखकर समस्त सपत्नियाँ क्षीण हो गई। राजा राम का अग और छत्रच्छाया प्राप्त करने के कारण सुखसमूह अविचल है।[५].. तू नासमझ है, मान शिथिल

१. परिशिष्ट अ, ३३।
२ परिशिष्ट अ, ६६।
३. परिशिष्ट अ, १२।
४. परिशिष्ट, अ १०।
५. परिशिष्ट अ, १४।

कर, इसी से तेरे मुख पर प्रसन्नता आयगी। मै तुझे लेने आई हूँ, तू उठ। मैंने तेरा क्या बिगाडा है? तू मुझसे क्यों रूठ रही है? प्रिय ने मुझे तुझे लेने के लिए भेजा है, मेरे कहने से महलों में सुख कर। मुझ बेचारी को दोष न दे, मै तो राजा राम की चढ़ाई-बढ़ाई हूँ।[1] गिनते-गिनते अवधि बीत गई, तन-मन से मै क्षीण हो गई, प्रिय ने मेरे मन की पीर नही जानी। पत्र तक नही भेजा। प्रियतम, तूने मुझे क्यों भुला दिया और मेरे हृदय की सुधि नही ली। घडी-घड़ी, पल-छिन युग के समान बीतने लगे। देखो, उनके हृदय में कौन-सी धुन है। प्रिय का यह कौन-सा स्वभाव पड़ गया है, जो राजा राम प्रियतम अन्यत्र विलम्ब कर रहे है।[2]

मधुकरशाह (सन् १५५४–१५९२ ई०) : ओरछा-राज्य की नीव डालनेवाले **प्रतापरुद्र** या **रुद्रप्रताप** सोलहवी शताब्दी ई० के प्रथम दशक मे गद्दी पर बैठे। सन् १५३१ ई० मे इन्होंने ओरछा की नीव डाली।

प्रतापरुद्र के मरने के पश्चात् **भारतीचन्द** सन् १५३१ ई० मे सिंहासनारूढ हुए। इन्होंने शेरशाह के पुत्र सलीमशाह से सन् १५४५ ई० में कालिजर-दुर्ग छीना था। सन् १५५४ ई० मे ये स्वर्गवासी हुए।

भारतीचन्द निस्सन्तान थे, अतः उनके छोटे भाई मधुकरशाह राजा बने। इन्होने मुगलों के सरदार **नियामत खाँ** को पराजित किया था। इनके हाथ से ओरछा का राज्य कई बार निकला, परन्तु इन्होंने अपने बाहुबल से उसे पुनः-पुनः प्राप्त किया। अकवर की सेनाओं को भी इनसे पराजित होना पड़ा था।[3]

हरिराम व्यास : हरिराम व्यास ओरछा-नरेश मधुकरशाह के राजगुरु थे। ये 'व्यासजी' नाम से प्रसिद्ध है। वृन्दावन में ये **गोस्वामी हितहरिवंशजी** से शास्त्रार्थ करने गये थे, परन्तु उनके शिष्य हो गये। मधुकरशाह इन्हें ओरछा ले जाने के लिए स्वय आये, परन्तु ये न गये। इनकी रचना परिमाण में विस्तृत है और विषयभेद के विचार से भी अधिकाश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। अकबर की प्रशसा मे ध्रुवपद की रचना करनेवाले 'व्यास' यही प्रतीत होते है।

बैरम खाँ खानखाना : बैरम खाँ का पिता **शेख अलीबेग**, **बाबर** बादशाह की सेवा में था। बैरम खाँ सोलह वर्ष की आयु में **हुमायूँ** की सेवा मे आ गया और शीघ्र ही विश्वस्त सरदार बन गया। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् यह अकबर का अभिभावक था। अपने जीवनकाल के अन्तिम भाग मे इसके सम्बन्ध अकबर से अच्छे नही रहे थे। फलतः, यह हज को जाते समय मार्ग में मार डाला गया।

यह संगीत का अत्यन्त रसिक था और **बाबा रामदास** के सगीत पर मुग्ध था। ये ही बाबा रामदास अकबरी दरबार के कलाकारो की सूची मे दूसरे है। **सुहेल खाँ** नामक

---

१. परिशिष्ट अ, १५।

२. परिशिष्ट अ, १६।

३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० १७६।

एक ध्रुवपदकार ने अपने एक ध्रुवपद मे **निजामशाह (सिकन्दर सूर) कीरत, बेवलशाह सवाई** और राम राजा (राजा रामचन्द्र बघेला) के साथ-साथ बैरम खाँ खानखाना की भी प्रशंसा है ।[1]

रामदास को इसने एक बार एक लाख तक पुरस्कार में दिये थे ।[2]

अकबर :

अकबर का जन्म सन् १५४२ ई० के २३ नवम्बर को अमरकोट मे हुआ था। सन् १५५६ ई० की १४ फरवरी को कलानूर नामक स्थान मे वह गद्दी पर बैठा। इस समय इसकी आयु प्राय: चौदह वर्ष की थी। अक्टूबर, १५६० ई० में अकबर बैरम खाँ के संरक्षण से मुक्त हो गया था और सन् १५६१ ई० की ३१ जनवरी को बैरम खाँ की हत्या हो गई।

बैरम खाँ संगीत का बडा प्रेमी था और अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक रामदास पर इसकी बडी कृपादृष्टि थी। बदायूँनी कहते है : यद्यपि खानखाना के कोष में कुछ नही था, तथापि इसी प्रकार एक बैठक मे खानखाना ने लखनऊ के रामदास को एक लाख टक द्रव्य और सामग्री के रूप मे दिये। रामदास पहले असिलमशाह सूर के गायको मे थे। उन्हें गीत एवं संगीत मे आप दूसरा मिया तानसेन कह सकते है। रामदास खानखाना के साथी और बेतकल्लुफ मुसाहब की तरह रहा करते थे और अपने कण्ठस्वर के सौन्दर्य से बैरम खाँ के नेत्रों मे आँसू ले आया करते थे ।[3]

संगीत-प्रेम के बीज अकबर मे आनुवंशिक थे और सम्भवत. बैरम खाँ के सरक्षकत्व मे उन्हे अकुरित होने का अवसर मिल चुका था। समय आने पर ये बीज भली भाँति फले-फूले।

जनवरी, १५६२ ई० में अकबर का विवाह राजा **बिहारीमल** की लडकी से हुआ और मानसिंह अकबरी दरबार मे आ गये। मानसिह भी संगीतप्रेमी एवं गुणियों के संरक्षक थे।

इसी वर्ष नवम्बर मे प्रसिद्ध गायक तानसेन अकबरी दरबार में बुला लिये गये थे। 'संगीत' में अकबर की गति के विषय मे अबुल फजल का कथन है : 'अकबर ने इस विशिष्ट

---

१. रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० २६८ ।

२. मुन्त०, भाग २, पृ० ३७ ।

३ "And in the same way Khan Khana, although he had nothing in his treasury, gave at one sitting a lak of tankas worth in money and goods to Ramdas of Lucknow, who was one of the musicians of Aslimshah and one that in music and song, you might term a second Mian Tansen ! This man used to be the Khankhana's companion and intimate associate, and by the beauty of his voice continually brought tears to his eyes !"—Munt., II, p. 37.

विषय की ओर पूर्ण अवधान दिया और उसकी समस्त प्रतिभा का उपयोग इस दिशा में हुआ। चाहे पर्शियन नगमे हों अथवा विभिन्न भारतीय राग, दोनों के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में अकबर की योग्यता अनुपम थी।[१]

ग्वालियर-निवासी लाल कलावन्त संगीत-विद्या में अकबर का शिष्य था। बाल्य-काल से ही यह अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ और उसी की छत्रच्छाया मे शिक्षा प्राप्त करके मर्मज्ञ संगीतविद् बना। अकबर जो भारतीय राग एवं रागिनी सुनता, इसे याद करा दिया करता था। सन् १६०८ ई० में लाल कलावन्त का स्वर्गवास हो गया।[२]

स्मिथ का कथन है : 'अकबर गीत एवं संगीत में विशेष रस लेता था और ऐसा प्रतीत होता है कि इन कलाओं की पारिभाषिकताओं का उसे भली भाँति ज्ञान था।'[3]

शाहजहाँ एवं औरंगजेब के काल मे कश्मीर के गवर्नर फखरुल्लाह ने अपने फारसी-ग्रन्थ 'रागदर्पण' के नवम परिच्छेद के अन्त में लिखा है कि अकबरकालीन कलाकारों की सहमति से 'रागसागर' नामक एक ग्रन्थ की रचना हुई थी। 'रागसागर' नामक एक ग्रन्थ 'भरतकोष' के विद्वान् सम्पादक प्रो० रामकृष्ण कवि को मिला है। कवि महोदय इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे कहते है : 'इस ग्रन्थ मे तीन अध्याय है। यह पता नहीं चलता कि इसका लेखक कौन है। ग्रन्थ में शार्ंगदेव का नाम लिया गया है।'[४] 'रागसागर' की एक प्रति मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट, लायब्रेरी मे है। इसके स्वर-प्रकरण मे रामामात्य की चर्चा आई है, जिनका काल सन् १५५० ई० है।[५] प्रस्तुत ग्रन्थ मे रागध्यानाध्याय भी है, जिसमे ग्रन्थकार ने ९६ रागों का ध्यान दिया है। अकबर के युग मे रागध्यान की परम्परा केवल उत्तर भारत में अवशिष्ट रह गई थी।

रागध्यानाध्याय में 'उषाणी' नामक राग का ध्यान भी है। प्रो० रामकृष्ण कवि का कथन है कि 'उषाणी' शब्द 'हुसेनी' का दूसरा नाम है।[६] कवि महोदय के इस अनुमान से

१. "The holy personallity has devoted his whole attention to this particular subject, and that all his intellect has been expanded on it, the knowledge which H. M. has of the necessities of music, as of the melodies of Persia, on the various songs of India, both as regards theory and execution unique for all time."
—Akbarnama, Part II, p 219.

२. 'आजकल', उर्दू-संस्करण, म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०६।

३. "He took special delight in music and song, and seems to have had a considerable knowledge of technicalities of those arts"
—The Great Mogul p. 6.

४. परिधित्रयात्मकोऽयं ग्रन्थः केन रचित इति न ज्ञायते। ग्रन्थमध्ये शार्ङ्गदेवनाम स्मृतमस्ति। —भरतकोष, पृ० ५४३।

५. 'संगीत' मासिक, पृ० २८, नवम्बर, १९५९ ई०।

६. हुसेन्या नामान्तरं स्यात्। —भरतकोष, पृ० ८६।

हम सहमत है। अनेक फारसी-शब्दो का सस्कृतीकरण उस युग की विशेषता थी। विदेशीय भाषाओं के शब्दों का सस्कृतीकरण आज भी सस्कृतज्ञो मे प्रचलित है। 'अलेक्जेण्डर' के स्थान पर 'अलक्षेन्द्र' या 'अलीकसुन्दर' एव 'मैकडॉनल्ड' की जगह 'मुग्धानल' प्रयुक्त करनेवाले सज्जन आज भी पाये जाते है। अत·, 'हुसेनी' नामक राग का नाम 'उषाणी' हो जाना असम्भव नही है।

'रागसागर' नामक ग्रन्थ में रागध्यानाध्याय का अस्तित्व और मुस्लिम-प्रवृत्त रागों की चर्चा इस ग्रन्थ का रचनास्थल उत्तर भारत सिद्ध करती है और हमारे विचार में यह 'रागसागर' वही ग्रन्थ है, जिसकी चर्चा फखरुल्लाह ने की है। ये तथ्य सिद्ध करते है कि अकबर 'संगीतशास्त्र' की रचना का भी प्रेरक था।

अकबरी दरबार के कलाकार :

'आईने अकबरी' मे **अबुल फजल** ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों के नाम निम्नांकित रूप मे गिनाये है। इस सगीतज्ञ-वर्ग का विस्तृत विवरण देना तो बहुत कठिन होगा, परन्तु मै प्रमुख संगीतज्ञों की चर्चा करूँगा :

१. ग्वालियर के मियाँ तानसेन, जिनके समान गायक भारतवर्ष में पिछले सहस्र वर्षों से नही हुआ।
२. ग्वालियर के बाबा रामदास
३. ग्वालियर के सुबहान खाँ, गायक
४. सिरग्यान खाँ (सुरग्यान खाँ), ग्वालियर के गायक
५. मियाँ चाँद, ग्वालियर के गायक
६. विचित्र खाँ, सुवहान खाँ के भाई
७. मुहम्मद खाँ ढारी, गायक
८. वीरमण्डल खाँ, ग्वालियर के गायक
९. बाजबहादुर, मालवा का शासक एवं अद्वितीय गायक
१०. शिहाप (शहाब) खाँ, ग्वालियर के वीणावादक
११. दाऊद ढारी, गायक
१२. सरोद खाँ, ग्वालियर के गायक
१३. ग्वालियर के मियाँ लाल, गायक
१४. तानतरंग खाँ, मियाँ तानसेन के गायक पुत्र
१५. मुल्ला इसहाक ढारी
१६. उस्ता दोस्त, मशहद-निवासी, 'नै' नामक वाद्य के वादक।
१७. नायक चरजू, ग्वालियरवासी, गायक
१८. पुरबीन (प्रवीण) खाँ, वीणावादक
१९. सूरदास गायक, रामदास का पुत्र
२०. चाँद खाँ, ग्वालियर के गायक,
२१. रंगसेन, आगरावासी, गायक
२२. शेख दावन ढारी, 'करना' नामक वाद्य के वादक
२३. रहमतुल्लाह गायक, मुल्ला इसहाक का भाई
२४. मीर सैयिद अली, मशहद-निवासी, 'घिचक' नामक वाद्य के वादक
२५. उस्ता यूसुफ, हिरात-निवासी, तम्बूरा-वादक,
२६. कासिम उपनाम कोहबर, एक तन्त्री-वाद्य के आविष्कारक
२७. ताशबेग, कियचाक-निवासी, 'कुबुज'-वादक

२८ सुलतान हाफिज हुसेन, मशहद-निवासी, पाठ करनेवाला
२९. बहराम कुली, हिरात-निवासी, चिचक-वादक
३०. सुलतान हाशिम, मशहद-निवासी, पाठ करनेवाला
३१. उस्ता शाह मुहम्मद, सुरना-वादक
३२. उस्ता मुहम्मद अमीन, तम्बूरावादक
३३. हाफिज ख्वाजा अली, मशहदवासी, पाठ करनेवाला
३४. मीर अब्दुल्ला, मीर अब्दुल हई के भाई, कानून-वादक
३५. पीरजादा, मीर दावन का भतीजा, पाठ करनेवाला और गायक
३६. उस्ता मुहम्मद हुसेन, तम्बूरावादक ।[1]

फखरुल्लाह का कथन है : 'अकबरयुगीन गायक विद्या मे मानसिंह के युग के गायकों के समान नही थे ।... अकबर के युग में गवैये अक्सर 'अताई' थे । उस्तादों का कायदा यह है कि जो कोई इल्म का अमल (व्यवहारमात्र) जानता हो, उसे 'अताई' कहते हैं । इस दृष्टि से मियाँ तानसेन, सुबहान खाँ नौहार, सुरग्यान खाँ फतहपुरी, चाँद खाँ, सूरज खाँ, तानसेन के शिष्य मियाँ चन्द, मियाँ तानसेन के दो बेटे तानतरंग खाँ एव विलास खाँ, रायदास मूडिया, दाऊद खाँ ढारी, मुहम्मद खाँ ढारी, मदन खाँ ढारी, मुल्ला इसहाक ढारी, इसके भाई खिज्र नबात खाँ और हुसन खाँ अफगान ये सब अताई थे ।

बाजबहादुर, नायक चिरजू, नायक भगवान्, धोंधी (धोंधू), तानसेन का पुत्र सूरतसेन, दो भाई लाला और देवी, अह्मी, आकिल, सूनबाझी (?) ये सब लोग थोड़े-से पढ़े हुए थे ।...

यह वर्ग कम पढ़ा-लिखा था । इसे व्यवहारहीन शास्त्रज्ञान था, जो पुस्तक में लिखा था, उसे इन्होंने पढ़ लिया था ।[2]

फखरुल्लाह अकबर-युग के कलाकारों मे इनके नाम 'अताई'-वर्ग मे गिनाता है, जो अबुल फजल की दृष्टि मे उस युग के मूर्धन्य कलाकार थे और इन्हें थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा तक नही बताता । यह सम्भव है । आज भी राष्ट्रपति-पुरस्कार द्वारा सम्मानित कतिपय कलाकार हस्ताक्षर तक करने मे असमर्थ है और आवश्यकता पड़ने पर अँगूठा लगाते है ।

फखरुल्लाह ने जिन कलाकारों को 'अताई' कहा है, उन्हें मौखिक परम्परा से संगीत की व्यावहारिक शिक्षा मिली थी । साहित्यकारों एवं पण्डितों के संसर्ग से उन्हे उस भाषा पर अच्छा-खासा अधिकार था, जो उस समय गाये जानेवाले पदो की भाषा थी और वे 'मसि-कागद छुयौ नही' कहनेवाले कबीर के समान पद-रचना भी करते थे, भले ही पढ़-लिख न सकते हों । दरबारी वातावरण में पले-बढे होने के कारण ये संगीतज्ञ निरक्षर होने पर भी, अशिक्षित नहीं, बहुश्रुत थे ।

१. आइने अकबरी, ब्लाकमैन, पृ० ६८१–८२ ।
२. रागदर्पण हस्तलिखित, रजा लायब्रेरी, रामपुर ।

ध्रुवपदों में अकबर :

सिंहासन, प्रताप : छत्रपति अकबर महाज्ञानी है, समस्त गुणियो, आओ, छन्द गाओ। हिन्द के भाग्य से हुमायूँ का पुत्र अकबर प्रचण्ड अश्वदल सजाकर तख्त पर बैठा है।[1]

धरणी धन्य है, शाह अकबर जिसको धारण किये हुए है। संसार में उदयाचल तक जिसकी दुहाई चली है। रसना, तू धन्य है। अकबर को करतार ने राज्य और साज एवं सिंहासन तथा अविचल भाग्य दिया है। नर-नरेन्द्र जिसकी सेवा कर रहे है, जो सम्पन्न थे, वे (शत्रु) माल छोड़कर भाग गये। तानसेन का प्रभु अकबर मण्डल के मध्य में ऐसा ही शोभायमान होता है, जैसे गोपाचल पर सूर्य।[2]

पराक्रम, मंगलकामना : चक्रवर्त्ती जलालुद्दीन नरेश, तू धन्य है। तूने सब देशो को अपने अधीन कर लिया। तू अपने खड्ग के बल से प्रबल है। तू सब भाँति से पृथ्वीपाल है और कोई प्रमाण (अधिकारी) नहीं है। जहाँ-तहाँ समस्त राजाओं पर उदयाचल तक तेरा ही निश्चय (चलता) है। अपने समान एक तू ही है, तू आत्मबल से युक्त महासुभट है। निश्चयपूर्वक तुझमें 'अली' का निवास है। विधाता ने तेरे समान किसी अन्य की रचना नहीं की, किससे तेरी उपमा दूँ। हे दारिद्र्यहर शाहशाह अकबर, जबतक ध्रुव, धरणी, और सूर्य हैं, जबतक गंगा और यमुना मे जल है, तबतक चिरजीवी रहो।[3]

गोरक्षण : जग पर विश्वम्भर धर्म कर रहा है.. तू स्वय जगवन्दन है। शाह अकबर परमपुरुष, पुरुषोत्तम है।. गौओ की रक्षा तूने कृपालु होकर की है। सृष्टि मे पूर्ण ब्रह्म ने अवतार लिया है।[4]

ब्रजमण्डल-आगमन : छत्रपति अकबरशाह ब्रजमण्डल में आया है। सातो द्वीपों, नवों खण्डों और दसों दिशाओं में नर-नरेन्द्र डर से थर-थर काँपने लगे। अश्वदल, गजदल, नरदल और पदाति-दल मे एक-से-एक अच्छे योद्धा है, एक-से-एक अच्छे सुभट है, जो 'गुर्ज' (गदा), 'नेजा' (शूल), 'तम्बल' (फरसा) और 'शमशीर' (तलवार) पाते है। जिधर सुनिए, उधर जलालुद्दीन मुहम्मद का लश्कर है।[5]

प्रयाग में धर्म की नींव रखना :

तानसेन कहते हैं कि समस्त जीवों को धारण करनेवाले, कण-कण भूमि का भरण-पोषण करनेवाले छत्रपति शाह अकबर ने धर्म की नीव रखी और शुभगृहो में, 'इलाहाबाद' मे छत्तीस कुली बसाई।[6]

---

१. परिशिष्ट अ, २८।
२. परिशिष्ट आ, ३५।
३. परिशिष्ट अ, ४२।
४. परिशिष्ट आ, ३४।
५. परिशिष्ट अ, ३५।
६. परिशिष्ट आ, ७४।

संगीत में शोध :

जिनकी बुद्धि के आगे और की बुद्धि नहीं दिखाई देती, मैं उसकी स्तुति कैसे करूँ। मेरे एक ही जिह्वा है, निराले ढंग से 'संगीतरत्नाकर' के भेद पढ़ते हैं। प्यारे शाह अकबर, चिरंजीवी रहो।[1] शाह जलालुद्दीन संगीत के सात अध्याओं की विद्या का दान गुणियों को देता है।[2] शाह अकबर सप्त अध्यायों के ब्यौरे पृथक्-पृथक् करके दिखा देता है।[3] जगद्गुरु जलालुद्दीन (मोहम्मद अकबर) दूध-का-दूध, पानी-का-पानी कर देता है।[4]

गुणमर्मज्ञता : प्रथम अनाहत नाद ओ३म् है, दूसरा आहत नाद है, उससे छियासठ श्रुतियाँ उत्पन्न की गई है। कल्लिनाथ, हनुमान् और भरत के मत मे कौन-कौन-सी ध्वनियाँ होती हैं? यदि तुम प्रवीण गायक हो, तो गाकर सुनाओ और प्रमाणित करो, ये श्रुतियाँ कौन-कौन है? किस स्वर में कितनी-कितनी है? बारह विकृत तथा वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर कौन है? उनमें ग्रह-अंश, न्यास में प्रधान ठौर (स्थान) पर कौन होता है? उन स्वरों से तीनों ग्रामों के विस्तार सरगम करके और तीनो को गाकर गुण को प्रमाणित करो। तिरसठ अलंकार, उनचास कूटतान तथा औडव-षाडव करके दिखाओ, जिससे गुण प्रमाणित हो। यह विद्या अगम और अथाह है। यदि पूर्ण गुणी हो, तो गाकर सुनाओ, शाह अकबर के सामने विद्या का यथार्थ प्रमाण होता है।[5]

उत्सवप्रियता (वसन्त) : ऋतुओं का राजा वसन्त आया और चारों दिशाओं में प्रकट हुआ, सबने आनन्द माना। अरगजा और अबीर से लाल (अकबर) को ढके देते है, प्रसन्न होकर मृग सुगन्ध प्राप्त करते है।... इस प्रकार, शाह अकबर ने धमार खेली।[6]

कामशास्त्रीय मर्मज्ञता : कामिनियों के मद का भंजन करने और रमणियों के यौवन से निस्तार पानेवाला समर्थ अन्तर्यामी कामी अकबर जो-जो मन में आवे, सो-सो कीजिए। तुममें दक्षिण नायक के लक्षण हैं, तुम ही ग्रन्थ समझते हो, जो कानों से सुना है, वह प्रमाणित हो जाय, यही मेरी विनती है।[7]

बहुनायकत्व : अरी, वही (सुन्दरी) भली है, जिसे अकबर बडाई दे। एक प्रौढा है, जिसने उसी की उत्तम विद्या और उसी की निकाई ली है। एक 'मृगनयनी' है, एक

---

१. परिशिष्ट अ, ३२।
२. परिशिष्ट अ, ४५।
३. परिशिष्ट अ, ४६।
४. परिशिष्ट अ, ५०।
५. परिशिष्ट अ, ४३।
६. परिशिष्ट अ, ५३।
७. परिशिष्ट अ, ६३।

'पिकबैनी' है और एक सब सुख देनेवाली 'आनन्ददैनी' है। लाल जलाल (अकबर) तुमने जिससे लाड़ लड़ाया है, वही भाग्यवती है, वही सौभाग्यवती है।[१]

जगद्गुरुत्व : दीन और दुनिया मे अकबर जगद्गुरु है।[२]

ज्ञानित्व : मेरे यहाँ कौन घर-घर डोले, हृदय से ज्ञान बोल रहा है अथवा अल्लाह ही विचर रहा है। शाह अकबर ने मक्खन छीन लिया, अब मेरे यहाँ छाँछ कौन बिलोये ?[३]

दीनइलाही का प्रवर्त्तक : बुजुर्ग और मुर्शिद (पीर) लोग जिसमे अल्लाह को पाते (देखते) है, वह शाह अकबर भरपूर नेमत देता है।[४]

अब्दुर्रहीम खाँ खानखाना : ये बैरम खाँ के पुत्र थे और अकबर के प्रयत्नों से उनकी शिक्षा-दीक्षा उच्च कोटि की हुई। संस्कृत, फारसी, अरबी और तुर्की के ये अच्छे विद्वानो में से थे। कोई हिन्दीप्रेमी ऐसा नही है, जो इनके दोहो से अपरिचित हो। हिन्दी-काव्य में इनका उपनाम 'रहीम' था। **मआसिरुल् उमरा** के अनुसार, ये संसार की अधिकाश भाषाओं में बात कर सकते थे।[५] स्वयं विद्वान् और कवि होने के अतिरिक्त ये गुणियों के प्रसिद्ध एवं उदार आश्रयदाता थे। **मआसिरे रहीमी** के अनुसार, इनके आश्रय में तबरेज-निवासी हाजी इस्माईल के पुत्र **आगा मोहम्मद नैई**, तबरेज-निवासी **मौलाना अस्वती**, **उस्ताद मिर्जा अली**, नीशापुर-निवासी **मौलाना शरीर**, **मोहम्मद मोमिन** तथा **हाफिज नाजरा** नामक कलाकार थे।[६]

वीरभद्र : ये तानसेन के प्रसिद्ध आश्रयदाता राजा रामचन्द्र बघेला के पुत्र थे। अकबर के १४वे राज्यवर्ष (सन् १५६९ ई०) मे राजा रामचन्द्र ने इन्हे अकबरी दरबार में भेजा था। सन् १५८३ ई० में जब अकबर ने राजा रामचन्द्र पर बल-प्रयोग करना चाहा, तब वीरभद्र ने दरबारियो के द्वारा अकबर से कहलवाया कि यदि कोई सम्मानित सरदार राजा रामचन्द्र को लेने के लिए भेजा जाय, तो वे अकबर से साक्षात् करने अवश्य आयेंगे। फलतः, **जैब खाँ कोका** और **राजा वीरबल** को राजा रामचन्द्र को बुलाने के लिए भेजा। सन् १५८५ ई० में राजा रामचन्द्र की मृत्यु होने पर अकबर ने वीरभद्र को 'राजा' की पदवी दी और उन्हें देश भेज दिया। मार्ग में ये सुखासन से गिर पड़े और ओषधि करने से इनका रक्त बिगड़ गया। असमय नहाने-धोने से इनका रोग बढता गया और सन् १५९३ ई० मे ये स्वर्गवासी हो गये। इनका शोक मनाने के लिए अकबर इनके सम्बन्धी रायसिंह राठौर के

---

१. परिशिष्ट अ, ७७।
२ परिशिष्ट आ, ३९; प० अ, ४७।
३. परिशिष्ट अ, २६।
४. परिशिष्ट अ, २७।
५. म० उ०, भाग २, पृ० १९७।
६. आइने अकबरी : ब्लाकमैन, पृ० ६८२ पर पादटिप्पणी।

घर गया था।[1] वीरभद्र अपने पूर्वजों के समान ही गुणियों के आश्रयदाता थे। इनकी प्रशंसा में 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १२७ पर एक ध्रुवपद संगृहीत है।[2]

जहाँगीर :

जहाँगीर का राज्यकाल सन् १६०५ से १६२७ ई० तक है। 'जहाँगीरनाम:' मे इसने संगीत एवं संगीतज्ञों के विषय में जो कुछ लिखा है, उससे संगीत-विषयक इसकी रुचि एवं ज्ञान का प्रमाण मिलता है।

नौरोज के उत्सव का वर्णन करते हुए जहाँगीर कहता है : "मिष्टभाषिणी नायिकाएँ बाल खोले हुए उमंग के साथ गाने और नाचने में मस्त थी, जिनके देखने और सुनने से चेतनता ठीक हो जाती थी। इसी प्रकार, सात दिनों तक आनन्दोत्सव होता रहा।"[3]

कश्मीर के संगीत के विषय में जहाँगीर का कथन है : "मिर्जा हैदर के समय मे कश्मीर में बहुत-से गुणी मनुष्य थे। गान-वादन मे वे बड़े कुशल थे और वंशी, चंग, ढप, सारंगी आदि के वादन में प्रसिद्ध थे। पूर्वकाल में इनके यहाँ एक वाद्ययन्त्र 'कमॉच:' की चाल का था और उसपर ये कश्मीरी-भाषा के गाने हिन्दी (भारतीय)-स्वर के अनुसार गाते थे, जिनमे कभी-कभी दो-तीन स्वर मिले रहते थे। साथ ही, कभी-कभी कई मनुष्य मिलकर गाते थे। वास्तव में, कश्मीर अपनी कई अच्छाइयों के लिए मिर्जा हैदर का ऋणी है।"[4]

जहाँगीर ने 'शौकी' नामक एक कलाकार को 'आनन्द खाँ' की पदवी दी थी। वह स्वय कहता है : "एक वाद्ययन्त्र का वादक शौकी अपने समय का एक वैचित्र्य है। हिन्दी तथा पारसी गीतों को वह इस प्रकार गाता है कि हृदयों के मालिन्य दूर हो जाते है। हमने उसे 'आनन्द खाँ' की पदवी दी। हिन्दी-भाषा मे आनन्द का अर्थ सुख और प्रसन्नता है।"[5]

"मंगलवार की भेंटे हमने आनन्द खाँ को बख्श दी।"[6]

"नै नामक सुषिर-वाद्य बजानेवाले एक गुणी उस्ताद मुहम्मद का जो सत्कार जहाँगीर ने किया था, उसका वर्णन 'जहाँगीरनाम:' में इस प्रकार है . "हमारे आदेश पर हमारे पुत्र खुर्रम ने उस्ताद मुहम्मद 'नैई' को भेजा था, जो अपनी कला मे अद्वितीय था। हमने कई मजलिसों (गोष्ठियों) मे उसका वादन कई बार सुना और हमारी 'छाप' से उसकी बनाई हुई गजल को भी सुना। बारहवी (मुसलमानी महीने की बारहवी तारीख) को हमने उसे रुपयों से तौलने की आज्ञा दी, तो तिरसठ सौ रुपये हुए। हमने उसे हौदे-सहित एक

---

१. मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० ३३२।
२. जहाँगीरनाम:, पृ० ५।
३. उपरिवत्, पृ० ४७६।
४. उपरिवत्, पृ० ३६६।
५. उपरिवत्, पृ० ४३३।
६. उपरिवत्, पृ० ४३६।

हाथी भी दिया और आज्ञा दी कि उसपर बैठकर तथा रुपयों को चारों ओर रखकर वह अपने निवासस्थान को जाय।"[१]

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के संगीतगुरु बख्तर खाँ को जहाँगीर ने अत्यन्त सम्मानित किया था। जहाँगीर का कथन है : "इन्ही दिनो बख्तर खाँ कलावन्त, जो आदिल खाँ (आदिलशाह) का सगा-सम्बन्धी था और जिससे उसने अपने भाई की पुत्री का विवाह कर दिया तथा जिसे गान एव ध्रुवपद मे अपना गुरु बनाया था, दरवेश के रूप में दिखाई पडा। उसे बुलवाकर तथा उसकी अवस्था का पता चलाकर हमने उसे सम्मानित करने का प्रयत्न किया। पहले ही दरबार मे हमने उसे दस सहस्र रुपये नकद, सभी प्रकार के पचास वस्त्र तथा मोतियो की एक माला देकर आसफ खाँ का अतिथि बनाया।"[२]

लाल कलावन्त की चर्चा 'जहाँगीरनाम.' मे इस प्रकार है : "इसी महीने की दूसरी को लाल कलावन्त, जो हमारे पिता की सेवा मे बचपन से बड़ा हुआ था, और जिसे उन्होंने हिन्दी-भाषा का उच्चारण इत्यादि सब कुछ सिखाया था, पैंसठवे वर्ष मे मर गया। इसपर, इसकी एक रखेली ने अफीम खाकर जान दे दी। मुसलमानों में स्त्रियाँ ऐसा पातिव्रत्य बहुत कम दिखाती है।"[३]

जहाँगीर को कव्वाली सुनने का भी शौक था। कहता है ' 'दिल्ली के कुछ कव्वाल हमारे सामने गा रहे थे और सैयदी शाह विनोद के लिए एक धार्मिक नृत्य कर रहे थे।'[४]

जहाँगीरी-दरबार के प्रसिद्ध गायक बिलास खाँ, छतर खाँ खुर्रम दाद, मक्खू, परवेज दाद और हमजान थे।[५]

ध्रुवपदों में जहाँगीर :

सेहरा : शाह अकबर का पुत्र शेखूजी (जहाँगीर का प्यार का नाम) दूल्हा और दुलहिन तबतक चिरंजीवी रहे, जबतक चन्द्रमा, पृथ्वी और ध्रुवतारा है। अनेक रत्नों से जटित मुकुट पर सेहरा बाँधे हैं। मालिन विचित्र सेहरा गूँथ कर लाई है, बेला और चमेली के हार सुशोभित हो रहे है। मै चक्रवर्त्ती जलालुद्दीन (अकबर) के चरण पड़ता हूँ, जिसने (मेरे लिए) हाथी भेजा है।... इस छवि पर मै देवलोक निछावर करता हूँ।[६]

सवारी : दलन और मर्दन कर देनेवाला जहाँगीर (हाथी पर) चढ़ा है। हाथी के घण्टे घनन-घनन बज रहे है।[७]

---

१. जहाँगीरनामः, पृ० ४३९।
२. उपरिवत्, पृ० ३३९।
३. उपरिवत्, पृ० २२१।
४. उपरिवत्, पृ० २३६।
५. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २६७।
६. परिशिष्ट अ, .१२९।
७. परिशिष्ट अ, '१२८।

प्रताप, न्यायनिष्ठता : हे दिल्ली पर अधिकार रखनेवाले जहाँगीर, तेरे कुपित होते ही पर्वत काँप जाते हैं। जिसका इंसाफ संसार में प्रत्यक्ष है, जो स्पष्टतया वीरों का पीर है।[1] समस्त सुखों के देनेवाले विधाता ने पृथ्वी पर एक नर की रचना की है, जो स्थिर है और अदण्ड्य (प्रबल) व्यक्तियो को भी दण्ड देता है। महाज्ञानी जहाँगीर तू गुणनिधान और कुलमण्डन है, तेरी उपमा किससे दूँ ? तू आत्मबली, तपोबली एवं प्रतापबली है, जिसकी प्रचण्ड कीर्त्ति चारो दिशाओं मे है। शाह अकबर के पुत्र, तुम सातों द्वीपों और नवो खण्डो में चिरकाल तक (राज्य करते हुए) चिरजीवी रहो।[2]

संगीतमर्मज्ञता : (सगीत) के अंग-अग मे निपुण भरत और मतंग के मतों में छानबीन करते है। स्वर का जिन्हे ज्ञान है, जो गुणनिधान हैं और ज्ञानियों के लिए प्रमाण है।[3]

विलास : प्रियतम के मिलन का आगमन मै तब जानूँगी, जब मेरी बाई आँख फडकेगी, तभी मै सुहाग का काजल लगाऊँगी। जब कुच फडकेगे, तब मै सुगन्ध में बसाकर कचुकी पहनूँगी और गले मे मोतियो की माला धारण करूँगी। जब भुजाएँ फडकेंगी, तब बाजूबन्द और गजरा पहनूँगी। शाह जहाँगीर के मिलने से शयन के समय सुख मिला और काम के द्वन्द्व से मेरा शरीर मुक्त हुआ।[4]

जहाँगीर-कालीन अन्य आश्रयदाता

भारतसाह बुन्देला : यह राजा मधुकर के पुत्र रामचन्द्र का पौत्र था।[5] रामचन्द्र के पिता संग्रामसाह अपने पिता रामचन्द्र के समय ही कालकवलित हो गये थे।[6] जहाँगीर के सॉतवे राज्यवर्ष (सन् १६१२ ई०) में भारतसाह गद्दी पर बैठे और इन्हें योग्य मनसब तथा 'राजा' की पदवी मिली। भारतसाह की बुआ जहाँगीर को ब्याही थी। जहाँगीर की मृत्यु होते ही ये शाहजहाँ की सेवा में पहुँचे और इनका मनसब तीनहजारी, २५०० सवार का हो गया। शाहजहाँ के प्रथम राज्यवर्ष (सन् १६२७ ई०) में इटावा तथा आसपास के प्रदेश के फौजदार हुए और कुछ ही दिनों के अनन्तर डंका पाकर सम्मानित हुए। सन् १६२८ ई० में ख्वाजा अबुलहसन के साथ खानेजहाँ के विरुद्ध और सन् १६३० ई० में राव रत्न होड़ा के साथ तैलगाना-विजय के लिए नियुक्त किये गये। मनसब में पाँच सौ सवार और बढे और कन्धार-दुर्ग लेने मे इन्होंने बडी वीरता दिखाई। इन्ही की सम्मति से दुर्गवालों ने दुर्ग सौप दिया। सन् १६३१ ई० मे शाहजहाँ ने इनका मनसब साढ़े तीन

१. परिशिष्ट अ, १३०।
२. परिशिष्ट अ, १३१।
३. परिशिष्ट अ, १३५।
४. परिशिष्ट अ, १३२।
५. मआसिरुल् उमरा, प्र० भा०, पृ० २६१।
६. उपरिवत्, पाद-टिप्पणी, पृ० २६१।

हजारी, तीन हजार सवार का कर दिया। सन् १६३३ ई० में तैलगांना की सीमा पर नियुक्ति हुई, तब 'विकलूर' को सपरिवार अधिकार मे ले लिया, जो दक्षिण के सुलतानों की ओर से सीमाध्यक्ष था। यह समाचार मिलते ही शाहजहाँ ने इनका मनसब चारहजारी, ३५०० सवार का कर दिया। सन् १६३४ ई० मे तैलगाना की सीमा पर इनकी मृत्यु हो गई।[1]

इनकी चर्चा से युक्त एक ध्रुवपद मिलता है, जिसमें इनकी पत्नी रुद्रावती की चर्चा है।[2]

शाहजहाँ :

सौन्दर्यप्रेमी सम्राट् शाहजहाँ को संगीत से भी अत्यन्त प्रेम था और यह प्रतिदिन अन्त पुर में साढे आठ बजे से दस बजे दिन तक गायिकाओं के संगीत का आनन्द लेता था।[3] औरंगजेब के हाथों बन्दी होने के पश्चात् भी इसका संगीत-प्रेम जैसा-का-तैसा रहा और गायिकाएँ तथा नर्त्तकियाँ इसके दुख को भुलाने मे सहायक हुई।[4] यहाँतक कि बन्दी शाहजहाँ के साथ सद्व्यवहार का अभिनय जब कूटनीतिज्ञ औरंगजेब ने किया, तब अन्य उपहारों के साथ उसने कुछ गायक भी शाहजहाँ की सेवा मे भेजे।[5] इसके कृपापात्र गुणियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है .

१. **लाल खाँ कलावन्त** : यह तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दामाद और शाहजहाँ के दरबारी कलाकारों मे मूर्धन्य था। तानसेन की शैली उनके शिष्यों से सीखी और उनके ध्रुवपद उन्ही की शैली में अनुपम प्रकार से गाये। सन् १६३० ई० में शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' की उपाधि दी। इसके चार पुत्र थे, जो गाने मे इसके साथ रहते थे। 'गुनसमन्दर खाँ' का देहान्त सन् १६५२ ई० में, आगरा मे हुआ।[6]

लाल खाँ के विषय में फकीरुल्लाह का कथन है : "इसकी उपाधि 'गुनसमन्दर खाँ' थी। बचपन में ही मियाँ तानसेन के पास पहुँचा। तानसेन ने विलास खाँ के हवाले कर दिया और उसकी बेटी के साथ सम्बन्ध भी कर दिया। विलास खाँ के पास इसने गाने-बजाने मे उच्च पद प्राप्त किया। स्वयं को सदा विलास खाँ का शिष्य कहा। यह बड़ा योग्य गायक था। यह ८०-९० वर्ष की आयु में मरा।"[7]

---

१ मआसिरुल् उमरा, प्र० भाग, पृ० २६२-२६३।
२. परिशिष्ट अ, पृ० २८४।
३. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २७८-२७९।
४. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० ९।
५. उपरिवत्, पृ० ७।
६. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०७।
७. रागदर्पण, १०वाँ भाग (रामपुर-प्रति)।

२. **खुशहाल खाँ :** इसके विषय मे फखरुल्लाह का कथन हैं · 'लाल खाँ का बेटा है और इसे भी इसकी पैतृक उपाधि गुनसमन्दर खाँ मिली है।'

३. **बिसराम खाँ कलावन्त :** 'शाहजहाँ के युग का प्रसिद्ध कलावन्त, खुशहाल खाँ का भाई और रावसमन्दर खाँ, अर्थात् लाल खाँ का बेटा था। इसका देहान्त सन् १६७१ ई० में हुआ।'[१]

४. **रंग खाँ कलावन्त :** 'ऊँचे दरजे का गवैया था। यह शाहजहाँ का पुराना नौकर था। जैसा नाम था, वैसा ही स्वयं भी था। तनिक-सा गाता, तो समाँ बँध जाता। यह ८०-९० वर्ष की आयु में मरा।... फकीरो की सेवा मे भी प्रस्तुत रहता था। अकबरी युग के गायकों को इसने देखा था।'[२]

५. **किशन खाँ कलावन्त :** 'सुलतान शुजा ने इसे शाहजहाँ से माँग लिया था।'[३]

६ **जगन्नाथ कविराय :** "मियाँ तानसेन के पश्चात् ऐसा ध्रुवपदकार कोई नही हुआ। धर्म से कोई सम्बन्ध न था। एक ध्रुवपद 'नट' (रागविशेष) में बाँधकर तानसेन को सुनाया था। उन्होंने पसन्द किया और कहने लगे कि आयु ने साथ दिया, तो मेरे पश्चात् ध्रुवपद-रचना में सम्मान प्राप्त करेगा। प्रायः सौ वर्ष की आयु हुई।"[४]

जगन्नाथ कविराय के ऐसे ध्रुवपद भी मिलते हैं, जिनमें शाहजहाँ की प्रशंसा है।

ध्रुवपदों में शाहजहाँ :

सेहरा : शुभ दिन, शुभ घडी, शुभ मुहूर्त्त में सोने का छत्र धारण किया, अमृत-योग की सिद्धि की, सुख और सन्तोष हुआ, इस प्रकार लग्न हुआ, जो आनन्द का समुद्र है। प्रभात के समय आज्ञाओं के पूर्ण करनेवाले पार्वतीपति महेश, सद्गुरु, गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, व्यास इत्यादि के दर्शन किये और कंकण-रूपी प्रेमडोर दोनों ने बाँधी। क्षेम, कुशलता, सफलता और सिद्धि के साथ रग-रस पूर्ण हुआ। वृक्षों की सजावट और आतिशबाजी की फुलझडियाँ देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सघन वन मे झीगन(?) झमक रहे हों। . अजर-अमर छत्र सिर पर धारण किये हुए है, सेहरा शोभित हो रहा है, जिसकी ज्योति जगमगा रही है। .. दूल्हा शाहजहाँ दुलहिन-सहित चिरंजीवी रहे।[५]..

अभिषेक : विधाता ने भूलोक पर अत्यन्त प्रतापी चक्रवर्त्ती नरेश शाहजहाँ की रचना की है।... वह भाग्यशाली, कृपाण के कारण बली, शोभासिन्धु और जगदीश है। उसका बादशाही नाम 'साहिब किरानसानी' है। उस लक्ष्मीविलास भूप के आसपास रिसाले... हैं,

---

१. मिराति आफताबनुमः, ३९२ अ; तारीखे मुहम्मदी, 'आजकल', म्यूजिक-नं०, पृ० १०७।

२. रागदर्पण, दसवाँ बाब।

३. उपरिवत्।

४. उपरिवत्।

५. परिशिष्ट अ, १३७।

जिसके उमराव (सरदार) दिक्पाल हैं। गीत, वाद्य और नृत्य हो रहे हैं, पृथ्वी पर घर-घर आनन्द हुआ। छत्रधारी राजकाज के लिए सिहासन पर बैठे।[१]

प्रताप : इन्द्रपति नरेन्द्र शाहजहाँ, विधाता ने प्रयत्नपूर्वक तेरी रचना की है। दिल्लीश्वर, तू ईश्वर है, देश और संसार में और कौन है, तू नर-नारायण के समान शोभित हो रहा है। जगत् का भरण और पोषण करने के लिए तू छत्रपाल और दिक्पाल है, सातों खण्डो और नवों द्वीपो मे तेरी आन मानी जाती है।[२]

पराक्रम : शत्रुओं के दलो को तूने कुचलकर अपनी भुजाओ के बल से मार डाला, जहाँ-तहाँ द्रोहियो के दल भगा दिये। जब तू क्रोध करके अमर (अम्बरी, हौदा ?) छोड देता और गरजता है, तब शेषनाग कलमलाता है। भला कौन योद्धा है, जो तुझसे युद्ध ठाने। तू शूरवीर और प्रताप मे पूर्ण है, सभी अगो में ऐसा कौन है, जो तेरे समक्ष गर्व या शक्ति का प्रदर्शन करे। पृथ्वीपति शाहजहाँ धन्य है, जो गुणियो को लाख और करोड़ देता है।[३]

संगीतज्ञता : जो ताल और स्वर की साधना करता है, वही गुणी शुद्ध मुद्रा और (शुद्ध) वाणी से गान करता है। विभिन्न गतियों में बुद्धिशाली व्यक्ति विलम्बित करके दिखाता है। सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना और बाईस श्रुति, इनके भेद पाता है। जिसपर सरस्वती प्रसन्न होती है, शाहजहाँ के कानों को वही रिझा सकता है।[४]

नौरोज : सागरान्त भूमि के अधीश्वर ने नौरोज में झडी लगा दी। फूलों के महल पर आकाश-रूपी वितान तना हुआ है, जिससे दसों दिशाएँ आवृत है। निशान (धारण करनेवाले उद्घोषकों का शब्द) गर्जन है, तुम शोभित हो रहे हो, दान के घडों से झडी लगा दी है। उनमें से सोने की धारें बह रही है, मोती उसकी बूँदे है और पानी पवन है। स्वर्णदण्डोवाले चॅवर डुल रहे है, वही मरुत्पट है और कीर्त्ति की हवा चल रही है। झालर और घेरे पक्षियों के समान बोल रहे हैं, नर-नारी अपनी-अपनी वाणी में गा रहे है।[५]

लालमहल के सामने जलकेलि और नौकाविहार : रसीला शाहजहाँ धन्य है, जो लालमहल के सामने जलकेलि कर रहा है। चन्द्रमा ने पॉवडे बिछाकर ज्योति और अमृतरस की भेंट दी। यह छवि देखकर देवनारियाँ प्रसन्न हुईं, कुमुदिनी फूल रही है... नौका की निकाई अवर्णनीय है। साहिब किरानसानी की छवि का प्रतिबिम्ब तरंगो मे परिवर्त्तित हो रहा है।[६]

---

१. परिशिष्ट अ, १३६।
२. परिशिष्ट अ, १३८।
३. परिशिष्ट अ, १३९।
४. परिशिष्ट अ, १५३।
५. परिशिष्ट अ, १४०।
६. परिशिष्ट अ, १४३।

महल की शोभा : चाँदनी ने जैसी शोभा की है, वैसी ही शोभा महलों की है। मानों विश्वकर्मा ने प्रयत्नपूर्वक (सिर के बल) निर्माण किया हो। उत्तम बिछौनों में रुचिर नवीन अगणित पुष्पमालाएँ अत्यन्त शोभित हो रही हैं,... चन्द्रमा शाह पर निछावर हो रहा है अथवा अंक में ले रहा है।...[1]

विलास : प्यारी, तुझ जैसी सुघड नारी की समता भला कौन कर सकती है? रूप और गुण से ऐसी उज्ज्वल और कोई नही, अपने समान तू ही है। तेरा रूप और तेरी छवि का वर्णन मुझसे नही किया जाता। हाव, भाव, कटाक्ष और गुणों के कारण तू तो चन्दा की चाँदनी है। प्रिय शाहजहाँ, तुझी से हिलता-मिलता है। समस्त सुन्दरियो में तू ही मनभावनी है।[2]

तू करतल पर कपोल रखे दुचित्ती और अनमनी-सी बैठी है। जान पड़ता है, आज प्रियतम से कुछ अनबन हो गई है। तू सूखी-सी, रूठी-सी है। मुख देखने से प्रतीत होता है कि तू रोई-सी है। मन मारे, क्रोध किये बैठी है, किसी का कहना नही मानती। समस्त सुन्दरियो में एक, तू ही एक, उनके मन को मानी हुई है। प्रिय शाहजहाँ तेरे प्रेम के वश में हुए है। वे दुल्हा है और तू दुलहिन है।[3]

समकालीन आश्रयदाता

पहाड़सिंह बुन्देला : यह वीरसिहदेव के पुत्र थे। शाहजहाँ के बादशाह होने पर इनका मनसब तीनहजारी, २००० सवार[4] का हो गया। **अब्दुल्ला खाँ** के साथ शाहजहाँ की ओर से ये अपने भाई **जुझारसिंह** के विरुद्ध युद्ध में गये। एरिछ-दुर्ग को जीतने में इन्होंने अच्छा प्रयत्न किया, अतः अब्दुल्ला खाँ की सिफारिश पर इन्हे डंका मिला। जुझारसिंह जब विवश होकर दरबार में पहुँचे, तब उनके प्रदेश का कुछ अंश पहाडसिंह को दे दिया गया।

सन् १६३० ई० में **शायस्ता खाँ** के साथ ये निजामुलमुल्क के विरुद्ध भेजे गये। उसी वर्ष इन्हें राजा की पदवी मिली। दक्षिण के सूबेदार **आजम खाँ** के साथ इन्होंने **खानेजहाँ लोदी** के विरुद्ध युद्ध में अच्छी वीरता दिखाई। दौलताबाद और परेदा के घेरे में भी वीरतापूर्ण कृत्य किये। **महावत खाँ** की मृत्यु होने पर इनकी नियुक्ति बुरहानपुर के सूबेदार खानदौराँ के अधीन हुई। सन् १६४२ ई० में औरंगजेब के साथ दक्षिण से लौटने पर इनके मनसब में १००० सवार की वृद्धि हुई और ये चम्पतराय के विरुद्ध (जो इनके भतीजे लगते थे) भेजे गये। सन् १६४५ ई० में **अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ** के साथ बदख्शाँ की चढ़ाई पर गये। सन् १६४६ ई० में मनसब में और वृद्धि हुई और **सुलतान मुरादबख्श** के साथ बलख और बदख्शाँ की चढाई पर नियुक्त किये गये। औरंगजेब

---

१. परिशिष्ट अ, १४६।

२. परिशिष्ट अ, १४४।

३. परिशिष्ट अ, १५०।

४. एक स्थल पर २५०० सवार का उल्लेख है।

के पहुँचने तक वहीं ठहरे और सन् १६४८ ई० में शाहजादा औरंगजेब के साथ दरबार लौटे। सन् १६४६ ई० में औरंगजेब के साथ कन्धार-दुर्ग को जीतने के लिए भेजे गये। सन् १६५१ ई० में मनसब मे १००० सवार और बढ़े और चौरागढ़ के जागीरदार बनाये गये। हृदयराम और उसके आश्रयदाता अनूपसिंह (रीवाँ-नरेश) को भगाकर रीवाँ नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सन् १६५३ ई० मे दरबार से बुलावा आने पर उपस्थित हुए और हृदयराम से लूटी हुई तीन हथिनियाँ और एक हाथी बादशाह की भेट के लिए लाये। सन् १६५३ ई० में औरंगजेब और तत्पश्चात् दाराशिकोह के साथ कन्धार की चढाई पर रहे। शाहजादे के असफल लौटने पर साथ ही ये भी लौटे और छुट्टी लेकर घर चले गये। सन् १६५४ ई० में इनका देहान्त हुआ। इनके बड़े पुत्र सुजानसिंह उत्तराधिकारी हुए और दूसरे पुत्र इन्द्रभान को ४०० सवार का मनसब मिला।[१]

पहाड़सिंह तथा उनकी रानी हीरादेवी दोनों जुझारसिंह से अन्त तक शत्रुता रखते रहे और जब कभी बादशाही सेनाएँ उनपर भेजी गईं, तब बराबर योग देते रहे। इसी भ्रातृद्रोह के पुरस्कार मे इन्हे ओरछा-राज्य प्राप्त हुआ।[२] इनकी मुद्रा से अंकित एक पद प्राप्त होता है।[३]

राजा अनिरुद्ध गौड़ (मृ० सन् १६४६ ई०) : ये राजा विट्ठलदास (शाहजहाँ के युग में अजमेर के फौजदार) के सबसे बड़े पुत्र थे। सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ ने इनका मनसब बढाकर डेढ हजारी, १००० सवार का कर दिया। सन् १६५० ई० मे इन्हे झण्डा मिला। सन् १६५१ ई० मे पिता की मृत्यु के पश्चात् इनका मनसब तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोडोवाला हुआ और ये राजा की पदवी, डके, घोडे और हाथी से सम्मानित किये गये। उसी समय ये रणथम्भौर के दुर्गाध्यक्ष हुए। इसके पश्चात् कन्धार की दूसरी चढ़ाई में शाहजादा औरंगजेब के साथ इनकी नियुक्ति हुई। वहाँ से लौटने के पश्चात् सन् १६५२ ई० में ये अपनी जागीर पर गये। तत्पश्चात् शाहजादा दाराशिकोह के साथ कन्धार की चढाई पर इन्हें पुनः भेजा गया। सन् १६५४ ई० में इन्हे सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड की चढाई पर भेजा गया। सन् १६५७ ई० मे इनका मनसब साढे तीन हजारी, ३००० सवार दो और तीन घोड़ेवाला हो जाने पर सुलतान सुलेमान शिकोह के साथ शुजाअ का दमन करने के लिए भेजे गये। औरंगजेब के सम्राट् होने पर सन् १६५८ ई० में ये सेना में

---

१. मआसिरुल् उमरा, प्र० भाग, पृ० २२४–२२६।

२. उपरिवत्, पाद-टिप्पणी, पृ० २२४।

३ प्रानपियारे संग राधे होरी खेलन जैये।
पीतम संग नित गलबाहीं याही सुख में रहियै ।।
चोवा-चन्दन और अरगजा नित्त उड़ावत रहियै।
या ब्रज में फागुन सो औसर ता सुख कौ कहा कहियै ।।
पहारसिंह कौ प्रभु वर पायौ अब तोकौं कहा चहियै।
तोसी चतुर और नहि दूजीं अब तोसों कहा कहियै ।।—रागमाला, पृ० ११९ आ।

पहुचे और **मुहम्मद सुलतान** के साथ शुजाअ के दमन के लिए इनकी नियुक्ति हुई। संवत् १७१६ (सन् १६५९ ई०) मे इनका स्वर्गवास हुआ।[१]

'रागमाला' मे इनकी प्रशसा से युक्त एक गीत है, जो इनका संगीतप्रेमी तथा संगीतज्ञों का आश्रयदाता होना सिद्ध करता है।[२]

मूसवी खाँ : यह मशहद के सैपिदों में था।[३] जहाँगीर के समय में आबदारखान: का दारोगा नियत हुआ। क्रमश. 'सदरेकुल' के पद तथा दो हजारी, ५०० सवार के मनसब तक पहुँच गया। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ के शासनकाल के प्रथम वर्ष (सन् १६२७ ई०) मे यह 'सदरेकुल' के पद पर पुन प्रतिष्ठित हुआ और इसका मनसब तीन हजारी, ७५० सवार का हो गया। सोलह वर्ष जब बादशाह से प्रार्थना की गई कि यह उपयुक्त सामग्री नही रखता, तब यह पद से गिरा दिया गया। सन् १०५४ हिजरी (सन् १६४४ ई०) मे इसकी मृत्यु हुई।[४] यह गुणियो का आश्रयदाता था। इसके सम्बन्ध मे 'रागमाला' मे निम्नांकित पक्तियाँ है :

मूसेखान सुजान तू जानै मै दीन दुनी।
कमलनैत्र सुधारिबौ करत बहु भांतिन के गुनी ॥[५]

शुजा : यह शाहजहाँ का दूसरा पुत्र था और अत्यन्त बुद्धिमान् था। इसका व्यवहार नम्रता, सहृदयता एवं शील से पूर्ण रहता था। यह बंगाल का सूबेदार था। जिस समय शाहजहाँ की बीमारी के अतिशयोक्तिपूर्ण समाचार इसके पास बंगाल पहुँचे, तभी इसने स्वय को सम्राट् घोषित कर दिया।

सन् १६५८ ई० की १४ फरवरी को **दारा** के पुत्र **सुलेमान शिकोह** से बहादुरपुर मे इसकी पराजय हुई। **शुजा** को भागना पडा, परन्तु अपने पिता दारा की 'धरमत' वाली पराजय का समाचार सुनकर सुलेमान शिकोह ने शुजा को बंगाल, पूर्वी बिहार और उड़ीसा का प्रदेश देकर सन्धि कर ली।

औरगजेब ने राजदण्ड धारण करने पर राजा को एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा, जिसमें बिहार का पुरा प्रान्त शुजा को दे दिया गया था। दि० ५-१-१६५९ ई० को खजवा नामक स्थान पर औरगजेब ने शुजा को पराजित किया। शुजा भागकर मुँगेर पहुँचा। औरगजेब की सेना से अनेक बार पराजित होकर शुजा अराकान चला गया। अराकान के राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का प्रयत्न खुल जाने पर शुजा वहाँ के जगलों में भागा और जगली लोगों के द्वारा मार डाला गया। शुजा सगीत का अत्यन्त प्रेमी था और

१. मआसिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० ६३-६४।
२. उपरिवत्, चतुर्थ भाग, पृ० ६१७।
३. रागमाला, १२०।
४. मआसिरुल् उमरा, भाग ४, पृ० ६१७।
५. रागमाला, १२०।

उसने अपने पिता से **किशन खाँ कलावन्त, मिसरी खाँ ढारी** और **सोहिलसेन** (तानसेन के पोते) को माँग लिया था।

दक्षिण में ध्रुवपद का प्रभाव

द्वितीय अध्याय में यह बताया जा चुका है कि मुहम्मद तुगलक के युग में ही ख्वाजा निजामुद्दीन की आज्ञा से उनके मुरीद और प्रसिद्ध सूफी सन्त **शेख बुरहानुद्दीन** ४०० सूफी सन्तो के साथ दौलताबाद (देवगिरि) पहुँच गये थे। सूफियो की परम्परा ने शासन के केन्द्रस्थान दिल्ली की भाषा को दक्षिण मे पल्लवित किया। अकबर के राज्यकाल में मानसिह तोमर की ध्रुवपद-परम्परा भी दक्षिण पहुँच गई और इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने दक्खिणी हिन्दी मे ध्रुवपदों की रचना की। उत्तर भारत के कलावन्त दक्षिण पहुँचे, जिनके कारण इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय को यह प्रेरणा मिली कि अपने प्रदेश की लोकभाषा को ध्रुवपदो का माध्यम बनाया जाय। यद्यपि इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के वंश मे उत्पन्न बीजापुर के अन्य सुलतान सगीतकार हुए, तथापि उनकी रचनाएँ ध्रुवपद-शैली की नही है। अस्तु, व्रजभाषा और ध्रुवपद के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए इब्राहीम और उसके कृतित्व का परिचय आवश्यक है।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय : यह ९ वर्ष की आयु में बीजापुर की गद्दी पर बैठा। सन् १५८७ ई० मे इसने **चाँद सुलतान** के साथ विवाह किया। सन् १५९० ई० तक तो यह अपने मन्त्रियों के हाथ की कठपुतली बना रहा, तत्पश्चात् यह स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगा। चार वर्ष बाद यह अपने नये बसाये हुए नगर नवरसपुर चला गया और बीजापुर के स्थान पर इसे राजधानी बनाया।

सन् १६०१ ई० में इसके दरबार में मुगल-राजदूत **शरीफ शर्मादी** बीजापुर आया और कुछ दिनों बाद अकबर ने मीर **जमालुद्दीन अंजू** को भेजा और **शाहजादा दानियाल** के लिए इब्राहीम आदिलशाह की लड़की **सुलतान बेगम** माँगी। विलम्ब होने पर सन् १६०३ ई० में **असदबेग** आया, विवाह हो गया और इब्राहीम ने अपनी पसन्द का हाथी 'चंचल' अकबर के लिए उपहार में दिया।

सन् १६०४ ई० में अकबर की मृत्यु हो गई और जहाँगीर मुगल-सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। राज्याभिषेक के अवसर पर इब्राहीम ने अपना दूत दिल्ली भेजा। सन् १६१० ई० में **हुसेन अजू** मुगल-राजदूत के रूप मे इब्राहीम के दरबार में आया। सन् १६१२ ई० में इब्राहीम का दूत बख्तर खाँ कलावन्त अजमेर पहुँचकर जहाँगीर की सेवा में उपस्थित हुआ।

बख्तर खाँ जहाँगीर के साथ रात्रिकालीन गोष्ठियों में सम्मिलित होता और उसे इब्राहीम के द्वारा रचित ध्रुवपद-संग्रह 'नवरस' के गाने सुनाता था। बख्तर खाँ के आतिथ्य पर चार मास में एक लाख रुपया व्यय किया गया था।

इसी वर्ष सैयिद कबीर नामक एक अन्य दूत जहाँगीर की सेवा में भेजा गया, जो बीजापुर और मुगल-साम्राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों को सुदृढ करने में सफल हुआ।

अनेक कलाओं में निपुणता के कारण इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने 'जगद्‌गुरु' की उपाधि धारण की थी। उसके दरबार में रहनेवाले कवि, लेखक, राजनीतिज्ञ, सुलेख-विशेषज्ञ और सगीतज्ञ इसके शिष्य समझे जाते थे। इब्राहीम ने 'इब्राहीम' नाम से फारसी और दक्खिनी हिन्दी, दोनों भाषाओं में, रचनाएँ की। दुर्भाग्यवश, उसकी फारसी-रचना की केवल दो पक्तियाँ मिलती है। दक्खिनी हिन्दी की रचनाएँ 'किताबे नवरस' नामक ध्रुवपद-संग्रह में संकलित है। तीस वर्ष से कम की आयु में सुलतान पुस्तकालय मे संगीत-गोष्ठियाँ किया करता था, जहाँ समस्त विद्वान् साथ-साथ बैठते और साहित्य-चर्चा करते थे।[१]

इब्राहीम आदिलशाह ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग संगीत को समर्पित किया था। वह बचपन से सगीतरसिक था। विजयनगर जैसे सांस्कृतिक केन्द्र के नष्ट हो जाने से वहाँ के संगीतज्ञ आश्रयविहीन हो गये थे। इब्राहीम ने अपना अधिकाश समय उनके सग व्यतीत किया था और अपनी प्रजा की संस्कृति एव परम्परा के प्रति उसे सहानुभूति हो गई थी।[२]

जहाँगीर का कथन है कि इब्राहीम आदिलशाह ने अपनी भतीजी का विवाह बख्तर खाँ कलावन्त के साथ कर दिया। बख्तर खाँ इब्राहीम का सगीत-गुरु था।[३] इब्राहीम रात-रात-भर संगीत का अभ्यास किया करता था।[४]

इब्राहीम ध्रुवपद का विशेषज्ञ था और उसकी पुस्तक इसी शैली मे होने के कारण इतनी लोकप्रिय हुई कि जहाँगीर भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ। जहाँगीर का कथन है कि ध्रुवपद का वह प्रकार इब्राहीम आदिलशाह द्वारा आविष्कृत था। 'किताबे-नवरस' की संगीत-शैली दाक्षिणात्य न होकर उत्तरभारतीय है। यह तथ्य बताता है कि दक्षिण भारत पर उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सामाजिक प्रभाव जहाँगीर के युग से पूर्व ही कितना हो चुका था।[५]

सुलतान से पूर्व सगीतज्ञ तीन कोटियो मे विभक्त थे। 'अताई', जो सर्वश्रेष्ठ थे, 'ढाढी', जो मध्यश्रेणी के थे और 'गुनीजन', जो अन्तिम कोटि के थे। सामान्यतया ये सब 'कचनिया' या 'कलावन्त' कहलाते थे।[६]

सुलतान ने अपने बीस वर्ष के शासनकाल के पश्चात् संगीतज्ञो का श्रेणी-विभाजन इस प्रकार किया

---

१. "Kitab -I- Navras, Introduction, p. 12 : According to Zuhuri, the Sultan, though below Thirty, held the literary sittings in the library, when all the scholars sat together and had deliberation on literary topics."

२. उपरिवत्, पृ० ४६।

३. जहाँगीरनामः, पृ० ३३९।

४. किताबे नवरस, भूमिका, पृ० ४८।

५ किताबे नवरस, पृ० ४८।

६. उपरिवत्, पृ० ४९,

१. हुजूरी : ये लोग केवल सगीत ही नही, अन्य अनेक विद्याओं में निष्णात होते थे। अपनी विद्वत्ता के कारण ये निरन्तर सुलतान के साथ रहते और लाभान्वित होते थे। जब सुलतान किसी गीत की रचना करता, तब हुजूरियों के समक्ष उसका पाठ करता, जो उसको दुहरा-दुहराकर याद कर लिया करते थे और अपने से निम्न श्रेणी के सगीतज्ञो को याद कराते थे। सुलतान के समीप निरन्तर उपस्थिति के कारण ही उनकी सज्ञा 'हुजूरी' थी।

२. दरबारी · 'दरबारी' अपेक्षया अपनी न्यूनतर योग्यता के कारण हुजूरियों से नीचे थे। इन्हें दिन-रात दरबार मे बैठने की आज्ञा थी और इन्हे निरन्तर हुजूरियों से शिक्षा मिलती थी। इनका कार्य हुजूरियों से नव-निर्मित गीत सीखना और याद करना था। ये इन गीतों की शिक्षा अपनी अपेक्षा नीची श्रेणी के संगीतज्ञों को दिया करते थे। दरबार से सम्पर्क के कारण ये 'दरबारी' कहलाते थे।

३ शहरी · 'शहरी' वे थे, जो नवरसपुर में निवास करते और सगीत सीखते थे। वे यह कला 'दरबारियों' से सीखते थे। नवरसपुर (नव-निर्मित नगर) में रहने के कारण ये 'शहरी' कहलाते थे।[१]

थोड़े ही समय में प्रायः ६०० अच्छे संगीतज्ञ इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के दरबार में एकत्र हो गये थे। सन् १६०४ ई० के समीप इनकी सख्या दो-तीन हजार और सन् १६०८ ई० में तीन-चार हजार हो गई थी।[२]

इब्राहीम के गायकों मे केवल दो के नाम ज्ञात है। बख्तर खाँ की चर्चा पहले आ ही चुकी है, दूसरे गायक चाँद खाँ की चर्चा 'बसातीनुस्सलातीन' में आई है। यह सुलतान का शिष्य था और इसकी गणना हुजूरियों मे थी। यह सुलतान पर अत्यन्त प्रभाव रखता एव उसे प्रिय था।[३]

इब्राहीम आदिलशाह एक कुशल तन्त्रीवादक था। उसके वाद्य का नाम 'मोतीखान' था। इसकी प्रशंसा में सुलतान ने कई ध्रुवपद लिखे है। उसने अनेक स्थानो पर यह प्रकट किया है कि उसे तन्त्री-वादन से अधिक प्रियतर और कुछ नही है। उसका कहना है कि इस वाद्य के बजाने मे उसकी निपुणता उसपर विशिष्ट ईश्वरीय अनुग्रह है। सैनिक अभियानों मे इस वाद्य का वियोग सुलतान को खलता था।[४]

जुहरी और मलिक ने 'मोतीखान' की प्रशंसा में १२८ रुबाइयाँ लिखी है। सुलतान जब इस वाद्य को बजाने बैठता था, तब उसके दरबारी इस वाद्य को सिर झुकाते थे। यह एक सिंहासन पर रखा जाता था और उसके पीछे राजकीय पताका और डंका चलता था। साथ चलनेवाले अमीर इसके समक्ष नतमस्तक होते थे।[५]

---

१. किताबे नवरस, पृ० ५०।
२. उपरिवत्, पृ० ५१।
३. उपरिवत्, पृ० ५३।
४. उपरिवत्।
५. उपरिवत्।

रीतिकालीन आश्रयदाता

औरंगजेब :

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब **शाहजहाँ और मुमताजमहल** की सातवी सन्तान था। इसका जन्म 'दोहद' (बम्बई सूबे के पंचमहाल) में सन् १६१८ ई० के २४ अक्टूबर को हुआ था।[१]

सन् १६३६ ई० में शाहजहाँ ने इसे दक्षिण का सूबेदार बनाया था।[२] उस समय तक यह कुमार था और उस मुगल-अन्त पुर मे पला था, जहाँ रखेलियों को अलग-अलग कमरे मिले होते थे और उनकी देखरेख विशेष रूप से प्रौढा स्त्रियाँ करती थी,.. प्रत्येक रखेली के लिए दस दासियाँ रहती थी।[३]. सगीतज्ञ एवं गायिका स्त्रियो के शासन के लिए महिला सगीत-निरीक्षिकाएँ नियुक्त रहती थी। इन्हे प्रौढा स्त्रियों की भाँति तनख्वाहे मिलती थी और शाहजादों तथा शाहजादियो से भेटे भी।[४]... गुप्तचर के रूप मे इन प्रौढाओ को साम्राज्य मे निवास करनेवाली सुन्दर कुमारियों का भी पता लगाना पडता था। पता लगाने पर प्रौढा स्त्रियाँ उन्हे फुसलाकर धोखे से उस स्थान को भगा ले जाती थी, जहाँ बादशाह या शाहजादे उनको कहते थे।[५]

सूबेदारी से पूर्व औरगजेब की अट्ठारह वर्ष तक की आयु इस वातावरण में बीती थी। सन् १६३७ ई० मे औरगजेब का विवाह फारस के राजवंश मे उत्पन्न एक व्यक्ति **शाहनवाज खाँ** की पुत्री **दिलरसबानू** के साथ हुआ था।[६] औरगजेब ने अपने अट्ठारह जन्मोत्सव अन्त पुर मे देखे थे, जिनमे अन्त पुर की रमणियाँ मदिरा और सगीत के नशे मे चूर रहती थी।

औरगजेब का जीवन प्रेमलीलाओ से रिक्त नही था। उसकी एक प्रेमिकी की कहानी इतिहास मे रह गई है। प्रेमिका की चचलता, निपुणता, संगीत-कला तथा सौन्दर्य ने औरगजेब को वशीभूत कर लिया था।

इस सुन्दरी का नाम **हीराबाई** था, जो 'जैनाबादी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। **मीर खलील** नामक व्यक्ति को औरंगजेब की मौसी ब्याही थी। हीराबाई **मीर खलील** की उपपत्नी थी। दक्षिण की सूबेदारी के दिनो में औरंगजेब एक दिन बुरहानपुर गया। वहाँ ताप्ती नदी के तट पर बाग में टहलते समय मौसी की अन्य दासियों के साथ उसने हीराबाई को अवगुण्ठनहीन देखा। शाहजादे की उपस्थिति की उपेक्षा करके फलों से लदे हुए आम के वृक्ष से हीराबाई ने अत्यन्त चंचलतापूर्वक रसमय भाव से एक आम तोड़ा। इस चेष्टा से

---

१. औरंगजेब, पृ० ११।
२. उपरिवत्, पृ० १७।
३. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० १८।
४. उपरिवत्।
५. उपरिवत्, पृ० २२।
६. उपरिवत्, पृ० १८।

औरंगजेब पर हीराबाई के अद्वितीय सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा और वह उसपर मोहित हो गया। बडी अनुनय-विनय करके उसे वह अपनी मौसी के यहाँ से ले आया और जी-जान से उसपर निछावर हो गया।[1]

मौसी की अवैध सपत्नी माता के ही तुल्य हुई, उसपर मोहित होने, अर्थात् अपने मौसा की अंकशायिनी को अपनी प्रेमपात्री बनाने में औरंगजेब को तनिक भी सकोच न हुआ।

औरंगजेब की सारी प्रार्थनाओ को अनसुनी करके हीराबाई ने उसे एक दिन मद्यपान के लिए बाध्य किया। निराश होकर अन्त मे ज्यो ही औरगजेब ने प्याला ओठो से लगाना चाहा, त्यो ही हीराबाई ने उसके हाथ से मदिरा का वह प्याला छीन लिया और बोली, 'मेरा आशय केवल तुम्हारा प्रेम परखना था।'[2] 'मआसिरुल् उमरा' (तीसरे भाग) में पृ० १२३ पर यह बताया गया है कि औरगजेब हीराबाई को शराब का प्याला भरकर अपने हाथ से देता था।

इस प्रेमिका की जीवनलीला उसके यौवनकाल मे ही समाप्त हो गई थी। इसकी मृत्यु का औरगजेब को अत्यन्त दु.ख रहा। औरगाबाद मे एक सरोवर के पास उसे दफनाया गया।[3]

दारा के यहाँ नाचने-गानेवाली स्त्रियों को भी शाहजहाँ से औरगजेब ने माँगा था।[4] दारा के वध के पश्चात् उसकी एक परम सुन्दरी उपपत्नी को घर मे डालकर उसका नाम 'उदयपुरी महल' रखा था। यह जार्जिया देश की एक दासी थी। दारा की मृत्यु के समय उसकी अवस्था किशोर थी। वृद्धावस्था तक औरगजेब उससे प्रेम करता रहा और मृत्यु के समय तक इस सुन्दरी का प्रभाव औरगजेब पर रहा। इसकी सुन्दरता के प्रभाव के कारण औरंगजेब ने इस सुन्दरी के मदिरा-पान की ओर ध्यान नही दिया और इसके पुत्र के अनेक अपराध क्षमा कर दिये।[5]

शासनकाल के दूसरे वर्ष में, सन् १६५९ ई० की १३ मई को औरगजेब बडी ही धूम-धाम से सिंहासन पर बैठा और उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में बहुत बडा जलसा किया।... उसके सिंहासनारूढ होने के अवसर पर विदेशी मुसलमानी राज्यो की ओर से बधाई देने के लिए आनेवाले एलचियो का उसने राजधानी मे पूरे ठाठ-बाठ के साथ स्वागत किया।[6]

---

१. औरंगजेब, पृ० २० ।
२. उपरिवत् ।
३. उपरिवत्, पृ० २०-२१ ।
४. उपरिवत्, पृ० १४१ ।
५. उपरिवत्, पृ० १९ ।
६. उपरिवत्, पृ० १२५ ।

सम्राट् होने के पश्चात् दस वर्ष तक औरंगजेब ने गाने-बजाने का खूब आनन्द लिया। **तानसेन** के पुत्र **विलास खॉ** के दौहित्र **खुशहाल खॉ** को औरंगजेब के ही कारण शाहजहाँ के हाथो दण्डित होना पडा था,[१] उसपर औरंगजेब की कृपा हुई।[२] **हयात सरसनैन**[३] नामक गायक पर भी औरंगजेब का अनुग्रह था और 'मृदंगराय' उपाधि से युक्त **किरपा** नामक मृदंगवादक पर भी।[४]

औरंगजेब के वेतनभोगी कर्मचारी **मिरजा रोशन** जमीर ने **अहोबल** के प्रसिद्ध संगीत-ग्रन्थ 'सगीतपारिजात' का फारसी-अनुवाद किया था और **फकीरुल्लाह** ने औरंगजेब को ही समर्पित करने के लिए 'मानकुतूहल' को अनूदित किया था। औरंगजेब के ही काल, सन् १७८० ई० मे **कूकुल्ताश खॉ** की प्रार्थना पर **मिर्जा मुहम्मद** ने 'तुहफतुल् हिन्द' की रचना शाहजादा **मुहम्मद मुईजुद्दीन जहॉदारशाह** के लिए की, जिसमे एक अध्याय सगीत पर है। **इबाद मुहम्मद कामिलखानी** ने सन् १६६७ ई० मे 'रिसाल-ए-कामिलखानी', सन् १६६८ ई० मे 'असामी सुर' और सन् १६६९ ई० मे 'रिसाल: दर अमले बैनोठाठ रागिनी' की रचना की।

मौलाना शिब्ली फरमाते है · 'आलमगीर निहायत रूखा-फीका आदमी था, इसको मेलो, बाजों, नाचरंग और गाने-बजाने से नफरत थी और वह समझता था कि इन चीजों से अखलाक पर बुरा असर पडता है । **आलमगीर** ने १०७८ हिजरी (सन् १६६७-१६६८ ई०) मे हुक्म दिया कि गवैये दरबार मे आये, लेकिन गाने न पाये।[५] परन्तु, वास्तविकता यह है कि अपने-आपको आदर्श मुसलमान सिद्ध करने के लिए यह आज्ञा औरंगजेब की एक कूटनीतिक चाल के अतिरिक्त और कुछ नही थी।

यह नही भूलना चाहिए कि इस आज्ञा को जारी करते समय औरंगजेब की आयु पचास वर्ष से अधिक थी। हीराबाई जैसी गायिका की अंगुलियो पर वह नाच चुका था और उसके यौवन की उद्दाम तरंगों मे उतना उछाल भी न रहा था।

इटालियन इतिहासकार **मनुविक** लिखता है कि संगीत को बन्द करनेवाली आज्ञा का भी यही हाल हुआ, अर्थात् उसे किसी ने मान्यता न दी।[६] दरबार में गाना-बजाना भले ही बन्द हो गया हो, अन्त पुर की रँगरेलियाँ जैसी-की-तैसी थी। मनुविक का कथन है कि संगीत पर सब प्रकार के प्रतिबन्ध लगाने के बाद भी बेगमों और शाहजादियों के मन-

---

१. 'खुलासतुल्रोश आलमशाही', 'मिराति आफताबनुग:', ३६० ब०।
२. रागदर्पण, दसवाँ बाब, 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १३८।
३. उपरिवत्, पृ० १४२ : गलती से 'पुरुषनयन' छपा है।
४. उपरिवत्, पृ० १४३।
५. औरंगजेब आलमगीर पर एक नजर, पृ० २९।
६. औरंगजेब, पृ० १३५।

बहलाव के लिए वह महल में सगीत और नृत्य होने देता था और इसके लिए गायिकाओ और नर्त्तकियो को नियुक्त किया करता था।[1]

एक ओर तो यह हाल था और दूसरी ओर वह परहेजगार मुसलमान होने का स्वाग रच रहा था।

गद्दी पर बैठने के बाद ग्यारहवे वर्ष मे उसने शाही दरबार में गवैयो को अपने सामने नाचने-गाने से मना कर दिया था। कलाप्रेमियो ने आम जनता मे औरगजेब की खिल्ली उड़ाकर बदला निकाला। वह जब मसजिद को जा रहा था, तब एक शुक्रवार के दिन कोई एक हजार गवैये एकत्र हुए। उनके साथ सुरुचिपूर्वक सजे हुए लगभग बीस जनाजे थे। वे सब बहुत जोर-जोर से दु.खित होकर रोते-चिल्लाते जा रहे थे। औरगजेब ने दूर से ही उन्हे देखा और उनका रोना भी सुना। इन सबका कारण जानने के लिए उसने अपने आदमी भेजे। गवैयों ने जवाब मे कहला भेजा कि अपनी आज्ञा द्वारा बादशाह ने संगीत-विद्या को मार डाला है, इसलिए उसे अब कब्र में दफनाने को लिये जा रहे है। बादशाह ने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह बहुत ही गहरा दफनाया जाय।[2]

यहाँ यह तथ्य स्मरणीय है कि सगीत को दरबार में बन्द करने से पूर्व शिवाजी औरंगजेब की हिरासत से भाग चुके थे और 'इस्लाम' के नाम पर परस्पर द्वेष रखनेवाले मुस्लिम-सरदारों में एकता उत्पन्न करने के लिए अपने-आपको आदर्श मुसलमान घोषित करना औरंगजेब का लक्ष्य था।

ध्रुवपदों में औरंगजेब :

सिंहासन : उत्तम लग्न (है), सब शकुन (हैं), गुणी और गायक (विद्यमान है)। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और व्यास ने औरंगजेब को बादशाह बनाया। उत्सव के समय वे आनन्द-पूर्वक तख्त पर बैठे। रत्नजटित महलों मे फर्श पर बैठी हुई सुन्दरियाँ बधावा गा रही है। रीझकर शाह उनके दु:ख-द्वन्द्व दूर करते हैं। कुछ लास्य और ताण्डव करते है, बन्दीजन यशोगान करते है, पण्डित प्रतिदिन काव्य करते है। संसार के 'पीर' आलमगीर शाह सोने की झडी लगाये है। जो दारिद्र्य के फन्द में फँसे ही रहते थे, उनलोगों का निस्तार कर दिया।[3]

प्रताप : चकत्ता (चगताई बादशाह) की चमक चारों दिशाओ मे है। दिल्ली-नरेश (शत्रुओ का) दलन-मर्दन करने के लिए आया है। सिंह के समान नरेश, उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में अकड़कर और दृढ होकर बैठ गया है। सातो द्वीपो और नवों खण्डो में तेरी गति है। तेरे चढने पर बहुत बडी सेना उमड़ आई। शाहजहाँ के पुत्र शाह औरंगजेब, तेरे धौसे की पुकार से पाताल का शेर (शेष) भी काँप उठा।[4]

---

१. मुगल-राजमहलों का जीवन, पृ० २३।

२. औरंगजेब, पृ० १३३-१३४।

३. मुन्त०, परिशिष्ट अ, १२७।

४. परिशिष्ट अ, १५९।

महाबली आलमगीर आया, आया, जिसकी धाक देखने पर कोई धैर्य धारण नही करता। वह आत्मबली और तपोबली है.. उसने दक्षिण का मर्दन कर दिया, विकट गढ हिला दिये, उसकी तो दुहाई समुद्र-पर्यन्त फिरती है। चगताई-वंश का सुलतान औरगजेब शाहों का शाह है, औलिया और जिन्दापीर है।[1]

तूने 'खन्दार' को सरलतापूर्वक जीत लिया और अपने तप-तेज को प्रकट कर दिया। कौन योद्धा है, जो तुझसे युद्ध करे। अदण्ड्यों (पराक्रमी) को दण्ड देकर वश में किया, प्रेम करनेवालों को प्रेमपूर्वक वश मे किया, दुर्ग को पिजरो की भाँति तोड दिया। दस देश, नौ खण्ड और चारों दिशाओ मे शोर है। शाहजहाँ के पुत्र औरगजेब, तू महाबली है, और करोड़ो हुए, पर तुझ जैसा कोई न हुआ।[2]

वर्षगाँठ : व्यास ने गिनकर दिन शोधा है, जिसमे अच्छे ज्ञान से शुभ लग्न रखा है। शाह औरगजेब की 'बरसगाँठ' दी, कोटि-कोटि वर्षो के आयुर्बल का धारण करनेवाला बनाया। नर-नारियो के मनभाये हुए, आनन्द हुआ, जन्म सफल हुआ, मनोरथ पूर्ण हुए, तुम चिरजीवी रहो, यह घडी शुभ है। मीर (प्रधान) पीर आलमगीर का विस्तार जगत् मे हो।[3]

अो सखियो, मिलकर मगलाचार करो, सुहेला गाओ। बाजे बजे, सबकी इच्छा पूर्ण हुई। वर्षगाँठ मे सबको आनन्द प्राप्त हुआ।[4]

वसन्त (वेश्याओं के साथ) : तुम चिरजीवी रहो। सुख सचित करो। शाह, सम्पत्ति स्थिर रहे। दिल्ली का एकच्छत्र राज्य करो। दोनो पुरो में तुम्हारे यश और कीर्त्ति का आधिक्य हो। तुम्हारा आयुर्बल लोमश जैसा हो, असख्य मनोरथ पूर्ण हों, लाखों-करोडो वर्षो तक तुम्हारी आयु बढे। हमारी वाणी ऐसी सफल हो, कि तुम्हारे मन मे जो इच्छा हो, भगवान् कृपापूर्वक उसे पूर्ण करे। शाहंशाह औरंगजेब, तुमको आनन्द-युक्त असंख्य वसन्त मुबारक हो और असंख्य वर्षो तक हम मंगलामुखियों के साथ तुम धमारी खेलते रहो।[5]

विलास : तूने तो अपने-आप मे ही अनुपम चौपड़ बना लिया है। रूप, यौवन, गुण और छवि की बिसात बनाकर वशीकरण को 'घर' (वह स्थान, जो चौपड़ की गोटों के पहुँचने का अन्तिम लक्ष्य होता है) करके विविध कटाक्षो को 'पासा' बना लिया है। 'नौ' का शुभ दाँव तुझी को लेना है, औरो के चौक-चाक (चौपड के वे स्थान, जहाँ गोट पिटती नही) बाँधकर तूने चतुरतापूर्ण बाते की, इसी से सार पूजी (गोट लाल की,

१. परिशिष्ट अ, १६१।
२. परिशिष्ट अ, १६०।
३. परिशिष्ट अ, १६२।
४. परिशिष्ट अ, १६३।
५. परिशिष्ट अ, १६४।

मनोरथ पूर्ण हुआ)। सौतो से अपने प्रिय को पार्श्व में जीत लिया। शाह औरंगजेब ने रीझकर तुझे भुजाओं में भरा और कण्ठ से लगा लिया।[१]

यौवन-मदमाती लाल आँखे लजाई हुई है। प्रेमपूर्ण दृष्टि मे शाह के दर्शन का लाभ है। अँगडाइयाँ और जमुहाइयाँ ले रही है, परन्तु दिखाने के लिए भौहे चढी हुई है। इसके रसीले लाल औरगजेब अपने मतलब के साथी है।[२]

परम ज्ञान और गुण के निधान औरंगजेब मेरा तो कहना ही नही मानते अथवा यह मेरे भाग्य का ही दोष है। चुगलखोर दूती ने कान में ऐसी सीख दे दी है कि मुझे तो घर-आँगन ही सहस्र कोस हो गया है।[३]

तुम अवधि निश्चित करके आये हो। कह तो आये हो, उस दिन उसे (तुम्हारे न पहुँचने पर) धैर्य नही रहेगा। उसके बालम जब (अन्य) रमणियो में आ बैठे, तब यह रीति कैसे निबहेगी। कोई जाकर (यह हाल) कह देगी (और वह सोचेंगी कि) मुझसे अवधि निश्चित करके अन्यत्र विलम्ब कर रहे है। तुम जानते हो और शाह औरंगजेब, फिर जान लो कि जिसे आधी रात कष्ट दे रही है, वह इसका सहन कैसे करेगी।[४]

सखि, आज अवधि का दिन है, लाल इसी घडी आते है। प्रफुल्लित होकर, सुगन्ध मलकर, अंजन लगाकर, भूषण-वस्त्र धारण करके, अरगजा लगाये, तो मनभावन कार्य हो। वह देखो, मनमोहन और अन्तर्यामी बालम आ गये। विरहिणी के कारण ही वे आये है, उन्हें गति मिली है। सुखपूर्वक शाह औरंगजेब ने समझाकर गले से लगा लिया और प्रेम मे पाग कर निहाल कर दिया, तुझे दृढ सुहाग और आनन्दपूर्ण राज दोनों दिये।[५]

औरंगजेब के समकालीन आश्रयदाता

कीरतसिंह (कीरतसाह):

ये मिर्जा राजा जयसिंह के द्वितीय पुत्र थे। शाहजहाँ के राज्य के तेईसवें वर्ष (सन् १६५० ई०) मे कीरतसिंह को आठ सदी, ८०० सवारो का मनसब और जागीर मिली। मिर्जा राजा जयसिंह को आज्ञा हुई कि वह कामा पहाडी और खोह मजाहिद के विद्रोही लोगों को निर्मूल करें और अपने व्यक्ति बसाये। इस कार्य के सम्पन्न होने पर राजा जयसिंह के दो घोडोंवाले हजार सवारों को तीन घोडोंवाला किया गया और वेतन के के रूप में अस्सी लाख दाम की आय का परगना 'कस्यान' दिया गया। इस सिंह के

---

१. परिशिष्ट अ, १६५।
२. परिशिष्ट अ, १६६।
३. परिशिष्ट अ, १६७।
४. परिशिष्ट अ, १६८।
५. परिशिष्ट अ, १६९।

मनसब में भी वृद्धि हुई और मेवात की फौजदारी मिली। थोड़े ही समय मे इन्होंने अपनी दूरदर्शिता तथा कार्यदक्षता का विश्वास राजा को करा दिया। सन् १६५३ ई० मे कीरतसिंह का मनसब एकहजारी, ६०० सवार का हुआ और ये दिल्ली के अध्यक्ष हुए।

मिर्जा राजा जयसिह जब सुलेमान शिकोह का साथ छोडकर औरंगजेब से मिलने चले, तब कीरतसिह भी पिता के साथ दरबार गये और झण्डा पाकर सम्मानित हुए। मेवात के विद्रोहियों के दमन के लिए उनकी नियुक्ति हुई और कुछ दिन दिल्ली के पास फौजदार रहे। तत्पश्चात् अपने पिता के साथ शिवाजी की चढ़ाई पर गये और तीन हजार सैनिकों के साथ पुरन्दर-दुर्ग के सामने इन्होंने मोर्चा बाँधा। शिवाजी के द्वारा अधीनता स्वीकृत किये जाने पर इनका मनसब ढाईहजारी, २००० सवार का हो गया। बीजापुर की चढ़ाई मे इनके पिता ने इनकी नियुक्ति मध्य की सेना के प्रबन्ध पर की।

पिता की मृत्यु होने पर इनका मनसब तीनहजारी, २५०० सवार का हुआ और इन्हें डंका भी मिला। दक्षिण मे ये बहुत दिन तक रहे। इनका स्वर्गवास १०८४ हि० (सन् १६७३ ई०) में हुआ।[1] इनके सम्बन्ध में एक निम्नांकित ध्रुवपद मिलता है :

बरारी टोड़ी : चौताला

आली री लोचन लोचत है सौं समझौ तेउ तेउ भये एक ठौरे।
हम फूली जांनि हित चितु नवल आये रोम रोम द्रुम मोरे।
कांमत पति गई री आली तन मन सुख भयो रे।
साहि कीरति मिलीं नवल दूलह नेत्र कमल सीतल भये मानों चन्द चकोरे।[2]

इनके आश्रय में रहनेवाले कवियो का पता नही चलता।

गैरत खाँ :

यह अमीरुल् उमरा हुसैन अली खाँ का भाँजा था और उसके सूबे अजीमाबाद, पटना मे उप-सूबेदार के पद पर नियुक्त था। उमादत्उल्मुल्क अमीरुल् उमरा बहादुर फीरोज जग सैयद हुसेन अली खाँ, सैयद मियाँ अब्दुल्लाह का पुत्र और कुतुबुल्मुल्क सैयद अब्दुल्लाह का छोटा भाई था। औरगजेब के शासनकाल में यह क्रमश. रणथम्भौर तथा हिण्डोन-बियाना का शासक रहा। बहादुरशाह के मरने पर अपने भाई के साथ हुसेन अली खाँ ने फर्रुखसियर का साथ दिया, परिणामस्वरूप उसके सम्राट् बनने पर यह उसका मीर बख्शी बना।[3]

यही दोनो भाई अब्दुल्ला और हुसेन अली इतिहास-प्रसिद्ध सैयद-बन्धु थे। अब्दुल्ला हिन्दुओ का मित्र था। उनके त्योहारो मे भाग लेता था। वसन्त मनाता था।[4]

---

१. मआसिरुल् उमरा, भाग १, पृ० १०२–१०४।

२. रागमाला, पृ० ७० अ०।

३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० २६४।

४. भारत का इतिहास : ईश्वरीप्रसाद, पृ० २२३।

अपने मामाओं का प्रभाव सम्भवत, गैरत खाँ पर भी पडा था और वह भी सगीत-प्रेमी था ।

एक ध्रुवपद में गैरत खाँ को 'नवाब गैरत खाँ मुर्तजा अली शेरे खुदा' कहा गया है और उसे ईद की मुबारकबादी दी गई है ।[१]

आजम :

मुहम्मद आजम का जन्म सन् १६५३ ई० के २८ जून को बुरहानपुर में हुआ ।[२] इसकी माता फारस के राजवंश मे उत्पन्न शाह नवाज खाँ की पुत्री थी, जो सन् १६३७ ई० की ८ मई का औरगजेब के साथ ब्याही थी । यह अत्यन्त उद्धत स्त्री थी, और उसे अपने पितृवंश का बड़ा गर्व था । औरगजेब भी इससे डरता था । इसका नाम 'दिलरसबानू' था । यह सन् १६५७ ई० के ८ अक्टूबर को औरगाबाद में मर गई और मृत्यु के पश्चात् 'रूबिया-उद्-दौरानी' कहलाई ।[३]

अप्रैल, १६८२ ई० में एक सेना देकर बीजापुर-राज्य मे प्रवेश के लिए यह औरगजेब के द्वारा भेजा गया । इसने सीमान्त-प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट करके 'धरूर'-किले पर अधिकार किया ।[४] सन् १६८५ ई० मे इसने बीजापुर का घेरा डाला[५] और कठिनाइयो की चिन्ता न करके वही डट गया ।[६]

सन् १६९९ ई० मे सतारा के किलेदार सुभानजी से शर्त निश्चित की और सतारा के किले पर अधिकार हुआ । आजम के ही नाम पर 'सतारा' का नवीन नामकरण 'आजमतारा' हुआ ।[७]

सन् १७०१ ई० में यह मारवाड़ और गुजरात का सूबेदार नियुक्त हुआ ।[८] औरगजेब की मृत्यु से पूर्व ही इसने करमबख्श को मारने का विफल षड्यन्त्र किया ।[९] सन् १७०७ ई० की १३ फरवरी को यह मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया, परन्तु पिता की मृत्यु निकट जानकर मालवा की ओर अत्यन्त धीरे-धीरे चला ।[१०]

---

१. परिशिष्ट अ, २७४ ।
२. औरंगजेब, प्र० भा०, पृ० २५ ।
३. उपरिवत्, पृ० ५८ ।
४. उपरिवत्, पृ० ३३८ ।
५. उपरिवत्, पृ० ३४२ ।
६. उपरिवत्, पृ० ३४३ ।
७. उपरिवत्, पृ० ४६३ ।
८. उपरिवत्, पृ० ५०३ ।
९. उपरिवत्, पृ० ४८६ ।
१०. उपरिवत्, पृ० ४८७ ।

सन् १७०७ ई० की २० फरवरी, को औरंगजेब का देहान्त अपने शिविर में हुआ और २२ फरवरी को मुहम्मद आजम वहाँ पहुँच गया और इसने औरंगजेब का अन्तिम संस्कार किया।[१]

सन् १७०७ ई० के २० जून को उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ आजम 'जाजऊ' नामक स्थान पर मारा गया।[२]

इसकी प्रशंसा में मुबारक का एक ध्रुवपद मिलता है, जिसमें खण्डिता का चित्रण है।[३]

ध्रुवपदों में आजम :

सेहरा : सेहरा शोभित हो रहा है और सभी के मन मोह रहा है। उनके मुख पर मोतियो की लड़ी भली प्रतीत होती है, मानों चन्द्रमा अमृत बरसा रहा है। अपने छवि के बल पर चन्द्रमा की किरण जीत रखी है, एकटक रूपसागर में मानो गंगा सहस्र धाराओं मे बँटकर अनुपम दृश्य प्रस्तुत कर रही है (अथवा) स्वयं उडुगण अपनी भाँति आ विराजते है। शाह औरगजेब के पुत्र दूल्हा सुलतान आजम, चिरजीवी रहो, जिसकी शोभा देखकर देवताओं और मनुष्यों की स्त्रियाँ अपने को निछावर कर देती है।[४]

सुहागरात : मुझे आज सुहाग की रात अत्यन्त मनभावनी लगती है। दूल्हा सुलतान आजम और दुलहिन में मनभावनी बाते हुईं।[५]

विलास : तेरे नयनो की चतुरता प्रकट है, कमलो में खंजनों ने निवास किया है अथवा ये कटाक्षो के माता-पिता है, ये सुखसागर है, कमल इनपर निछावर है, मानों सरोवर में मछलियाँ कल्लोल कर रही है, अथवा कन्दली चन्द्रमा को गोद में लिये है। भौंहें डण्डी है, दोनों पुतलियाँ क्या हैं, पलड़े है, दो पल के लिए भी पलक नहीं लगती। इनमें भली भाँति रूप, यौवन और छवि की तौल है। मुख-रूपी सुख-सरिता मे नाव फिर रही है। पलके पवन है, चाह की नदी में फन्दे खोल दिये है। हँसते है, मुँदते है, खुलते है, फिरते है। शाह आजम भाण्डारी है, उसे त्रिविध (कटाक्ष-रूपी) अमोल हीरा और मोती देते हैं।[६]

तेरे नेत्र अपनी पुतलियों के कारण तीखे है, सब सौतों के हृदय मे चुभते है, लालन के मन को भाते है। उन्होंने मन, वचन, कर्म में इन्हें धारण कर लिया है। ये नयन अत्यन्त प्रवीण और अनियारे हैं। ये काजल की भी अपेक्षा काले और उजाले की भी

---

१. औरंगजेब, प्र० भा, पृ० ४८८।

२. भारतवर्ष का इतिहास, तृ० भाग, पृ० ३१६।

३. रा० द०, भाग १, पृ० २९६।

४. परिशिष्ट अ, १७७।

५. परिशिष्ट अ, १७६।

६. परिशिष्ट अ, १७१।

अपेक्षा उज्ज्वल है। बड़े-बड़े है, झपक-झपक जाते है। शील, सकोच और लाज की चेष्टाओं से पूर्ण है, जिन्हे देखकर आजम इनपर मुग्ध है और उन्हे इनके विरह से दुःख होता है। भौंरे के समान चमकदार और चटकीले ये नेत्र देखते ही चित्त चुरा लेते है.. मेरी ओर निडर हो-होकर देखते है, कटाक्षों से पूर्ण यह नेत्र छवि के भार से झुके है। तेरे नेत्र धन्य है, जिन्हों ने कुरग (हरिणों) को कुरग (बदरंग, शोभाहीन) कर दिया, मीनो को क्षीण बना दिया। ये निर्मल कमलों का सेवन करनेवाले खंजरीट जैसे है.. मतवाले होकर झपक रहे है।[१]

तुम जो मुझसे छिपाव करते हो, तो मै नहीं जानती। प्रियतम, तुम्ही अधिक चतुर और मैं अज्ञान हूँ। करोड़ों यत्न करने के पश्चात् तुम्हारे वे गुण देखे जाते है, कामवश होकर जो तुम घर-घर करते फिरते हो। बहुत समझदार हो, युवतियों के साथ रग करते हो, अटपटी पाग में पेच लटपटे हो रहे है। मन्द वचन बोलते हो, आँखें स्वय कहानी कह रही है। छत्रपति शाह आजम की बाते विचित्र है, जब मै जान पाई, तब दौडी। मन मे मुस्करा रहे हो, मन, वचन और कर्म से मै तुम्हे पहचान गई, अब तुम्हारी घात में नही आती।[२]

विपत्ति में पीरों की स्तुति : तुम सारे पीर मिलकर छत्रपति शाह आजम को चिरंजीवी करो। शाह, ये तुम्हारे सेवक है और मन, वचन, कर्म से तुम्हारी शरण आये है, अब इनकी कठिन पीडा का हरण तुम ही करो।[३]

शंकर की स्तुति : तुम्हारे अग मे भस्म भूषण है, कर में चक्र (?) है, गंगा शिर पर है। विरूप शिव, सामूहिक रूप मे डमरू बज रहा है और भारी फणीश फुकार रहा है।.. महादेव, तुम धन्य हो, देवाधिदेव हो, ऋद्धि-सिद्धि के दाता हो, शाहंशाह आजम के लिए सुखकारी होओ।[४]

बेदारबख्त :

यह औरंगजेब का पौत्र तथा मुहम्मद आजम का पुत्र था। औरंगजेब को यह अत्यन्त प्रिय था। खेलना-दुर्ग पर इसने किलेदार **परशुराम** को रिश्वत देकर सन् १७०२ ई० के ७ जून को अधिकार किया था। मराठों ने सन् १७०६ ई० में गुजरात पर आक्रमण करके बेदारबख्त तथा उसके पिता को हराया था।

सन् १६८८ ई० में जयपुर-नरेश **विष्णुसिंह** की सहायता से बेदारबख्त ने जाटो के 'सिनेसिनी'-दुर्ग पर अधिकार किया था।

औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब **मुअज्जम** और **आजम** में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ, तब बेदारबख्त अपने पिता के साथ ही मारा गया।

---

१. **परिशिष्ट अ, १७५।**

२. **परिशिष्ट अ, १७४।**

३. **परिशिष्ट अ, १७०।**

४. **परिशिष्ट अ, १७३।**

संगीत की ओर इसकी रुचि थी, एक रचना में इसके विवाह का वर्णन इस प्रकार है :

सुघर बना बनि आईलो गाओ सब मिलि बिदारबक्स पियारो ।
चिर चिर जीओ साहि आजम को नन्दन जौलौं धरनि ध्रुअ तारो ।।[1]

बेदारबख्त का विवाह मुख्तार खाँ कमरुद्दीन की लड़की के साथ १५ मुहर्रम, १०९८ हिजरी (२६ जुलाई, १६८६ ई०, रविवार) को हुआ और वधू को 'मोती बेगम' की उपाधि मिली।

उपर्युक्त गीत 'बनरा' है, जिसकी रचना सम्भवत. अन्तःपुर-निवासिनी किसी गायिका ने की है।

बहादुरशाह प्रथम :

इसका वास्तविक नाम 'मुहम्मद मुअज्जम' था और उपनाम 'शाहआलम प्रथम'। इसका जन्म सन् १६४३ ई० के ४ अक्टूबर,को बुरहानपुर मे हुआ था।[2] इसकी माता नवाब-बाई (रहमतुन्निसा) कश्मीर के अन्तर्गत 'राजौरी'-राज्य के राजा 'राजू' की पुत्री थी और इसका जन्म पहाड़ी राजघराने मे हुआ था।[3] बहादुरशाह ने अपने-आपको सैयद सिद्ध करने के लिए अपनी माँ की झूठी वशावली तैयार कराई थी। नवाबबाई की मृत्यु सन् १६९१ ई० में, दिल्ली में हुई।[4]

बहादुरशाह की मृत्यु सन् १७१२ ई० की १८ फरवरी को हुई।[5]

इसकी नियुक्ति औरंगजेब ने महाराज जसवन्तसिंह के साथ दक्षिण मे की थी। इसकी सिफारिश पर औरंगजेब ने सन् १६६८ ई० मे शिवाजी को 'राजा' कहना स्वीकृत किया था। रुहेला-सेनापति दिलेर खाँ के साथ इसका नीति-सम्बन्धी मतभेद हो गया था।[6]

सन् १६८५ ई० में यह हैदराबाद पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। पराक्रम और कूटनीति के प्रयोग से इसने हैदराबाद पर अधिकार किया और कुतुबशाह के साथ मुगल-सम्राट् की सन्धि कराई।[7]

सन् १६८७ ई० में औरगजेब ने इसे सपरिवार कैद कर लिया, जबकि मुगल-सेना का घेरा गोलकुण्डा पर पड़ा हुआ था।[8]

---

१. रागमाला, पृ० १४३ अ।
२. औरंगजेब, भाग १, हिन्दी-संस्करण, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई–४, प्रथम संस्करण, सन् १९५१ ई०, पृ० २३।
३. उपरिवत्, पृ० १८।
४. उपरिवत्, पृ० १९।
५. उपरिवत्, पृ० २३।
६. उपरिवत्, पृ० २८२।
७. उपरिवत्, पृ० ३५६।
८. उपरिवत्, पृ० ३५९।

सन् १६९५ ई० में औरंगजेब ने इसे अपने साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग पंजाब, सिन्ध तथा बिलोचिस्तान सौप दिये थे ।[१]

सन् १७०७ ई० के २० जून को जाजऊ नामक स्थान पर युद्ध हुआ । इसकी विजय हुई और यह 'बहादुरशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा ।[२]

इसने राजपूतों, सिखों, मराठो और जाटों को युद्ध में परास्त करके भी सबके साथ मित्रता का व्यवहार किया । उदयपुर और जोधपुर को स्वतन्त्रता दी । सम्भाजी के पुत्र साहूजी को बन्दीगृह से मुक्त किया ।[३]

बहादुरशाह की मृत्यु शिविर में ही हुई थी ।

ध्रुवपदों में बहादुरशाह :

स्तुति तुम ही 'करीम' (दयालु) 'रब', कर्त्ता, घट-घट में पूर्ण तथा जल-थल मे भरतार हो । तुम्ही कुदरत और तुम्ही कादिर हो, तुम्ही शाह बहादुर के रूप मे नर हो ।[४]

विलास : नया पवन है, नये बादल हैं, नई वर्षा है, नया साजन है, नया स्नेह है, हाथों मे नई मेंहदी रची है । प्यारी नवेली है, उसकी कुसुमी साड़ी नई है, माँग मोतियो से भरी है और अगिया उत्तु ग है । नेह नया है, मेह नया है और नई भूमि पर अत्यन्त सुखपूर्ण संग है । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुम्हारी साँवली सूरत है और तुम्हारा रँगीलापन मधुकर जैसा है ।[५]

मेरी ओर लाल ने छिपकर तनिक-सा देखा था, वह सौतो मे प्रकट हो गया, वे मेरी ओर देखते थे, .. क्या कहूँ, कुछ कहते नही बनता, संकोच का आनन्द मैंने हृदय मे सहा । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने हँसकर चीर पकड़ लिया ।[६]

इन मेरी आँखो ने मुझसे वैर किया, स्वयं जाकर दरस-परस किया, मिल आई और मेरा मन बाँध लिया, देखते ही उनके वश मे हो रही, ऐसा लाभ उठाया । शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने रसपूर्वक रास किया ।[७]

---

१ औरगंजेब, भाग १ (बम्बई-संस्करण), पृ० ४१० ।

२. भारत का इतिहास, तृ० भाग, पृ० २१६ ।

३. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या, लेखक : राजेश्वरप्रसादनारायण सिंह, १६५७ सं०, आत्माराम ऐण्ड सन्स, दिल्ली, ६, पृ० १७ ।

४. परिशिष्ट अ, १७८ ।

५. परिशिष्ट अ, १७६ ।

६. परिशिष्ट अ, १७८ ।

७. परिशिष्ट अ, १८४ ।

तुम सावन में आये, मै तुम पर बलि-बलि जाती हूँ। मै तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी और सेविका हूँ। या तो तुम स्वय आये या मेरा भाग्य तुम्हें ले आया। तुमने मुझ विरहिणी की पीडा दूर की। शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, तुमने मुझे जीवित रखने की भली सुध ली।[1]

कही काजल लगा है, कही पीक की रेखा है, कही शरीर पर नखो की रेखा शोभित हो रही है। एक तो, स्वय चतुर हो, नेत्र सत्य प्रकट किये दे रहे है। तुम्हारी प्रतिज्ञा अवधि के सम्बन्ध मे इतनी सच्ची है कि प्रिय, प्रात काल अपनी यह शोभा दिखाने आये हो।[2]

जबतक सिर से पैर तक देह न भीग जाय, मेरे आँगन मे ही खडे रहो.. स्नान कर लो, और ये वस्त्र उतार कर मेरे घर की देहली पर पैर रखो। तुम्हारे अधरो पर अंजन और ललाट पर महावर है। ओ चतुर, चतुराई न करो। शाह बहादुर, तुम बहुनायक हो, संकोच न करो, दर्पण ले लो।[3]

जहाँदारशाह :

सन् १७१२ ई० में बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् **मुईजुद्दीन जहाँदारशाह** गद्दी पर बैठा। आजम के पुत्र **फर्रुखसियर** ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। सन् १७१३ ई० मे जहाँदारशाह मार डाला गया।

जहाँदारशाह ने सम्राट् बनते ही दिल्ली-दरबार को कलावन्तो और नर्त्तकियो का अखाडा बना दिया था और उन्हें बड़े-बडे माही मरातिब आदि प्रदान कर दिये थे। इसे अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर ढोलक इत्यादि वाद्ययन्त्र अधिक प्रिय थे। रासरंग के प्रति इसकी अधिक रुचि थी। यह बक्की एवं झक्की भी बहुत था।[4]

जहाँदारशाह की प्रेयसी नर्त्तकी **लालकुँवरि** के सम्बन्धी अमीर बनाकर उच्च पदो पर नियुक्त कर दिये गये थे।... रात्रि मे नीच गायक राजप्रासाद में बादशाह के साथ मदिरापान करते और उन्मत्तावस्था मे जहाँदारशाह का अपमान करते, पर वह लालकुँवरि के भय से कुछ न कहता था।[5] इन दुर्गुणो को होते हुए भी इसमे एक विशेषता यह थी कि यह बड़ा वीर था। यद्यपि यह युद्ध मे पराजित हुआ, तथापि इसने रणभूमि मे असीम वीरता का परिचय दिया था।[6]

'मोजद्दीन' (मुईजुद्दीन) की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद भी प्राप्त होते है।[7]

---

१. परिशिष्ट अ, १८५।
२. परिशिष्ट अ, १८६।
३. परिशिष्ट अ, १८७।
४. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ६९।
५. उपरिवत्, पृ० ३०३-३०४।
६. उपरिवत्, पृ० ६९।
७. परिशिष्ट अ, १९४ से २०० तक।

ध्रुवपदों में मुईजुद्दीन जहाँदारशाह :

प्रताप : छत्रपति नरेश आया, आया। देश-देश में खलबली है।... 'हल-हल' शब्द हो रहा है, सेनाएँ जमकर चलती है और तेरे भय से मर्यादा की रक्षा करती है।... हाथ में तेरे धनुष धारण करने पर शत्रुओ का धैर्य जाता रहता है, वे भाग-भागकर घर में पत्नियों के पास जा छिपते है। अत्यन्त प्रचण्ड, श्रेष्ठ एवं बलवान् भुजाओ से तूने अनेक को खण्ड-खण्ड कर दिया, पराक्रमियो को दण्ड दिया, शत्रुओ को स्वय निकलकर धराशायी कर दिया। सुभट, शूर, सामन्तो को आनन्द हुआ। यशोगान हो रहा है, शाह मुईजुद्दीन तुम चिरंजीवी रहो।[1]

मुहम्मदशाह :

जहाँदारशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७१३ ई० मे दिल्ली के सिहासन पर फर्रूखसियर का अधिकार हुआ। सन् १७१९ ई० मे फर्रूखसियर षड्यन्त्रों के परिणाम-स्वरूप मारा गया और बहादुरशाह का एक पोता **मुहम्मदशाह** सिहासनासीन हुआ। **नादिरशाह** का प्रसिद्ध आक्रमण मुहम्मदशाह के राज्यकाल सन् १७३९ ई० में हुआ। सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई।

मुहम्मदशाह की प्रसिद्धि संगीतज्ञों मे 'रँगीले' के नाम से है। मुहम्मदशाह के प्रिय कलाकारों में निम्नांकित है :

१. **नेमतखाँ (सदारंग)** 'यह परमोल खाँ (निमोल खाँ?) के पुत्र और संगीतज्ञों में मूर्द्धन्य थे। इनके वीणा-वादन की प्रशंसा शब्दों द्वारा नही हो सकती। इन्होंने बडी रंगीनी के साथ ध्रुवपदों, ख्यालों, तरानो एवं दूसरे प्रबन्धो की रचना की है। आरम्भ में **मुहम्मद मुअज्जमशाह** की सभा मे तत्तारी कव्वाल, बगाली नटवा, **देवदत्त कवीश्वर** (महा-कवि देव) और अन्य कलाकारों से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् जहाँदारशाह के दरबार में सम्मान एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। दिल्ली-सम्राट् मुहम्मदशाह ने इनपर अत्यन्त अनुग्रह किया। मुहम्मदशाह के राज्यकाल के अन्तिम समय मे इनका देहान्त हुआ।[2]

२. **फीरोज खाँ (अदारंग)** : ये नेमत खाँ के शिष्य एवं जामाता थे। अपने युग के सर्वश्रेष्ठ गायक थे, जो कठोर साधना, प्रौढता और रंगीनी इनके गाने में देखी गई, उसका अस्तित्व दूसरों में मिलना कठिन है। वीणा-वादन में, अन्यतम एवं अनुपम थे। ध्रुवपद, तरानः एवं ख्याल लिखने में पूर्ण अधिकार था।[3]

---

१. परिशिष्ट अ, १९५।

२. मिराति आफताबनुमः, पृ०२९३ अ०।

३. उपरिवत्, पृ० २९३ ब०।

मुहम्मदशाह की प्रशंसा में लिखित अथवा उसके नाम से सम्बोधित अनेक ध्रुवपद मिलते हैं, जिनमें अनेक के रचयिता सदारंग और अनेक के रचयिता अदारंग है । मुहम्मद-शाह की मुद्रा से अंकित 'पद' भी इन्ही दोनों कलाकारों की कृति माने जाते है ।

एक ध्रुवपद मे 'अदारंग' अपना गुरु 'सदारग' को कहते है और उनका कथन है कि गुण-प्रदर्शन के लिए 'सदारग' का नाम लेकर गाना चाहिए ।[१] 'मिराति आफताबनुमः' के लेखक ने फीरोज खाँ की जो प्रशंसा की है, उससे यही प्रतीत होता है कि फीरोज खाँ की ही उपाधि 'अदारग' थी ।

मुहम्मद करम इमाम ने 'अदारंग' और 'सदारग को परस्पर सहोदर लिखा है ।[२] परन्तु, उसके ऐतिहासिक विवरण अनेक स्थानों पर अप्रामाणिक है ।

३. **इंछाबरस :** इनके विषय मे विशिष्ट विवरण प्राप्त नही होता। इनके ध्रुवपदों में 'इछावर' या 'इछाबरस' छाप दिखाई देती है । कुछ ध्रुवपदों मे ये मुहम्मद शाह को सम्बोधित करते है ।[३]

४. **लाला भवानीदीन पखावजी :** इन्हें 'दासजी' भी कहा जाता है । इन्हें तीन लाख से भी अधिक 'परन' याद थे । मुहम्मदशाह ने इस तथ्य की परीक्षा ली थी ।[४]

५. **हुसेन खाँ पखावजी :** भवानीदीन पखावजी से हारने के कारण इसे अपना दाहिना हाथ काट डालना पड़ा था ।[५]

६. **रसूल खाँ कव्वाल :** मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, इसने ख्याल गाकर अदारंग और सदारंग का रंग फीका कर दिया था ।[६]

७. **ख्वाजः मीर 'दर्द' :** उस समय के मूर्द्धन्य सूफी थे। भारतीय सगीत के इतने बड़े उस्ताद थे कि गवैये और कलावन्त अपनी रचनाएँ सुधार के लिए उनकी सेवा में प्रस्तुत किया करते थे ।[७]

८. **मीर मुहम्मदी 'रंज' :** ख्वाजः मीर 'दर्द' के दौहित्र थे। बड़े-बड़े उस्ताद उनके सामने कान पकड़ते थे और खाक चाटकर नाम लेते थे ।[८]

---

१. परिशिष्ट आ, १२४ ।
२. मअदनुउल् मूसिकी, पृ० २३६ ।
३. परिशिष्ट आ, १३६ से १४१ तक ।
४. मअदनुउल् मूसिकी, पृ० २३८ ।
५ उपरिवत्, पृ० २३६ ।
६ उपरिवत्, पृ० २३६ ।
७. भूमिका, नादिराँनिशाही, पृ० ३ ।
८ उपरिवत्, पृ० ३ ।

ध्रुवपदों में मुहम्मदशाह :

संगीत-कृषि : 'आकार' भूमि है, उसमे 'गमक' पवन है, उसके झकोरो से 'राग' की झड़ी लगी, 'तान' रूपी खरी बूँदें बरस रही है। 'आरोही-अवरोही'-रूपी दोनों बैल है, 'स्वर'-रूपी हल से शुद्ध करके 'श्रुति'-रूपी बीज बोया गया, उससे 'रीति'-रूपी हरी बेल बढ़ी। 'सप्तस्वर'-रूपी शाखाएँ उत्पन्न हुई, 'अलंकार'-रूपी पुष्प लगे, 'ताल'-रूपी पत्ते लगे, मूर्च्छना के अनुसार चारों तुकें दी, चारों दिशाओ मे 'नाद' की यह खेती भर गई। गायक, गुणी और गन्धर्व तीनों किसान इस खेती को ग्रामो में बटोरकर वाणिज्य करने के लिए लाये। छत्रपति मुहम्मदशाह ने अपनी आँखो से देखकर और कानों से स्वाद लेकर सबके मन की इच्छा पूरी की।[1]

विलास : ओ प्यारे मुहम्मदशाह, जैसे-तैसे सुन्दरी की चौक और झिझक मिटी है। ज्यों-ज्यों समझाती रही, त्यों-त्यों उसके हृदय मे क्षण-क्षण अधिक धकधकी होती है, जी में धडक रही है। अष्टयाम की दृष्टि शोभित हो रही है।[2]

तुम उन्ही के पास जाओ, जिनके साथ सारी रात जागे हो। रंगरस में पगे हुए तुम सबेरे ही मुझे खिझाने आ गये। चोवा, चन्दन, इत्र, अरगजा लगाया और रंग-रंग के वस्त्र धारण किये। प्रवीण मुहम्मदशाह प्यारे, तब ही भले लगे।[3]

होरी : स्वर में सनी हुई तानों से होरी गाओ, गा-गाकर शाह को रिझाओ। बाजे चतुरतापूर्वक खूब तेज बजाओ, नीके फाग रचाओ। इस प्रकार, मुहम्मदशाह को रिझा-कर भाँति-भाँति से मान मनाओ।[4]

अरी नागर, मैं तुझे कबतक सीख दूँ, तू तो होरी खेलते-खेलते पल-पल मे रूठती है, उन रस और गुण के आगार का मन नहीं रखती। समुद्र के समान इतना गहरा मान न करें। इस बार यदि कोई मुहम्मदशाह को मना लाये, तो मै कच्ची गागर भरूँगी।[5]

यह देखो, गुलाल, अबीर और अबरख की धूम कहाँतक चली गई, जिसमें सभी के नेत्र छिप गये है। फूलों की मूठें छूट रही है, एक कुमकुमा मार रही और एक रोकती और गुमान में भरकर गाली देती है।[6]

चतुर, सुघर, लाल मुहम्मदशाह रंगमहल में होरी खेलने आये। बन-ठनके चले, फेंट में अबीर-गुलाल है, रंग भर-भर के पिचकारियाँ छोड़ो।[7]

---

१. परिशिष्ट अ, २०१।
२. परिशिष्ट अ, २०३।
३. परिशिष्ट अ, २०५।
४. परिशिष्ट अ, २०६।
५. परिशिष्ट अ०, २०७।
६. परिशिष्ट अ०, २०८।
७. परिशिष्ट अ०, २०९।

आज अनुरागपूर्वक लालन मेरे सौभाग्य से मेरे महल में होरी खेलने आये हैं। अंगों में सुगन्ध लगा-लगाकर और मुँह से अच्छी तान गा-गाकर मानिनी का जीवन सफल होगा और रंगरस की सेवा करूँगी। रसीले लाल मुहम्मदशाह, दयालु होकर मुझपर कृपा कीजिए, सौतें मेरा क्या करेगी ? मेरे हितू लोगों ने अत्यन्त सुख पा-पाकर मनचीते कार्य किये, चाचर मची, अत्यन्त चहल-पहल हुई।[1]

अमीर खाँ :

यह **मीर मीरान** का पुत्र था। इसका वास्तविक नाम **मीर इस्हाक** था। आरम्भ में, इसकी पदवी **अजीजुल्लाह खाँ** थी। मुहम्मद फर्रूखसियर के साथ जहाँदारशाह के युद्ध में अच्छी सेवा की, अतः विजय के पश्चात् शस्त्राध्यक्ष और शिकारी चिड़िया-घर का दारोगा नियत हुआ।

मुहम्मदशाह के दूसरे वर्ष जब **हुसेन अली** खाँ बादशाह के साथ दक्षिण को रवाना हुआ, तब यह कुतुबुलमुल्क के साथ दिल्ली चला आया। इसके अनन्तर जब कुतुबुलमुल्क सुलतान इब्राहीम को साथ लेकर बादशाह का सामना करने पहुँचा, तब उक्त खाँ हरावल में नियत था। कुतुबुलमुल्क के पकडे जाने पर यह एक बाग में जा छिपा। दुर्दशा में पड़े हुए सुलतान इब्राहीम को यह बाग में ले आया और उक्त सुलतान को बादशाह के पास ले जाकर बादशाह का कृपापात्र हो गया। इस राज्य मे बहुत दिनों तक यह तीसरा बख्शी रहा।

बादशाह विजय-वासना मे मस्त था। अमीर खाँ की बाते उसे बहुत पसन्द आई और इसलिए यह बादशाही मजलिस का एक सभ्य हो गया। क्रमश. इसको अच्छा मनसब और 'उमदतुलमुल्क' की पदवी मिल गई। बादशाह स्वय कुछ काम नही देखते थे, इसलिए दूसरे सरदारो ने ईर्ष्या करके बादशाह से बहुत चुगली खाई। फलतः, सन् ११५१ हि० (सन् १७३९ ई०) में यह इलाहाबाद का शासक हो गया। सन् १७४३ ई० में इसे बुलाकर इसपर अधिक कृपा की गई। अवध के सूबेदार **सफदरजग** को इसकी सिफारिश पर बुलाकर तोपखाने का दारोगा बनाया गया। इन दोनों के कहने से बादशाह ने **मुहम्मद खाँ रुहेला** पर चढाई की। सन् १७४६ ई० में यह बुलाये जाने पर दरबार पहुँचा, तो इसके एक नौकर ने इसे जमघर[2] से मार डाला।

यह हाजिरजवाबी और विनोद में एक था। बहुत-से गुणों में कुशल था। कवि भी था और इसका उपनाम 'अंजाम' था।[3]

इसकी प्रशंसा में 'इंछाबरस' का एक ध्रुवपद प्राप्त है।[4]

---

१. परिशिष्ट अ०, २१०।

२. अस्त्र-विशेष।

३. मआसिरुल् उमरा, प्रथम भाग, पृ० २४८-२४९।

४. परिशिष्ट अ, २७३।

कमरुद्दीन खाँ बहादुर एतमादुद्दौला :

इसका वास्तविक नाम मीर मुहम्मद फाजिल था। औरंगजेब के राज्यकाल के अन्त मे इसे यथोचित मनसब और 'कमरुद्दीन खाँ' की पदवी मिली थी। फर्रूखसियर के समय मे यह अहदियो का बख्शी हुआ। शनै:-शनै: यह प्रधानमन्त्री के पद पर पहुँच गया। यह अहमदशाह दुर्रानी से युद्ध करने के लिए ससैन्य सरहिन्द गया। वही सन् १७४८ ई० में इसकी मृत्यु हुई।[1]

इसके नाम से सम्बोधित एक ध्रुवपद प्राप्त है। यथा :

ईमन कल्यान सूरफाक्ता

अबदुलनबी गुननिधान की गरे गावै बजावै उपजावै लावै
सप्त धाई संगीत की तान ...।
कहाँ लग बरनौं अनगुन गंभीर अटल मीर धीर 'मुहम्मद' सुजान सुलितान।[2]

अहमदशाह :

सन् १७४८ ई० में मोहम्मदशाह रँगीले की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह मुगल-सम्राट् हुआ। इसका सारा समय भोग-विलास मे जाता था। शासन-कार्य में इसकी अयोग्यता के कारण जमीन्दारो ने मालगुजारी देना बन्द कर दिया और राजकोष खाली हो गया। वेतन न मिलने के कारण सेना ने काम करना छोड दिया। दरबारी अमीरो में दो दल, ईरानी और तूरानी थे, जिनमे परस्पर संघर्ष था। सम्राट् ने ईरानियों के नेता सफदरजंग को पदच्युत करके इन्तजामुद्दौला को वजीर बनाया। थोड़े दिनों के पश्चात् बादशाह के मीर बख्शी इमाद ने मराठों की सहायता से बादशाह को सिहासनच्युत कर दिया और उसकी आँखे फोड़वा दी।

सुरभावन और आलम नामक ध्रुवपदकारों ने अहमदशाह की प्रशसा मे ध्रुवपद लिखे हैं।[3]

समकालीन आश्रयदाता

माधवसिंह (जयपुरनरेश) · मृ० सन् १७६८ ई० :

ये महाराज जयसिंह सवाई के कनिष्ठ पुत्र थे। अपने बडे भाई ईश्वरीसिंह के राज्यारूढ (सन् १७४३ ई०) होने पर मेवाड के राना और मराठों की सहायता से स्वयं राज्य लेने का प्रयत्न करने लगे। सूरजमल की सहायता ईश्वरीसिह को प्राप्त थी। युद्ध हुआ और ईश्वरीसिह ने अपने भाई को पाँच परगने देना स्वीकार किया। सन् १७५० ई०

---

१. हि० वी० का०, पृ० २९१।
२. रा० मा०, १२१ अ।
३. रा० क०, भाग १, पृ० १९९–२८८।

में ईश्वरीसिंह ने आत्महत्या कर ली और राज्य **माधवसिंह** को मिला।[1] **गुलाब** ने अपने ध्रुवपदों में इनको सम्बोधित किया है।[2] सन् १७६८ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

आलमगीर सानी :

मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७४८ ई० में अहमदशाह सिहासनारूढ हुआ। सन् १७५४ ई० मे मीर बख्शी इमाद ने उसकी आँखे फोडवाकर उसे सिंहासनच्युत कर दिया और जहाँदारशाह का पुत्र **मुहम्मद अजीमुद्दौला** 'आलमगीर सानी' से नाम के गद्दी पर बैठा।

'अदारंग' के दो-एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिनमें **आलमगीर सानी** के सिंहासनारोहण की चर्चा है।[3]

ध्रुवपदों में आलमगीर सानी द्वितीय :

अभिषेक : आलमगीर द्वितीय तख्त पर बैठे, हिन्द में आनन्द हुआ। सब ओर धाक फिर गई, हुक्म माना गया। पालकी मे सुन्दर रानी को बिठाकर आगे किये हुए चारों ओर से (राजा) हाथ जोड़कर चले। अदारंग कहते हैं कि अल्लाह की मिहरबानी है, 'अद्ल' (न्याय) और इन्साफ का वर्णन कहाँतक करूँ।[4]

भाग्यवती रानी तथा प्रतिपालन करनेवाला आलमगीर करतार ने बादशाह बनाया है। प्रजा सुखी हुई, दु.ख का नाम-निशान तक चला गया, आनन्द बढ़ा।... 'अदारग' देखता है, परन्तु बुद्धि को उसके समान और कोई दिखाई नही देता, जिह्वा थकित है।.. जबतक गंगा-यमुना में जल है, तबतक छत्र और राज्य अविचल रहे।[5]

गायकवत्सलता : शाहंशाह, हमारी अर्ज सुन लीजिए, आपके यश को सुनकर जो स्थान-स्थान से दौड़े आये है। आपका तेज देखते ही वे निहाल हो गये, सब दु:ख दूर हुए। गाते है, रिझाते है, हाथी-घोडे इनाम मे पाते है, 'रब' (ईश्वर) ने चारो ओर तुम्हारा प्रताप फैलाया है। अदारंग तुम्हारा ही कहलाता है, दिन-रात तुम्हारा ही नाम जपता है। कृपा करके कब याद करोगे।[6]

विलास : मेरी भुजा और बाईं आँख फड़क रही है, उन्होने आने के लिए कहा था। जान पड़ता है, वे आ रहे है। अदारग, ऐसा शकुन विचारो, जो मुझे आलमगीर शीघ्र मिले।[7]

---

१. हि० वी० का०, पृ० ३१५–३२२।
२. रागमाला, १७६ अ, परिशिष्ट आ, १४६।
३. परिशिष्ट अ, २१२–२१३।
४. परिशिष्ट अ, २१२।
५. परिशिष्ट आ, १२१।
६. परिशिष्ट आ, १२२।
७. परिशिष्ट अ, २१३।

समकालीन आश्रयदाता

सूरजमल (सन् १७५५–१७६३ ई०) :

सूरजमल जाट-नरेशों मे अत्यन्त प्रतापी हुए है। इनके समय में जाटों की शक्ति अत्यन्त बढ़ गई थी और मध्यभारत के 'गोहद' स्थान से मथुरा जिले के 'छाता' नामक स्थान तक की सज्ञा 'जाटवाडा' हो गईथी।[१]

सूरजमल ने पाँच हजार जाटों को घेरकर मुगल-फौज का विध्वस कर दिया था। मीर बख्शी ने आश्वासन दिया कि शाही सेना पीपल के पेडों को न काटेगी, पीपल की पूजा न रोकेगी और नारनौल के आगे न बढेगी।[२]

सन् १७५७ ई० में मरहठों और जाटों मे सन्धि हो गई और मरहठो ने सूरजमल की सहायता से रुहेलो को पराजित करके 'दोआब' छीन लिया था।[३]

सदाशिवराव भाऊ ने जब अफगानो के साथ सन्धि-चर्चा चलाई, तब उनके साथ सूरजमल का मतभेद हो गया। सदाशिव की सन्धि भी अफगानो के साथ न हुई और सन् १७६० ई० मे पानीपत का मैदान मराठों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।[४]

जुलाई, १७६१ ई० मे सूरजमल ने आगरा-दुर्ग पर अधिकार कर लिया और कुछ ही दिनो के पश्चात् मेवात पर।[५]

सन् १७६३ ई० के २५ दिसम्बर को रुहेलों ने सूरजमल पर ऐसी स्थिति मे आक्रमण किया, जबकि उनके साथ इने-गिने सैनिक ही थे। इस अवसर पर सूरजमल को वीरगति प्राप्त हुई।[६]

सूरजमल का ही दूसरा नाम 'सुजानसिंह' है। सूदन कवि ने 'सुजानचरित्र' मे उन युद्धो का वर्णन किया है, जो उन्होने सन् १७४५ से १७५३ ई० तक किये थे।[७]

सूरजमल के पिता बदनसिंह को जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह ने टीका, निशान, ढोल और पचरगी ध्वजा देकर 'व्रजराज' की उपाधि से विभूषित किया था।[८] सन् १७५२ ई० में मुगल-सम्राट् अहमदशाह ने बदनसिह को 'महेन्द्र' और 'राजा' की उपाधि से अलंकृत किया था। ये अपने-आपको यादववशीय कहते थे।[९]

---

१. व्रज का इतिहास, पृ० १८३, १८४।
२. उपरिवत्, पृ० १८४।
३ उपरिवत्, पृ० १९०।
४. उपरिवत्, पृ० १९०–१९१।
५. उपरिवत्, पृ० १९१।
६. उपरिवत्।
७. हि० वी० का०, पृ० ३१।
८. उपरिवत्, पृ० ११३।
९. परिशिष्ट अ, २७१।

जादो-नरेश (यादव-नरेश) की वीरतापूर्ण प्रशस्ति में प्राप्त होनेवाले ध्रुवपद पराक्रमी नरेश 'सूरजमल' से ही सम्बद्ध प्रतीत होते है। उनमे कहा गया है :

'हे यादव-नरेश, तुझसे कौन लड़े, कौन तेरे सम्मुख अड़े और कौन धैर्य धारण करे ? सेना तैयार कराकर प्रस्थान के लिए डंका बजवाते ही राव-राजा गढ़देश छोड़कर भाग जाते है।'[1]

शाह आलम :

यह आलमगीर सानी का पुत्र था, इसकी माँ लालकुँवरि थी। इसका जन्म सन् १७२८ ई० के १४ जून को हुआ, जब इसके पिता फर्रूखसियर की कैद में थे।

यह दयालु एवं साहसी था, परन्तु साम्राज्य सँभालने के लिए आवश्यक योग्यताएँ इसमें न थी। यह साधुओं का अत्यन्त सम्मान करता और ख्वाजः मीर 'दर्द' की सेवा में उपस्थित होता था।

शाह आलम फारसी, उर्दू, भाषा (हिन्दी) और पंजाबी के गद्य एवं पद्य दोनों पर अधिकार रखता था तथा अरबी एवं संस्कृत भी जानता था, तुर्की से भी परिचित था।

सगीत मे भी शाह आलम की गति थी और सम्भवतः **उस्ताद नजर अली** का शिष्य था।

फारसी एव उर्दू की काव्य-रचना में शाह आलम ने 'आफताब' और हिन्दी मे 'शाह आलम' उपनाम अपनाये।

शाह आलम की रचनाओं मे एक 'फारसी दीवान', एक 'दीवाने उर्दू', 'मनजूम अकदस' नामक एक मसनवी, 'किस्तः शाह शुजः अल्तमश' एवं 'नादिरॉतिशाही' नामक ग्रन्थ है। अन्तिम ग्रन्थ शाह आलम की उर्दू, फारसी, हिन्दी और पजाबी-कविताओं का संग्रह है।

'नादिरॉतिशाही' की एक प्रति रामपुर की रजा लाइब्रेरी में है, जो रामपुर के नवाब कल्बेअली खाँ के राज्यकाल में महाकवि दाग की मारफत खरीदी गई थी। अब उसे वर्त्तमान रामपुर-नरेश की आज्ञा से इसी पुस्तकालय ने प्रकाशित की है।

इस पुस्तक के अन्त में एक फारसी शेर है, जिससे इस पुस्तक का लेखनकाल सन् १७९७ ई० निश्चित होता है।

'नादिरॉतिशाही' में संगृहीत सभी रचनाएँ गाने के लिए लिखी गई हैं। प्रत्येक रचना के ऊपर राग और ताल का नाम है।

हिन्दी-रचनाएँ किसी-न-किसी उत्सव से सम्बद्ध है, भले ही वह ईद, बकरीद, शबे बरात, आखिरी बुधवार, छठी, बिस्मिल्लः (विद्यारम्भ), हद्दियः (कुरान समाप्त होने का उत्सव), मँगनी, मेंहदी, शादी प्रभृति जैसे मुसलमानी उत्सव हों अथवा होली, दीवाली या वसन्त जैसे हिन्दु-पर्व।

---

१. परिशिष्ट अ, २६९।

सुरभावन नामक ध्रुवपदकार ने शाह आलम से सम्बद्ध ध्रुवपदों की रचना की है।[1]

चेतसिंह (राजबहादुर)

यह बनारस के राजा थे। इनका राज्यकाल सन् १७७०–१७८१ ई० है।[2] ये महान् संगीतज्ञ, काव्यमर्मज्ञ, विद्यानुरागी और गुणग्राही नरेश थे। लालकवि ने इन्हीं के आश्रित रहकर 'आनन्दरस' नामक नायिका-भेद का एक ग्रन्थ लिखा।[3] हरिप्रसाद नामक एक व्यक्ति ने राजा चेतसिंह के कहने से ही 'बिहारी-सतसई' का संस्कृत में पद्यानुवाद किया था।[4] गोकुलदास बन्दीजन भी इनके आश्रित थे।[5]

एक ध्रुवपद में इनकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है: 'राजबहादुर का दरबार ऐसा है, जिसमें रंक, राव, राजा और उमराव (अमीर के बहुवचन 'उमरा' का अपभ्रंश) आते है, उनको लाखों देते और राजी करते है। विधना ने समस्त जगत् का दारिद्र्य दूर करने के लिए इस भू पर चेतसिंह नरेश को रचा है। उसके भाग्य धन्य है, जिसे तुम अनुगृहीत करते हो।[6]

'राजबहादुर' की मुद्रा से अंकित ध्रुवपदो का विषय गुरुमहिमा, श्रीपति विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, हनुमान्, विन्ध्यवासिनी, गंगा, वेदव्यास इत्यादि की स्तुति है। कुछ ध्रुवपदो का विषय संगीत है, जिसमें नाद के विभिन्न भेदों का वर्णन है। नाद-नगर का रूपक बाँधा गया है, सांगीतिक गुणदोषों की चर्चा है, नाद-विचार एव स्वर-विचार है। आदर्श गायक-लक्षण भी इन्होंने बताया है और वसन्त एवं होली पर गाये जानेवाले पदो की रचना भी की है। विभिन्न नायिकाओं का चित्रण भी बड़ी सफलतापूर्वक किया है।

ध्रुवपदों में चेतसिंह 'राजबहादुर'

संगीतमर्मज्ञता : सब मिलकर यह विचार कर लो कि जो स्वर, अक्षर और तान में शुद्धता रखकर जब 'ढरन' और 'मुरन' के साथ ढले, उसे गायक कहना चाहिए। काव्य में युक्त उक्तियाँ रखे, अनुप्रास यथास्थान रखे, ध्रुवपद की रचना करके गाये और सुनाये। उसकी रचना ऐसी हो, जो सबको सुख देनेवाली हो। शुद्ध वाणी का आश्रय रखते हुए क्रमपूर्वक आलाप करके दिखाये और अनेक प्रकार से राग गाये। इस गुण का ग्राहक ज्ञानियों में श्रेष्ठ और बहुनायक राजा चेतसिह है।[7]

---

१. रा० क०, भाग १, पृ० १६३।
२. ग्रियर्सन : हि० सा० प्र० इ०, पृ० २४४।
३. उपरिवत्, पृ० २४४।
४. उपरिवत्, पृ० २४५।
५. उपरिवत्।
६. परिशिष्ट अ, २३१।
७. परिशिष्ट अ, २५४।

होली : सुथरी और सुखदायक तान गाकर फागुन मास मे धूम मचा दी। साथ में मनभाये सखा और सखियाँ हैं, हाथ में डफ लिये भली भाँति बजा रहे है। अपने गुमान में भरा हुआ किसी की बात नही मानता। ... रँगीला राजबहादुर नायक सकल गुणों में दक्ष है।[1]

आज पिचकारियों से रंग बरस रहा है, नायक राजबहादुर होली खेलता है। अबीर और गुलाल उड रहा है, लाल को अत्यन्त सुख है, साँवली-गोरी सुन्दर युवतियाँ नाच रही है। चाँचर की चहल-पहल मची है। डफ-मृदंग बज रहे है। तानपूरा, वीणा, रवाब और मजीरों की जोडियाँ बज रही है।[2]

विलास : जागे और अनुराग-भरे लाल मेरे घर बहुत दिनों पर आये है। झूठी-झूठी सौगन्ध खा रहे है, अंग अलसा रहे है, नीद घेरे हुए है और वह आँखों में भर रही है। कपोलों पर वेणी के चिह्न है, जो सच्ची बात कहे दे रहे है। राजबहादुर मोहन आये हैं।[3]

प्यारे प्रियतम को पाऊँ, तो हृदय से लगाऊँ, अत्यन्त सुख छा जाये। उनके विना मुझसे एक घड़ी, पल, छिन रहा नही जाता। सखि, मै क्या करूँ, कहाँतक जी को तरसाऊँ। मेरी दृष्टि में वे सर्वथा प्रवीण, चतुर, सुन्दर, गुणसागर और काम के रूप हैं। उनकी ओर देखने से नेत्रो को कैसे समझाऊँ। जब महाराज राजबहादुर कृपा करें, तब आनन्द पाऊँ।[4]

राजा छत्रसिंह (अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध) :

रामपुर के **राजा माधवसिंह** की आज्ञा से उनके आश्रित **जसवन्त** ने संवत् १८७४ (सन् १८१७ ई०) में 'व्यंजनप्रकाश' नामक एक ग्रन्थ लिखा है।[5] यह ग्रन्थ अप्रकाशित रूप में उपलब्ध है। इसमें लिखित वंशवृक्ष के अनुसार, छत्नसिह की वंश-परम्परा इस प्रकार है कि **वीरमदेव** के पुत्र **नरहर**, उनके पुत्र **हरसिंह**, उनके पुत्र **वीरसिंहदेव**, उनके पुत्र **धुरमंगद**, उनके पुत्र **विक्रमाजीत**, उनके पुत्र **मुकुटमणि** और उनके पुत्र **रामसाहि** हुए, जिन्होंने रामपुर-दुर्ग बनवाया। रामसाहि के पुत्र **परवतेस** हुए। परवतेस के दो पुत्र **गजसिंह** और **गोपालदास** थे, गजसिह के पोते **छत्रसिंह** के तीन पुत्र हुए, जिनमें से **फतेहसिंह** के दत्तक पुत्र रामपुर-नरेश **माधवसिंह** हुए। वश-परम्परा के अनुसार छत्नसिंह माधवसिंह (सन् १८१७ ई०) के पितामह थे, अतः उनका समय १८वी शती ईसवी का पश्चार्द्ध माना जा सकता है, जो सम्राट् शाह आलम का राज्यकाल है।

---

१ परिशिष्ट अ, २६०।
२. परिशिष्ट अ, २६१।
३. परिशिष्ट अ, २६६।
४. परिशिष्ट अ, २६७।
५. **संवत् दस औ आठ सै अधिक चुहत्तर जानि।**
अच्छय तीज अनूपतिथि ग्रन्थ जन्म सुख दानि।। —व्यंजनप्रकाश, पृ० २ अ।

ध्रुवपदों में छत्रसिंह :

सिंहासन : यह घड़ी धन्य है, कनक-जटित सिंहासन पर राजा छत्रसिंह विराजमान है, आनन्द सरसा रहे है। राजा, राव, उमराव और कवि शोभित हो रहे है, रिसाले ले-लेकर खड़े हुए है। याचक अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं, अमूल्य वसन और आभूषण पाते है। सृष्टि अनेक प्रकार के सुख से परिचित हुई। छत्रपति महाराज चिरजीवी हों, इसी प्रकार कोटि-कोटि उत्सव करें, जिन्हें देखकर देवता पुष्प बरसायें।[1]

प्रताप : तुमने अजेय व्यक्तियों को तुरन्त जीता, प्रचण्ड अदण्ड्यों (पराक्रमी वीरों) को दण्ड दिया। ओ बलवन्त, खण्ड-खण्ड में तुम्हारी आन फिरती है। अश्वपति, गजपति, सुरपति और नरपति भयभीत होते है और वेगपूर्वक झुककर अपना 'गरीबान' डाल देते है। जब क्रोध करके कृपाण हाथ मे लेते हो, तब तुम्हारी समता कौन कर सकता है और कौन धीरज धर सकता है? महाराज छत्रसिंह, तुम आत्मबली और तपोबली हो, तुम्ही नीति जानते हो।[2]

प्रशंसा, मंगलकामना : महाराज छत्रसिह बहादुर ऐसे दीनदयालु और कृपालु है। वे समस्त राजाओं के सिरताज है, इन्द्र के समान हैं, यश, कीर्त्ति और सुख के सागर है। चारों ओर उनका भरपूर अटल राज्य है। वे ध्रुव और प्रह्लाद के समान है। प्रभु, कृपा करो भक्त सब परम पुनीत यश गा रहे है।[3]

दानशीलता : ऐसा कौन है, जो तुम्हारी समता कर सके, तुम तेगबली और दानबली हो, पृथ्वी पर युग-युग जियो। तुम्हारे पास देश-देश के गुणी आते है, तुम उन्हें आदर और मान के साथ, रत्न, वस्त्र और तुरंग देते हो। मेरे एक जिह्वा है, मैं तुम्हारे दान की कथा कहाँतक कहूँ, तुम अपने समान स्वय ही हो। 'भूपत' कहता है कि जगत् के दारिद्र्य का हरण करने में, छत्रसिह बहादुर, तुम्ही समर्थ हो।[4]

दशहरा : तुम्हें दशहरा मुबारक हो, समाज-सहित सम्पत्ति संचित रहे। आनन्द-बधावे गा-गाकर गुणी आशीर्वाद दे रहे हैं। करोड़ों बरस तक पृथ्वी पर अटल राज्य करते रहो। तुम राजाओं के राजा और सबके सरताज हो। तुम्हारी स्तुति कौन कर सकता है। 'भूपत' कहता है कि गुणियो की इच्छा के अनुकूल दान अभी मँगवा दीजिए।[5]

संगीतज्ञता : गुणियों और गायको ने कण्ठ की भूमि मे कैसे 'नाद-बाग' की रचना की है, तुम सब जानकार लोग दिखाओ। सातो स्वर 'तरुवर' है, अक्षर 'पुष्प' और 'पत्र' है, शुद्ध वाणी सघन छाया है। सुर, नर, मुनि सिचन करते है, सुघर व्यक्तियों के

१. परिशिष्ट अ, २२३।
२. परिशिष्ट अ, २२४।
३. परिशिष्ट अ, २२५।
४. परिशिष्ट अ, २२६।
५. परिशिष्ट अ, २२७।

मन से उपज-रूपी 'फल' लगते है। 'भूपत' कहता है कि इसकी सैर करने के लिए महाराज छत्रसिह के कान है।[१]

विलास : सब नारियों में मैं ही सुखी हूँ, मैंने भाग्य से वर पाया। 'हरि' को निरखने से आँखे सफल हुई। मैंने आज अपने जन्म और जीवन को सफल माना। दिन-दिन के मनोरथ पूर्ण हुए। बधावा गाकर नवों निधियाँ पा लीं। प्राणपति महाराज छत्रसिहजी से मिलकर मनभाई रस की बाते की।[२]

मोहन प्रियतम का दर्शन करने से नेत्र-कमल प्रफुल्लित हुए। जब उन्होंने अंक में भरकर चिह्नों की वर्षा की, तब दिन-दिन के ताप और विरह के विलाप तिरोहित हो गये। भाग्य, सौभाग्य, नयन, जन्म और जीवन धन्य एवं सफल है। प्राणपति प्राणेश्वर ने घड़ी-घड़ी, पल-पल, छिन-छिन, सरस सुख दिया। महाराज छत्रसिंह अन्तर्यामी थे। वे अन्तर की गति जानते है और अंग-अंग की बेकली मिटाते हैं।[३]

महाराजा जगतसिंह :

ये सवाई प्रतापसिंह जयपुर-नरेश के पुत्र थे। ये क्षत्रियों के ईश, दयालु तथा धर्मात्मा थे। शत्रु को देखकर और अधिक उग्र रूप धारण कर लिया करते थे। युद्ध में पीठ दिखाना और परस्त्री पर कुदृष्टि डालना इन्हें दुर्जनता और नीचता के लक्षण लगते थे। ये महादानी भी थे।[४] प्रसिद्ध कवि **पद्माकर भट्ट** को इन्होंने राजकवि बनाया।[५] पद्माकर ने प्रसिद्ध ग्रन्थ, 'जगतविनोद' की रचना इन्ही की आज्ञा से की थी, जिसमें जगतसिंह की प्रशंसा के पश्चात् नायिका-भेद एव रस-निरूपण है।[६]

जगतसिह से सम्बद्ध एक गीत में कहा गया है : "सखि, इसकी छवि मुझे भाती है। निरखकर नयन सुख पाते है। महाराज जगतसिंह रंगभीने है। कृपा करके मेरे महलो में आते है। कूर्म (कछवाहा)-कुल में सूर्य उदित हो गया है, जिसके प्रताप-रूपी तेज से आलोकित ससार उनका यश गा रहा है। हे सवाई प्रताप के पुत्र, ध्रुव की भाँति अटल रहो, जो प्रीति निबाहते हो।"[७]

रतनसिंह (सन् १७६८–१७६६ ई०) :

ये सूरजमल के छोटे पुत्र थे और अपने भाई जवाहरसिंह की मृत्यु के पश्चात् शासक हुए। ये पूर्वजों की प्रकृति से विपरीत थे। सन् १७६६ ई० में इन्होंने वृन्दावन

१. परिशिष्ट अ, २२८।
२. परिशिष्ट अ, २२९।
३. परिशिष्ट अ, २३०।
४. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ६३।
५. उपरिवत्,।
६. उपरिवत्, पृ० ३२।
७. परिशिष्ट अ, पृ० २६८।

की यात्रा की और यमुना के किनारे एक महान् उत्सव का आयोजन किया, जिसमे चार हज़ार नर्त्तकियाँ बुलाई गई थी। रूपानन्द नामक एक गुसाई ने इन्हे विश्वासघातपूर्वक सन् १७६६ ई० मे मार डाला।[1] रतनपाल यादव-नरेश को सम्बोधित करते हुए एक ध्रुवपद मे कहा गया है :"इस पृथ्वी पर जितने गुणी है, वे तेरी कीर्त्ति की कथा कहते हैं। वह कथा सात समुद्र पार सातों द्वीपो मे सुनी गई है। जिन कृष्ण का ध्यान सुर-नर-मुनि करते है, उनके वंश में यादव-नरेश की उत्पत्ति हुई है। कलियुग मे 'रतनपाल' की रचना कल्पवृक्ष के समान हुई है, जिसकी सेवा दुनिया हाथ जोडे करती है।"[2]

गज, तुरग, नग और लाल का दान करने से सुयश जगमगा रहा है। देश-देश के गुणी-गन्धर्व आते है और मुक्तामाल पाते है। तुम अपबली, तपबली, दानबली और धर्म की ध्वजा हो। कवि तुमसे निहाल होते है। 'साहब' कहता है कि हे गोपालक, यादववंशी नरेश, तुम चिरंजीवी रहो।[3]

महाराजा प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि' :

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराज सवाई जयसिंहजी से तीसरी पीढी में महाराज माधवसिंह हुए, जिनके दो पुत्र हुए : पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिह का जन्म विक्रम-संवत् १८१६ (सन् १७६२ ई०) और प्रतापसिह का जन्म सवत् १८२१ (सन् १७६४ ई०) में हुआ। माधवसिह के पश्चात् पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। संवत् १८३३ (सन् १७७६ ई०) में इनकी मृत्यु हुई। इनके सन्तानहीन होने के कारण प्रतापसिहजी को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

महाराजा प्रतापसिहजी क्षत्रियोचित गुणो से विभूषित थे। उनके समय मे मरहठों का राजस्थान में बड़ा आतंक और जोर था। अतः, इनका दमन करने के लिए महाराजा को कई युद्ध करने पड़े और दो-एक बार उन्होंने इन्हे पराजित भी किया।

कवियों, विद्वानों और गायकों का इनके दरबार मे अत्यन्त सम्मान होता था। उन्होंने 'आइने अकबरी', 'दीवाने हाफिज' आदि ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद कराया और ज्यौतिष, धर्मशास्त्र आदि विषयों पर भी बहुत-से ग्रन्थ लिखवाये। 'प्रतापवीर हजारा' और 'प्रतापसिगार हजारा' उनकी प्रेरणा से किये हुए मुख्य संकलन है।[4]

पण्डितों और प्रवीण कलाकारो को बुलाकर उनकी सलाह से उन्होने हिन्दुस्थानी संगीत पर एक आदर्श ग्रन्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।[5] इस ग्रन्थ का नाम 'संगीत-

---

१. ब्रज का इतिहास, पृ० १६३।
२. परिशिष्ट अ, २७२।
३. परिशिष्ट अ, २७६।
४. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२६।
५. उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६।

सार' है। उत्तरी सगीत के ऐतिहासिक पर्यवलोकन के विचार से इसका अपना महत्त्व है। अपने काल में उपलब्ध श्रेष्ठ कलाकारो के मतों का संकलन कर महाराज ने प्रशंसनीय कार्य किया है।[1]

महाराजा प्रतापसिंह स्वयं भी अच्छी कविता करते थे। उन्होंने बहुत-से ग्रन्थ बनाये, जिनका काव्यप्रेमियों में बड़ा आदर है। कविता में वे अपना नाम 'व्रजनिधि' रखते थे।[2] उनके सभी ग्रन्थ 'व्रजनिधि-ग्रन्थावली' के नाम से काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किये है।

विक्रमसाह (चरखारी-नरेश) : (राज्यारोहण : सन् १७८२–१८२८ ई०) : उपनाम विजयबहादुर बुन्देला :

ये ओरछावाले मधुकरशाह के वशज और चरखारी के राजा थे। इनका राज्य-काल (सन् १७८२ से १८२८ ई०) तक है। इनकी प्रशंसा में ध्रुवपद प्राप्त होते है।[3]

अज्ञातपरिचय आश्रयदाता

करनसाह : प्रेमदास ने अपने एक ध्रुवपद मे इनकी चर्चा की है, जो मुगल-सम्राट् शाह आलम के समकालीन थे और जिनकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है। करनसाह के विषय मे और कुछ परिचय प्राप्त नही है।

चगता नवाब : रागमाला, पृ० २६१ आ पर इसकी प्रशंसा में किसी अज्ञातनामा ध्रुवपदकार का एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिससे चकता नवाब (चगताई नवाब) का नरेश और गुणज्ञ होना सिद्ध होता हैं। ध्रुवपद निम्नाकित है :

निरभय गुननिधान पहलै समान आ (या) भुअमण्ड (भुवमण्डल) जमि रहै आज कायिम मूरति कायिम तेरौ रहै जौ लौं उदयभान।
जा कलजुग मैं का अकाल ऐसौं नवाब चकता सु धरनि मुरनि प्रमान।

चत्रसीचत्री राजाधिराज : इनकी प्रशसा में रागमाला, पृ० १६३ अ पर एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसमे किसी अज्ञातनामा ध्रुवपदकार ने उनके दाम्पत्य-प्रेम का वर्णन किया है।

चतुरसिंह राना : रागमाला, पृ० २२४ आ पर इनके सम्बन्ध में एक रचना संगृहीत है।

छत्रपति : यह कोई राजा प्रतीत होते है और ध्रुवपदकार भी। इनकी एक रचना रागमाला, पृ० २३० अ पर संगृहीत है।

नवलजसषा (नवलजस खाँ ?) : रागमाला, पृ० २७५ अ पर इनकी प्रशंसा में एक ध्रुवपद है, जिससे इनका नरेश एव आश्रयदाता होना सिद्ध होता है।[4]

१. उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६।
२. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२६।
३. रागमाला, १२० आ, २३८ अ।
४. परिशिष्ट अ, २८५।

फकरखानि (फख्रू खाँ) : रागमाला, पृ० १६५ अ पर इनकी प्रशंसा में एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय आदर्श गान है।[1]

वीरनसाह : इनसे सम्बद्ध एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० २६२ पर संगृहीत है, जिससे यह सगीतज्ञो के आश्रयदाता प्रतीत होते है।

उदयराज : ध्रुवपदकार शम्भू ने ध्रुवपदो मे इनकी प्रशसा की है। इस प्रकार का एक ध्रुवपद रागमाला, पृ० २८१ आ पर सगृहीत है।

वली मोहम्मद सुलतान : इनसे सम्बद्ध एक ध्रुवपद रागमाला, पृ० ११० अ पर संगृहीत है, जिसका विषय सभा के संगीतज्ञो की प्रशसा है।

नूर : जिस ध्रुवपद में इस अनुमित नूर की चर्चा है, वह कोई वारविलासिनी प्रतीत होती है; क्योंकि किसी शाह के साथ उसकी प्रेमलीला का वर्णन है। वह कुलांगना होकर उस प्रकार ध्रुवपदकारो के लिए वर्णन का विषय नही बन सकती।

मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार मे **नूरबाई** नामक एक अत्यन्त सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ गायिका थी। मुहम्मदशाह रँगीले ने इसे भेंट-स्वरूप **नादिरशाह** को दिया था।[2] मुहम्मदशाह का विचार था कि इस अमूल्य भेंट से नादिरशाह परम सन्तुष्ट हो जायगा। उस युग में वारविलासिनियाँ बेगम बनने के स्वप्न देखा करती और बादशाहों को अँगुलियो पर नचाया करती थी। मुहम्मदशाह रँगीले की तो राजमुद्रा तक एक वेश्या के हाथ मे रहती थी। बादशाहों की मुँहलगी वेश्याएँ भी आश्रयदाताओं के समान ही ध्रुवपदों मे वर्णन का विषय बनती थी। रागमाला, पृ० २८१ अ पर एक ध्रुवपद में 'नूर' के रूप का वर्णन है। सम्भव है, वह 'रँगीले' के दरबार की नूरबाई ही हो।

---

१. परिशिष्ट अ, २८२।

२. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या, पृ० २३।

चतुर्थ अध्याय

मानसिंह तोमर और उसकी परम्परा

मानसिंह तोमर के समकालीन संगीतानुरागी नरेश

तैमूर के आक्रमण (सन् १३९८ ई०) के पश्चात् भारत में अराजकता फैल गई, कोई केन्द्रीय शासन न रहा और अनेक स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ। ये राज्य अपनी सीमाओं की सुरक्षा अथवा अपने राज्य के विस्तार के लिए प्रायः लड़ते रहते थे।

तैमूरी आक्रमण के अट्ठासी वर्ष बाद **मानसिंह तोमर** ग्वालियर के सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल सन् १४८६–१५१६ ई० है।

मानसिंह तोमर के शासनकाल में दिल्ली पर **सिकन्दर लोदी** का शासन था। सिकन्दर लोदी एक सगीतानुरागी व्यक्ति था।

'तारीखे शाही' के अनुसार, सिकन्दर लोदी के राज्यकाल (सन् १४८८–१५१७ ई०) में अद्वितीय सगीतज्ञ तथा गायक दिल्ली मे एकत्र हो गये थे। एक प्रहर रात्रि बीत जाने के पश्चात् वह संगीत की सभा आयोजित कराता था। उसकी सभा में रूपवती गायिकाएँ थी। सिकन्दर लोदी ने १५०० दीनार में चार दास खरीदे थे। उनमे एक 'चंग', दूसरा 'कानून', तीसरा तानपूरा और चौथा वीणा बजाता था। आधी रात्रि व्यतीत हो जाने पर चार शहनाई-वादक शहनाई बजाने लगते थे। ये क्रमशः केदारा, अडाना, हुसेनी और रामकली बजाकर अपना वादन समाप्त करते थे।[1]

'वाकयाते मुश्ताकी' के अनुसार, **मीरान सैयद रूहुल्लाह और सैयद इब्नुर्रसूल** सिकन्दर लोदी की सभा के महान् संगीत-मर्मज्ञ थे। सुलतान की सेवा में उपस्थित होने के इच्छुक गायको और वादकों की कला से जब ये दोनों मर्मज्ञ सन्तुष्ट हो जाते, तभी नवीन कलाकारों को सुलतान की सेवा में प्रस्तुत किया जाता था।

गौरा, कल्याण, कानडा और हुसेनी सुलतान को अत्यन्त प्रिय थे। शहनाई-वादकों को आदेश था कि वे इन चार मुकामों के अतिरिक्त और कुछ न बजायें।[2] 'तारीखे दाऊदी' के अनुसार, सिकन्दर लोदी के प्रिय राग मालकोस, कल्याण, कानडा और हुसेनी थे।[3]

सिकन्दर लोदी का एक अमीर **मियाँ ताहा** सकल-कला-मर्मज्ञ था। इसे अनेक विद्याओं का ज्ञान था। बड़े-बड़े ब्राह्मण और सगीतज्ञ इससे शिक्षा लेते थे।

---

१. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ० ३३२।

२. उपरिवत्, पृ० १३४।

३. उपरिवत्, पृ० २६२।

मालवा का अधिपति **गयासुद्दीन** (सन् १४६९–१५०० ई०) महान् संगीत-मर्मज्ञ था। उस समय मुस्लिम-दरबारों में भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त का मजाक उडाया जाता था। मुकाम-पद्धति भारत-भर में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करनेवाले विद्वान् दुर्लभ हो गये थे। 'संगीतरत्नाकर' के तेलुगु-टीकाकार **विट्ठल** के पिता **विष्णु भट्टाचार्य** ने गयासुद्दीन की सभा में पहुँचकर जब बाईसो श्रुतियो का प्रदर्शन किया, तब गयासुद्दीन ने सन्तुष्ट होकर विष्णुभट्ट को एक सहस्र तोला सोना दिया था।[1]

गुजरात में **महमूद बीगड़** (रा० का० सन् १४५८–१५११ ई०) प्रतापी शासक था। उसका उत्तराधिकारी पुत्र **मुजफ्फरशाह** सगीत का महान् मर्मज्ञ था, उसका स्वर अत्यन्त मधुर था और वह प्रत्येक वाद्य के वादन मे निपुण था। अनेक संगीत-मर्मज्ञ गुणी मुजफ्फरशाह को अपना गुरु मानते थे। मुजफ्फरशाह ने अपने राज्यकाल मे गुजरात को संगीत का केन्द्र बना दिया था।[2]

जौनपुर के अन्तिम शर्की-शासक **हुसेनशाह** की मृत्यु **मानसिंह** के राज्यारोहण से केवल आठ वर्ष पूर्व सन् १४७८ ई० में हुई थी। हुसेनशाह शर्की से दो पीढ़ी पूर्व **इब्राहीम शर्की** के राज्यकाल (सन् १४०२–१४४० ई०) मे ही जौनपुर मुस्लिम-विद्याओं का महान् केन्द्र बन चुका था। दूर-दूर देशों के विद्वानों और कलाकारों ने जौनपुर में आश्रय लिया था। इब्राहीम शर्की की ओर से कड़ा में नियुक्त सूबेदार सुलतान **मलिक** के पुत्र **बहादुर मलिक** ने सगीत के अनेक संस्कृत-ग्रन्थ एकत्र किये और देश-भर के विद्वानों को बुलाकर उनसे 'संगीतशिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना कराई थी।[3]

इन परम्पराओं का प्रभाव हुसेनशाह शर्की पर पड़ा था। वह सगीत का महान् मर्मज्ञ था और उसने अनेक रागो का आविष्कार किया। जौनपुर का दरबार भी अन्य मुस्लिम-दरबारो की भाँति चिश्ती-परम्परा और खुसरो-पद्धति से प्रभावित था।

दक्षिण में विजयनगर का दरबार शताब्दियों पूर्व खुसरो-परम्परा से प्रभावित हो चुका था। **कृष्णदेव राय** (रा० का० सन् १५०९–१५३० ई०) की सभा में रहकर **लक्ष्मीनारायण** 'संगीतसूर्योदय' की रचना कर रहे थे। गयासुद्दीन को प्रसन्न करके इनके ही पितामह एक सहस्र तोला सोना ले चुके थे। 'संगीतसूर्योदय' में कौल, गजल इत्यादि की भी चर्चा है। तुर्की, फारस, खुरासान, मुलतान इत्यादि के प्रयोग भी बताये गये है।

बहमनी-साम्राज्य का अन्तिम सुलतान महमूदशाह बारह वर्ष की आयु में सन् १४८२ ई० में गद्दी पर बैठा। वयस्क होने पर यह अत्यन्त विलासी हो गया। इसके युग में सम्मानित सन्त भी मद्यप हो गये और धर्माचार्य पानगोष्ठियो मे सम्मिलित होने लगे। बहमनी-सुलतानों को चिश्ती-परम्परा के सूफियो का आशीर्वाद सदैव प्राप्त था और इनका दरबार खुसरो-पद्धति का गढ़ था।

---

१. भरतकोष, पृ० १२, पाद-टिप्पणी।

२ मिराति सिकन्दरी; उर्दू-'आजकल', अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३ पर उद्धृत।

३. भरतकोष, भूमिका, पृ० १३।

इन परिस्थितियों में ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा के माध्यम से ध्रुवपद का पुनरुद्धार किया।

तोमरों का उत्थान और पतन

गयासुद्दीन के राज्यकाल सन् १३२०—१३२५ ई० में ही ग्वालियर-किले के सूबेदार की सेना के एक उत्साही तोमर-नवयुवक **वीरसिंहदेव** ने सन् १३७५ ई० में ग्वालियर पर अधिकार कर लिया था।

वीरसिंहदेव ने अपने पुत्र **लक्ष्मण** के नाम पर ग्वालियर-गढ में लक्ष्मण-पौर का निर्माण कराया।

विक्रमदेव : वीरसिंहदेव के पश्चात् **उद्धरणदेव** ने शासन किया। उनके उत्तराधिकारी **वीरमदेव (विक्रमदेव)** हुए। दिसम्बर, १४०२ ई० में दिल्ली के सेनापति **इकबाल खाँ** ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, परन्तु विक्रमदेव के शौर्य और ग्वालियर की अजेयता ने उसे अपना घेरा हटाने पर विवश किया और वह जनता को लूटकर वापस लौट गया।

इकबाल खाँ ने एक बार और प्रयत्न किया। धौलपुर के किले पर विक्रमदेव ने उससे टक्कर ली, विक्रमदेव को ग्वालियर लौटना पड़ा। सन् १४०४ ई० मे इन दोनों की इटावा में पुन: टक्कर हुई और विक्रमदेव को कर देना पड़ा। सन् १४०५ ई० में इकबाल खाँ एक युद्ध मे मारा गया।

सन् १४१४ ई० में **खिज्र खाँ** दिल्ली की गद्दी पर बैठा। सन् १४१६ ई० में उसने **ताजुल्मुल्क** को विक्रमदेव के विरुद्ध भेजा। विक्रमदेव को कर देने के लिए विवश होना पड़ा।

डूँगरेन्द्रसिंह : सन् १४२४ ई० में डूँगरेन्द्रसिंह तोमर-वंश के सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल तीस वर्ष रहा और इन्होने दिल्ली और माँडौ के सुलतानों से डटकर टक्कर ली और विजयश्री इनपर अनेक बार प्रसन्न हुई। मालवा के सुलतान **हुशंगशाह** (रा० का० सन् १४०५–१४३४ ई०) ने आसपास के प्रदेश में बहुत लूट-मार मचा रखी थी। महाराज डूँगरेन्द्रसिंह ने राजपूतों की एक सेना संघटित करके हुशंगशाह को पराजित किया और इनके हाथ बहुत-सा कोष लगा। इसी विजय में सम्भवत. इन्हें 'कोहनूर हीरा' प्राप्त हुआ। हुशंगशाह को एक बार पुनः ग्वालियर पर आक्रमण करने के परिणामस्वरूप पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस बार डूँगरेन्द्रसिंह को जौनपुर के सुलतान **मुबारक शाह** की सहायता प्राप्त थी।

इनके समय में तँवर-राज्य के अन्तर्गत वर्त्तमान मुरेना, शिवपुरी तथा आसपास के जिलों के अधिकतर भाग भी थे।

सन् १४३५ ई० में माँडौ के सुलतान **मुहम्मद खिलजी प्रथम** ने ग्वालियर पर विफल आक्रमण किया। दिल्ली की ओर से भी आक्रमण होते रहे। सन् १४३८ ई० में **डूँगरेन्द्रसिंह** ने नरवरगढ पर अधिकार कर लिया, जो मालवा के सुलतानों के अधीन था। नरवरगढ़ का विजय-स्तम्भ इसका स्मारक है।

दिल्ली, जौनपुर और मालवा के सुलतानों के साथ यथावसर सन्धि-विग्रह करते हुए महाराज डूँगरेन्द्रसिह धार्मिक, सास्कृतिक एव सामाजिक कार्यों की ओर भी गये। ग्वालियर-गढ को दृढ करने के लिए 'गणेश-पौर' नामक द्वार का निर्माण कराया। सन् १४४० ई० के तीन शिलालेख इस बात के सूचक है कि इनके आश्रय में ग्वालियर-गढ़ के चारों ओर विशाल जैन प्रतिमाएँ बनी। इन शिलालेखो में देवसेन यशःकीर्त्ति, जयकीर्त्ति इत्यादि जैन आचार्यों का उल्लेख है।

डूँगरेन्द्रसिह् के स्वर्गवास के पश्चात् सन् १४५५ ई० मे उनके पुत्र कीर्त्तिसिह् ग्वालियर के नरेश हुए। ये भी अत्यन्त शूरवीर एव कलाप्रेमी थे। इन्होने अपने राज्य की सीमाएँ विस्तृत की और दिल्ली, जौनपुर तथा मालवा के राज्यो से यथावसर सन्धि-विग्रह करते रहे। सन् १४६५ ई० मे जौनपुर के हुसेनशाह् शर्की ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, परिणामस्वरूप दोनों राज्यो मे सन्धि हो गई।

सन् १४७८ ई० में बहलोल लोदी ने हुसेनशाह् शर्की पर आक्रमण करके जौनपुर-राज्य को दिल्ली मे मिला लिया। महाराज कीर्त्तिसिंह ने पराजित हुसेनशाह को आश्रय देकर उसे कालपी पहुँचा दिया, परिणामस्वरूप लोदी-राज्य से शत्रुता हो गई। बहलोल लोदी ने दो लाख सैनिक लेकर ग्वालियर पर आक्रमण किया। उसके लौटते ही महाराज कीर्त्तिसिंह् ने ग्वालियर पुनः ले लिया। हाँ, नरवरगढ जैसा दुर्ग हाथ से निकल गया।

सन् १४७९ ई० में महाराज कीर्त्तिसिह का स्वर्गवास हुआ।

महाराज डूँगरेन्द्रसिंह् के समय से जिन जैन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ था, वे महाराज कीर्त्तिसिंह के राज्यकाल में पूरी हुईं। ये प्रतिमाएँ अत्यन्त भावपूर्ण है, इनकी विशालता एवं भव्यता इनके उत्कीर्णकों के कौशल, सौन्दर्य-प्रेम, श्रद्धा और भक्ति का परिचय देती है। कहा जाता है कि महाराज कीर्त्तिसिंह ने अनेक तालाबो का निर्माण कराया।

कीर्त्तिसिंह के पश्चात् सन् १४८१ ई० में महाराज कल्याणसिंह् सिहासन पर बैठे। इन्होंने प्रायः छह्-सात वर्ष राज्य किया। इन्होने 'बादलमहल' का निर्माण कराया। सन् १४८६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

सन् १४८६ ई० में महाराज मानसिंह् सिंहासनासीन हुए। बहलोल लोदी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, पर मानसिंह के सम्मुख उसकी एक न चली। सन् १४८८ ई० में बहलोल मर गया और उसका पुत्र निजाम खाँ 'सिकन्दरशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा। इसने ग्वालियर पर पाँच आक्रमण किये। पाँचो बार इसे मुँह की खानी पड़ी।

ग्वालियर के तोमर-वंश का वैभव, शौर्य, श्री, कलाप्रियता, बुद्धिमत्ता और सहृदयता महाराज मानसिंह में अत्यन्त विस्तृत रूप में परिलक्षित हुई। महाराज मानसिंह आज भी इतिहास, जनश्रुति एवं अनुश्रुतियों के विषय बने हुए है। उनके शौर्य, साहित्य, संगीत, स्थापत्य आदि का प्रेम मुगल-काल तक में प्रतिध्वनित हुआ।[1]

---

१. मानसिंह् और मानकुतूहल, पृ० ११।

सन् १५१६ ई० में महाराज मानसिंह स्वर्गवासी हुए और उनका पुत्र **विक्रमाजीत** राजा हुआ। सन् १५१७ ई० में **इब्राहीम लोदी** गद्दी पर बैठा। इसके बाप-दादा ग्वालियर-नरेश से हारे थे। उसके हृदय में यह अपमान खटकता था। **आजम हुमायूँ** के सेनापतित्व में लोदियों की बहुत बड़ी सेना ग्वालियर को घेरे हुए थी। ग्वालियर की सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़ी, परन्तु संख्या में कोई समानता नही थी। बादलगढ़ का द्वार टूट गया। लक्ष्मण-पौर पर भयानक युद्ध हुआ, इब्राहीम लोदी के युग का एक विश्वसनीय एवं प्रमुख सरदार **ताज निजाम** मारा गया। ग्वालियर पर लोदियों का अधिकार हो गया। विक्रमाजीत को शम्साबाद की जागीर दी गई।

बाबर ने जब इब्राहीम लोदी को हराया, तब विक्रमाजीत इब्राहीम लोदी की ओर से लड़ता हुआ सन् १५२६ ई० में मारा गया।

जिस समय विक्रमाजीत इब्राहीम लोदी की ओर से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे रहा था, उसी समय थोडे-से सैनिकों की सहायता से **रामसिंह** नामक एक तोमर-युवक ने ग्वालियर-दुर्ग के अफगान-अधिकारी तातार खाँ को परास्त करके किले पर अधिकार कर लिया।[1]

बाबर दिल्ली का सम्राट् बन चुका था। ग्वालियर-दुर्ग में छिपे हुए तातार खाँ ने गुप्त रूप से बाबर को सन्देशा भेजा। बाबर ने उसका निमन्त्रण स्वीकृत किया।

'बाबरनामः' कहता है : "तातार खाँ **सारंगखानी** ग्वालियर में था और हमेशा आदमी भेजकर खैरख्वाही जताया करता था, मगर जब राना (**राणासाँगा**) खँडार का किला लेकर बयाना के पास पहुँचा और ग्वालियर के राजाओं में से **धरमंगद** और **खानजहाँ** ग्वालियर के पास आकर किला लेने के वास्ते फसाद करने लगे, तब तातार खाँ ने तंग होकर ग्वालियर उनको देना चाहा। . बादशाह (इब्राहीम लोदी) ने **रहीमदाद** को ग्वालियर में बैठा आने के लिए **शेख मुहम्मद गौस** को भेजा था। जब ये लोग ग्वालियर के पास पहुँचे, तब तातार खाँ की नीयत बदल गई थी और वह इनको किले में नही बुलाता था। आखिर शेख मुहम्मद गौस दरवेश ने, जिसके बहुत-से चेले थे, किले में से रहीमदाद को कहलाया कि जिस तरह हो सके, अन्दर आ जाओ; क्योंकि इस आदमी की नीयत बदली हुई है। रहीमदाद ने तातार खाँ से कहलवाया कि बाहर तो राना (साँगा) का डर है। मैं कई आदमियों के साथ किले में आ जाऊँगा, दूसरे लोग बाहर रहेंगे।. . रहीमदाद उसी रात उसी दरवाजे से अपने सब आदमियों को ले आया। दिन निकलते ही किले पर मुगलों का अधिकार हो गया।"[2]

---

१. **मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० १३।**

२. **बाबरनामा, अनुवादक : मुंशी देवीप्रसाद, रिजवी प्रेस दिल्ली, प्रकाशन-काल : सं० १९६७ (सन् १९१० ई०) पृ० २६३-२६४।**

प्रतीत होता है कि जिस बात को बाबर तातार खाँ की विवशता कहता है, उसका कारण उस रामसिंह के हाथ में अधिकार होना था, जिसके सगोत्र इब्राहीम लोदी के पक्ष में लड़ रहे थे। वास्तव में, मुगलों के अधिकार के मूल में शेख मुहम्मद गौस और उसके मुरीद थे। विश्वासघातपूर्वक मुगल-सैनिकों के लिए किले का दरवाजा खोलना शेख मुहम्मद गौस के ही संकेत पर हुआ था।[1] रामसिंह को विवश होकर मेवाड़ जाना पडा।

विक्रमाजीत की सन्तानें : विक्रमाजीत पानीपत के मैदान में वीरगति पा गये थे। उनका परिवार आगरा मे था। हुमायूँ ने उसके साथ सद्व्यवहार किया। फलतः, उस परिवार ने हुमायूँ को 'कोहनूर' भेंट किया, जो तोमरों ने मॉडौ के सुलतान हुशगशाह को हराकर प्राप्त किया था। तोमरों के उत्थान और पतन का यह संक्षिप्त इतिहास है, परन्तु कला की दृष्टि से मानसिंह ने जो कुछ किया, उसका प्रभाव दूरव्यापी हुआ।

ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर : अत्यन्त विषम परिस्थिति में ग्वालियर के सिंहासन पर मानसिंह तोमर अभिषिक्त हुआ, जो महान् वीर, अप्रतिम कलामर्मज्ञ और गुणियों का प्रिय आश्रयदाता था।

फरिश्ता ने मानसिंह को वीर और योग्य शासक बतलाया है। अँगरेज इतिहास-लेखकों ने मानसिंह के राज्यकाल को तोमर-शासन का स्वर्णयुग कहा है।

मानसिंह को अपने विरोधियों से तलवार लेकर अलग मोर्चा लेना पडा और ललित-कलाओं में हिन्दू-आत्मा को पुनः प्रतिष्ठित करके उनके उद्धार का काम करना पडा।

सगीत के क्षेत्र में मानसिंह का कार्य इतना महान् है कि उसे 'महान् सगीत-प्रवर्त्तक' कहा जाना भी उसके प्रति वास्तविक कृतज्ञता-ज्ञापन नही है।

मेवाड़ के परम पराक्रमी नरेश **महाराणा कुम्भ** (सन् १४३३—१४६८ ई०) के पराक्रम की कहानियाँ तो मानसिंह तोमर के लिए बिलकुल ताजा थी, जिनका पराक्रमी पुत्र **रायमल** (सन् १४३३-–१५०९ ई०) मानसिंह का समकालीन मेवाड़-नरेश था। मानसिंह तोमर के राज्यकाल (सन् १४८६–१५१६ ई०) में ही राणा सागा (राज्याभिषेक : सन् १५०९ ई०) मेवाड़ की गद्दी पर बैठ चुके थे और उन्होंने अपना लोहा शत्रुओं को मनवा दिया था।

मानसिंह के पूर्वज डूँगरेन्द्रसिंह (सन् १४२४–१४५५ ई०) तीस-इकतीस वर्ष ग्वालियर का शासन और शत्रुओं का प्रतिरोध सफलतापूर्वक कर चुके थे। यथावसर सन्धि-विग्रह में

---

१. अबुल फजल ने मुहम्मद गौस और उसके भाई बहलोल को साधुता और विद्वत्ता के गुणों से शून्य षड्यन्त्रकारी और लोभी बताया है। बाबर और हुमायूँ से इन्हें बड़ी जागीरें मिलीं। इन्होंने हुमायूँ के विरुद्ध गुजरात के सुलतानों से मिलकर गुप्त षड्यन्त्र किया था। शेख गदाई से जब बैरम खाँ को इस रहस्य का पता चला, तब उसने मुहम्मद गौस को गिरफ्तार करना चाहा। मुहम्मद गौस दिल्ली से भागकर ग्वालियर चले गये।

कुशल, पराक्रमी योद्धा एव सफल शासक मानसिंह के हृदय में हिन्दू-परम्पराओं के पुनरुज्जीवन की आकाक्षा का होना ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था।

मुस्लिम-नरेशों की सभाओं में जिन गुणियों के लिए कोई स्थान न था, वे तो मानसिंह की छत्रच्छाया में सुखपूर्वक साँस ले ही रहे थे, सुदूर दक्षिण से तीर्थयात्रा के लिए आनेवाले हिन्दू-गुणी भी उत्तर भारत में हिन्दू-गौरव के पुन· संस्थापक मानसिंह के दर्शनार्थ ग्वालियर आते और यथोचित सम्मान पाते थे।

सिकन्दर लोदी (सन् १४८८–१५१७ ई०) और मानसिह तोमर (सन् १४८६–१५१६ ई०) ने प्रायः उनतीस वर्ष साथ-साथ राज्य किया। सिकन्दर लोदी जैसे बर्बर दिल्ली-सुलतान से सफलतापूर्वक इतने दिनों तक निबटनेवाले मानसिंह तोमर की यशोगाथा यदि हिन्दू-गुणियों को ग्वालियर की ओर आकृष्ट करती थी, तो आश्चर्य का कोई कारण नहीं था। इन परिस्थितियों ने मानसिंह तोमर के मस्तिष्क में निम्नांकित विचार उत्पन्न किये :

(अ) **'लोकभाषा को राजसभा में आश्रय दिया जाय, उसमें गीत-रचना कराई जाय और दूसरों को इस ओर प्रेरित किया जाय।'** फलतः, मानसिह ने स्वय गीत-रचना की और 'बख्शू' जैसे गुणियों को प्रेरणा ही नही, शिक्षा भी दी।

(आ) **'मन्दिरों में होनेवाले संगीत की विच्छिन्न परम्परा को पुनरुज्जीवित किया जाय और लोकसभा में स्तुति-प्रधान गीतों की रचना कराई जाय।'** फलतः, स्तुति-प्रधान गीतो को शास्त्रीय संगीत में स्थान मिला। यही नही, मांगलिक अवसरो पर भी ऐसे गीतों का सार्वजनिक गान होने लगा।

विभिन्न मांगलिक अवसरों पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि देवताओं से जिनमे मंगलकामना की जाय, ऐसे गीतो का प्रभाव मुगल-दरबार पर मुगल-साम्राज्य के अन्त तक रहा। अभिषेक, वर्षगाँठ, विवाह इत्यादि के अवसरों पर मुगल-बादशाहों के (औरंगजेब के भी) समक्ष गाये जानेवाले गीतों में हिन्दू-देवी-देवताओं से की जानेवाली प्रार्थनाएँ या मंगल-कामनाएँ मानसिह के प्रयत्नों से ही प्रभावित थी।

(इ) **'संगीत को लोकजीवन के निकट लाया जाय और उसमें जीवन की मधुर झाँकियों का चित्रण हो।'** दाम्पत्य-जीवन के मधुर चित्रों से युक्त गीतो की रचना इसी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप हुई। परिणाम यह हुआ कि भविष्य मे होनेवाले ध्रुवपदकारों का मार्गदर्शन हुआ।

(ई) **"साहित्य के सामान्य नियमों से गायकों का परिचय कराने के लिए 'नायिका-भेद' जैसे विषय को लोकभाषा में गायकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाय, जिससे उन्हें इस प्रकार के विषयों की सीमाओं का ज्ञान हो।"** मानसिंह के इस प्रयत्न ने भावी व्रजभाषा-कवियों को पूर्णतया प्रभावित किया।

(उ) **'संगीत-सम्बन्धी नियमों को लोकभाषा में संक्षिप्त रूप से निबद्ध कर दिया जाय, जिससे असंस्कृतज्ञ गायक एवं रसिक लाभान्वित हो सकें।'**

(ऊ) **'अमीर खुसरो एवं हुसेनशाह शर्की की भाँति नवीन रागों की भी उद्भावना की जाय, जिससे हिन्दुओं के मस्तिष्क को केवल रूढ़िवादी अथवा अनुर्वर न समझा जाय।'**

मानसिंह तोमर की सभा में निर्मित राग प्रिय तो हुए ही, उसके शिष्य 'बख्शू' द्वारा निर्मित राग गुजरात के **बहादुरशाह** को भी प्रिय लगे और लोक मे प्रसिद्ध हुए।

अपने इन विचारों को मूर्त्त रूप देने के लिए जहाँ मानसिह ने गीतो का निर्माण किया और कराया, वहाँ 'मानकुतूहल' नामक एक ग्रन्थ को भी जन्म दिया,[1] जिसमे विषय-विभाजन इस प्रकार है :

प्रथम अध्याय : प्रयोजन : इस अध्याय का अध्ययन बताता है कि मानसिंह तोमर की सभा में मंजू, बख्शू और लोहंग नामक गायक थे। **नायक पाण्डवी** नामक एक अन्य कलाकार भी था, जो दक्षिण से कुरुक्षेत्र-स्नान के लिए आया था। मानसिह के हृदय मे यह बात उत्पन्न हुई कि संगीत के विद्यार्थियों की कठिनता को दूर करने के लिए इन गुणियों की सहायता से एक ऐसी पुस्तक का निर्माण किया जाना चाहिए, जिसमे रागों की संख्या एवं प्रकार विस्तारपूर्वक लिपिबद्ध हों।

द्वितीय अध्याय : राग : इस अध्याय में छह रागों तथा उनके विभेदों की चर्चा है।

तृतीय अध्याय : ऋतुएँ, रागों से उनका सम्बन्ध, अशुभ गण : इस अध्याय मे ऋतुओं के समय का निर्देश करके विशिष्ट रागों का विनियोग विशिष्ट ऋतुओ मे किया गया है। दग्धाक्षरों का वर्णन है तथा अशुभ गण बताये गये हैं।

चतुर्थ अध्याय : स्वरों की उत्पत्ति तथा गीत-भेद : इस अध्याय मे विभिन्न प्राणियो से स्वरों का सम्बन्ध बताकर मानव-शरीर में उसकी उत्पत्ति के स्थान बताये गये है। गीतों के दो भेद 'चन्द्रप्रकाश' एवं 'सूर्यप्रकाश' कहे गये है, इस वर्गीकरण का आधार ताल है।

पंचम अध्याय : वाद्ययन्त्र, नायक-नायिका, सखी : इस अध्याय में विभिन्न वाद्ययन्त्रों का वणन है। तत्पश्चात् नायकों और नायिकाओं के प्रकार दिये गये हैं।

नायक : (अ) एक स्त्रीवाला, (आ) बहुपत्नीक और (इ) बहला-फुसलाकर स्त्री को वश मे करनेवाला।

नायिकाएँ : इनके तीन प्रकार 'स्वकीया', 'परकीया' और 'सामान्या' है। स्वकीया के तीन भेद 'अज्ञातयौवना', 'ज्ञातयौवना' और 'प्रौढा' है। अन्य आचार्य स्वकीया के तीन भेद 'अज्ञातयौवना', 'मध्या' और 'प्रगल्भा' बताते है। 'मध्या' के तीन प्रकार 'धीरा', 'अधीरा' और 'धीराधीरा' भी है। स्वकीया के दो प्रकार 'ज्येष्ठा' और 'कनिष्ठा' भी है। परकीया

---

१. 'मानकुतूहल' मूल रूप में अप्राप्त है। सन् १६६२ ई० में फकीरुल्लाह ने 'मानकुतूहल' का फारसी-अनुवाद किया, जिसका हिन्दी-अनुवाद 'मानसिंह और मानकुतूहल' नामक पुस्तक में दिया गया है। प्रस्तुत विवरण इसी पुस्तक के आधार पर है।—ले०

के दो प्रकार 'प्रौढा' और 'गणिका' है। प्रौढा के छह प्रकार 'गुप्ता', 'विदग्धा', 'लक्षणा' 'कुलटा', 'अनसूया' और 'मोदिता' है। सामान्या के तीन प्रकार 'सम्भोगदूतिका', 'वक्रोक्ति-गर्विता' और 'मानवती है। वक्रोक्तिगर्विता के दो प्रकार 'प्रेमगर्विता' और 'तद्द्वय-गर्विता' है। 'मानवती' भी एक प्रकार की नायिका है।

स्वकीया, परकीया एवं सामान्या के आठ अन्य भेद वर्णित है। जैसे : प्रोषितभर्तृका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, प्रोवत्स्यत्पतिका और अभिसारिका। इसके पश्चात् दूती और उसके कर्त्तव्यो का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय : इस अध्याय में गायक के दोषों का वर्णन है।

सप्तम अध्याय : कण्ठ तथा स्वर : इस अध्याय मे विभिन्न कण्ठ-स्वरों की विशेषताएँ वर्णित है।

अष्टम अध्याय : इस अध्याय में वाग्गेयकारो और गायकों के गुणों और भेदों पर विचार किया गया है।

नवम अध्याय : इसमें 'वृन्द' (गायक-वादक-समूह) की परिभाषा तथा उसके भेदों का वर्णन है। 'वृन्द' के लाभ भी बताये गये हैं।

शाहजहाँ और औरंगजेब के राज्यकाल में कश्मीर के गवर्नर फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के नाम से 'मानकुतूहल' का अनुवाद सन् १६६२ ई० में किया। यह अनुवाद-ग्रन्थ रामपुर-स्टेट की रजा लाइब्रेरी में सुरक्षित है। फकीरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के आरम्भ में कहा है कि १०७३ हि० (सन् १६६२ ई०) में मानसिंह की लिखाई हुई एक पुस्तक 'मानकुतूहल' देखने मे आई है। इसका अनुवाद औरंगजेब को समर्पित करने के लिए किया गया।[1]

'मानकुतूहल' की मूल प्रति आजकल नही मिलती, अतः यह नही कहा जा सकता कि यह पुस्तक संस्कृत-भाषा में लिखी गई अथवा ग्वालियरी-भाषा में। परन्तु, ग्वालियरी-भाषा में स्वयं लिखे तथा अन्यों से लिखाये हुए पद्यों को शास्त्रीय संगीत का माध्यम बनाकर मानसिंह ने लोकभाषा के प्रति जो प्रेम प्रकट किया है, उसे देखते हुए यह असम्भव नही कि 'मानकुतूहल' की रचना ग्वालियरी-भाषा में हुई हो। यदि ऐसा है, तो 'मानकुतूहल' व्रजभाषा या ग्वालियरी-भाषा का वह प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें संगीत के विभिन्न अंगों के साथ नायिका-भेद पर भी विचार किया गया है।

गीतरचना : 'रागदर्पण' मे मानसिंह को ध्रुवपद का आविष्कारक कहा गया है।[2] इसका अर्थ यही सम्भव है कि ग्वालियरी-भाषा में लिखे हुए गीतों को शास्त्रीय संगीत के

---

१. औरंगजेब अपने शासनकाल के आदिम नौ वर्षों में संगीत एवं काव्य का विरोधी नहीं था। गवैयों द्वारा दरबार में गाने का निषेध इसने सन् १६६७ ई० में किया था।

२. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, भूमिका।

ढाँचे में सर्वप्रथम मानसिंह तोमर ने ढाला। इसने इस प्रयोजन के लिए सर्वप्रथम ग्वालियरी-भाषा में कविताएँ लिखी और यह एक नवीन शैली का आविष्कारक हुआ। भगवान् कृष्ण से सम्बद्ध पदों का नामकरण मानसिह तोमर ने 'विष्णुपद' किया। अन्य धार्मिक विभूतियों की प्रशंसा से युक्त पदों को 'स्तुति' कहा तथा प्रेम की अवस्थाओं के चित्रण से युक्त रचनाओं का नाम 'ध्रुवपद' रखा।[1]

मानसिंह द्वारा प्रवर्त्तित यह शैली आगे चलकर इतनी फली-फूली कि मुहम्मदशाह रँगीले के समय तक अन्तःपुरो और दरबारों में छाई रही। अबुल फजल ने इसको जनता के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयुक्त एवं रुचिकर कहा है।[2] इस शैली को हिन्दू-शैली कहकर दबाने की अनेक चेष्टाएँ की गईं, परन्तु कुछ विकृत रूप में यह आज भी जीवित है।

मानसिह के राज्यारोहण-काल, सन् १४८६ ई० मे स्वामी हरिदास (जन्म : संवत् १५३७ वि०, अर्थात् सन् १४८० ई०) की आयु केवल छह वर्ष और सूरदास (ज० सं० प्रायः १५४० वि०, अर्थात् सन् १५८३ ई०) की आयु प्रायः तीन वर्ष की थी। इसका अर्थ यह है कि मानसिह की मृत्यु के समय स्वामी हरिदास छत्तीस और सूरदास प्रायः बत्तीस वर्ष के थे।

ध्रुवपद-शैली की पद्यत्वहीन, परन्तु अत्यन्त सरस रचना भक्तो में स्वामी श्रीहरिदासजी ने की है और 'विष्णुपद' (कृष्णलीला-सम्बन्धी पद) सूरदास इत्यादि अष्टछाप के कवियों ने लिखे है। विष्णुपदों के निर्माण के कारण भक्त-परम्परा भी मानसिह तोमर के प्रयत्नों से प्रभावित हुई।

मानसिह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह के दरबारी कलाकार कुछ दिनों तक उसके पुत्र विक्रमाजीत के आश्रय मे रहे। विक्रमाजीत के हाथ से ग्वालियर निकल जाने पर ये इतस्ततः चले गये।

अबुल फजल का कथन है कि दो कलाकार बख्शू और मछू गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के दरबार मे चले गये और उन्होंने मानसिह द्वारा आविष्कृत शैली को वहाँ के दरबार में प्रवर्त्तित किया।[3] यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सन् १५१८ ई० में ग्वालियर पर लोदी बादशाहों का अधिकार हो जानें के पश्चात् ये कलाकार बहादुरशाह के दरबार में गुजरात पहुँचे। बहादुरशाह का राज्यकाल सन् १५२६ ई० से आरम्भ होता है। सन् १५१८ से १५२६ ई० तक आठ वर्ष इनका समय किसके आश्रय में व्यतीत हुआ, यह एक विचारणीय विषय है। अबुल फजल ने इस सम्बन्ध में मौन अवलम्बन किया है।

---

१. 'बादशाहनामः', २–६; खुलासतुल्-ऐश आलमशाही, १४५ ब; मिरातिं आफताब-नुमः ३८८ अ; उर्दू-'आजकल', अगस्त, १९५६ ई०, पृ० १०३।

२. आईने अकबरी : ग्लैडविन, पृ० १३०।

३. उपरिवत्।

मौलाना अर्शी ने बख्शू के विषय में लिखा है कि ग्वालियर-पतन के पश्चात् बख्शू कालिंजर-नरेश **कीरत** के यहाँ चला गया। सुलतान बहादुरशाह ने बख्शू के संगीत-नैपुण्य की प्रशंसा सुनकर कालिंजर-नरेश से इसे माँग लिया और अपने यहाँ इसकी नियुक्ति करके वह बहुत प्रसन्न हुआ।[१]

अस्तु; हम देखते है कि राजनीतिक उथल-पुथल के अवसरों पर बख्शू के रूप में मानसिंह की कला भारतीय रूप की विजय-वैजयन्ती लेकर गुजरात के दरबार में ससम्मान प्रविष्ट हुई और सराही गई।

'बादशाहनामः' के अनुसार तो मानसिंह के दरबारी गायक बैजू भी बहादुरशाह के दरबार मे थे।[२]

बख्शू कीवंश-परम्परा ने गुजरात के दरबार को नही छोड़ा और बख्शू का पुत्र 'हुसैनी' गुजरात के मन्त्री **दरिया खाँ** के आश्रय में रहा, जिसका मन्त्रित्वकाल सन् १५३८ से १५५४ ई० तक रहा।[३]

मानसिंह की परम्परा ने 'गोपाल' (द्वितीय) जैसे गायक को उत्पन्न किया, जो मानसिंह के दरबारी गायक बैजू का शिष्य था। बहादुरशाह गुजराती के राज्यकाल में गोपाल अत्यन्त सम्मान के साथ रहा।[४]

पानीपत में इब्राहीम लोदी को बाबर ने सन् १५२६ ई० की जनवरी मे हराया था। इस युद्ध के पश्चात् ही बाबर ने शाहजादा हुमायूँ को आगरा पर अधिकार करने भेज दिया और स्वयं भी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया। ग्वालियर के राजा ने हुमायूँ को एक प्रसिद्ध हीरा भेंट किया था, जिसे हुमायूँ ने बाबर की सेवा मे उपस्थित किया।[५] बाबर ने ग्वालियर के अधिकारी को बड़ी आय का परगना देकर दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया।[६]

सन् १५४२ ई० में ग्वालियर पर शेरशाह का अधिकार हुआ और सन् १५४७ ई० में शेरशाह के उत्तराधिकारी 'इस्लामशाह' या 'सलेमशाह' ने आगरा के स्थान पर 'ग्वालियर' को अपनी राजधानी बनाया। इसकी मृत्यु सन् १५५३ ई० में हुई।[७]

ग्वालियर में मानसिंह की संगीत-परम्परा जीवित थी। तानसेन इस्लामशाह के प्रेमपात्र दौलत खाँ के सम्पर्क मे थे।[८] ऐसे ध्रुवपद भी प्राप्त है, जिनमें इस्लामशाह नायक के रूप में वर्णित हैं और ये ध्रुवपद नायिका-भेद-सम्बन्धी है।

---

१. उर्दू-'आजकल', अगस्त १९५६ ई०, पृ० १०४।
२. बादशाहनामः, रामपुर-प्रति, पृ० ३—६।
३. मिराति सिकन्दरी, पृ० २६८; उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०३।
४. उपरिवत्, पृ० १०५।
५. भा० इ०, भा० ३, पृ० १८।
६. उपरिवत्।
७. ब्रज का इतिहास, पृ० १५०।
८. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नं०, पृ० ९३।

तानसेन की शिक्षा मानसिंह के गायकों की देखरेख में हुई थी। ऐसे ध्रुवपद भी प्राप्त है, जिनमें तानसेन 'छत्रपति' मानसिंह की प्रशसा कर रहे है। यह 'छत्रपति' विशेषण मानसिंह तोमर को ही ऐसे ध्रुवपदो का नायक बताता है।[1]

इस्लामशाह के पश्चात् उसका साला मोहम्मद आदिलशाह 'अदली' राजा बना। इसने इस्लामशाह के द्वादशवर्षीय पुत्र, अर्थात् अपने भाँजे की हत्या करके सन् १५५४ ई० में तख्त पर अधिकार किया। यह अदली संगीत का महान् मर्मज्ञ एवं संगीतज्ञो का आश्रयदाता था। तानसेन इसके दरबार में थे।[2]

इसी समय सन् १५५४ ई० मे शेरशाह के एक वशज एवं अदली के बहनोई इब्राहीम सूर ने आगरा आदि पर अधिकार कर लिया।[3] इस इब्राहीम सूर ने भी तानसेन को निमन्त्रित किया था।[4] इस प्रकार, यह प्रत्यक्ष है कि सन् १५५४ ई० मे सुलतान महमूद द्वितीय के मन्त्री दरिया खाँ के आश्रय में रहकर गुजरात मे 'बख्शू' का पुत्र 'हुसेनी' ध्रुवपद गा रहा था। वहाँ ग्वालियर-परम्परा के गायक तानसेन रीवाँ-नरेश रामचन्द्र के आश्रय में रहकर उसे मानसिंह-शैली के गान से रिझा रहे थे। वह कालिंजर इन्ही राजा रामचन्द्र के अधिकार में था, जहाँ के राजा कीरत का आश्रय कभी बख्शू और मझू जैसे नायको ने ग्वालियर छोड़ने के पश्चात् लिया था।

यहाँ एक यह तथ्य भी स्मरणीय है कि हुमायूँ ने जब माँडौ जीता था, तब 'बैजू' के गाने का उसपर इतना असर हुआ था कि उसने कत्ले-आम बन्द करके बैजू को खिलअत दी थी। अवसर पाते ही बैजू भागकर बहादुरशाह के पास पहुँच गया। उसे देखकर बहादुरशाह ने कहा कि मैंने अपनी खोई हुई सम्पत्ति पा ली। हुमायूँ को जब बैजू के भागने का पता चला, तब उसने कहा कि भाग्यहीन था, जो भाग गया। यदि हमारी सेवा मे रह जाता, तो इतना पाता कि बहादुरशाह को भूल जाता।[5]

---

१. 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि', पृ० ११० पर डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने प्रस्तुत पद को अकबरी दरबार में मानसिंह (सलीम के साले) से सम्बद्ध बताया है, यह संगत नहीं है। 'छत्रपति' शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र राजा के लिए होता था, इसीलिए शिवाजी ने 'छत्रपति' उपाधि धारण की थी। अकबर के आनुवंशिक गुलाम मानसिंह 'छत्रपति' नहीं थे। तानसेन की मृत्यु सन् १५८९ ई० के २६ अप्रैल को आगरा में हुई। मानसिंह इस समय तक केवल 'कुँवर' थे, राजा तक नहीं थे। नवम्बर, १५८९ ई० में अपने पिता भगवानदास के मरने पर मानसिंह 'राजा' हुए थे।

२. अकबर, पृ० ३७–३८।

३. अकबर, पृ० ३८।

४. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, खं० १, पृ० ६८१।

५. मिराति सिकन्दरी, पृ० २०९; खुलासतुल् ऐश आलमशाही, पृ० १४६ अ; मिराति आफताबनुमः, ३८९ ब; उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०५।

ग्वालियर के गायक बाबा रामदास इस्लामशाह के दरबार में थे। ये बैरम खाँ के सम्पर्क में आये, जो हुमायूँ का विश्वासपात्र सेनापति और अकबर का अतालीक़ था। रामदास के गाने से प्रभावित होकर बैरम खाँ प्रायः विगलितहृदय हो जाता था। रामदास उसके घनिष्ठतम साथियों में थे।[1] इन्ही रामदास की गणना भविष्य में अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों में हुई और इनके पुत्र सूरदास भी गायकों की श्रेणी में आये। रामदास ९६७ हि० (सन् १५५९–६० ई०) में बैरम खाँ के सम्पर्क मे आये थे, जबकि अकबर का अधिकार ग्वालियर पर हो चुका था। 'आईने अकबरी' में रामदास और उनके पुत्र सूरदास अकबरी दरबार के प्रमुख गायको के रूप में उल्लिखित हैं। (यह सूरदास महाकवि सूरदास से सर्वथा भिन्न है।)

सन् १५६२ ई० में तानसेन की कीर्त्ति अकबर तक पहुँची, जो राजा रामचन्द्र के दरबार से 'सेवानिवृत्त' होने का विचार कर रहे थे।[2] अकबर ने उन्हे बुलवा भेजा। वे अकबरी दरबार में आना नही चाहते थे, परन्तु जलाल खाँ कूर्ची को जब उन्हें लेने भेजा गया, तब बलात् उन्हें आना पड़ा।[3] इस प्रकार, ग्वालियर-नरेश मानसिंह का जीता-जागता कीर्त्तिस्तम्भ तानसेन के रूप में अकबरी दरबार में प्रतिष्ठित हो गया।

ग्वालियर की गान-कला के साथ ही अकबरी दरबार में व्रजभाषा को प्रतिष्ठित कराने का पूर्ण श्रेय उस मानसिंह तोमर को है, जिसने लोकभाषा के स्तर से उठाकर ग्वालियरी-भाषा (व्रजभाषा) को राजसभा में सर्वप्रथम उच्च सिहासन दिया था।

व्रजमण्डल के अन्तर्गत स्थित आगरा में जो सास्कृतिक केन्द्र बना, उसने भविष्य में प्रायः समस्त देश को प्रभावित किया।

जिस वर्ष तानसेन अकबरी दरबार में आये, उसी वर्ष, अर्थात् सन् १५६२ ई० मे अकबर ने राजा बिहारीमल की लड़की के साथ साँभर में विवाह किया।[4] यही लड़की जहाँगीर की माता थी, जो भविष्य में 'मरियम ज़मानी' कहलाई। मानसिंह इसी वर्ष दिल्ली-दरबार में आये। इस समय इनकी आयु बीस वर्ष के लगभग थी। नवम्बर, १५८९ ई० में ये कुँवर मानसिह अपने पिता भगवानदास के मरने पर 'राजा मानसिंह' बने।

आगरा के दीर्घकालीन निवास और तानसेन एवं रामदास जैसे गायकों के दिव्य संगीत ने इन मानसिह को भी व्रजभाषा-कवियो एवं ध्रुवपद-गायको का आश्रयदाता बना दिया। भविष्य में जयपुर-दरबार गायको एवं कवियो का प्रमुख आश्रयस्थल बना।

सन् १५७० ई० में बीकानेर और जैसलमेर की राजकुमारियों से अकबर ने विवाह किया। इन विवाहों के परिणामस्वरूप आगरा से राजस्थान के सम्बन्ध बढ़े।

---

१. मुन्त०, खं० २, पृ० ६०।

२. अकबरनामः, खं० २, पृ० २७९।

३. मुन्त०, खं० २, पृ० ३४५।

४. अकबर, पृ० १४९।

अकबर ने भारतीय संगीत और उनमें प्रयोज्य गीतों को सीखने-समझने में भली भाँति समय दिया। ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय गीत प्रायः मानसिंह-प्रवर्त्तित शैली के ध्रुवपद ही थे।

अकबर के अनेक दरबारी व्रजभाषा में काव्य-रचना करने लगे और अकबरी दरबार के सामन्त भी इस क्षेत्र मे पीछे न रहे।

सन् १५५४ ई० में मधुकरशाह ने ओरछा-राज्य की नीव डाली थी और इन्होने सन् १५९२ ई० तक शासन किया। अकबर से सदा मोर्चा लेते रहे। ये व्रजभाषा-कवियों के आश्रयदाता थे। मधुरशाह के छोटे पुत्र वीरसिंहदेव भी सदा अकबर के दाँत खट्टे करते रहे। महाकवि केशवदास ने इन्ही वीरसिहदेव की प्रशंसा मे 'वीरसिहदेव-चरित' की रचना की है।

वीरसिंहदेव के बड़े भाई इन्द्रजीतसिंह स्वयं संगीतज्ञ एवं कवि थे, प्रवीणराय इन्ही की पतिव्रता प्रेयसी थी और केशवदास इन्ही के आश्रित थे। इन्द्रजीत 'धीरज' उपनाम से रचना करते थे और उनके द्वारा विरचित अनेक ध्रुवपद प्राप्त है। ध्रुवपद इस वंश के आश्रय में उसी भाँति पहुँचे, जिस भाँति अकबरी दरबार मे।

इसी युग, अर्थात् अकबर के शासनकाल मे ही ध्रुवपद दक्षिण में बीजापुर तक जा पहुँचा था। बख्तर खाँ कलावन्त इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय का गुरु था। अबुल फजल के अनुसार, 'ध्रुवपदों' की भाषा आगरा, ग्वालियर, बैरी तथा अन्य निकटस्थ प्रदेशो मे बोली जानेवाली होती थी[1] और प्रधानतया ध्रुवपद को गानेवाला वर्ग 'कलावन्त' कहलाता था।[2]

यह हम देख चुके हैं कि 'मानकुतूहल' की रचना में एक तैलंग 'नायक पाण्डवी' का भी हाथ था, जो कुरुक्षेत्र में स्नानार्थ आया था और सम्भवतः मानसिंह की कीर्त्ति को सुनकर ग्वालियर पहुँच गया था। मानसिंह के चौबीसवें वर्ष में विजयनगर का प्रतापी शासक कृष्णदेवराय सिंहासन पर बैठा था,[3] जो अपने शौर्य, विद्याव्यसन और गुणग्राहिता के कारण बाबर के गिनाए हुए पाँच भारतीय नरेशों मे एक था[4] और दक्षिण में वे सभी कार्य करने लगा था, जो उत्तर में मानसिह तोमर कर रहा था। मानसिह तोमर के राजनीतिक एव सास्कृतिक कार्यो से कृष्णदेवराय को प्रेरणा न मिली हो, ऐसा नही कहा जा सकता।

कृष्णदेवराय के संरक्षण में लक्ष्मीनारायण के द्वारा लिखा हुआ ग्रन्थ 'संगीतसूर्योदय' इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि कृष्णदेवराय के समय 'गजल' और 'कौल' दक्षिण के

१. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० १३० ।
२. उपरिवत्, पृ० ७३४ ।
३. भारत का इतिहास, भाग २, पृ० १४४ ।
४. उपरिवत्, भाग ३, पृ० १० ।

संगीत-ग्रन्थों में स्थान पाने लगे थे।[1] लक्ष्मीनारायण के पिता विट्ठल ने माँडौ के सुलतान गयासुद्दीन के सम्पर्क में आकर तीन सहस्र तोले स्वर्ण पुरस्कार में पाया था।[2] सम्भव है, विट्ठल मानसिंह तोमर के भी सम्पर्क में आया हो।

कृष्णदेवराय के पश्चात् जब विजयनगर का साम्राज्य विशृंखल हुआ, तब बीजापुर गुणियो का आश्रयस्थल बना। इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने गुणियों से कलावन्तों की कीर्त्ति सुनकर बख्तर खाँ को गुरु बनाया हो, तो आश्चर्य नही है। 'ध्रुवपद' के माध्यम से अकबरी युग में भी मानसिंह तोमर की गानशैली का प्रभाव बख्तर खाँ के द्वारा बीजापुर में पहुँचा। फलतः, इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने अपने यहाँ की भाषा दक्खिनी हिन्दी मे ध्रुवपदो का प्रणयन किया।

रीति-ग्रन्थ : मानसिंह तोमर के कलाकार बैजू और बख्शू तथा उनके अनुयायी तानसेन के द्वारा रचित ध्रुवपदों में प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण था और ये ध्रुवपद जनता के प्रत्येक वर्ग का मन मोहनेवाले थे। दूसरे शब्दों मे यही वे कृतियाँ थी, जो व्रजभाषा के दरबारी काव्य का आदिम नमूना थी। मानसिंह के राज्यकाल के प्रायः पच्चीस वर्ष बाद कृपाराम ने संवत् १५९८ (सन् १५४१ ई०) में 'हिततरंगिणी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका विषय रसरीति है।[3]

'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' लिखनेवाले करनेस तो अकबर के सम्पर्क में आते रहते थे और नरहरि के साथी थे।[4]

महाकवि केशवदास का तो जन्म ही मानसिंह के स्वर्गवास (सन् १५१६ ई०) से उनतालीस वर्ष पश्चात् संवत् १६१२ (सन् १५५५ ई०) मे हुआ था। उनके ग्रन्थ 'रसिकप्रिया' की रचना मानसिंह की मृत्यु से पचहत्तर वर्ष और 'कविप्रिया' की रचना पचासी वर्ष पश्चात् हुई।[5] केशव उस राजा इन्द्रजीत के दरबार में थे, जहाँ ध्रुवपद का साम्राज्य था। दरबारी व्रजभाषा-कवियों एवं ध्रुवपदकारों को अलंकारशास्त्र का बोध हिन्दी-माध्यम से कराने के लिए ही केशव का यह प्रयत्न था।

मानसिंह की मृत्यु से १३४ वर्ष पश्चात् सन् १६५० ई० में चिन्तामणि त्रिपाठी ने अपना 'कविकल्पतरु' लिखा।[6] चिन्तामणि को हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल एवं अखण्ड परम्परा का प्रवर्त्तक कहा जाता है।

इस दृष्टि से 'मानकुतूहल' का नायिकाभेद-सम्बन्धी अध्याय एक विशिष्ट महत्त्व रखता है।

---

१. भरतकोष, भूमिका, पृ० २१।
२. उपरिवत्।
३. हि० सा० इ०, पृ० २८१।
४. हि० सा० इ०, पृ० २८१; अकबरी दर० हि० क०, पृ० ३२।
५. हि० वी० का०, पृ० २१।
६. हि० सा० र०, पृ० २९२।

कलाकार : मुगल-सम्राटों के दरबार में ध्रुवपद का बोलबाला रहा। अकबरी दरबार में तानसेन, बाबा रामदास, सुबहान खाँ, श्रीज्ञान खाँ, मियाँ चाँद, विचित्र खाँ, वीरमण्डल खाँ, शिहाब खाँ, मियाँ लाल, सरोद खाँ, तानतरंग खाँ, नायक चरजू, सूरदास तथा चाँद खाँ ये चौदह कलाकार ग्वालियर के थे।[1] अकबर ने 'रागसागर' नामक ग्रन्थ की रचना कराई। जहाँगीरी दरबार में तानसेन के पुत्र विलास खाँ तानसेन के स्थान पर थे।[2] छतर खाँ भी जहाँगीर के दरबार मे ध्रुवपद-गायक थे। इब्राहीम आदिलशाह का सगीत-गुरु बख्तर खाँ कलावन्त जहाँगीर के सम्पर्क में भली भाँति आया था।[3]

शाहजहाँनी दरबार में तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दामाद लाल खाँ कलावन्त अपने चार पुत्रों-सहित था।[4] इनमे खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ प्रमुख थे।[5] इनके अतिरिक्त, रंग खाँ और किशन खाँ कलावन्त भी शाहजहाँ के प्रिय कलाकार थे।[6] किशन खाँ को शुजा ने शाहजहाँ से माँग लिया था।[7] शाहजहाँ ने नायक बख्शू के एक हजार ध्रुवपदों का संग्रह कराया था।

औरंगजेब अपने शासनकाल के आरम्भिक नौ वर्षो में संगीत का द्रोही नही था। खुशहाल खाँ कलावन्त और सुखीसेन कलावन्त इसके प्रिय ध्रुवपद-गायक थे।[8]

औरंगजेब के पुत्र 'आजम' की गुणग्राहिता प्रसिद्ध है। इसके नाम से अंकित ध्रुवपद प्राप्त है।[9] 'बिहारी-सतसई' का आजमशाही क्रम इसी ने कराया। महाकवि देव ने इसे अपना 'अष्टयाम' सुनाकर प्रसन्न किया था।[10]

औरंगजेब के दूसरे पुत्र मुअज्जम ने 'बहादुरशाह' के नाम से शासन किया। इसके नाम से अंकित ध्रुवपद भी प्राप्त हैं।[11] महाकवि देव इससे भी सम्पृक्त रहे।[12]

औरंगजेब का तृतीय पुत्र मुईजुद्दीन 'जहाँदारशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा। इसको संगीत से बड़ा प्रेम था। इसके नाम से अंकित ध्रुवपद भी प्राप्त होते है।[13]

---

१. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ६८१–८२।
२. भा० सं० इ०, पृ० २६७।
३. जहाँगीरनामः, पृ० २३६।
४. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नं०, पृ० १०७।
५. उपरिवत्।
६. मअदन्०, पृ० २८।
७. उपरिवत्।
८. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब।
९. परिशिष्ट अ, १७०–१७७।
१०. देव और उनकी० (उत्तरार्द्ध), पृ० १६।
११. परिशिष्ट अ, १७८–१६३।
१२. उर्दू-'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८।
१३. परिशिष्ट अ, १६४–२००।

मुहम्मदशाह 'रँगीले' का तो नाम ही संगीत-प्रेम का प्रतीक है। इसके नाम से अंकित ध्रुवपद मिलते है।[1] प्रसिद्ध गायक **सदारंग और अदारंग** इसी दरबार में थे।[2]

आलमगीर सानी मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् सिंहासनारूढ हुआ। इसकी प्रशसा में भी अदारंग के ध्रुवपद प्राप्त है।[3]

आलमगीर का उत्तराधिकारी सम्राट् **शाह आलम** स्वयं व्रजभाषा का भी कवि एवं ध्रुवपदकार था। इसकी रचनाओं का संग्रह 'नादिरांँतिशाही' है, जो रामपुर से प्रकाशित हो चुका है। इसीने 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' नामक एक ग्रन्थ की रचना कराई, जो प्रधानतया कामशास्त्र पर है, परन्तु जिसमे पुराने कलाकारों की भी चर्चा है।

मुगल-दरबार के कवि :

बाबर : बाबर का सम्पर्क किसी अज्ञात कवि से हुआ था।[4]

हुमायूँ : नरहरि महापात्र हुमायूँ के सम्पर्क में आये थे।[5]

अकबर : अकबर के सम्पर्क में दुरसाजी, होलराय, कुम्भनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान, चतुर्भुजदास, राजा आसकरण, पृथ्वीराज, सूरदास, मदनमोहन, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, राजा वीरबल, गंग और रहीम जैसे कवि आये थे।

जहाँगीर : गंग, रहीम और मनोहर का सम्पर्क सम्राट् जहाँगीर के साथ हुआ था। महाकवि केशवदास ने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जहाँगीर के यश का वर्णन किया था।

शाहजहाँ : सरस्वती कवीन्द्र, चिन्तामणि, सुन्दरदास, शिरोमणि और वेदांगराय शाहजहाँ से सम्पृक्त रहे थे।

औरंगजेब · कालिदास त्रिवेदी, किशनकवि, अब्दुलजलील बिलग्रामी, ईश्वर, इन्द्रजीत, कासीराम, सामन्त और वृन्द कवि औरंगजेब से सम्पृक्त रहे थे।

आजम : महाकवि देव और नेवाज आजमशाह से सम्पृक्त थे।

बहादुरशाह : अब्दुर्रहमान, मदनकिशोर, आलम, वृन्द और देव बहादुरशाह के सम्पर्क में आये थे।

मुहम्मदशाह : आजम, घनानन्द, गुमान मिसर, जुगलकिशोर और सूरतिमिश्र मुहम्मदशाह के सम्पर्क में आये थे।

यह स्थिति स्पष्टतया बताती है कि ध्रुवपदों के साथ ही व्रजभाषा-काव्य का प्रवेश मुगल-राजदरबार में हुआ। ध्रुवपदों तथा व्रजभाषा-मुक्तको के विषय एक ही थे।

---

१. परिशिष्ट अ, २०१–२११।

२. उर्दू-'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८।

३. परिशिष्ट अ, २१२–२१३।

४. अकबरी द० हि० क०, पृ० २६।

५. उपरिवत्।

पंचम अध्याय

वृजभाषा के ध्रुवपदकार

गोपाल (प्रथम) नायक :

गोपाल नायक के नाम से उत्तर एवं दक्षिण भारत के संगीत-प्रेमी भली भाँति परिचित है। बारहवी शती ई० के बाद के सगीतज्ञो मे इनका नाम अत्यन्त आदरपूर्वक लिया जाता है। अनुश्रुतियों के अनुसार, ये दक्षिण के रहनेवाले थे, परन्तु इसका साधक कोई अखण्डनीय प्रमाण उपलब्ध नही है। गोपाल नायक के नाम के साथ अनेक किंवदन्तियाँ जुड गई हैं। महापुरुषों के साथ यह व्यवहार सदा से होता आया है।

गोपाल के साथ 'नायक' शब्द सदा जोड़ा जाता है। हमारी दृष्टि में यह शब्द इनकी विशिष्ट स्थिति का द्योतक है। 'नायक' शब्द का प्रयोग ताल्लुकेदार या छोटे राजा के अर्थ में होता है। उत्तर एवं दक्षिण मे राजा लोग संगीत के माने हुए विद्वान् तथा संगीत-शास्त्रकार होते रहे है, अतएव यह असम्भव नही है कि गोपाल कोई छोटे-मोटे नरेश भी हों। ताली-कोटा-युद्ध में विजयनगर-साम्राज्य के बिखर जाने पर उसकी विभिन्न इकाइयों के प्रतिनिधि स्वतन्त्र राजा बन बैठे थे और उनको नायक राजा कहा जाता था।[1] 'रागदर्पणकार' ने कहा है कि गोपाल नायक के साथ उनके सोलह सौ शिष्य रहते थे, जो उनकी पालकी उठाते थे।[2] यह स्थिति किसी साधारण संगीतजीवी की स्थिति से नितान्त भिन्न है। उत्तर भारत के संगीत-क्षेत्र में 'नायक' शब्द का एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग पश्चात्कालीन है।[3]

१. संगीतशास्त्र, पृ० १४६।

२. हजरत अमीर खुसरो, पृ० ३।

३. 'नायक' वे लोग थे, जो इल्म को अमल (व्यवहार) में लाते थे।—रागदर्पण, रामपुर-प्रति, बाब ६ : जो कि लिखा है किताब में (उसपर) अमल करके 'नायक' हो। मअदन् उल् मूसिकी, पृ० २५ : वाजिद अलीशाह के अनुसार, 'नायक' की विशेषताएँ यह हैं : १. कम-से-कम तीन स्वरों पर जिसका अधिकार हो, २. जो प्रत्येक प्रकार के वाद्य, राग, नृत्य और भाव पर अधिकार रखता हो, ३. जो प्रत्येक प्रकार की रचना कर सकता हो, ४. जिसके गाने से सुननेवालों पर प्रभाव हो, ५. रुपये या अन्य वस्तु का लोभी न हो, ६. योगविद्या में कुशल हो, ७. एकान्तसेवी या वनचारी हो, ८. पूर्वोक्त गुणों तथा नवीन उद्भावनाओं में अपने युग का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हो, ९. शेर, गजल, दादरा, छन्द, प्रबन्ध, गीत, संगीत और उसके प्रकारों को प्रत्येक स्थान, स्थिति और विभाग में गाने से न घबराये, १०. लड़ाई-झगड़ों से पूर्णरूपेण बचता हो, जो मूर्खों के कार्य हैं, ११. विनम्रता और शील के कारण अपने-

विजयनगर के यादव-वंशीय नरेश इम्मडिदेव (रा० का० सन् १४४६ से १४६५ ई०) के आश्रित कल्लिनाथ ने 'सगीतरत्नाकर' की टीका मे अत्यन्त आदरपूर्वक गोपाल नायक के मत का उल्लेख 'प्रबन्धकार' के रूप में किया है ।[१] इसका अर्थ यह है कि पन्द्रहवी शती ई० के पूर्वार्द्ध में गोपाल नायक का नाम देशविश्रुत हो चुका था और कल्लिनाथ जैसे संगीत के चूडान्त मर्मज्ञ की दृष्टि में वे प्रमाणभूत थे। सत्रहवी शती ई० के दाक्षिणात्य संगीत-ग्रन्थकर वेंकटमखी ने भी गोपाल नायक का स्मरण श्रद्धापूर्वक 'चतुर्दण्डी'-प्रकरण मे किया है।[२] यह स्थिति सिद्ध करती है कि गोपाल नायक आसेतुहिमाचल श्रद्धा के पात्र रहे है ।

गोपाल नायक ने संगीत का कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा था, जो कल्लिनाथ और वेंकटमखी के समक्ष था। परन्तु, अब वह ग्रन्थ तो दूर, उसका नाम तक प्राप्त नही होता ।

'रागदर्पण' मे फकीरुल्लाह ने कहा है कि गोपाल नायक अलाउद्दीन खिल्जी के काल में अखिलभारतीय ख्याति के सगीतज्ञ थे। गोपाल नायक के सोलह सौ शिष्य थे, जो अपने कन्धो पर उनकी पालकी उठाते थे। सम्राट् अलाउद्दीन की सभा मे निमन्त्रित किये जाने पर गोपाल नायक ने छह विभिन्न गोष्ठियो मे अपने विभिन्न रागो को प्रस्तुत किया। इन गोष्ठियों के समय खुसरो तख्त के नीचे छिपे रहते थे। सातवे दिन खुसरो गोपाल के सम्मुख प्रकट हुए और उन्होने गोपाल से अपने सामर्थ्य (योग्यता) का प्रदर्शन करने के लिए कहा और दावा किया कि गोपाल के समस्त रागो का आविष्कार मै पहले ही कर चुका हूँ और खुसरो का किया हुआ अनुकरण हिन्दु-कलाकार (गोपाल नायक) को चकित कर देने के लिए पूर्णतया समर्थ था।[३]

आपको चक्की पीसनेवाली औरतों से भी घटिया समझता हो, १२. जब चाहे, संकल्पपूर्वक सुननेवालों को रुला दे अथवा वनचारी बना दे।—सौतुल्मुबारक, रामपुर-प्रति, पृ० ४२ ।

१. (क) तथाहि गोपालनायकेन, गीतद्वात्रिंशद्रागतालयुक्तगद्यात्मके भ्रमराख्ये स्वस्तिकभेदे रागकदम्बे प्रथमसिंहनन्दनतालबद्धे मालवश्रीपदे पदतालावेवोद्ग्राहध्रुवयोर्नियोजिताविति द्व्यङ्गत्वम् । —सं० र०, प्रबन्धाध्याय, पृ० २८३ ।

(ख) तथाहि कुडुवकतालस्तु गोपालनायकेन रागकदम्बैरेव गुप्तिवदप्रयुक्तः ।
—सं० रा०, ताला०, पृ० १४० ।

२. गीतप्रबन्धयोरेवं भेदो यदि न कल्प्यते ।
कुतः सिद्ध्येच्चतुर्दण्डी कुतो गोपालनायकः ॥—भरतकोष, पृ० १९९ पर उद्धृत ।

३. "Naik Gopal was a musician of all India fame in the time of Alauddin Khilji. He had sixteen hundred disciples who used to carry about his litter on their shoulders. Invited to the court of the Khilji Emperor, Gopal gave demonstration of his ragas at six different sittings, during which Khusarau was hiding under the throne,

अलाउद्दीन की मृत्यु सन् १३१६ ई० में हुई। 'रागदर्पण' की रचना इससे ३४६ वर्ष पश्चात् औरंगजेब के काल में हुई है, अतः यह नही कहा जा सकता कि इसमे तथ्य कितना है। हाँ, यह अवश्य है कि औरगजेब के काल मे खुसरो-गोपाल-मिलन की यह किवदन्ती प्रचलित अवश्य रही होगी। इन शब्दो से इतना ही प्रकट होता है कि खुसरो ने गोपाल नायक के साथ चालाकी बरती।

वाजिदअली शाह-कालीन मुहम्मद करम इमाम नमक-मिर्च लगाकर इस बात को इस प्रकार कहता है : "ज़िक्र है कि बजमान. अलाउद्दीन गोरी एक नायक, गोपालदास नामी, मुकाम देहली मे दौर. हिन्दुस्तान करता हुआ और तम्बूर वगैराः हर नग़मः साज़ (गायक) का लेता हुआ वारिद हुआ (आ पहुँचा) और पास अमीर खुसरो आया और ऐसा गाया कि हज़रत (खुसरो) को खूब रुलाया। हत्ता (यहाँतक) कि तीन रूमाल उस आरिफ़े बिल्लाह (ब्रह्मज्ञानी खुसरो) के यादे खुदा मे रोते-रोते तर हो गये। आखिरकार नायक मजकूर (उपर्युक्त नायक) यह हर्फ ज़ुबान पर लाया कि या हज़रत, आजतक कोई मुझ-सा न हुआ है और न होगा। आपने (खुसरो ने) फरमाया कि हाल इस्तक़बाल (भविष्य की बात) का आलियोदाना (ज्ञाता) सरोद साज़े ज़माँ (ईश्वर) है, इल्ला नायक मुतनब्बः (सावधान) न हुआ, कहा कि आप ऐसा कुछ कीजिए कि मैं उससे माज़ूर होऊँ (वैसा न कर सकूँ), वरन. अपना तम्बूरः भी इनायत कीजिए। आपने फ़रमाया, मुहलत दो साल की दीजिए, बाद इनक़ज़ाए मियाद (अवधि समाप्त होने पर) फिर आके जो चाहे सो लीजिए।... जबकि वह नायक .. फिर आया, तो वही कलमः (वाक्य) ज़ुबान पर लाया।... हंगाम मुकाबल. (प्रतियोगिता में) उहद· बरा (सफल) न हुआ और शागिर्द शागिर्दान ममदूह (खुसरो के शिष्यों का शिष्य) होकर दाखिले इस्लाम हुआ।"[१]

मुहम्मद करम इमाम ने एक स्थान पर गोपाल नायक के लिए 'नाबकार' (पामर, अधम, नीच) शब्द का उपयोग किया है,[२] जिससे गोपाल नायक के प्रति उसकी आन्तरिक घृणा अभिव्यक्त होती है। प्रत्येक हिन्दू-कलाकार को मुसलमानों से पराजित कराने या उसे मुसलमान बनवाने में मुहम्मद करम इमाम को आनन्द आता था।

At the seventh sitting Khusarau confronted Gopal and invited him to show his powers. He claimed that all Gopal's ragas have been previously invented by him, and his imitation was so perfect as to bewilder the Hindu master..."

—हज़रत अमीर खुसरो, पृ० ३।

१. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३२।

२. "मुसम्मी गोपालदास नायक वास्ते मुक़ाबले के आया और हज़रत अमीर खुसरो ने इल्मे मूसिक़ी खुद बनाया। आखिरकार वह नाबकार नदामत उठा अपनी हरकात और सक़नात से बाज आ मुर्त्तों उल् इस्लाम... होकर शागिर्दाने शागिर्द हज़रत मगफ़ूर का हुआ।" —मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० १६३।

अस्तु; मुहम्मद करम इमाम के पूर्वोक्त वक्तव्य मे गोपाल नायक को झगडालू, अभिमानी और पराजय का मुँह देखनेवाला चित्रित किया गया है। अलाउद्दीन के युग मे हिन्दुओं की जो स्थिति थी, और वे जितने पददलित किये गये थे, यह इतिहास के विद्यार्थी से छिपा नही है। उस युग में दिल्ली जाकर अमीर खुसरो को ललकारना और जीवित लौटकर पुनः दो वर्ष पश्चात् दिल्ली जाकर वही हरकत सर्वथा असम्भव है और मुहम्मद करम इमाम की अपनी कल्पना है, साथ ही गोपाल नायक को अमीर खुसरो का नही, अपितु उनके शिष्यो का शिष्य कराना और बाद मे मुसलमान बना डालना भी मुहम्मद करम इमाम का निजी कमाल है। रागदर्पणकार के शब्दो में इन वाहियात बातों का कोई उल्लेख नही है और इनमे असंगति का अंश पर्याप्त मात्रा मे है।

अलाउद्दीन की प्रशंसा मे गोपाल नायक का निम्नाकित पद मिलता है :

धकदलन रे प्रबल्ल नाद सिंघ नाद बल अपबल वक्कवर।
कुडांन धीर अडांन मिलवत चपल चाप अचपल अक्कअर।
गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर।
साहिनिसाहि अल्लावदीं तपै डिलीनरेस जाके वसुधा सुचित वुअ तक्कधर।[1]

अर्थात्, "अपने प्रबल गर्जन से सहसा दलन करनेवाला, सिह के समान नाद और बल से युक्त अपने बल के कारण बाँकुरों में श्रेष्ठ है। धैर्यशाली (शत्रुओं) को वह उनकी छावनियों से मिला देता है (भगा देता है), उसका धनुष चपल (गतिशील) रहता है और (वह) महान् (स्वयं) अचपल (स्थिर, निश्चल) रहता है। विद्या मे श्रेष्ठ नायक गोपाल (उसकी प्रशंसा में) गीत गाता है। दिल्ली-नरेश शाहंशाह अलाउद्दीन प्रतापयुक्त हो रहा है, पृथ्वी जिसके (अधिकार में है)। इस तथ्य को तू भली भाँति देखकर हृदय में धारण कर ले।"

इस गीत में 'तपै', 'मिलवत', 'गावत', 'जाके' जैसे शब्द व्रजभाषा के है। 'प्रबल्ल' (प्रबल), 'वक्कवर' (वक्रवर), 'अक्कअर' (अकबर महान् का पर्याय), 'तक्क' (ताककर) आदि शब्द चारणों के प्रताप-वर्णन की शैली के है। 'साहिनिसाहि' (शाहशाह) भी व्रज-भाषा में प्रयुक्त रूप है। 'डिली' (दिल्ली) भी पुराना रूप है और अलाउद्दीन का अपभ्रंश 'अल्लावदी' तो अलाउद्दीन के काल का ही है। अलाउद्दीन के समकालीन विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में 'अलाउद्दीन' के लिए 'अलावदीन' का प्रयोग किया है।[2]

यह नही कहा जा सकता कि गोपाल नायक अलाउद्दीन के दरबार मे कब आये, उसके पास कितने समय तक रहे, दरबार में उनका स्थान क्या रहा और अमीर खुसरो के

---

१. रागमाला, ८६ आ; परिशिष्ट अ, १।

२. 'अलावदीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः।'—साहित्यदर्पण, चतुर्थ परिच्छेद, पृ० २१२।

साथ उनके कैसे सम्बन्ध रहे। उपरिनिर्दिष्ट पद 'रागदर्पणकार' के इस कथन की पुष्टि अवश्य करता है कि गोपाल नायक अलाउद्दीन के सम्पर्क में आये थे।

गोपाल नायक के विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती।

वेंकटमखी ने कहा है कि गोपाल नायक का अपने विषय मे कथन है कि 'श्रुतियाँ' (संगीत-प्रयोज्य स्वरों के भाग-विशेष) मैं ही जानता हूँ।[1] वेंकटमखी के कथन से यह भी ज्ञात होता है कि गान को 'आलाप', 'ठाय', 'गीत' और 'प्रबन्ध' में गोपाल नायक ने वर्गीकृत किया था।[2] ये चारों वस्तुएँ 'चतुर्दण्डी' कहलाईं। नारद इत्यादि मुनि स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी इन क्रमों से युक्त प्रबन्ध-विशेष को 'चतुर्दण्डी' कहते थे।[3]

बैजू :

बैजू की गणना मध्ययुग के महान् संगीतज्ञों मे की जाती है। ये **मानसिंह तोमर** (रा० का० सन् १४८६–१५१६ ई०) के दरबारी गायक थे। मानसिह तोमर ने संगीत में 'काव्य' एवं 'शैली' की दृष्टि से जो कुछ किया, उसमें इनका महान् योग रहा होगा। पश्चात्कालीन इतिहासों के आधार पर **मौलाना अर्शी** ने इन्हें मानसिह तोमर का दरबारी गायक बताया है।[4]

आश्चर्य की बात है कि 'मानकुतूहल' की रचना में जिन गुणियो के सहयोग की चर्चा की गई है, उनमे इनका नाम नही है। हो सकता है, इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व किसी कारण से बैजू ने मानसिह का दरबार छोड दिया हो।

---

१. सम्रदन्, पृ० २३६-२४०।

२. 'सौतुल्मुबारक', पृ० ४२, लेखक : वाजिद अलीशाह, सन् १८५३ ई० में लखनऊ में मुद्रित।

३. (अ) कर्नाटक देश में संगीत-कला में प्रसिद्धि पाकर दिल्ली-बादशाह के द्वारा बुलाये गये।—संगीतशास्त्र, पृ० १४६।

(आ) देवगिरि में रामदेव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक था।— हमारे संगीतरत्न, पृ० १५१।

टि० : अलाउद्दीन की प्रशंसा में प्राप्त एक ध्रुवपद की भाषा बताती है कि गोपाल नायक दिल्ली एवं आसपास की भाषा में भी रचना करते थे। दक्षिण की किसी भाषा में लिखी हुई उनकी कोई कृति उपलब्ध नहीं है। कल्लिनाथ और वेंकटमखी ने अपने संस्कृत-ग्रन्थों में गोपाल नायक की चर्चा की है। गोपाल नायक ने संस्कृत में किसी लक्षण-ग्रन्थ की रचना अवश्य की थी, जो दाक्षिणात्यों के लिए भी बोधगम्य था। दाक्षिणात्य ग्रन्थकारों के द्वारा गोपाल नायक का उद्धृत किया जाना गोपाल नायक को दाक्षिणात्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है।—ले०

४. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०३।

मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् ग्वालियर छोड़कर गुजरात पहुँचनेवाले जिन कलाकारों का नाम **अबुल फजल** ने दिया है, उनमें 'बैजू' नही है; परन्तु गुजरात के इतिहास **'मिराति सिकन्दरी'** में यह चर्चा है कि बैजू गुजरात के सुलतान **बहादुरशाह** के आश्रित थे।

मौलाना अर्शी कहते है कि यह अपने अहद (युग) के कलावन्तों का सरदार माना जाता है और 'बैजू बावरा' के नाम से मशहूर है। कहा जाता है कि इसने लोहारों की भट्ठी झोंक-झोंककर गुजर की और फन (कला) को सीखता रहा, ताआं (यहाँतक) कि माहिर मूसीकार (निपुण सगीतज्ञ) बन गया।

इसके गाने के असर का अन्दाज इससे कीजिए कि जिस जमाने में **हुमायूँ** ने गुजरात को तस्खीर (विजित) करने का इरादा किया और शहर माँडौ मफतूह (विजित) हुआ, तो मण्डल के दिन बादशाह ने लाल कपड़े पहनकर कत्ले-आम (सार्वजनिक वध) का हुक्म दिया। इस हंगामे में नायक बैजू, जो सुलतान बहादुर का मुकर्रब (सभासद, पास बैठनेवाला) था, एक मुगल के हाथ पड़ गया। वह चाहता था कि इसे (बैजू को) कत्ल कर दे। नायक ने कहा, मेरे मार डालने से तुझे क्या फायदा पहुँचेगा, मै बराबर सोना तौल कर तुझे दे दूँगा; क्योंकि मै **सुलतान बहादुर** का मुकर्रब हूँ। मुगल अपनी पगड़ी से उसके हाथ बाँधकर बैठ गया।

इत्तफाकन (संयोगवश) एक राजा, जो हुमायूँ के साथ था और बैजू को जानता था, उधर से गुजरा और बैजू को मुगल से छुडाकर अपने साथ ले गया। मुगल तलवार खीचकर शोर मचाता पीछे हो लिया। यहाँतक कि दोनों बादशाह के हुजूर (सेवा) में पहुँच गये। बादशाह उस वक्त बहुत गजब (क्रोध) में था। मुगल ने शोर मचाया कि मेरा कैदी, जो सुलतान बहादुर का मुकर्रब है, इस हिन्दू-राजा से मुझे दिलाइए। इस दरमियान **खुशहाल बेग कूर्ची** ने, जो सुलतान बहादुर के पास जाया करता था और बैजू को पहचानता था, अर्ज किया कि वह कलावन्त गवैयों का बादशाह है। हुमायूँ ने उसकी तरफ गुस्से से देखा। उसने फिर वही लफ्ज दुहराये और कहने लगा, कुर्बान जाऊँ (निछावर होता हूँ)। लोग कहते है कि इस जमाने में इसका सानी (सदृश) मौजूद नही। बादशाह का गुस्सा ठण्डा पड़ गया। बैजू को हुक्म हुआ कि कुछ गाये। यह बैजू फारसी नगमे में बडी महारत रखता था, फौरन गाने लगा। बादशाह पर बडा असर हुआ और उसके मिजाज मे फौरन तग़युर (परिवर्त्तन) हो गया। गजब रहम मे बदल गया और सुर्ख लिबास उतारकर खिलअत पहन लिया और बैजू को खिलअत खास. (राजकीय वस्त्र) देकर कुछ फरमाया, जो चाहेगा, पायेगा। उसने अर्ज किया, मेरे बहुत से अजीजो-अफरबा (बन्धु-बान्धव) गिरफ्तार है, उनकी रिहाई (मुक्ति) का हुक्म हो जाय। बादशाह ने मजूर कर लिया और खासे का (राजकीय) तरकश (तूणीर) बैजू की कमर मे बाँधकर और खासे का घोड़ा देकर चन्द मुकर्रब हमराह (साथ) करके फरमाया कि बैजू जिसको छुड़ाना चाहे, वह छोड दिया जाय। बैजू ने बहुत-से अपने शनासा (परिचित) छुड़ा लिये। हुमायूँ ने उसे अपना मुकर्रब खास (विशिष्ट सभासद)

बनाया और इनामो इकराम (पुरस्कार एवं कृपाओं) से नवाजने (अनुगृहीत करने) लगा। बैजू जो इनाम पाता, उस मुगल को दे देता और कहता कि इसने मेरी जाँबख्शी (प्राणदान) की थी।

कुछ मुद्दत के बाद बैजू भागकर सुलतान बहादुर के पास चला गया। सुलतान बहादुर ने उसे देखकर कहा, मैंने अपनी खोई हुई दौलत पा ली। हुमायूँ को मालूम हुआ कि बैजू भाग गया है, तो उसने अफसोस की राह से (खेदपूर्वक) कहा कि बदनसीब था, जो भाग गया। अगर हमारे हुजूर मे रह जाता, तो इतना पाता कि सुलतान बहादुर को भूल जाता।[1]

हुमायूँ ने माँडौ सन् १५३५ ई० में जीता था, अर्थात् हुमायूँ के साथ बैजू का साक्षात्कार मानसिंह तोमर की मृत्यु (सन् १५१६ ई०) से उन्नीस वर्ष पश्चात् हुआ था। बहादुर-शाह के दरबार मे गोपाल (द्वितीय) भी था, जो बैजू का शिष्य प्रसिद्ध है। गोपाल को सम्बोधित करते हुए बैजू के अनेक ध्रुवपद भी है।[2]

मिश्रबन्धुओं ने सोलहवी शती ई० के पूर्वार्द्ध में विद्यमान 'बैजू' और अट्ठारहवी शती ई० के पूर्वार्द्ध में वर्त्तमन 'सदारग' को एक साँस में **स्वामी हरिदासजी** का शिष्य कह डाला है।[3] यह कथन अपनी वास्तविकता स्वयं कह देता है। हरिदासजी (ज० का० सन् १४८० ई०) की आयु मानसिंह की मृत्यु के समय केवल छत्तीस वर्ष थी, जबकि हरिदासजी की इस आयु से न जाने कितने पहले से बैजू मानसिह की सभा के वरिष्ठ गायक थे, अतः मिश्रबन्धुओं के पूर्वोक्त कथन में प्रामाणिकता नही है।

'मिराति सिकन्दरी' के अनुसार, गोपाल बहादुर शाह गुजराती के युग मे सम्मान-पूर्वक रहा। यह बैजू का सेवक और शिष्य था।[4] ऐसे अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते हैं, जो बताते है कि बैजू ने गोपाल नायक की भर्त्सना की थी और उसे अभिमान-रहित होने के लिए कहा था।

एक किवदन्ती के अनुसार, बैजू का जन्म गुजरात के अन्तर्गत चाँपानेर मे हुआ था।[5] बैजू के सांगीतिक चमत्कारो के विषय में कुछ रोचक किवदन्तियाँ प्रसिद्ध है। एक ध्रुवपद में कहा गया है कि हे लाल, विद्या वही भली है, जिसकी साधना की है। दोनों मिलकर, रंगमहल में बैठ गये, मृगों ने रीझकर माला दे दी। नायक गोपाल सात

१. उर्दू-'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०४-१०५; मिराति सिकन्दरी, पृ० २४६; खलास्-तुल्-ऐश आलमशाह, पृ० १४६ अ; मिराति आफताबनुमः, ३८६ अ; गुजएराग, पृ० ४०; सौतुलमुबारक, पृ० १००, सरमायः इशरत, पृ० ३१७।
२. परिशिष्ट अ, ७।
३. मिश्रबन्धु-विनोद, प्र० भा, पृ० ३१६।
४. 'आजकल', म्यूजिक-नम्बर, पृ० १०५।
५. हमारे संगीतरत्न, पृ० २६०।

गुप्त और सात प्रकट 'डाँडे' (सीमाएँ) बाँध आये। बैजू के गाने से सात सुर भूल गये, पाषाण पिघल गया, 'ताल' (मँजीरे) डूब गये। ध्रुवपद निम्नांकित है:

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल।
रंगमहल में दोउ जुरि बैठे रीझि अगन दइ माल।
सात गुपत सात प्रगट चौदह डांडो बाँधि आये नाइक गोपाल।
बैजू के गाये तें भूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूड़े ताल।[1]

कहा जाता है कि गोपाल ने गाकर हिरनों को बुला लिया और उनके गले में मालाएँ पहना दी। हिरन चले गये। बैजू ने गाकर उन हिरनों को पुनः बुलाया, रीझकर मृगों ने मालाएँ दे दी। तब बैजू ने गाकर पाषाण पिघला दिया और अपने मँजीरे उस द्रवित पाषाण में गाड़ दिये, जो उस पत्थर में जमकर रह गये। यह चमत्कार देखकर गोपाल (नायक) चौकडी भूल गये और बैजू को उन्होंने गुरु माना।

बैजू और गोपाल की प्रतियोगिता की बात भली भाँति प्रसिद्ध है। निम्नांकित ध्रुवपद में उस किंवदन्ती का बीज विद्यमान है:

पार किनिहू न पायौ दूजेंहू पंडित कहायो घुरपत गीत गुनी मरजीअउ न गलायौ।
सात गुपित सात प्रगट नाइक गोपास गायौ ब्रंम्हा वेद उचरायौ सारंग बहुरायौ
गर्वधारी गुनी उलटि घार आयौ।
देस देस के जुरे गुनी सकल सिस्ट महामुनी तेउ पचि गये तिनि पाहन पिघिलायौ।
कहें बैजू बावरे सुनो हो सुघर नरी जिनिहीं मिलौ तिनिहीं लुकायौ।

नाद का प्रभाव अमित है। इस किंवदन्ती में ईश्वर ही जाने, कितना सत्य है।

बख्शू:

पश्चाद्वर्त्ती लोगों ने 'बख्शू' को सदा 'नायक' कहकर इनके प्रति सम्मान प्रदर्शन किया है।[3] इनके जन्मस्थान, पितृ-परम्परा इत्यादि के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है। मुहम्मद करम इमाम ने बख्शू को 'ढारी' लिखा है।[4] अबुल फजल के अनुसार, 'ढारी' पंजाबी गीत गानेवाले होते थे और साथ में 'ढढ' (एक अवनद्ध वाद्य) और 'किंगारा' बजाते थे। 'ढारी' लोग रणक्षेत्र में कड़खा भी गाते थे और उनका प्रयोजन वीरतापूर्ण कृत्यों को करने के लिए सेनाओं को उत्साहित करना होता था। सम्भव है, बख्शू के पूर्वज ध्रुवपद गायक न हों और यह कला उन्होंने ग्वालियर में ही सीखी हो। बख्शू की जाति के विषय में अबुल फजल ने मौन का आश्रय लिया है।[5]

---

१. परिशिष्ट आ, ६।
२. परिशिष्ट आ, ५।
३. 'आजकल', उपरिवत्, पृ० ३-४; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २५, ३२।
४. मअदन्, पृ० २२।
५. आईने अकबरी, पृ० ७३४।

ये मानसिंह तोमर के शिष्य और उसके प्रयोगों का माध्यम थे।[1] 'मानकुतूहल' की रचना मे जिन कलाकारों का योग था, उनमे भी ये प्रमुख थे।[2] मानसिंह तोमर की मृत्यु के पश्चात् ये उसके पुत्र के पास रहे और जब ग्वालियर पर लोदी पठानों का अधिकार हो गया, तब ये कालिंजर के राजा कीरत के पास चले गये।[3] गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने इनका यश सुनकर इन्हें कालिंजर-नरेश से माँग लिया।[4] ये वहाँ पहुँचे और अपनी प्रतिभा से इन्होंने मानसिह द्वारा आविष्कृत गानशैली को गुजरात के दरबार में सर्वप्रिय बना दिया।[5] यह शैली जनता के प्रत्येक वर्ग को भाती थी।[6]

बख्शू ने सहस्रो ध्रुवपदों को रचना की थी, इनके कुछ ध्रुवपद 'राजकल्पद्रुम' मे हैं। शाहजहाँ ने इनके ध्रुवपदो का एक सग्रह कराया था, जिनमें एक सहस्र ध्रुवपद थे।

साधारणतया दो गवैये मिलकर अच्छा गाते है, परन्तु ये एकाकी ही अच्छा गाते थे और इनके तारस्वर अत्यन्त शक्तिशाली थे। आलाप में एक अनोखी शैली पर इनका अधिकार था। इन्होंने ध्रुवपद को उत्कृष्टता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था। गाने में यह प्रभाव था कि वन्य मृग सिर झुकाकर इनके सम्मुख खड़े हो जाते थे। ये पहचान के लिए उनके गले में माला डाल आते थे।[7]

'टोड़ी' और 'देशकार' नामक रागों के मिश्रण से इन्होंने एक राग का निर्माण किया और गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के नाम पर उस राग का नामकरण 'बहादुरी तोडी' किया। 'कान्हरा' और 'श्याम' के मिश्रण से 'नायकी कानड़ा' का निर्माण किया। 'कल्याण' में कुछ परिवर्त्तन किया, तो 'नायकी कल्याण' प्रसिद्ध हुआ।[8]

बख्शू के पुत्र का नाम हुसेनी था, जो गुजरात के सुलतान अहमद सानी के वजीर दरिया खाँ (मन्त्रित्व-काल : सन् १५३८–१५५४ ई०) के आश्रय में रहा। हुसेनी अपने युग का बहुत बड़ा गायक माना जाता था।[9]

गोपाल द्वितीय :

बहादुरशाह गुजराती के युग में गोपाल अत्यन्त सम्मानपूर्वक रहे। ये बैजू के शिष्य थे।[10] किवदन्तियों एवं कुछ उपलब्ध ध्रुवपदों के अनुसार, ये अभिमानपूर्वक बैजू से

१. 'आजकल', उपरिवत्, पृ० १०४।
२. रागदर्पण, पहला बाब; मानसिंह और मानकुतूहल, पृ० ५८।
३. 'आजकल', उपरिवत्।
४. 'आजकल', उपरिवत्।
५. आईने अकबरी, पृ० १३०।
६. उपरिवत्।
७. 'आजकल', उपरिवत्।
८. उपरिवत्, पृ० १११।
९. मिराति सिकन्दरी, पृ० २६८।
१०. 'आजकल', न्यू० नं०, पृ० १०५।

स्पर्धा कर बैठे थे, परन्तु उनकी विशेषताओं के कारण इन्होंने बैजू की शिष्यता स्वीकार कर ली। ध्रुवपदों से प्रतीत होता है कि यह प्रतियोगिता किसी 'रगभवन' में हुई थी।[१] कहाँ और कब? इसका उत्तर देना सम्भव नही है।

भ्रमवश उनके व्यक्तित्व को लोग गोपाल प्रथम से मिला देते है। गोपाल नायक का पार्थक्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यथास्थान सिद्ध किया जा चुका है। गोपाल 'द्वितीय' एव बैजू की समकालीनता 'मिराति सिकन्दरी' जैसे इतिहास-ग्रन्थ के आधार पर सिद्ध है और गोपाल नायक (प्रथम) का पन्द्रहवी शती ई० के पूर्वार्द्ध से पूर्व होना कल्लिनाथ द्वारा प्रमाणित है।

गोपाल ने दरबार का आश्रय लिया या नही, यह नही कहा जा सकता। 'मिराति सिकन्दरी' इन्हें इनका गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के काल में सम्मानपूर्वक विद्यमान रहना बताता है।[२] और 'बादशाहनामः' बैजू और बख्शू को उक्त सुलतान का दरबारी बताता है।[३]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार ये अकबर के समय में भी जीवित थे और अपनी नि.स्पृहता के कारण दरबार के सम्पर्क में न आये।[४] इनके ध्रुवपद भी प्राप्त है।

भगवन्त :

जगन्नाथ कविराय ने अपने एक ध्रुवपद में भगवन्त की चर्चा प्रामाणिक संगीतज्ञों में करते हुए इनका नाम 'बख्शू' और 'महचू' के पश्चात् और 'रामदास' से पूर्व लिया है। 'स्वर' भरने में जगन्नाथ ने इनको विशिष्ट माना है।[५] भगवान् नामक एक गायक को रागदर्पणकार ने 'नायक भगवान्' कहकर उन्हें कुछ पढा-लिखा कहते हुए अकबरी युग के कलाकारों मे परिगणित किया है।[६] 'भगवान्' और 'भगवन्त' एक ही व्यक्ति प्रतीत होते है; क्योंकि व्रजभाषा में 'भगवान्' का अपभ्रंश 'भगवन्त' भी प्रयुक्त होता है।

तानसेन :

तानसेन के नाम से वे भी परिचित है, जिनका सम्बन्ध संगीत अथवा काव्य के साथ नहीं। इनका व्यक्तित्व विशिष्ट था और अकबरी दरबार में आश्रित होने के कारण इन्हें इतिहास में एक विशिष्ट स्थान मिला।

---

१. परिशिष्ट आ, ६।
२. 'आजकल', म्यू० नं, पृ० १०५।
३. बादशाहनामः, २, ७; 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०३।
४. मअदन्, पृ० २३३
५. परिशिष्ट आ, १०७।
६. रागदर्पण, नवाँ बाब।

जन्म : परम्परा-प्रसिद्धि के अनुसार, इनका जन्म ग्वालियर के निकट बेहट स्थान मे हुआ।[1] इनके पिता का नाम मकरन्द था।[2] तानसेन के एक ध्रुवपद मे 'गोपाचल' की प्रशसा है और उसमें 'मकरन्द' को गुरु बताया गया है। इस ध्रुवपद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुरु मकरन्द ने तानसेन को राग-रागिनियाँ दी।[3] संगीतजीवी जातियों मे पिता ही प्रायः आरम्भिक संगीत-गुरु होता है। अतः, तानसेन का मकरन्दपुत्र होना सम्भव है।

अबुल फजल ने ध्रुवपद गानेवाले वर्गविशेष को 'कलावन्त' कहा है,[4] 'तारीखे मुहम्मदी' का लेखक भी तानसेन को 'तानसेन कलावन्त' ही कहता है।[5] संगीतजीवी वर्गों में 'ढारी', 'कव्वाल', 'हुरकिया', 'दफजव' (ढप बजानेवाली और ध्रुवपद गानेवाली पंजाबी स्त्रियाँ), 'नटवा' और 'कीर्त्तनिया' लोगो मे केवल अन्तिम वर्ग के व्यक्तियो को अबुल फजल ने ब्राह्मण कहा है।[6] अतः, यह स्पष्ट है कि तानसेन उस संगीतजीवी जाति में उत्पन्न हुए थे, जो 'कलावन्त' थी।

निम्नाकित ठोस आधारों पर तानसेन के जन्म का काल निश्चित किया जा सकता है :

(अ) मानसिंह तोमर (राज्यकाल : सन् १४८६ से १५१६ ई०) की प्रशंसा मे तानसेन एक ध्रुवपद में कहते हैं ' 'हे छत्रपति मान राजा, जबतक मेरु और ध्रुव है, तबतक तुम चिरंजीवी रहो। चारों ओर के देशों के गुणी आते हैं, तुम्हारे पास दौड़ते हैं, इच्छानुसार पुरस्कार पाते है, सभी के लिए तुम जग के उजाले हो। मै यदि तुमसे न कहूँ, तो और किससे जाकर कहूँ। गुणी जनों को तुम करोड़ों देते हो, उन्हें अयाचक बना दिया। तानसेन का प्रतिपालन तुमने किया है।'[7]

यह ध्रुवपद सिद्ध करता है कि मानसिंह ने तानसेन का प्रतिपालन किया था और मानसिंह की मृत्यु के समय (सन् १९१६ ई०) से पूर्व तानसेन ध्रुवपदों की रचना ही नही करने

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, पृ० ९९।
२. उपरिवत्, पृ० १००।
३. परिशिष्ट आ, ३०।
४. आईने अकबरी : ग्लैडविन, पृ० ७३४।
५. तारीखे मुहम्मदी, हि० ९९७, तानसेन।
६. आईने अकबरी : ग्लैडविन, पृ० ७३४।
७. छत्रपति मानराजा तुम चिरंजीव रहो जौलों ध्रुव मेरु तारो।
चहूँ देश ते गुनीजन आवत तुमपै धावत पावत मन इच्छा सबहीको जग उजियारो
तुमसै जो नहीं और कासे जाय कहूँ दौर वही आज कीरत करे भी पे रक्षाकरन हारो।
देत करोड़न गुणी जनन को पजाचक किये तानसेन प्रतिपारो।
—अक० दर० हि० क०, पृ० ११०।

लगे थे, अपितु मानसिंह तोमर के दरबार में अपनी रचनाएँ भी प्रस्तुत करने लगे थे। जिस दरबार में बैजू को आश्रय मिल चुका हो और जहाँ बख्शू जैसे गुणी विद्यमान हों, उस व्यक्ति की आयु सांगीतिक परम्परा की दृष्टि से उस समय कम-से-कम पच्चीस वर्ष अवश्य होनी चाहिए। इस दृष्टि से यदि सन् १५१६ ई० में भी तानसेन की आयु पच्चीस वर्ष मानी जाय, तो उनका जन्म-वर्ष प्रायः सन् १४९१ ई० सिद्ध होता है।

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने मानसिंह तोमर से सम्बद्ध इस ध्रुवपद को सलीम के साले मानसिंह से सम्पृक्त कर दिया है, परन्तु तानसेन के मृत्युकाल (२६ अप्रैल, १५८९ ई०)[1] तक तो मानसिंह केवल 'कुँवर' थे, 'राजा' तक नही थे, अपने पिता भगवान्दास की मृत्यु पर नवम्बर, १५८९ ई० में, कुँवर मानसिंह 'राजा' हुए।[2] साथ-ही-साथ, यह भी विचारणीय है कि स्वतन्त्र नरेश 'छत्रपति' कहलाते है, अकबर जैसे बादशाहों के मनसबदार 'छत्रपति' नही कहलाते। शिवाजी ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने के लिए ही 'छत्रपति' उपाधि धारण की थी।

(आ) अबुल फजल के अनुसार, सन् १५६२ ई० से पूर्व तानसेन रीवाँनरेश **राजा रामचन्द्र** की सभा में थे और 'सेवानिवृत्त' होने का विचार कर रहे थे।[3] यह विचार वृद्धावस्था में आ सकता है। इस समय तानसेन की आयु प्रायः सत्तर-इकहत्तर वर्ष की हो सकती है।

(इ) अकबर ने सन् १५७५ ई० में शेखू, बंझू, तानसेन तथा अन्य सगीतज्ञों को **शेख मुबारक** के पास इसलिए भेजा था कि शेख मुबारक यह बताये कि उन लोगों में कौन कलाकार किस कोटि का है। तानसेन की आवाज को सुनकर मुबारक ने उनके गाने की तुलना वन्य पशुओं के कोलाहल से की थी।[4] तानसेन के गाने की यह स्थिति अत्यन्त वृद्धावस्था, प्रायः चौरासी वर्ष (सन् १४९१+८४=१५७५ ई०) की आयु में ही सम्भव है।

---

१. **अकबरनामः, खण्ड २, पृ० ८८०।**

२. **अकबर, पृ० १५६।**

३. "As the fame of Tansen, who was the foremost of the age among the Kalawants of Gwalior came to the Royal hearing and it was reported that he meditated going into retirement and that he was spending his days in attendance on Ramchand."... —Akbarnama, Part 2, p. 279.

४. "He (Akbar) sent Shaikh Bhanju and Miyan Tansen and all the musicians to the Shaikh (Mubarak) that he might tell him what they were worth of musians. He said to Miyan Tansen, 'I have heard that you can sing a bit' at last he compared his singing to the noise of beasts and allowed it no superiority over it."
—Munt. Vol. 2, p. 273.

शेख मुहम्मद गौस की दुआ से जन्म की कपोल-कल्पना :

पीरों और सूफियों के प्रति अपढ़ जनता की श्रद्धा आकृष्ट करने के लिए भिन्न-भिन्न चमत्कारों से पूर्ण कहानियाँ गढ़ी जाती रही है। इसी प्रकार की असगत कल्पनाओं का सारांश निम्नलिखित हैं :

(क) **मकरन्द पाण्डे** कई देवी-देवताओं की 'मानताएँ' करने पर भी पुत्र-प्राप्ति मे सफल नहीं हुआ था। गौस के आशीर्वाद से उसे जिस पुत्र का लाभ हुआ, वही भविष्य में तानसेन कहलाया।[1]

(ख) हजरत ने अपने मुँह का जूठा पान तानसेन के मुँह में रख दिया।... उनके पान के प्रभाव से गले में रस और मजा पैदा हो गया।[2]

इन कपोल-कल्पनाओं की वास्तविकता प्रकट करने के लिए इतना कहना पर्याप्त है कि अबुल फजल के अनुसार, **शेख मुहम्मद गौस** की मृत्यु १० मई, १५६३ ई० मे हुई। उस समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी।[3] अर्थात्, शेख मुहम्मद गौस तानसेन के जन्म-वर्ष, सन् १४९१ ई० से आठ वर्ष पूर्व सन् १४८३ ई० मे उत्पन्न हुए। आठ वर्ष की आयु के बालक मुहम्मद गौस के आशीर्वाद से तानसेन का जन्म हो गया, यह बात कम-से-कम इतिहास से सुपरिचित व्यक्तियो के लिए तो विश्वसनीय नही। 'मआसिरुल् उमरा' के लेखक ने शेख मुहम्मद गौस के विषय में लिखा है कि उन्होंने ९२९ हिजरी, अर्थात् सन् १५२३ ई० में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जवाहिरे खम्स' की रचना की, तो उस समय उनकी आयु बाईस वर्ष थी। इस दृष्टि से शेख मुहम्मद गौस का जन्म-वर्ष सन् १५०१ ई० सिद्ध होता है। यदि 'मआसिरुल् उमरा' का कथन सत्य है, तब तो हजरत गौस तानसेन की अपेक्षा दस वर्ष छोटे सिद्ध होते है।[4]

काजी मेराज धौलपुरी का कथन है : "हमारे खानदान में सीन· बसीन. अकबाल (आनुवंशिक उक्तियों) और बुजुर्गो के मखतूतात (कागज-पत्रों) की बिना (आधार) पर तानसेन की विलादत (जन्म) का साल ९३१ हि० (सन् १५२४ ई०) माना जाता है।[5]" काजी साहब अपने कथन की पुष्टि में किसी पत्र का विषय, लिखनेवाले का नाम तथा काल नही लिखते। अत्यन्त मनोरंजक बात यह है कि विक्रमाजीत द्वारा तानसेन को उपाधि देने की बात भी काजी साहब तहरीर फरमाते है।"[6]

---

१. 'संगीत', कला०-अंक, पृ० ५८-५९; 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ८८ (शेख मेराज धौलपुरी)।
२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ८९, (काजी मेराज धौलपुरी); कवि तानसेन, पृ० १२; संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ, पृ० १५३।
३. अकबरनामः, खं० २, पृ० २७९।
४. मआसिरुल्०, भाग २, पृ० १५५।
५. आजकल, म्यू० नं०, पृ० ८९।
६. उपरिवत्, पृ० ८७।

विक्रमाजीत सन् १५२६ ई० में **इब्राहीम लोदी** की ओर से लड़ता हुआ मारा गया था। काजी साहब के वंश की उक्तियो के अनुसार यदि तानसेन का जन्म-वर्ष सन् १५२४ ई० माना जाय, तो विक्रमाजीत की मृत्यु के समय (सन् १५२६ ई०) मे तानसेन की आयु केवल दो वर्ष होनी चाहिए, जो कि एक सर्वथा असंगत बात है। वास्तविकता यह है कि तानसेन को हजरत गौस के एक चमत्कार का परिणाम सिद्ध करने के लिए काजी साहब ने तानसेन का जन्म-वर्ष तैंतीस वर्ष 'पश्चात्' करके कौशल का परिचय दिया है।

ध्यान देने की बात यह है कि सूफियों के किसी प्रामाणिक 'तज्किर' (जीवनवृत्त-सग्रह) मे हजरत गौस के साथ तानसेन की चर्चा नही है। यहाँतक कि मुहम्मद करम इमाम जैसे सकीर्णहृदय लेखक ने आज से एक सौ पाँच वर्ष पूर्व, सन् १८५५ ई० मे, लिखित ग्रन्थ 'मअ्दन्-उल्-मूसिकी' मे तानसेन की चर्चा के समय हजरत गौस की कोई चर्चा ही नही की है।

शिवसिंहसरोज में तानसेन का जन्म-संवत् १५८८ वि० (सन् १५३१ ई०) दिया है,[1] परन्तु इसकी पुष्टि मे किसी आधार का उल्लेख नही किया है। **डॉ० सुनीति-कुमार चटर्जी** तानसेन का जन्मकाल सं० १५७८ वि० (सन् १५२१ ई०) मानते है और **डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल** भी तानसेन के एक तथाकथित चित्र के आधार पर शिवसिंह-सरोज के मत का पोषण करते हैं।[2] न जाने कब और किसके द्वारा बनाये गये काल्पनिक चित्रो के आधार पर तानसेन की आयु का निश्चय करना वैज्ञानिक नही है।

एक चित्र मे तानसेन के साथ **अकबर हरिदासजी** के पास बैठा हुआ दिखाया गया है, यह चित्र पर्याप्त रूप में प्रसिद्धि पा चुका है। इसमे अकबर वृद्ध, तानसेन युवा और हरिदासजी नवयुवक दिखाये गये है, जबकि अकबर (जन्मवर्ष : सन् १५४२ ई०) हरिदासजी (जन्मवर्ष : सन् १४८० ई०) से बासठ वर्ष छोटा था और तानसेन (जन्मवर्ष : सन् १४९१ ई०) से इक्यावन वर्ष। ऐसे चित्रों का निर्माण भावुक भक्तों के द्वारा किवदन्तियों को मूर्त्त रूप प्रदान करने के लिए शताब्दियों पश्चात् कराया जाता है और ये ऐतिहासिक निर्णयों के लिए प्रमाण नही होगे।

मानसिंह तोमर के मृत्युवर्ष सन् १५१६ ई० से पूर्व तानसेन का ध्रुवपद-रचयिता होना, सन् १५६२ ई० से पूर्व तानसेन के द्वारा दरबारी जीवन से 'सेवानिवृत्त' होने की इच्छा और सन् १५७५ ई० मे अत्यन्त वृद्ध होना तानसेन का जन्मवर्ष प्रायः सन् १४९१ ई० या उससे पूर्व ही सिद्ध करता है, जबकि हजरत गौस सात-आठ वर्ष के बालक थे।

धर्म : अकबर के दरबारी इतिहासकार **अबुल फजल** ने 'अकबरनामः' या 'आईने अकबरी' मे तथा **मुल्ला अब्दुल् कादिर बदायूँनी** जैसे हिन्दू-शत्रु इतिहासकार ने भी अपने इतिहास 'मुन्तखबुत्तवारीख' मे तानसेन के द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने के विषय मे कही कुछ नही लिखा है। अपितु, अबुल फजल का कथन है कि तानसेन की शवयात्रा में

---

१. शिवसिंहसरोज, पृ० ५२४; अक० दर० हि० क०, पृ० १००।

२. अक० दर० हि० क०, पृ० १०१।

दरबारी कलाकार गाते, बजाते, विवाहोत्सव जैसा मनाते सम्मिलित हुए थे।[1] मुसलमानों के किसी सम्प्रदाय मे भी शवयात्रा के साथ बाजे-गाजे नही चलते और न विवाह जैसा उत्सव ही मनाया जाता है। जिनके पोते, परपोते मौजूद हो, ऐसे व्यक्तियों का विमान बनाना, बाजे-गाजे के साथ शव को ले जाना और उत्सव मनाना विशुद्ध हिन्दू-प्रथा है।

यदि यह कहा जाय कि अकबर के आदेश के कारण गायक, वादक तानसेन की शवयात्रा में गाते-बजाते चले, तो इसका अर्थ यही है तानसेन की शवयात्रा में साधारण बाजे-गाजे के स्थान पर राजकीय कलाकारों का गान, वादन तानसेन के निमित्त विशिष्टता-प्रदर्शन के लिए था। अकबर का आदेश यह नही हो सकता था कि मुसलमान तानसेन के साथ शाही हुक्म से गाने, बजाने जैसा इस्लाम-विरोधी कृत्य किया जाय। सन् १५८६ ई० में अकबर की आयु सैंतालीस वर्ष की थी और उसके सिर पर 'दीने इलाही' का भूत सवार था, उस अवस्था में अकबर की मनोवृत्ति ऐसी नही थी कि वह किसी के धर्म मे बलात् हस्तक्षेप करे, और मुसलमान की लाश पर बाजे बजवा दे। तानसेन की शवयात्रा का अबुल फजल-कृत वर्णन तानसेन का आमरण हिन्दू रहना ही सिद्ध करता है।

तानसेन को मुसलमान सिद्ध करने के लिए ग्वालियर-स्थित हजरत गौस के मकबरे मे बनी हुई एक कब्र को तानसेन की कब्र घोषित किया जाता है, परन्तु यह बात बुद्धिसंगत नही कि आगरा में मरे हुए तानसेन की लाश के साथ ग्वालियर तक कलाकार गला फाडते गये हों। सूफी पीरों के मुरीदों की लाशे बाजे-गाजे के साथ नही निकला करती और न मुर्दे की बरात सूफियों के मकबरे मे दाखिल हुआ करती है। इतिहास मे ऐसा एक भी उदाहरण नही है।

---

१. "On the 26. 4. 1589 Miyan Tansen died, and by H. M.'s orders, all the Musicians and singers accompanied his body to grave, making as at a marriage." —Akbarnama, Vol. 2, p. 880.

टि० : किसी ऐसे शब्द का अर्थ नहीं, जो मूल में हो। फारसी मूल में 'सुपुर्द खाक् करदन्' शब्द हैं, जिनका अर्थ '(शव को) खाक के सुपुर्द किया' होता है। 'खाक के सुपुर्द करना' एक मुहावरा है, जिसका तात्पर्य 'शव का अन्तिम संस्कार करना' है। तानसेन को मुसलमान समझने के भ्रम से ही अनुवादक ने उक्त प्रयोग करा दिया है। यहाँ एक तर्क किया जा सकता है कि 'सुपुर्दे खाक करने' का अर्थ 'गाड़ना' होता है, जलाना नहीं, परन्तु मुहावरे का शब्दार्थ ही यदि लिया जाय, तो 'खाक' का 'धूलि' भी अर्थ है और 'भस्म' भी। सीधी-सी बात यह है कि 'अकबरनामः' फारसी का ग्रन्थ है, जिसमें तानसेन की अन्त्येष्टि के लिए फारसी-मुहावरे का प्रयोग है। वास्तव में, इस प्रकार यदि बाल की खाल निकाली जाय तो, सीधी दिशा से भटक जाने की सम्भावना रहती है। तानसेन की अन्त्येष्टि का यह प्रकार असन्दिग्ध रूप में उनके हिन्दुत्व का परिचायक है।—ले०

जो दृष्टिकोण 'ब्लैकहोल' की सृष्टि करा सकता है, वही दृष्टिकोण कब्रें भी उत्पन्न कर सकता है।

हजरत गौस के द्वारा तानसेन को जूंठा पान खिलाने की कहानी की असारता प्रमाणित की जा चुकी है। इस कहानी ने ही तानसेन को मुसलमान प्रसिद्ध कर डाला है। स्मिथ ने किसी प्रमाण के अभाव में भी तानसेन के मुसलमान होने की घोषणा कर डाली है।[1]

मुहम्मद करम इमाम हर अच्छे हिन्दू-कलाकार के द्वारा इस्लाम अंगीकृत करने की घोषणा करता है। उसका कथन है कि अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन अकबरी दरबार में प्रवेश के पश्चात् मुसलमान हुए और उनका नाम 'अताहुसेन खाँ' रखा गया।[2] इस कथन में कुछ सार नही है। अकबर की नीति हिन्दुओ को मुसलमान बनाने की नहीं थी। अतः, उसकी प्रसन्नता के लिए मुसलमान होने का प्रश्न ही नही उठता। तानसेन का कल्पित मुस्लिम नाम 'अताहुसेन खाँ' करम इमाम के मस्तिष्क की उपज है। किसी भी इतिहास मे तानसेन का यह नाम नही मिलता। बादशाहो द्वारा मिली हुई उपाधि या नाम का प्रयोग इतिहासकारों द्वारा सदा होता था, परन्तु अबुल फजल या मुल्ला बदायूँनी ने तानसेन के इस तथाकथित नाम का प्रयोग कही नहीं किया है। 'तुज़ुके जहाँगीरी' और 'इकबालनामः जहाँगीरी' में तानसेन की चर्चा एकाधिक बार आई है, परन्तु तानसेन के मुसलमाल होने की बात का कही पता नही है।

तानसेन के पूर्व विशेषण के रूप में 'मियाँ' शब्द का प्रयोग अबुल फजल और मुल्ला बदायूँनी दोनो ने किया है। इस 'मियाँ' शब्द को कुछ लोग तानसेन द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने का बोधक मानते है, परन्तु यह दृष्टिकोण युक्तियुक्त नही है।

मुसलमानों में सैयदों को 'मियाँ' कहा जाता है। यह शब्द श्रेष्ठता एवं पवित्रता का द्योतक है, जाति का नहीं। सूफी सन्तों के अमुस्लिम मुरीद भी 'मियाँ' कहलाते थे, आज भी कहलाते हैं। जहाँगीर लिखता है कि शेख सलीम चिश्ती ने अपनी मृत्यु के दिन भी तानसेन को बुलाकर गाना सुना था।[3] इससे सिद्ध है कि तानसेन शेख सलीम चिश्ती जैसे सूफी सन्तों के सम्पर्क मे थे। संगीतजीवी जातियों मे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सूफियों को गाना सुनाते और उनके मुरीद होते चले आते थे। उनका मुरीद बनने के लिए धर्म-परिवर्त्तन की आवश्यकता न तो पहले थी और न आज है। शेख सलीम चिश्ती की

---

१. 'Tansen, who became a mohammadan subsequently'.—The Great Mogal, p. 6.

२. बाइसे फ़र्ते मुहब्बत सुलतानी (अकबर के प्रेम की अधिकता के कारण) इस्लाम कुबूल किया। हुजूरेशाह से... तानसेन बख़िताब अताहुसेन खाँ ('अताहुसेन खाँ' की उपाधि से)... मुफ़ख्ख़र (प्रतिष्ठित, विभूषित) हुए।—मअदनुल्-मूसिकी, पृ० २३३।

३. जहाँगीरनामः, पृ० ४०।

दुआ से जहाँगीर का जन्म हुआ था और अकबर उनका अत्यन्त आदर करता था। अकबरी दरबार में प्रवेश के पश्चात् शेख सलीम चिश्ती के साथ तानसेन का सम्पर्क प्रामाणिक है और स्वाभाविक भी है। यह सम्भव है कि श्रद्धा के कारण अथवा अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन शेख सलीम चिश्ती के मुरीद हो गये हों और अपनी वृद्धावस्था एव सूफी सम्पर्क के कारण 'मियाँ' कहलाने लगे हों।

शेख अबुल फजल और मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी का प्रवेश अकबरी दरबार में सन् १५७५ ई० में हुआ।[१] उस समय तानसेन की आयु प्रायः चौरासी वर्ष थी। शेख सलीम चिश्ती की दुआ से जहाँगीर का जन्म सन् १५६९ ई०[२] में हो चुका था और वह छह वर्ष का था और तानसेन को अकबरी दरबार में आये हुए तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। फलत·, अबुल फजल और मुल्ला बदायूँनी के द्वारा तानसेन के लिए 'मियाँ' विशेषण का प्रयोग तानसेन की वृद्धावस्था तथा उनपर सूफी प्रभाव का द्योतक है, तानसेन द्वारा इस्लाम अगीकृत किये जाने का नही।

स्मिथ का दृष्टिकोण स्थान-स्थान पर हिन्दू-विरोधी है। उसका कथन है कि तानसेन ने 'मिर्जा' उपाधि धारण कर ली थी या उसे दी गई थी।[३] स्मिथ ने इस धारणा का कोई आधार नही दिया है।

'मिर्जा' शब्द 'मीरजा' का अपभ्रंश है। मिर्जा शब्द का अर्थ मुगल जाति का व्यक्ति है और यह शाही खानदान के व्यक्तियों की उपाधि है। अकबर के खानदान में लडकियाँ देने के कारण आमेर-राजवंश के जयसिह जैसे लोगों को 'मिर्जा' जैसी उपाधि मुगल-दरबार से मिली थी, जो इस बात को सूचित करती थी कि उनका सम्मान शाही खानदान के व्यक्तियों जैसा है। तानसेन को तो 'मिर्जा' उपाधि मिलने का प्रश्न ही नही उठता। यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय, तो भी 'मिर्जा' का अर्थ मुसलमान नही होता, अन्यथा मिर्जा राजा जयसिह को मुसलमान मानकर उनकी भी कब्र कही ढूँढ़नी पड़ेगी।

तानसेन को मुसलमान सिद्ध करने के लिए कोई दृढ एवं ऐतिहासिक प्रमाण नही है और उनके आमरण हिन्दू रहने का प्रमाण अबुल फजल के द्वारा किया हुआ शवयात्रा-वर्णन है।

गुरु-परम्परा : तानसेन के आरम्भिक संगीत-गुरु मकरन्द थे, इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाला एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिसकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है। मुहम्मद करम इमाम ने तानसेन को **हरिदास स्वामी** नामक प्रसिद्ध फकीर का शिष्य लिखा है।[४]

---

१. अकबर, पृ० ३२६।

२. उपरिवत्, पृ० ३२४।

३. 'Tansen became a Mohammadan, assumed or was given the title of Mirza.'

४. मअदनु०, पृ० २३।

वृन्दावन के श्रीस्वामी हरिदासजी द्वारा तानसेन को संगीत-शिक्षा दी जानेवाली बात प्रसिद्ध भी है, परन्तु इसका उल्लेख किसी समसामयिक लेखक ने नही किया है। भक्तवर नागरीदास (किशनगढ़-नरेश महाराजा सावन्तसिह) के एक ग्रन्थ 'पदप्रसंगमाला' (रचनाकाल : सन् १७२३–१७६२ ई०) में बताया गया है कि हरिदासजी वृन्दावनवासी तानसेन के संगीत-गुरु थे।[1] निम्बार्क-सम्प्रदाय से सम्बद्ध एक पुस्तक 'निजमतसिद्धान्त' (रचनाकाल : सन् १७६३ ई०) में भी यह चर्चा मिलती है, परन्तु 'निजमतसिद्धान्त' ने तानसेन और हरिदासजी से सम्बद्ध जो कहानियाँ लिखी है, वे ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर भ्रष्टताओं का भाण्डार सिद्ध होती हैं। इसमें में सत्य का अंश निकालना सुकर नही।

तानसेन और हरिदासजी पारस्परिक सम्बन्ध में किस प्रकार बँधे हुए थे, इस विषय में 'निजमतसिद्धान्तसार' के कथन का सारांश यह है : पहले तानसेन कुलीन तैलंग ब्राह्मण था, पाप के कारण यवन-प्रसंग मे पड़ गया। रागगान के लिए राजाराम बघेला के यहाँ नौकर था। तानसेन को संगीत राजाराम बघेला ने सिखाया था। वह दीपक राग शुद्ध रूप में गाता था, जिसके गाने से दीपक जल जाता था। तानसेन के साथ राजा का अनुराग बहुत बढ़ गया। राजा ने एक दिन सभा कराके तानसेन से दीपक राग सुना। दीपक जल गये, लोग तानसेन के सिर पर जल डालना भूल गये, फलतः तानसेन का शरीर जल गया और कोढ़ियों जैसा हो गया। राजाराम की आज्ञा से तानसेन ऐसे कलाकार की खोज में चले, जो मेघ-मलार गाकर पानी बरसाये और उस जल से तानसेन को नहलाकर उसका शरीर ठीक कर दे। तानसेन ओरछा पहुँचा। वहाँ एक नारी ने मलार गाकर तानसेन को ठीक कर दिया। जब तानसेन ने मलार सीखने की इच्छा प्रकट की, तब उस नारी ने तानसेन से श्रीहरिदासजी के पास वृन्दावन जाने के लिए कहा। तानसेन वृन्दावन गया और उसने समस्त वृत्तान्त स्वामी हरिदासजी से कहा। हरिदासजी की कृपा से तानसेन को सब राग-रागिनियो का ज्ञान हो गया। तानसेन ने स्वामीजी से कहा कि आप मुझे शिष्य (दीक्षा-शिष्य) बना लीजिए। हरिदासजी बोले, तुम्हारे लिए मन्त्र यही है कि तुम 'हरिदास' कहो। तानसेन ने यह स्वीकृत कर लिया और आज्ञा माँगकर आगरा चला आया। अकबर ने तानसेन का यश सुनकर उसे बुलाया। तानसेन ने अकबर से कहा यदि नादब्रह्म का तमाशा देखना है, तो नगर के बाहर तम्बू गडवाओ, वजीरों और अमीरों को बुलाओ, हरम (अन्तःपुर) के साथ दिनरात निवास करके रागरंग का आनन्द लो। बादशाह ने ऐसा ही किया। तानसेन ने मलार राग गाया, जल खूब बरसा, यमुना में जल अधिक बढ़ गया।

---

१. "एक सम अकबर पातसा तानसेन सौं बूझी जु तै कौन सौं गाइबो सीख्यौ। कोऊ तोऊ तै अधिक गावै है, तब वाने कही, जु मै कोन गनैती में हूँ। श्रीवृन्दावन में हरिदासजी नाम वैष्णव हैं, तिनकौ गाइबे कौ हौं शिष्य हूँ।"

—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३० दिसम्बर, १९५६ ई०, पृ० १८।

अकबर ने तानसेनसे कहा कि पृथ्वी में तुझ जैसा दूसरा नहीं है। तानसेन ने कहा मैं तो कुछ ही हूँ, मेरे गुरु महान् है। तानसेन के मुख से हरिदासजी की प्रशंसा सुनकर अकबर के मन में हरिदासजी के दर्शन की उत्कण्ठा हुई और वह तानसेन के सेवक के वेष में तम्बूरा उठाकर हरिदासजी के दर्शन के लिए पहुँचा। स्वामीजी के मुख से राग सुनना चाहता था, परन्तु यह कह नही सकता था। तानसेन ने मेघ-मलार को भ्रष्ट करके गाना आरम्भ किया। हरिदासजी सुन न सके और उन्होंने हाथ में तम्बूरा लेकर राग गाया, पानी बरसा। अकबर के हृदय में अत्यन्त आनन्द छा गया, अब वह स्वयं को छिपा न सका, उसने हरिदासजी के चरणों में प्रणाम किया। हरिदासजी ने तानसेन से कहा कि इसे तू क्यों लाया, ऐसी बातों से विघ्न उत्पन्न होता है। तानसेन ने हाथ जोड़कर कहा कि आप की ओर तो देखने से ही विघ्न टल जाता है। यदि घर पर भी आपका स्मरण किया जाये, तो करोड़ों कष्ट नष्ट हो जाते हैं।[1]

तानसेन का राजा रामचन्द्र से संगीत सीखना, दीपक राग गाकर दीपक जलाना, ओरछा मे मलार सुनना, हरिदासजी की आज्ञा से आगरा जाकर अकबर से मिलना और यमुना के किनारे अन्तःपुर-सहित अकबर को लाकर मलार सुनाना आदि बातें इतिहास-विरुद्ध हैं।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' में 'तानसेन की वार्त्ता' के अन्तर्गत जो कुछ कहा गया है, उसमें अनेक असगतियाँ हैं। उसके अनुसार, तानसेन गोविन्दस्वामी के शिष्य होकर वृन्दावन में रहने लगा था। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' (संग्रहकाल . अट्ठारहवी शती ई० का उत्तरार्द्ध, पृ० ४७५-४७६) के कथन का साराश यह है कि तानसेन ग्वालियर-निवासी ब्राह्मण था। पाँच वर्ष की आयु में म्लेच्छ का संग हुआ। म्लेच्छ संगीत-कला में निपुण था और तानसेन का संगीत-गुरु था। तानसेन सुन्दर गायक था। सरस्वती की उपासना से उसे रागसिद्धि का वर मिला था। हिरन पास आते थे। बादशाह ने उसपर प्रसन्न होकर वेतन नियत कर दिया। तानसेन गुणियों के पास जाता रहा। सन्त-महन्त बादशाह के गवैये का आदर करते थे, वह जगत्प्रसिद्ध था।

ग्रीष्मकाल में गोसाईं विट्ठलनाथजी गोविन्दघाट पर विराजे थे। गोविन्दस्वामी भी पास थे। तानसेन भी वहाँ उपस्थित हुआ। गोसाईंजी ने तानसेन को गाने की आज्ञा दी, तानसेन ने निम्नांकित ध्रुवपद गाया :

तेरे मन में कितो एक गुन रे जो तो पैं आवे तो प्रकास कर रे।
सप्त सुर, तीन ग्राम, इकईस मूर्च्छना, जोड़ सुर आवें तो पै सोइ सुर भर रे॥
हिरन बुलाये, पगन पराये, मेहा बरसाये तोकों सरस्वती वर रे।
कहें मियां तानसेन सुन रे गुनीजन, सब गुनियन के पायं पर रे॥

गोसाईंजी ने तानसेन का गाना सुनकर तानसेन को बादशाही कलाकार होने के कारण दस हजार रुपये और गाने का मूल्य एक कौड़ी दी। गोविन्दस्वामी का गाना

१. निजमतसिद्धान्तसार, मध्य खण्ड, पृ० ८९-९३ का सारांश।

सुनकर तानसेन उनका संगीत-शिष्य होकर वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया और वहीं रहने लगा।

वार्त्ता-साहित्य में अनेक बाते सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए जहाँ गढी गई हैं, वहाँ पश्चात्कालीन सम्प्रदाय-भक्त भी उनमे अनेक प्रक्षेप करते रहे है। इस वार्त्ता मे जिस ध्रुवपद का गान कराया गया है, वास्तव में वह तानसेन का नही है, अपितु 'बैजू' के निम्नाकित ध्रुवपद की तोड़-मरोड़ है :

तेरे मन में केतो गुण रे जेतो होय तेतो प्रकास कर रे।
हम जाने तुम सुरे पुरे जोई सुर आवे सोई सुर भर रे॥
पाहन पिघराये, हिरन बुलाये, ज्यों बरसे मेह सरसुती वर रे।
कहे बैजू बावरे सुन हो गोपाल नादविद्या अथाह काहूं सों न अर रे॥ [1]

वार्त्ता में जो ध्रुवपद तानसेन के मुँह में रख दिया गया है, वह 'रागकल्पद्रुम' में उपर्युक्त रूप में है। तानसेन के ध्रुवपदों की यह शैली ही नही है। यह ध्रुवपद तो किसी प्रतियोगिता की याद दिलाता है। वार्त्ता-प्रसग मे इसकी संगति ही नही बैठती।

सरस्वती के वरदान के पश्चात् भी सिद्ध गायक तानसेन में कसर रह जाना, गोविन्दस्वामी का शिष्यत्व ग्रहण करके वल्लभ-सम्प्रदाय मे दीक्षित होना, शेष जीवन उनकी सेवा में व्यतीत करते रहना इत्यादि बाते ऐसी है, जो स्पष्टतया यह सिद्ध करती है कि सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ाने के लिए ये कल्पनाएँ वार्त्ता-साहित्य मे बाद को घुसेडी गई है।

स्वामी हरिदासजी की आयु मानसिंह तोमर की मृत्यु के समय प्राय छत्तीस वर्ष थी। वे प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक एवं ध्रुवपदकार थे। हरिदासजी ने या तो ग्वालियर मे रहकर संगीत-शिक्षा प्राप्त की होगी अथवा ग्वालियर मे आविष्कृत ध्रुवपद की शैली में निपुण किसी सगीतज्ञ ने उन्हें घर पर शिक्षा दी होगी। स्वामी हरिदासजी आयु में तानसेन से ग्यारह वर्ष बड़े थे, अत उनके साथ तानसेन का परिचय सर्वथा सम्भव है और यह भी सम्भव है कि विक्रमाजीत के हाथ से सन् १५१८ ई० मे ग्वालियर का राज्य निकल जाने के पश्चात्, जबकि बख्शू और मन्नू जैसे कलाकारों ने ग्वालियर छोड़ दिया, तब तानसेन अपनी शिक्षा पूर्ण करने के लिए स्वामी हरिदासजी के पास वृन्दावन चले गये हो।

हरिदास डागुर नामक एक संगीतजीवी कलाकार तानसेन की अपेक्षा कनिष्ठ थे। इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाला एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिसके रचयिता शाहजहाँ के दरबारी गायक जगन्नाथ कविराय है। कुछ गायक इतिहास से अपरिचित होने के कारण तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य बनाकर अपने वश की गौरव-वृद्धि का प्रयत्न करते रहे है और उन्होंने कुछ ध्रुवपद भी गढ़े है, परन्तु उन ध्रुवपदों की भाषा जहाँ तानसेन के ध्रुवपदों की भाषा से मेल नही खाती, वहाँ उनमें हजरत गौस को संगीत का शिक्षक भी घोषित कर दिया गया है, इसी प्रकार का एक ध्रुवपद इस प्रकार है :

---

१. सं० क० हिं० र०, पृ० ६६।

आज जनम सफल भयो तानसेन बाबा हरिदास हाथ पकर्यो श्रीराग सिखायो पहले पहल।
मैं औरन सों सीखो शाह मोहम्मद गौस पीर समान नायक बख्शू की समाधि में पहले पहल।
गुनीजन आदर ना कीनी सब मिलि कह्यो रस नाहीं तानसेन गुरु कर हम ना सिखायो पहले पहल।
तानसेन के प्रभु वाकवानी के परसाद गुरु हरिदास और कुलगुरु हृदय राख्यौं वाहू के चरन तरायौ पहले पहल।

इस रचना की शैली और भाषा जहाँ स्पष्टतया यह कह देती है कि तानसेन की रचना नहीं है, वहाँ इसमें हजरत गौस को 'संगीतज्ञ' भी घोषित किया गया है, जो वास्तविकता के विपरीत है। साथ ही, इसमें बताया गया है कि तानसेन ने नायक बख्शू की समाधि पर पहले-पहल संगीत सीखा। सन् १५१६ ई० में तानसेन समर्थ ध्रुवपद-कार थे। उस समय ग्वालियर के दरबार में जीते-जागते बख्शू विद्यमान थे, जो कि बहादुरशाह के राज्यकाल (सन् १५३७ ई०) मे भी जीवित रहे। फलत, बख्शू की समाधि पर तानसेन की प्रथम शिक्षा की बात सर्वथा असंगत है और तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य सिद्ध करने के प्रयोजन से गढ़ी गई है, जो कि वास्तव में तानसेन से कनीय (जूनियर) थे।

कुछ ध्रुवपदों में 'ज्ञानगुरु' नामक एक ध्रुवपदकार तानसेन को उपदेश-सा करते हुए प्रतीत होते है। सम्भव है, वे भी तानसेन के गुरु हों।[1]

तानसेन की योग्यता : फखरुल्लाह ने तानसेन को 'अताई' लिखा है। 'अताई' की परिभाषा करते हुए 'रागदर्पण' में कहा गया है कि जो कोई 'इल्म' का 'अमल' (प्रयोगमात्र) जानता हो, उसे 'अताई' कहते हैं। फखरुल्लाह की दृष्टि में तानसेन अशिक्षित थे।[2]

'अशिक्षित' और 'निरक्षर' पर्यायवाची नही है। अकबर स्वयं लिखना-पढ़ना नहीं जानता था, परन्तु 'बहुश्रुत' था। इसी भाँति तानसेन की बहुश्रुतता में सन्देह नही है।

मिश्रबन्धुओं ने 'रागमाला', 'संगीतसार' एवं 'गणेशस्तोत्र' नामक तीन रचनाओं को तानसेन-कृत बताया है। सन् १९०७ ई० में काशी के लहरी प्रेस से 'रागमाला' का प्रकाशन हुआ था। 'संगीतसार' की पाण्डुलिपि रीवाँ में सुरक्षित है। 'गणेशस्तोत्र' उपलब्ध नहीं है।[3] इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता विवादास्पद है।[4]

---

१. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० १३२।
२. रागदर्पण, नवाँ बाब; 'मअदन्-उल्'-मूसिकी, पृ० २५।
३. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ, पृ० २०।
४. उपरिवत्, पृ० २१।

तानसेन-कृत ध्रुवपदों की संख्या जहाँगीर के अनुसार सहस्रों है,[1] जो पूर्ण संख्या में प्राप्त नहीं होते। नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ' मे तानसेन के दो सौ सैंतालीस ध्रुवपद दिये है[2] और 'कवि तानसेन और उनका काव्य' में भी वे ही ध्रुवपद प्रकाशित किये है।[3]

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि' में एक सौ बयासी ध्रुवपद दिये हैं।[4]

हमने परिशिष्ट 'अ' मे 'अकबर' की मुद्रा से अंकित इकसठ ध्रुवपद दिये हैं[5] और परिशिष्ट 'आ' मे तानसेन की मुद्रा से अंकित अट्ठावन ध्रुवपद।[6] इनमे से अधिकांश ध्रुवपद अप्रकाशित है। यह पहले कहा जा चुका है कि 'आईने अकबरी' और 'इकबालनामः जहाँगीरी' से यह सिद्ध है कि तानसेन 'अकबर' का नाम अपने अधिकाश ध्रुवपदों मे डाल दिया करता था।[7]

तानसेन-रचित ध्रुवपदों से ज्ञात होता है कि वह संगीतशास्त्रीय ग्रन्थों में छानबीन किया करता था।[8] 'संगीतरत्नाकर' जैसा प्रामाणिक ग्रन्थ अकबर और उसके कलाकारों के विचार का विषय रहता था। इन गोष्ठियों में तानसेन उपस्थित रहते थे।[9]

तानसेन के कुछ रहस्यमय ध्रुवपद बताते हैं कि संगीत के लुप्तप्राय रहस्यों से भी उनका प्रगाढ परिचय था।[10]

पूर्ववर्त्ती गुणीजनों, गुरुओं, समसामयिक पण्डितों एवं कलाकारों की कृतियों से उनका भली भाँति परिचय था। बैजू और बख्शू की रचनाएँ उनके समक्ष थीं, फलत. उनके ध्रुवपदों में देवस्तुति, प्रताप-वर्णन, कृष्णभक्ति, ऋतुवर्णन, पर्वोत्सव, नायिका-भेद के उदाहरण, निराकार की भक्ति इत्यादि अनेक विषय है, जिनका निर्वाह उन्होंने भली भाँति किया है।

उनमें कवि की दृष्टि एवं प्रतिभा भली भाँति उजागर हुई है, जिसका विवेचन यथास्थान किया जायगा।

---

१. अकबरनामः, खं० २, पाद-टिप्पणी, पृ० २७६।
२. सं० क० हिं० र०, पृ० ८५, १३६।
३. उपरिवत्, पृ० ६२, १५०।
४. अ० द० हिं० क०, पृ० ३८८, ४१८।
५. परिशिष्ट अ, २५, ८५।
६. परिशिष्ट आ, १७, ७४।
७. आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ४४५; अकबरनामः, खं० २, पाद-टिप्पणी, पृ० २७६।
८. परिशिष्ट अ, ३२।
६. उपरिवत्।
१०. परिशिष्ट आ, ७०।

तानसेन के आश्रयदाता . यह सिद्ध किया जा चुका है कि मानसिंह तोमर से तानसेन को संरक्षण मिला था और उनके पुत्र विक्रमाजीत से उपाधि। ग्वालियर पर लोदी-वंश का अधिकार हो जाने के पश्चात् यह सर्वथा सम्भव है कि तानसेन अपनी साधना को परिमार्जित करने के लिए स्वामी हरिदासजी की सेवा मे चले गये हों।

काजी मेराज धौलपुरी का कथन है कि शेख मुहम्मद गौस पर मुगलवश (बाबर और हुमायूँ) की कृपा रही थी और उस वश से शेख को एक करोड 'तनक:' (तंके) की जागीर मिली थी। इसीलिए, शेरशाह शेख मुहम्मद गौस को भाति-भाँति के कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया करता था। फलत., शेख मुहम्मद गौस सन् १५४२ ई० मे गुजरात चला गया, जहाँ बहादुरशाह का पुत्र महमूद शासन कर रहा था। काजी साहब का इतना कथन तो ऐतिहासिक तथ्य है, परन्तु हजरत मुहम्मद गौस से तानसेन को सम्पृक्त करने के लिए काजी साहब ने इतना अपनी ओर से जोड़ दिया है कि इस यात्रा मे अपने पीर हजरत मुहम्मद गौस के साथ तानसेन भी थे।[1] यथास्थान बताया जा चुका है कि वाजिद अलीशाह-कालीन लेखक मुहम्मद करम इमाम अपनी पुस्तक 'मअदन्-उल-मूसिकी' मे हजरत गौस मुहम्मद और तानसेन के किसी पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा तक नही करता, परन्तु काशी मेराज धौलपुरी जो कुछ फरमाते है, उसका साराश है :

"वहाँ पहुँचने पर गुजरात के सुलतान ने तानसेन को गाने के लिए बुलाया, हजरत मुहम्मद गौस ने तानसेन को इजाजत दे दी। सुलतान की एक कंचनी मल्हार गाते-गाते अपनी नथ कुएँ में डाल देती थी, तो कुएँ का पानी उबल जाता था। तानसेन ने भी मल्हार गाया, तूफानी वारिश शुरू हो गई। सुलतान ने घबराकर शेख मुहम्मद गौस के पास हरकारा भेजा। तानसेन को रोकने के लिए शेख मुहम्मद गौस के पुत्र हजरत अब्दुल्ला शाह साहब भेजे गये, जिन्होने राग मे डूबे हुए तानसेन के सिर पर हाथ रखकर उनका जोश ठण्डा किया, पानी रुक गया। सुलतान ने तानसेन को इनाम दिया, उन्होने न लिया। नौकरी करने के लिए कहा, तानसेन ने वह भी न की और ग्वालियर चले आये।"

काजी साहब अपने उपर्युक्त कथन का कोई आधार नहीं देते। एक और कहानी भी काजी साहब ने लिखी है, जिसका साराश यह है :

"तानसेन का नाम सुनकर बैजू उनसे मिलने के लिए ग्वालियर पहुँचे, तानसेन उस वक्त अपने गाँव बेहट मे थे। उनतक पहुँचने के लिए बैजू को नदी पार करनी पडी, बेजू के कपड़े मैले हो गये थे। एक धोबिन वहाँ कपड़े धो रही थी, उसने मल्हार राग गाकर पानी बरसाया और उस पानी से बैजू के कपड़े धोये, पूछने पर वैजू को पता चला कि वह तानसेन की धोबिन है। बैजू तानसेन से मिलने गये और एक राग गाकर हिरन बुलाया और अपनी माला उसके गले में डाल दी, हिरन चला गया। तानसेन ने गाकर

---

१. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ६१।

बहुत-से हिरन बुला दिये, जिन सबके गले में बैजूवाली माला जैसी मालाएँ पड़ी हुई थी। बैजू शरमाये। तानसेन ने गाना बन्द किया, तो वही हिरन रह गया, जिसके गले में बैजू की माला थी। तानसेन ने एक राग और गाया, जिससे पत्थर पिघल गया, तानसेन ने अपने मँजीरे उसमे गाड़ दिये। गाना बन्द करने पर पत्थर जम गया और उसमें मँजीरे भी जमकर रह गये। बैजू गाना गाकर पत्थर न पिघला सके, जिससे मँजीरे निकल जायँ।"[1]

जो किवदन्ती बैजू और गोपाल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है, उपर्युक्त पंक्तियो में वह तानसेन और बैजू से सम्बद्ध कर दी गई है।

शिवसिंहसरोज के अनुसार, तानसेन सूरवंश के राज्याश्रय मे रहे थे। **शेरशाह** का पुत्र दौलत खाँ उनका प्रशसक था और उसकी सुरक्षा मे ये कई वर्ष रहे। काजी मेराज धौलपुरी ने दौलत खाँ को शेरशाह के पुत्र **सलीमशाह** का प्रेमपात्र बताया है। कोषाध्यक्ष को आज्ञा थी कि वह प्रतिदिन दौलत खाँ को एक लाख 'तनकः' (टंक) दे दिया करे।[2] **दौलत खाँ** के रूप की प्रशंसा में दो ध्रुवपद प्राप्त है।[3] **सलीमशाह** (इस्लामशाह) की प्रशंसा से युक्त ध्रुवपद उपलब्ध है।[4] उस समय के ध्रुवपदकार अपनी रचनाओं में अपने आश्रयदाताओं के नाम डाल दिया करते थे। यह सम्भव है कि इन ध्रुवपदों के रचयिता तानसेन हों। कोई ऐसा तत्कालीन ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नही है, जो इस्लामशाह एव **दौलत खाँ** के साथ तानसेन का सम्बन्ध बताता हो।

ब्लॉकमैन का कथन है कि **इब्राहीम सूर** तानसेन को आगरा बुलाने में असफल हुआ था।[5] इब्राहीम सूर ने दिल्ली और आगरा का घेरा सन् १५५४ ई० में डाला था।

सलीमशाह के साले **मुहम्मद आदिल शाह 'अदली'** के दरबार में तानसेन रहे थे और उसे गुरुवत् समझते थे।[6] **इस्लामशाह** (सलीमशाह) के दरबारी गायक **बाबा रामदास** भी थे।[7] इतिहास-प्रसिद्ध हेमूँ मुहम्मद आदिलशाह के प्रधानमन्त्री रहे थे, इन्होने मुगलों को हराकर आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया था।

---

१. **शिवसिंहसरोज, पृ० ४२४।**

२. **'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ९३।**

३. **परिशिष्ट अ, २०-२१।**

४. **परिशिष्ट अ, १७, १९।**

५. **आईने अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ६८१।**

६. "Adli was so highly skilled in singing and dancing that Miyan Tansin (Tansen?) the well-known Kalawant who is a Past master in this art used to own to being his pupil." —Munt. Vol. 2, p. 557.

७. "Ramdas of Lakhnau who was one of musicians of Aslim Shah". —Munt. Vol. 2, p. 37.

अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों के कारण प्रायः इस समय तानसेन रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र के दरबार में गये। राजा रामचन्द्र महान् विद्याव्यसनी, संगीत-शास्त्र-मर्मज्ञ एवं गुणियों के आश्रयदाता थे। बदायूँनी का कथन है कि एक अवसर पर राजा रामचन्द्र ने तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कार-स्वरूप दी थी।[१]

जैन खाँ नामक गायक ने अकबर के समक्ष तानसेन की भूरि-भूरि प्रशसा करके तानसेन के प्रति अकबर की उत्सुकता जागरित की थी।[२] जैन खाँ स्वयं भी पहले राजा रामचन्द्र के आश्रय मे था। परिणाम-स्वरूप, अकबर ने तानसेन को बुलवा भेजा।[३] बदायूँनी का कथन है कि तानसेन अकबर के दरबार मे आना नही चाहते थे, अतः जलाल खाँ कूर्ची को उन्हें लेने भेजा गया, जो तानसेन का दिमाग ठिकाने ले आया।[४] अबुल फजल ने इस बल-प्रयोग की बात को 'अकबरनामा' में छिपाया है,[५] परन्तु 'आईने-अकबरी' मे स्वीकृत किया है।[६]

---

१. "Ramchand in his natural dispositions was of such high spirit, that he has none equal in our days. And among his presents was this : he gave in one day a kror of gold-pieces to Miyan Tansingh, (Tansen?), the musician." —Munt. Vol. 2, p. 345.

२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० ६५।

३. "Jalalkhan Qurchi, who was a favourite servant was sent with a gracious order to the Rajah for the purpose of bringing Tansen".
—Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. "Miyan Tansen did not wish to leave him. Finally Jalalkhan Qurchi came and brought him back to his sense of duty."
—Munt. Vol. 2, p. 345.

५. "Tansen, who was the foremost of the age among the Kalawants of Gwalior came to the royal hearings and it was reported that he meditated going into retirement and that he was spending his days in attendance on Ramchand the Rajah of Panna, H. M. ordered that he should be enrolled among the court musicians."
—Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

६. "Ramchand was the patron of the renowned musician and singer Tansen, regarding whom vide the list of musicians at the end this book. His fame had reached Akbar, and in the seventh year, the Emperor sent Jalal-uddin Qurchi to Bhatta, to induce Tansen to come to Agra. Ramchand feeling himself powerless to refuse Akbars' request, sent his favourite, with his musical instruments and many presents to Agra."
—Ain. Akbari, blochman, H. S., p. 445.

बदायूँनी के कथन से यह सिद्ध है कि तानसेन अकबरी दरबार में आना नहीं चाहते थे और 'आईने अकबरी' में भी यह स्वीकृत किया गया है कि जलाल खाँ को भेजे जाने का तात्पर्य तानसेन को अकबरी दरबार में आने के लिए सहमत करना था। 'आईने अकबरी' में यह भी स्वीकृत किया गया है कि रामचन्द्र ने अकबर की माँग को अस्वीकृत करने में अपने को असमर्थ पाकर तानसेन को अकबरी दरबार में भेज दिया।

'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार, रामचन्द्र ने सौ हाथी और दो-तीन सौ सवार अफगान वगैरः तानसेन के साथ भेजे थे और हीरे-जवाहरात भी साथ में थे। 'आईने अकबरी' में कहा गया है कि तानसेन के साथ बहुत-सी भेंटें थी।[१] 'अकबरनामः' मे यह कहा गया है कि तानसेन के साथ उपयुक्त उपहार राजा रामचन्द्र ने भेजे, जिनमें प्रसिद्ध हाथी एवं महत्त्वपूर्ण रत्न थे।[२]

'अकबरनामः' के अनुसार, शाहंशाह अकबर ने प्रसन्न होकर तानसेन की आशा-रूपी अंजलि को धन के उपहारों से भर दिया, तानसेन को सर्वोच्च पद प्रदान किया गया।[३] 'आईने अकबरी' के अनुसार, जब तानसेन ने अकबरी दरबार में सर्वप्रथम कला-प्रदर्शन किया, तब शाहंशाह अकबर ने तानसेन को दो लाख रुपये दिये।[४] 'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार पहली मजलिस में अकबर ने तानसेन को एक करोड़ दाम (एक लाख रुपये) दिये।

रामचन्द्र जैसे राजा ने एक बार में ही एक करोड स्वर्ण-मुद्राएँ तानसेन को दी थी और अकबर ने प्रथम अनुग्रह एक या दो लाख रुपयों के रूप में किया। यह स्थिति अकबर और रामचन्द्र को उदारता की दृष्टि से यथास्थान रख देती है। प्रत्यक्ष है कि धीरे-धीरे तानसेन अकबरी दरबार में रहने के अभ्यस्त हो गये होंगे, परन्तु यावज्जीवन वे राजा रामचन्द्र के स्नेह, गुणज्ञता तथा उदारता को नहीं भूले होंगे। इस तथ्य को प्रमाणित करनेवाले ध्रुवपद प्राप्त हैं।[५]

अकबरी दरबार में तानसेन का स्थान :

दरबार में आते ही तानसेन को दरबारी गायकों मे सर्वोच्च स्थान देने का प्रयोजन उनके हृदय से रामचन्द्र के वियोग का दुःख दूर करने की चेष्टा, उनकी आत्मा को मोल

---

१. "Ramchand...sent his favourite, with his musical instruments and many presents to Agra." —Ain. Akbari, bloch. p. 445.

२. "And sent back with him suitable presents of elephants of fame and valuable jewels." —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

३. "H. M. The Shahanshah was pleased and poured gifts of money into the lap of his hopes. His cap of honour was exalted above all others." —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. "And the first time that Tansen performed at court, the Emperor made him a present of two lacs of rupees,"

५. परिशिष्ट आ, ३४।

लेने का प्रयत्न और उनके द्वारा शाहंशाहे वक्त (अकबर) का विरुद-गान कराना था। भय अथवा लोभ से तानसेन झुके या बिके। समकालीन इतिहासकारों के लेखों से तानसेन पर अकबरी प्रताप का आतक ध्वनित होता है, परन्तु वाजिद अलीशाह की सम्मति के अनुसार, लोभ ने तानसेन को गिराया।[१] हम तो तानसेन की विवशता को इसका प्रधान कारण समझते हैं, धीरे-धीरे उनकी अन्तरात्मा घुटकर रह गई होगी।

साधारणतया तानसेन दिन के समय दरबार मे खडे होकर गाते थे। रात्रि के समय एवं विशिष्ट उत्सवों में तानसेन तथा अन्य सगीतज्ञो को बैठकर गाने-बजाने की अनुमति थी। इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय को गवैयो की इस स्थिति का परिचय मुगल-राजदूत **असदबेग** ने दिया था।[२]

'अकबरनाम.' मे कहा गया है कि तानसेन के अनुकूल स्वभाव के कारण उन्हे अकबर का सामीप्य मिला।[३] 'आईने अकबरी' में कहा गया है कि तानसेन की अधिकाश रचनाएँ 'अकबर' की मुद्रा से अकित है।[४] 'इकबालनाम.' से भी इस कथन की पुष्टि होती है कि तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की, उनमें से अधिकाश में अकबर का नाम डाल दिया।[५]

तानसेन की सन्तानें : अबुल फजल ने तानसेन के पुत्र **तानतरंग खाँ** की गणना अकबर के प्रधान संगीतज्ञों में की है।[६] तानसेन के एक और पुत्र **विलास खाँ** की चर्चा 'बादशाहनामः' में है।[७]

---

१. **"मियाँ तानसेन ने इसे जरियए आमदनी बताकर अकबर के सामने हिर्स का हाथ फैलाया। तानसेन की इस हरकत से गाने-बजाने का असर मिट्टी के बराबर हो गया।" —सौतुलमुबारक, पृ० ४१; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २१।**

२. "He (Adil-Shah II) then enquired of the Mughal envoy whether Tansen stood or sat while singing before the Emperor and was told that in the Darbar at day time he had to stand while singing, but at night and on festive occasions Tansen and other musicians were allowed to take their seats while engaged in their performance." —Kitáb-e-Nauros, Introduction, p. 49.

३. "As he had an upright nature and an exceptable desposition. He was cherished by a long service and association with H. M." —Akbarnama, Vol. 2, p. 279.

४. "Most of his compositions are written in Akbar's name." —Ain. Akbari, Bloch, p. 445.

५. "He (Jahangir) adds the several thousands of his compositions are still extent and that many of them are named after Akbar" —Akbarnama, vol 2, footnote, p. 279.

६. Ain. Akbari : Bloch. p. 681-682.

७. Ain Akbari : Bloch. p. 680, footnote (reference to Badshahnama.)

रागदर्पणकार **फकीरुल्लाह** भी तानसेन के पुत्र **विलास ख़ाँ** की चर्चा करता है।[१] तानसेन के दो अन्य पुत्रों—**सूरतसेन** तथा **हमीरसेन** की चर्चा भी 'रागदर्पण' में है।[२]

प्रतीत होता है कि तानसेन के कोई मुस्लिम-उपपत्नी थी, जिससे तानतरंग खाँ और विलास खाँ उत्पन्न हुए थे और हिन्दू-पत्नी की सन्तान सूरतसेन थे। मियाँ तानसेन के पोते **सोहिलसेन** तथा उसके पुत्र (अर्थात् तानसेन के परपोते) **सुधीनसेन** को भी फकीरुल्लाह ने चर्चा का विषय बनाया है।[३]

मुहम्मद करम इमाम ने 'रागदर्पण' के इस अंश का अनुवाद 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में दिया है, परन्तु भूल से 'सूरतसेन पिसरे तानसेन' (तानसेन के पुत्र सूरतसेन) के स्थान पर 'सूरतसेन ख़लफ़ुस्सद्क तानसेन सानी' (तानसेन द्वितीय का पुत्र सूरतसेन) कर दिया है।[४] तानसेन को बलात् मुसलमान घोषित करनेवाले मुहम्मद करम इमाम की पोल तानसेन के हिन्दू-पुत्र सूरतसेन का अस्तित्व खोल देता है, अत: करम इमाम ने सूरतसेन को तानसेन द्वितीय का पुत्र घोषित कर डाला है। रामपुर की रजा लाइब्रेरी मे सुरक्षित 'रागदर्पण' की प्राचीनतम प्रति में सूरतसेन के पिता तानसेन के साथ 'सानी (द्वितीय)' शब्द नही है। मूल 'रागदर्पण' में सोहिलसेन को 'मियाँ' तानसेन का पोता बताया गया है, परन्तु मुहम्मद करम इमाम ने सोहिलसेन को तानसेन का पोता बताकर तानसेन से पूर्व 'मियाँ' शब्द का लोप कर दिया है।[५] **सोहिलसेन** के पुत्र, अर्थात् तानसेन के प्रपौत्र सुधीनसेन की चर्चा भी रागदर्पण मे है,[६] जो मुहम्मद करम इमाम के अनुसार, 'सोदससेन' है। यहाँ कुछ मनोरंजक कल्पनाएँ प्रस्तुत हैं :

अ. राजा **समोखनसिंह** राजपूत रुहेलखण्ड-प्रदेश में 'खण्डहर' स्थान के रहनेवाले थे। इन्होंने अकबर को प्रसन्न करने के लिए इस्लाम अंगीकृत किया और इनका नाम **नौबात** खाँ रखा गया।[७]

इन समोखनसिंह की कोई चर्चा 'आईने अकबरी' में निर्दिष्ट अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में नही है। मुहम्मद करम इमाम ने समोखनसिंह को रुहेलखण्ड का राजपूत कहा है और रामपुर के स्वर्गीय वजीर खाँ ने इन समोखनसिंह को किशनगढ़ के राजवंश से सम्पृक्त करके इन्हें सूर्यवंशी राठौर घोषित करके स्वय को इनका वंशज कहा है।[८]

---

१. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब।
२. उपरिवत्, दसवाँ बाब।
३. उपरिवत्।
४. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २५।
५. उपरिवत्, पृ० २६।
६. उपरिवत्।
७ मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २३३।
८. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृ० २१७।

अकबर को प्रसन्न करने के लिए किशनगढ़-राजघराने के व्यक्तियों का मुसलमान होना किसी इतिहास या अकबरी नीति से प्रमाणित नहीं है।

बड़ी मनोरंजक बात यह है कि वजीर खाँ समोखनसिंह का मुस्लिम नाम नौबात खाँ बताते हैं।[1] और, समोखनसिंह के पुत्र मिसरीसिंह का नाम भी नौबात खाँ बताते है।[2]

यह भी कहा जाता है कि समोखनसिंह प्रसिद्ध बीनकार थे, मुसलमान हो जाने के बाद उनका नाम नौबात खाँ रखा गया, फिर यह तानसेन के जमाई (जामाता) हो गये।[3] यह कहनेवालों की भी कमी नही है कि अकबर के दरबार में प्रसिद्ध बीनकार मिसरीसिंह थे, जो तानसेन की कन्या से विवाह करने के बाद मुसलमान हो गये थे। ये मिसरीसिंह सरस्वती-वीणा के वादन में इतने प्रवीण थे कि तानसेन भी इनसे हार मानते थे।[4]

वास्तविकता यह है कि तानसेन की लड़की या समोखनसिंह की कोई चर्चा इतिहास में नही। तानसेन को अकबरी दरबार मे सर्वोच्च पद प्राप्त होना अबुल फजल के लेखों से सिद्ध है, किसी समोखनसिंह या मिसरीसिंह से तानसेन के पराजित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

तानसेन के पुत्र विलास खाँ की लडकी का विवाह लाल खाँ से हुआ था, जिसे शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' की उपाधि दी थी। लाल खाँ विलास खाँ का शिष्य था। इस तथ्य का वर्णन रागदर्पणकार फकीरुल्लाह ने किया है,[5] परन्तु समोखनसिह को तानसेन का दामाद सिद्ध करने के लिए करम इमाम ने लाल खाँ के वर्णन से यह तथ्य जान-बूझ-कर उड़ा दिया है कि लाल खाँ विलास खाँ के दामाद थे।[6]

विलास खाँ के एक शिष्य मिसरी खाँ ढारी की चर्चा फकीरुल्लाह और करम इमाम, दोनों ने की है, जो शुजा के साथ बंगाल में रहता था और सत्तर वर्ष से अधिक की आयु में वही मरा। यदि विलास खाँ की किसी पुत्री का विवाह इसके साथ हुआ होता, तो फकीरुल्लाह इसकी चर्चा अवश्य करता; क्योंकि लाल खाँ के साथ विलास खाँ की पुत्री के विवाह की चर्चा उसने की है।

रामपुर के स्वर्गीय वजीर खाँ ने अपना जो वंशवृक्ष भातखण्डेजी को दिया था, उसमें आरम्भिक सात पीढियों में इन सात सज्जनों को क्रमशः गिनाया है : १. बड़े नौबाद (त)

---

१. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृ० २१७।

२. उपरिवत्, पृ० २१८।

३. उपरिवत्, पृ० २१६।

४. ध्वनि और संगीत, पृ० २७३।

५. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, दसवाँ बाब; बादशाहनामः, २–६, 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०७।

६. मअ्दन्-उल्-मसिकी, पृ० २६।

खाँ (समोखनसिंह बीनकार), २. शेर खाँ, ३. हुसेन खाँ, ४. असत खाँ, ५. लाल खाँ, ६. बेनजीर खाँ, ७. असत खाँ (?) । इसमें खुशहाल खाँ को असत खाँ का पुत्र बताया गया है ।

यह वंशवृक्ष कल्पित है और इसमे अनेक ऐसी असंगतियाँ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध हो जाती है । 'बादशाहनामः' तथा 'रागदर्पण' से सिद्ध है कि खुशहाल खाँ विलास खाँ के दौहित्र तथा लाल खाँ के पुत्र थे । उपर्युक्त वशवृक्ष मे एक लाल खाँ खुसहाल खाँ के परदादा है, तो दूसरे लाल खाँ उनके पुत्र । खुशहाल खाँ के पिता लाल खाँ का इसमें पता तक नही है ।

विलास खाँ के दामाद **लाल खाँ** के अतिरिक्त एक अन्य **लाल कलावन्त** की चर्चा 'आईने अकबरी', 'तुज़के जहाँगीरी' तथा 'इकबालनामः जहाँगीरी' मे आती है । यह बचपन से अकबर की सेवा में था और जहाँगीर के राज्यकाल (सन् १६०८ ई०) मे सत्तर वर्ष की आयु भोगकर मर गया ।[१] इसका जन्म सन् १५४८ ई० में हुआ, जबकि अकबर छह वर्ष का था । अकबर के राज्यारोहण-काल (सन् १५५६ ई०) में इसकी आयु आठ वर्ष की थी । यदि इस लाल कलावन्त को उपर्युक्त वंशवृक्ष का लाल खाँ प्रथम समझा जाय, तो समोखनसिंह इससे चार पीढ़ी पूर्व रखे हुए है, जिनका कोई उल्लेख अकबरी दरबार के अथवा पश्चाद्वर्त्ती किसी इतिहासकार ने नही किया है । तानसेन की किसी लडकी का विवाह इन समोखनसिंह के साथ होना सम्भव नही । अकबरी दरबार में आकर सन् १६६२ ई० के पश्चात् तानसेन उस समोखनसिंह को लड़की देगे, जो बारह वर्ष के लाल खाँ का परदादा हो, इस बात का कहना ही बुद्धि के दिवालियेपन का परिचय देना है ।

'मिराति आफताबनुमः' के पृ० ३६२ पर **नेमत खाँ** (न्यामत खाँ 'सदारंग') का वृत्त दिया हुआ है । इनके पिता का नाम **अमोल खाँ** है । वजीर खाँ द्वारा कल्पित वंशवृक्ष में सदारंग का पितृत्व किसी लाल खाँ सानी को दे दिया गया है ।

मुहम्मद करम इमाम **वजीर खाँ** के पूर्वजों से परिचित था, वह **प्यार खाँ** को **छज्जू खाँ** का पुत्र बताता है और **जीवन खाँ** को **प्यार खाँ** का बहनोई कहता है,[३] परन्तु वजीर खाँ द्वारा बनाये हुए वंशवृक्ष में **जीवनशाह** और **प्यार** खाँ भाई-भाई है और उनके पितृस्थान में **महावत खाँ** की नियुक्ति कर दी गई है । मुहम्मद करम इमाम ने लिखा है कि छज्जू खाँ के पुत्र प्यार खाँ निःसन्तान थे, अतः इन्होंने अपने भाँजे बहादुर हुसेन खाँ को गोद ले लिया था,[४] बहादुर **हुसेन** खाँ के पिता जीवन खाँ हुए, जो प्यार खाँ के बहनोई थे ।

---

१. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ १०६ ।
२. उपरिवत्, पृ० १०८ ।
३. मअदन् उल्-मूसिकी, पृ० ३३ ।
४. उपरिवत् ।

वजीर खाँ द्वारा भातखण्डेजी को लिखाये हुए वंशवृक्ष में जीवनशाह के पुत्र छोटे नौबात खाँ और निर्मलशाह दिखाये गये है, बहादुर हुसेन खाँ का कही पता नही है।

दिवगत महापुरुषों की परम्परा का सम्बन्ध अपने वश से जोडकर लोगों की श्रद्धा एवं रजवाडों से रोटी प्राप्त करने का प्रयत्न कलाकार करते रहे है। वजीर खाँ द्वारा प्रस्तुत वंशवृक्ष ऐसे प्रयत्नों का अन्यतम उदाहरण है।

वजीर खाँ के पूर्वज नवाब शुजाउद्दौला के जमाने में लखनऊ जाकर बसे।[१] शुजाउद्दौला की मृत्यु-तिथि २६ जनवरी, १७७५ ई० है। सम्भवत:, इसी युग मे इन लोगों ने लखनऊ-निवासियो की दृष्टि में श्रद्धा-भाजन बनने के लिए समोखनसिंह के मुसलमान होने, तानसेन की लड़की से उनका विवाह होने और स्वयं को उनका वशज बताने की कहानी गढी। इस कहानी से इन्हे लाभ अवश्य हुआ और ये दूसरे कलाकारों की अपेक्षा विशिष्ट समझे जाने लगे। मुहम्मद करम इमाम पर भी इस कहानी का प्रभाव पड़ा और उसने भी इन्हे समोखनसिंह का वंशज मान लिया।[२]

तानसेन और अकबर :

'इकबालनामः जहाँगीरी' के अनुसार 'अकबर तानसेन को प्रतिदिन किसी-न-किसी बहाने द्रव्य और सामग्री देता रहा।[३] तानसेन ने अकबर को जगद्गुरु एव नर-नारायण कहा,[४] यह भी कहा कि वह मुझ पर मिहरबान है, मैने तभी (उसके) चरण छुए है। वह जन्म-जन्म के दु:ख और दारिद्र्य काट देता है।[५]

१. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० ३४।

२. उपरिवत्।

३. इकबालनामः जहाँगीरी, रामपुर-प्रति।

४. (क) "रचि पचि विरंचि कीनो लीनो साहि अकबर तीन लोक नाथ माथे करि धरिय भार मेरे गुन अधार निरधार। नर नाराइन रागप (राजत) सोई विचित्र धन दीवार पायनि परि संसार जुहार। गरीबनिवाज लाजकाज साहिनि सिरताज ताज कौ कियौ विचार। तानसेन के प्रभु उनचास कोटि वसत वसन वसन कहिन सकत जलालदीन मोहम्मद को अवतार।"—रागमाला, १२४ अ।

(ख) "साहि अकबर जगतगुरु जलालदीन उक्ति जामै बिना न करत महाबली।"
—परिशिष्ट अ, ४७।

५. "आलमपनाह साहि अकबर चिरंजीवी होइ जाके निस्तारन कौं करौ निहाल अपने सुभाइ। अल्ला कियौ तखत बखत मो पर मिहरबान सकल नाम (नरन ?) प्रभात (प्रभाव ?) ते हौं तब ही परसे पाय। जनम जनम के दुख दालिद काटत है और देत अधार। साहि अकबर बुजरग मुरसद गावै (जामै) अलहि पाय सोई न्यामति देत अघाइ।

—रागमाला, ५८ अ।

दीन-इलाही के प्रवर्त्तक अकबर ने इस नवीन धर्म के प्रचार के लिए अनेक शेखों और फकीरों को अपना 'मुरीद' (शिष्य) बनाया था।[1] ऐसे ही बुजुर्गों और फकीरों को अकबर में अल्लाह के दर्शन होते होंगे।

तानसेन के मरने पर अकबर ने कहा : "तानसेन की मृत्यु राग की मृत्यु है। ऐसा प्रतीत होता है कि सहस्रों वर्षों से माधुर्य एवं कला में तानसेन के समान कोई नही हुआ।"[2] अकबर के इस भावपूर्ण उद्‌गार को अबुल फजल ने 'आईने-अकबरी' मे अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची देते समय इस भाँति अंकित किया : "तानसेन जैसा गायक पिछले सहस्र वर्षों से भारतवर्ष में नही हुआ।[3] अकबर की यह उक्ति तानसेन के लिए प्रमाणपत्र बनकर रह गई।

तानसेन पर मुस्लिम-प्रभाव :

जिस प्रकार मुसलमान गायक आजतक देशी हिन्दू-नरेशों के दरबारों में गणेश, सरस्वती तथा अन्य देवताओं की स्तुतियाँ आजीविका के लिए गाते रहे है और ऐसे गीतों की रचना करते रहे है, उसी प्रकार तानसेन को भी मुस्लिम-रुचि के धार्मिक गीतों का निर्माण और गान करना पड़ा।[4] ऐसे गीतों की रचना विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से की गई। इनमे मुहम्मद और अली की प्रशंसा है।

जिस समय तानसेन अकबरी दरबार में आये, अकबर कट्टर सुन्नी मुसलमान था। सन् १५७४ ई० तक उसकी यह प्रवृत्ति रही थी।[5] वह विलासी भी कम नही था, सन् १५६८ ई० में उसने अवैध विवाह भी किये थे।[6] रखेलियाँ रखने की प्रवृत्ति भी उस समय सामान्य थी। मुल्ला बदायूँनी जैसे कट्टर मुल्ला भी रूपवती दासियों के चक्कर मे

---

१. "A sect of Shaikhs, who had the impudance to call themselves disciples, like the followers of His Majesty, and were generally known as Ilahis..."—Akbar . Smith, p. 221.

२ "H. M. said that his (Tansen's) death was the annihilation of melody. It seems that, in a thousand years, few have equatted him for sweetness and art."—Akbarnama, Vol. 2, p. 880.

३. "Miyan Tansen of Gwalior, A singer like him has not been in India for the last thousand years.—Ain. Akbari, Bloch., p. 445.

४. "चारौ चक चकता लीयें अकबर गहैं समसेर मरदान अली जम सेर।
महमद अली की सेवा सुमिरन जौ उबरौं अबरे वली गर मेर।
असपती, गजपती, भूअपति राजा साहि के दरबार रहत भीरा भीर।
कहैं मीआं तानसेन धूअ अटल जैसै गंग सुमेर।"—परिशिष्ट आ, ३७।

५. अकबर, पृ० २२७।

६. उपरिवत्, पृ० ३२३।

पड़ जाते थे ।[1] ऐसी स्थिति मे यह सर्वथा सम्भव था कि तानसेन अपने यौवनकाल मे किसी मुस्लिम-गायिका या नर्त्तकी के फेर मे पड़कर उससे प्रेम कर बैठे हो और उसी से तानतरंग खाँ और विलास खाँ का जन्म हुआ हो । मुस्लिम-उपपत्नी से उत्पन्न सन्तान आज भी मुसलमान ही मानी जाती है । हैदराबाद जैसी रियासतो मे ऐसे अनेक प्रसिद्ध उदाहरण विद्यमान है । वहाँ की तत्कालीन रियासत के एक हिन्दू-प्रधानमन्त्री की मुस्लिम-पत्नी से उत्पन्न सन्ताने आज भी मुसलमान मानी जाती है । अतः, तानतरग खाँ और विलास खाँ के पिता तानसेन को मुस्लिम सन्तानों के कारण तो मुसलमान नही कहा जा सकता ।

तानसेन के पुत्र सूरतसेन की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है ।[2] अबुल फजल ने अकबरी दरबार के कलाकारों मे सूरतसेन का उल्लेख नही किया है ।[3] इसका अर्थ यह है कि सूरतसेन की आयु तानतरंग खाँ से कम थी और वे अपनी हिन्दू-माँ की सन्तान थे । मुसलमान होने के पश्चात् तानसेन के पास हिन्दू-पत्नी होना और उसके द्वारा सन्तान को जन्म दिया जाना सम्भव नही । इससे यही सिद्ध होता है कि तानसेन मुसलमान तो नही हुए, परन्तु उनके कोई मुस्लिम-उपपत्नी अवश्य थी ।

सूफी-प्रभाव :

सन् १५७९ ई० तक अकबर पीरों और फकीरों का बहुत बड़ा भक्त था । वह बहुत दिनों तक प्रतिवर्ष अजमेर शरीफ की यात्रा करने जाता रहा था । सलीम के जन्म से कुछ पहले शेख सलीम चिश्ती पर अकबर की भक्ति हो गई थी । इनके स्थान सीकरी में अकबर अपनी राजधानी ले गया था; क्योंकि इन्ही के आशीर्वाद से सन् १५६९ ई० के ३० अगस्त को सलीम का जन्म हो चुका था । शेख के नाम पर ही सलीम का नामकरण किया गया था । सलीम का जन्म शेख के झोंपडे में ही हुआ था ।

दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया तथा ख्वाजा अजमेरी के मजार भी अकबर की श्रद्धा के केन्द्र थे । सन् १५७९ ई० तक अकबर प्रतिवर्ष जियारत के लिए अजमेर जाता था ।

सूफियों के मजारों पर गाना-बजाना सदा से होता चला आया है । अकबर की भक्ति उस ओर थी ही । अकबर के वेतनभोगी तानसेन को सूफी-फकीरों की स्तुति में गीतों की रचना भी करनी पड़ी । सम्भव है कि तानसेन की अपनी श्रद्धा भी इस ओर जागी हो; क्योंकि सूफियां के मजारों पर हिन्दू-मुसलमान दोनों ही जाते और मनोरथ-पूर्त्ति के लिए मनौतियाँ मानते थे ।

---

१. 'मजहरी नाम की लौण्डी से मुल्ला की नजर लड़ गई । लिखते हैं : "कुदरत के प्रकाश का वह नमूना थी । मै उसपर आशिक हो गया । उसके इश्क ने ऐसा भाव मन में भर दिया कि साल भर बिसावर में पड़ा रहा ।"—अकबर, पृ० ११८ ।

२. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, नवाँ बाब ।

३. आईने-अकबरी : ब्लॉकमैन, पृ० ४४५ ।

शेख सलीम को भी गाना-बजाना सुनने का बडा शौक था। तानसेन तथा अन्य शाही कलावन्त उनकी सेवा के लिए जाया करते थे। तानसेन की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व सन् १५८५ ई० तक अकबर की राजधानी सीकरी ही रही और सीकरी को राजधानी सन् १५७१ ई० में बनाया गया था। अपनी मृत्यु से चार वर्ष पूर्व तक तानसेन सूफी-वातावरण में रहे।

जहाँगीर ने लिखा है कि अपनी मृत्यु के दिन भी शेख सलीम चिश्ती ने तानसेन को बुलवाकर उनका गाना सुना था।

यहाँ इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि तानसेन की रचनाओं पर सूफी-प्रभाव देखकर इस प्रभाव का सम्बन्ध ग्वालियर के शेख मुहम्मद गौस से जोड़ना संगत नही है।

शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर के रहनेवाले थे और तानसेन भी। अतः, दोनों में परिचय असम्भव नही है। शेख मुहम्मद गौस ने ग्वालियर पर अधिकार करने में बाबर को मदद दी थी। शेरशाह के भय से शेख मुहम्मद गौस गुजरात भाग गये थे। तानसेन सूरवंश के बादशाहों के आश्रय मे रहे थे।

अकबर का राज्य होने पर शेख मुहम्मद गौस अपने पुत्रपौत्रों-सहित आगरा आये थे। **शेख गदाई** ने इनकी, गुजरात की एक गुप्त सन्धि का हाल बैरम खाँ को बता दिया। शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर भागे और वहाँ जाकर फकीर हो गये।

सन् १५५९ ई० में मुहम्मद गौस से अकबर की मुलाकात हुई। मुहम्मद गौस ने अपना मुरीद बनने के लिए कहा और अकबर का हाथ पकड़कर बोले कि हमने आपका हाथ अपने हाथ में ले लिया है। अपनी विनम्रता एवं सभ्यता के कारण अकबर ने मुहम्मद गौस के इस अनुचित व्यवहार की उपेक्षा की। उसी रात को अकबर ने खूब शराब पी और गौस मुहम्मद के इस अनुचित व्यवहार की खिल्ली उड़ाई।[1]

अबुल फजल का कथन है कि शेख मुहम्मद गौस और उसके बड़े भाई **शेख बहलोल** विद्वत्ता और गुणों से शून्य थे, फिर भी पहाडों मे रहकर अपनी फकीरी की धाक जमाते फिरते थे। अमीरों और राजाओं को धोखा देकर वे दोनों अपने गाँव और जमीन्दारी बनाते रहे। सन् १५६३ ई० की १० मई को शेख मुहम्मद गौस का देहान्त हो गया।[2]

उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए शेख मुहम्मद गौस और तानसेन का कोई पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाणित नही होता।

तानसेन और दीन-इलाही :

तानसेन की मृत्यु से सात वर्ष पूर्व सन् १५८२ ई० में अकबर ने दीन-इलाही का झण्डा खड़ा किया था। साम्राज्य में इस नये धर्म की स्थापना के लिए जो परिषद् बुलाई

१. अकबरनामः, खं० २, पृ० १३३।
२. उपरिवत्, पृ० १३३–१३५।

गई थी, उसमें राजा भगवानदास ने कहा कि खुशी से विश्वास कर सकता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के पास खराब धर्म है, लेकिन यह भी बतलाना चाहिए कि नया धर्म कैसा है और उसके बारे में क्या राय है, जिससे कि हम उसपर विश्वास कर सके। अकबर ने थोडी देर इसपर विचार किया, फिर राजा पर जोर देना छोड दिया।[1]

दीन-इलाही मे दीक्षित होने के लिए मानसिंह भी तैयार नही थे। उन्होंने अकबर से कहा था : "अगर चेला होने का अर्थ जान न्योछावर करना है, तो उसे आप अपनी आँखों से देख रहे हैं। यदि जरूरत हो, तो परीक्षा देने के लिए भी तैयार हूँ। जहाँतक मजहब का सवाल है मैं हिन्दू हूँ, मुझे इस नये मजहब की जरूरत नही।"[2]

दीन-इलाही के पैगम्बर स्वयं बादशाह, खलीफा अबुलफजल और चौथे नम्बर के नेता राजा वीरबल थे। लोग बड़े शौक से ऊपर से या भीतरी मन से शाही दीन में शामिल हो रहे थे।[3]

दीन-इलाही के विधि-विधान, सन् १५८२ ई० में, परिषद् की ओर से नियुक्त कार्यालय ने सन् १५८३–१५८४ ई० में प्रचारित किये। सन् १५८८ से १५९४ ई० तक और भी आदेश निकले।[4]

दीन-इलाही के अनुयायियों की संख्या हजारों नही, लाखो तक पहुँच गई थी।[5] दीन-इलाही स्वीकृत करनेवाले जिन अट्ठारह विशिष्ट व्यक्तियों के नाम एक सूची में मिलते हैं, उनमें तानसेन का नाम नही है, परन्तु तानसेन के कुछ ध्रुवपद उनपर 'दीन-इलाही' का प्रभाव सिद्ध करते हैं।[6] एक ध्रुवपद में कहा गया है : "घर-घर कौन डोलता फिरे। घट (हृदय) से ज्ञान बोल रहा है अथवा अल्लाह ही गतिशील है। शाह अकबर ने मक्खन छीन लिया। अब मेरे यहाँ कौन छाछ बिलोता फिरे?"

एक अन्य ध्रुवपद में अकबर के प्रति आत्मनिवेदन है और बताया गया है कि बुजुर्गों और मुर्शिदों को अकबर में अल्लाह दिखाई देता है।[7]

सम्भव है, अकबर को प्रसन्न करने के लिए तानसेन भी उसके चेले हो गये हों। दीन-इलाही में दीक्षित व्यक्ति जलाये भी जा सकते थे और गाड़े भी जा सकते थे।[8]

---

१. अकबर, पृ० २५३।
२. उपरिवत्, पृ० १४७।
३. उपरिवत्।
४. उपरिवत्, पृ० २५५।
५. उपरिवत्, पृ० २५७।
६. मेरैं को घर घर डोलैं, घट तैं ज्ञांन बोलैं कैथौं अलहै डोलैं।
माखन छीनि लियौ साहि अकबर को मेरैं छाछ बिलौवे।।—परिशिष्ट अ, २६।
७. परिशिष्ट अ, २७।
८. अकबर, पृ० २५५।

यह तो निश्चित है कि सन् १५८९ ई० में तानसेन की जब मृत्यु हुई, अकबर के सिर पर दीन-इलाही की पैगम्बरी सवार थी। ऐसी स्थिति में शेख मुहम्मद गौस के मकबरे में तानसेन के शव को गाड़ने के लिए और साथ में शाही कलाकारों को गाने-बजाने के लिए प्रेरित करना दीन-इलाही के पैगम्बर अकबर के लिए असम्भव था।

तानसेन के शिष्य :

तानतरंग खाँ : अबुल फजल ने अकबरी दरबार के प्रधान कलाकारों की सूची में इनका स्थान सोलहवाँ रखा है। ये तानसेन के पुत्र थे और शिष्य भी।

मियाँचन्द : अकबरी दरबार के प्रधान गायकों की सूची में इनका स्थान पाँचवाँ है। 'रागदर्पण' के अनुसार, ये तानसेन के शिष्य थे।

सूरतसेन : रागदर्पणकार के अनुसार ये तानसेन के पुत्र और थोडा-बहुत पढ़े-लिखे भी थे। ये भी तानसेन के शिष्य थे। अबुल फजल की सूची में इनका नाम नही है।

विलास खाँ : रागदर्पणकार के अनुसार, ये तानसेन के पुत्र थे। शिष्य भी थे। तानसेन ने इनकी पुत्री का विवाह इनके शिष्य लाल खाँ से करा दिया था, जो भविष्य में जहाँगीर की सभा का रत्न बना। 'बादशाहनाम:' में विलास खाँ की चर्चा है। अबुल फजल की सूची में इनका नाम नही है।

बख्त खाँ कलावन्त गुजराती : रागदर्पणकार के अनुसार, तानसेन के शिष्य थे। फकीरुल्लाह ने इसे देखा नही था, परन्तु अपने गायक मित्रों से इसकी प्रशंसा सुनी थी। बख्त खाँ के शिष्य 'बसन्ती' की प्रशसा फकीरुल्लाह ने की है।

बाबा रामदास :

अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गुणियो में इनका नाम तानसेन के पश्चात् है। यह इस्लामसाह अदली के आश्रय में रहे और बदायूँनी के अनुसार, उसके शिष्य भी रहे। बैरम खाँ खानखाना इनका गाना सुनकर द्रवित हो जाता था। 'मुन्तखबुत्तवारीख' के अनुसार यह लखनऊ में भी रहे। मुल्ला बदायूँनी का कथन है कि एक बार बैरम खाँ ने इन्हें एक लाख तंके पुरस्कार मे दिये थे।[1] अकबर के दरबार में इनका बड़ा मान था। बदायूँनी की दृष्टि में तानसेन के अतिरिक्त ये अकबरी दरबार के अवशिष्ट गुणियों में सर्वश्रेष्ठ थे। इनके पुत्र **सूरदास** अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची मे उन्नीसवी संख्या पर है। कुछ लोग भ्रमवश इनके व्यक्तित्व को **महाकवि सूरदास** के साथ मिला देते हैं।

आश्रयदाताओं के प्रकरण में रामदास की चर्चा सप्रमाण की जा चुकी है। ये रामदासी मलार के आविष्कारक कहे जाते है,[2] अतः इनका ध्रुवपदकार होना असन्दिग्ध है। इनकी रचनाएँ अभी प्राप्त नहीं हो सकी है।

---

१. मुन्त०, खण्ड २, पृ० ३७।

२. भातखण्डे : संगीतशास्त्र, चौथा भाग, पृ० ४०२।

व्यास :

अकबर के सम्पर्क में यदा-कदा आनेवाले ध्रुवपदकारों में 'व्यास' जी है। इनका व्यक्तित्व संगीत-क्षेत्र में अत्यन्त अप्रसिद्ध है। डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने इनकी चर्चा की है।[1]

ओरछावासी हरीराम 'व्यास' एक कथावाचक थे,[2] जो ओरछा-नरेश मधुकरशाह (रा० का० सन् १५५४–९२ ई०) के राजगुरु थे।[3] इन्होंने एक बार वृन्दावन में जाकर गोस्वामी हितहरिवंशजी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। उनका एक पद सुनकर ये चेत गये और उनके शिष्य हो गये।[4]

मधुकरशाह ओरछा की गद्दी पर सन् १५५४ ई० में बैठे और अकबर का राज्याभिषेक सन् १५५६ ई० में हुआ। अकबर और मधुकरशाह में निरन्तर संघर्ष होते रहे। मधुकरशाह के हाथ से अनेक बार ओरछा निकला और उनके बाद इन्होंने उसे हस्तगत किया।

राजदरबार से सम्बन्ध होने तथा कथावाचक एवं शास्त्रार्थी रहने के कारण हो सकता है कि अकबर से व्यासजी का सम्पर्क यदा-कदा हुआ हो और ये ही उन ध्रुवपदों के रचयिता हों, जो 'रागकल्पद्रुम' में 'व्यास' की मुद्रा से अंकित मिलते हैं। परिशिष्ट 'आ' में इनके ध्रुवपद है।[5]

हितहरिवंशजी से दीक्षा लेकर जब ये वृन्दावन में ही रह गये, तब महाराज मधुकरशाह इन्हे लेने स्वयं आये, परन्तु ये वृन्दावन छोड़कर न गये।[6]

व्यासजी की रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय-भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्ण-भक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्रीकृष्ण की बाल-लीला और शृंगर-लीला मे लीन रहने पर भी बीच-बीच में ससार पर दृष्टि डाला करते थे। इन्होने तुलसीदासजी के समान खलो, पाखण्डियों इत्यादि का भी स्मरण किया है और रसगान के अतिरिक्त तत्त्व-निरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए है। प्रेम को इन्होने शरीर-व्यवहार से अलग 'अतन', अर्थात् शुद्ध मानसिक या आध्यात्मिक वस्तु कहा है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों पर इनके बहुत-से पद और साखियाँ प्राप्त है। इन्होंने एक 'रासपचाध्यायी' भी लिखी है, जिसे कुछ लोगों ने भूल से 'सूरसागर' में मिला लिया है।[7]

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि, पृ० ३६।
२. सर्वेक्षण, पृ० ९७०।
३. हि० सा० इ०, पृ० २२८-२२९।
४. उपरिवत्, पृ० २२९।
५. परिशिष्ट आ, १०४-१०५।
६. हि० सा० इ०, पृ० २२९।
७. उपरिवत्, पृ० २२९-२३०।

चंचलसस :

संगीतज्ञों में इनकी प्रसिद्धि है। अकबर के युग में मलार राग पर अपने प्रयोग अनेक कलाकारो ने किये थे, उनमें एक ये भी थे। इनकी मलार 'चंचलसस की मलार' कहलाती है। तानसेन से 'मियाँ की मलार', रामदास से 'रामदासी मलार' तथा अकबरी दरबार के प्रमुख गायकों में से एक चिरजू (चरजू) से 'चिरजू की मलार' का उद्गम परम्परा-प्रसिद्ध है।

स्व० भातखण्डे ने अपनी 'क्रमिक पुस्तक-मालिका' के छठे भाग में **चंचलसस** की मलार का स्वर-विस्तार[1] तथा 'भातखण्डे-संगीतशास्त्र' के चौथे भाग में एक सरगम[2] दी है।

चंचलसेन नामक एक व्यक्ति को मुहम्मद करम इमाम ने महान् संगीतज्ञो में गिनाया है।[3] सम्भव है, ये 'चंचलसस' से अभिन्न हों। मुहम्मद करम इमाम ने इनके पश्चात् मालवाधिपति **बाजबहादुर** का नाम लिखा है, जिससे यह प्रतीत होता है, कि वह भी इन्हें अकबर-युगीन ही मानता था।

सुरज्ञान खाँ

ये ग्वालियर-निवासी थे। **अबुल फजल** ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में इनका स्थान चतुर्थ रखा है।[4] फकीरुल्लाह ने इनकी गणना भी 'अताई'-कलाकारो में की है।[5] **सुरज्ञान खाँ** या **सुरजान खाँ** इनकी पदवी थी। 'सुरजान खाँ' बोलते-बोलते 'सुजान खाँ' रह गया।[6]

सुजान खाँ हज करने भी गये थे और मदीना में अपनी स्तुतिपरक उक्तियाँ (नातिय-कलाम) गाकर बड़ी प्रशंसा प्राप्त की थी।[7] यह भी कहा जाता है कि इसने किसी बादशाह की फरमाइश पर दीपक-राग भी गाया था।[8]

मुहम्मद करम इमाम ने सुजान खाँ से सम्बद्ध एक किंवदन्ती लिखी है, जिसका साराश यह है कि खुसरो के युग मे गवैयों ने ईर्ष्या के कारण बादशाह को दीपक-राग सुनने पर उसका दिया। सुजान खाँ ने विनम्रतापूर्वक कहा कि एक हौज बर्फ से भरवा-कर मुझे उसमे डाल दिया जाय और मेरी कमर मे जंजीर बाँध दी जाय। राग के प्रभाव

---

१. क्र० पु० मा०, भाग ६, पृ० ५०१।
२. भा० सं० शा०, चतुर्थ भाग, पृ० ४२१।
३. 'मअदन्उलन्‌मूसिकी' पृ० २३।
४. आईने अकबरी, ब्लॉक०, पृ० ६८१।
५. रागदर्पण, नवाँ बाब, 'मअदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २५।
६. आजकल', म्यू० मं०, पृ० १०७।
७. उपरिवत्, पृ० १०७, मिराति आफताबनुमः, २६१, ब, सौतुलमुबारक, ६३।
८. उपरिवत्, पृ० १०७।

से बर्फ घुलते ही जंजीर पकड़कर मुझे हौज से निकाल लिया जाय। राग गाया गया, बर्फ घुली, परन्तु खींचनेवालों ने जान-बूझकर देर कर दी। फलतः, सुजान खाँ के शरीर मे छाले पड़ गये, जिन्होने कुष्ठ का रूप धारण कर लिया। उसे हज करने की प्रेरणा हुई। हज से निबटकर वह मदीना आया और श्रद्धापूर्वक अपने शरीर का स्पर्श उसने मुहम्मद साहब की समाधि से कराया। इतना करते ही कुष्ठ नष्ट हो गया।[1]

मुहम्मद करम इमाम ने 'इंछाबरस' नामक एक गायक का समसामयिक इसी सुजान खाँ को बताया है और लिखा है कि 'इंछाबरस' की एक रचना भी सुजान खाँ ने मदीना में सुनाई थी, जिससे इछाबरस का कोढ़ भी नष्ट हो गया था।[2]

इंछाबरस मोहम्मदशाह रँगीले का समसामयिक है।[3] अतः, सुजान खाँ के साथ चमत्कार की जो घटना चिपकाई गई है, वह कल्पनाप्रसूत है।

सुरज्ञान खाँ या सुजान खाँ अकबरी दरबार के कलाकार थे। इनकी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं।

ज्ञानगुरु (गुरुज्ञान) :

एक ध्रुवपद में इन्होंने तानसेन को सम्बोधित किया है तथा एक अन्य ध्रुवपद में ये शिष्यों का शासन कर रहे हैं। हरिदास डागुर के एक ध्रुवपद में 'ज्ञानगुरु ऐसे कहें' कहकर इनकी चर्चा की गई है, अत· इतना तो असन्दिग्ध रूप मे कहा जा सकता है कि ये तानसेन और हरिदास डागुर की दृष्टि में पूज्य थे। सम्भव है कि शिक्षक भी रहे हों। 'रागकल्पद्रुम' के प्रथम भाग में पृ० १३२ और ३५१ पर इनके दो ध्रुवपद प्राप्त होते है इनसे सम्बद्ध हरिदास डागुर का पूर्वोक्त ध्रुवपद रागमाला में संगृहीत है।

मदनराय ढारी :

फकीरुल्लाह ने मदनराय की चर्चा अकबरी दरबार के कलाकारों में की है और उन्हें ढारी बताया है। मदनराय की कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' एव 'रागमाला' में संगृहीत है।[4]

धोंधू :

'धोंधी' नामक एक कलाकार की चर्चा फकीरुल्लाह ने अकबरी युग के साक्षर कलाकारों मे की है।[5] जगन्नाथ ने अपने एक ध्रुवपद में 'धोंधू' की 'बानी' को 'रिसाल'

१. 'मअ्दनुल्-उल्-मूसिकी, पृ० २३४-२३५।
२. उपरिवत्, पृ० २४०-२४१।
३. परिशिष्ट आ, पृ० १३८।
४. परिशिष्ट अ, ९३ से ९६ तक, और रा० क०, प्रथम भाग, पृ० ४५, ५९, १०७ और २७३।
५. रागदर्पण, नवाँ बाब; मअ्दनुल्-उल्-मूसिकी, पृ० २५।

(रसाल) कहा है और उनका नाम तानसेन के पश्चात् और हरिदास डागुर से पूर्व लिया है।[1] संगीतज्ञों में नायक धौधू का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' में 'धौधी' की भी चर्चा है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्त्तन-संग्रहों में 'धौधी' के पद मिलते है। 'धौधू' और 'धोंधी' का एक ही व्यक्ति होना सम्भव है।

चरजू :

सम्भव है कि इनका वास्तविक नाम चिरंजीव हो और फारसी-लिपि में चिरंजीव का 'चिरज्यू' पढा जाकर कालान्तर में उच्चारण-सौकर्य के परिणामस्वरूप चिरजू हो गया हो। 'चिरजू' और 'चरजू' दोनो ही रूप सुनने में आते है। अकबरी कलाकारों की सूची में ये सत्रहवें है और 'चरजू की मलार' के आविष्कारक। इनकी रचनाएँ उपलब्ध नही होती, परन्तु रागाविष्कारक होने के कारण इनका ध्रुवपदकार होना असन्दिग्ध है।

रूपमती :

यह मालवा की प्रसिद्ध नगरसुन्दरी थी, जो बाजबहादुर की प्रसिद्ध प्रेयसी बनी। अकबर के सेनापति अदहम खाँ ने जब मालवा पर अधिकार किया, तब उससे बचने के लिए इसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। बाजबहादुर और रूपमती की प्रणय-गाथा लोकगीतों ही नही, फिल्मों तक का विषय बनी है। 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १७४ एवं १८३ पर रूपमती से सम्बद्ध ध्रुवपद सगृहीत है। इनमें कुछ रूपमती की रचना प्रतीत होते है।

लाल :

ये ग्वालियर के रहनेवाले थे और सन् १५४३ ई० में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल में ही ये अकबर की सेवा मे उपस्थित हुए और उसी की छत्रच्छाया में शिक्षा प्राप्त करके मर्मज्ञ सगीतविद् बने। अकबर जो भी भारतीय राग-रागिनी सुनता था, इन्हें याद करा दिया करता था।[2]

जहाँगीर ने लिखा है : "इसी महीने की दूसरी तारीख (दूसरी रजब, १०१७ हिजरी, अर्थात् ११ जनवरी, १६०८ ई०) को लाल कलावन्त पैसठवे वर्ष में मर गया, जिसने हमारे पिता (अकबर को) हिन्दी-भाषा के उच्चारण आदि सिखाये थे। और जो उनकी सेवा में बचपन से बड़ा हुआ था। इसकी मृत्यु पर इसकी एक रखेली ने अफीम खाकर जान दे दी। मुसलमानों मे स्त्रियाँ ऐसा पातिव्रत्य कम दिखाती है।"[3]

परिशिष्ट 'अ' मे लाल की दो रचनाएँ संगृहीत है।[4]

---

१. परिशिष्ट आ, १०७।

२. इकबालनामः (हस्तलिखित), रामपुर-प्रति, पृ० ८९७।

३. 'जहाँगीरनामः', पृ० २२१ (व्रजरत्नदास); 'जहाँगीरनामः' (देवी०), प्र० भा०, पृ० ११०, प्रकाशक, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता।

४. परिशिष्ट अ, ४५,७७।

गंग :

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गंग के कवित्त का एक संग्रह, 'रागमाला', पृ० ८५, आ पर ध्रुवपद के रूप में किया गया है, जो यह सिद्ध करता है कि कवित्तों का गान ध्रुवपद-शैली में होता था और उस दशा मे छन्द और ताल परस्पर समन्वित रहते थे।

हरिदास डागुर :

सगीत-क्षेत्र मे इनकी अत्यधिक प्रसिद्धि है। जगन्नाथ कविराय ने इनकी गणना तानसेन और धौधू के पश्चात् करके इनके चरणो में अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।[1] यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि ये तानसेन से कही छोटे थे। फकीरुल्लाह ने लिखा है कि जगन्नाथ अपने बाल्यकाल मे स्वरचित ध्रुवपदों को दिखाने के लिए तानसेन की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे।[2] जगन्नाथ को शाहजहाँ के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ था। अकबरी युग के कलाकारों के पश्चात् ये अन्य कलाकारो के शिष्य हुए होगे, जिनमें हरिदास डागुर के होने की भी सम्भावना है।

'स्वामी हरिदास' और 'हरिदास डागुर' को एक ही व्यक्ति मानकर कुछ लोगों ने तानसेन को अपनी परम्परा मे जोड़ने का प्रयत्न किया था,[3] परन्तु वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी और हरिदास डागुर की भिन्नता सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है।[4] जगन्नाथ के ध्रुवपद से यह भी सिद्ध होता है कि यह तानसेन की अपेक्षा 'कनीय' थे।[5]

अपनी रचनाओं से ये किसी संगीतजीवी जाति मे उत्पन्न प्रतीत होते है। इनकी रचनाओ पर कही-कही तानसेन का प्रभाव प्रतीत होता है।[6] तानसेन के निम्नाकित ध्रुवपद—

नादगढ़ सुघर गढ़ बाकौं कीनौं सप्त सुर कोट कंगूरा विकट गढ़ खाई।
आरोही अवरोही इकईस मूर्च्छना चारौं गुरज चारौं रज चारौं दिसा तोपैं लगाई।
तानमान आछीतीखी नीकी लागति ऐसौ विरंच विधना बनाई।
कहै मियां तानसेन सुनो हो सुघर नगर (नर) अपबल भुजबल लियौ हू नजाई।[7]

का स्पष्ट प्रभाव हरिदास डागुर के निम्नांकित ध्रुवपद पर पड़ा है :

कै लियो नादगढ़ महा आतंग आरोही अवरोही अस्ताई संचाई महाविकट निपट अति। छः राग गुरज भये तीस भार जाके कोट इकईस मूर्च्छना बाईस सुरति के कंगूरा

१. परिशिष्ट आ, १०७।
२. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मअदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २६।
३. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० २९।
४. उपरिवत्, पृ० ३३।
५. उपरिवत्, पृ० ३२।
६. उपरिवत्, पृ० ३१।
७. परशिष्ट आ, ६८।

तीखे नीके लागत । सप्तसुर सप्तपुर औडव खाडव किवार तीनि ग्राम परकोट ओला गोला बनि । धुरपत की चारों तुकै चतुर दिसां को चिनोती दीयें असौ बांको कीनों नों रंग जल भरि रावौ कंठ गुनिनि करि रिसाल लागत । हरिदास डागुर ज्ञानगुरु ऐसे कहैं लरि लरि पचि पचि अटूट टूटन जात मेरे जांन वे रीझे प्राननि ।[१]

इस ध्रुवपद में 'ज्ञानगुरु' शब्द के प्रयोग से कुछ लोग यह भी अनुमान लगाते हैं कि हरिदास डागुर ज्ञान खाँ (अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ) के शिष्य थे ।[२] यह धारणा कुछ ठीक नही प्रतीत होती; क्योंकि अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ तो जहाँगीर के शासनकाल मे भी मुगल-दरबार से सम्बद्ध रहे । जहाँगीर की प्रशंसा में 'सुरज्ञान', 'सुज्ञान' और 'सुजान' की छाप से ध्रुवपद प्राप्त हैं । यदि सचमुच हरिदास डागुर इन्ही सुरज्ञान खाँ के शिष्य है, तो तानसेन की अपेक्षा हरिदास डागुर को आयु में बहुत कम होना चाहिए । वैसे हरिदास डागुर की परवत्तिता अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध है । 'ज्ञानगुरु' नामक किन्ही गुणी के कुछ ऐसे ध्रुवपद भी मिलते है, जिनमें तानसेन को एक शिष्य अथवा छोटे की भाँति सम्बोधित किया गया है । इन ध्रुवपदों के 'ज्ञानगुरु' सुरज्ञान खाँ से निश्चय ही प्राचीनतर हैं ।

सुप्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक स्वर्गीय अल्लाबन्दे खाँ के पुत्र और स्वर्गीय नसीरुद्दीन खाँ के अनुज रहीमुद्दीन खाँ ने अपने वंश मे सर्वप्रथम अपने नाम के साथ 'डागुर' शब्द का उपयोग आरम्भ किया है ।[३] इन्ही की देखादेखी स्व० नसीरुद्दीन खाँ के पुत्र 'डागुर-बन्धु' भी अपने-आपको डागुर घोषित करने लगे हैं । वस्तुतः, हरिदास डागुर की वंश-परम्परा से इन्हे सम्बद्ध नही समझा जाना चाहिए ।[४]

रहीमुद्दीन खाँ बलपूर्वक तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य और स्वय को भी हरिदास डागुर की भी शिष्य-परम्परा से सम्बद्ध घोषित करते है,[५] परन्तु उनके पास अपनी मान्यताओं को प्रमाणित करने के लिए कोई साधन नही है ।[६]

तानतरंग खाँ :

ये तानसेन के पुत्र थे । अबुल फज़ल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारो में इनकी गणना की है । इनके जीवन का विशिष्ट वृत्त ज्ञात नही होता । परिशिष्ट अ में इनकी ध्रुवपद-रचनाएँ (सं० ७५-७६) संकलित है ।

---

१. परिशिष्ट आ, १०२ ।
२. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ३२ ।
३. संगीत, अप्रैल-मई, १९६० ई०, पृ० ४४ ।
४. उपरिवत्, पृ० ३६,३८,४१ ।
५. उपरिवत्, पृ० ३६–४१ ।
६. उपरिवत्, पृ० ४१, सम्पादकीय टिप्पणी ।

सूरदास :

ये अकबरी दरबार के बाबा रामदास के पुत्र थे और 'सूर मलार' नामक राग के आविष्कारक। इस राग को लोग व्रजभाषा के प्रसिद्ध महाकवि सूरदास से सम्पृक्त करके दोनों सूरदासों को एक समझ बैठते हैं, परन्तु जिस प्रकार 'मीरा की मलार' नामक राग की आविष्कर्त्री 'गिरधर' की दीवानी प्रसिद्ध भक्त-कवयित्री मीराँ नही है, उसी प्रकार 'सूर मलार' के आविष्कारक महाकवि सूरदास नही है। महाकवि सूरदास निस्सन्देह महान् गायक एव कीर्त्तनकार थे, परन्तु रागों में प्रयत्नपूर्वक परिवर्त्तन करके नये राग बनाना दरबारी कलाकारो की प्रवृत्ति थी, भक्त-गायकों की नहीं। सत्य तो यह है कि भक्त-गायक रागों के साथ ऐसी छेडछाड को राग भ्रष्ट करना कहते थे। 'चरजू की मलार', 'रामदास की मलार' और 'सूर मलार' जैसे राग अकबरी दरबार के कलाकारों द्वारा आविष्कृत है, जिनका आविष्कार तानसेन द्वारा आविष्कृत 'मियाँ की मलार' के जवाब में किया गया था। सूरदास के कुछ ध्रुवपद प्राप्त है, जिनकी चर्चा यथास्थान की जायगी।

विलास खाँ :

ये मियाँ तानसेन के पुत्र थे और तानतरग खाँ से छोटे थे। 'बादशाहनामः' और 'रागदर्पण' मे इनकी चर्चा है। लाल खाँ इनके दामाद थे, जिन्हें जहाँगीर ने 'गुनसमुन्दर खाँ' की उपाधि दी थी। 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १०७, १२१, १२७ और १२६ पर इनकी रचनाएँ सगृहीत है। अन्तिम रचना मे इन्होने तानसेन का स्मरण अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है। 'रागमाला', के पृ० ४२ अ एव ६५ अ पर भी इनकी रचनाएँ है।

आनन्दप्रभु :

इनका वास्तविक नाम 'शौकी' था। ये गायक, वादक एव ध्रुवपद-रचनाकार थे। जहाँगीर ने इन्हे 'आनन्द खाँ' की उपाधि दी थी। फकीरुल्लाह के अनुसार, इनकी मृत्यु कश्मीर में हुई। 'रागमाला' के पृ० ५१ अ और १०१ आ पर इनकी रचनाएँ विद्यमान है।

इन्द्रजीतसिह 'धीरज' :

ये ओरछा के राजा मधुकरशाह के पुत्र और रत्नसेन के भाई थे। महाकवि केशवदास इन्ही के आश्रित थे। प्रवीनराय नामक प्रसिद्ध गुणशालिनी एवं कवयित्री गणिका इनकी पतिव्रता उपपत्नी थी। केशवदास ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कविप्रिया' इसी मंगलामुखी के नाम पर लिखा और इसके समर्पण मे प्रवीनराय की भूरि-भूरि प्रशसा की है। इसकी प्रशंसा सुनकर बादशाह अकबर ने इसे अपने दरबार में बुला भेजा। इन्द्रजीत ने इसे भेजने से इनकार किया, जिसपर विद्रोह के अभियोग मे अकबर ने इनपर एक करोड़ रुपया जुर्माना ठोंक दिया। केशवदास अकबर के दरबार मे गये और वीरबल से मिलकर जुर्माना माफ कराया। परन्तु, प्रवीनराय को दरबार में जाना पड़ा और अपनी काव्यकला, विद्या और प्रतिभा का प्रदर्शन करने पर उसे वापस आने की आज्ञा मिल गई।[1]

---

१. ग्रियर्सन-कृत हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १५३।

इन्द्रजीतसिंह 'धीरज', 'नरिन्द' के नाम से कविता करते थे।[१] ध्रुवपदों में इनकी मुद्रा 'धीरज, 'धीरजप्रभु' एवं 'धीरज के प्रभु' है। गणेश, रामचन्द्र, गंगा, विष्णु, विष्णुनामावली', कृष्णनामावली, कृष्ण का श्रृंगार और कृष्ण-प्रेम जहाँ इनके ध्रुवपदों का विषय है, वहाँ विपत्ति में इन्होंने 'ख्वाजाहिन्द' को भी पुकारा है।[२] राधा-माधव का वर्षाकालान क्रीडा-वर्णन, वर्षा-वर्णन, शरद्-यामिनी मे कृष्ण के नृत्य, मुरलीधर-रूप तथा रास की ओर भी इनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। नायिकाओं के विभिन्न रूप भी इन्होंने चित्रित किये है आर कृष्ण-जीवन की कतिपय झाँकियों में भी इनका मन रमा है।

इनमें त्याग की भावना थी; क्योंकि अकबर द्वारा प्रस्तावित राज्यप्राप्ति को इन्होंने अस्वीकार कर दिया था। ये बड़े बुद्धिमान्, शक्तिशाली, युद्धप्रिय एवं वीर योद्धा थे। ओरछा के युद्ध में अब्दुल्लाह् की असंख्य सेना को पराजित करना इसका प्रमाण है। युद्ध में अपने घोड़े के मारे जाने पर भी वीरता से शत्रु-संहार करते हुए ये अचेतनावस्था को प्राप्त हुए। अन्त में अपने इन कर्मो के लिए वे पुरस्कृत हुए और ओरछा के शासक नियुक्त हुए।[३]

जगन्नाथ कविराय :

इनकी उपाधि 'कविराय' थी और नाम जगन्नाथ।[४] शाहजहाँ के दरबार मे इनका अत्यन्त सम्मान था और उसने इन्हें एक बार चाँदी से तुलवाया था।[५] फकीरुल्लाह् का कथन है कि जगन्नाथ ने राग 'नट' मे एक ध्रुवपद की रचना की और तानसेन के समक्ष उसे प्रस्तुत किया। तानसेन ने कहा कि यदि यह दीर्घायु हुआ, तो ध्रुवपद-रचना में मेरे बाद प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।[६] तानसेन की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई और शाहजहाँ के द्वारा जगन्नाथ भली भाँति सम्मानित हुए।

तानसेन की मृत्यु सन् १५८९ ई० में हुई। इस समय जगन्नाथ कविराय की आयु तीस वर्ष के लगभग अवश्य रही होगी। फकीरुल्लाह् के अनुसार, इनका स्वर्गवास लगभग १०० वर्ष की आयु में हुआ। अतएव, इनका जन्मवर्ष सन् १५५९ ई० और मृत्युवर्ष सन् १६५९ ई० के लगभग होना चाहिए। फकीरुल्लाह् ने 'रागदर्पण' की रचना सन् १६६२ ई० में की थी। अतः, वह जगन्नाथ कविराय से भली भाँति परिचित रहा होगा।

---

१. ग्रियर्सन : हि० सा० प्र० इ०, पृ० १५३।
२. परिशिष्ट अ, ९४।
३. हिन्दी-वीरकाव्य, पृ० ५८,५९।
४. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मअदन्-उल्-मूसिकी', पृ० २६।
५. भारतीय संगीत का इतिहास, पृ० २७२।
६. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मअदन् उल्-मूसिकी'।

शाहजहाँ का राज्यकाल सन् १६२७—१६५८ ई० है। अतएव, शाहजहाँ के राज्या-रोहण के समय जगन्नाथ कविराय की आयु ६७-६८ वर्ष की होनी चाहिए।

'रसगंगाधरकार' **पण्डितराज जगन्नाथ** 'दारा' के सखा थे। लवंगी के साथ उनके प्रेम की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। वे जगन्नाथ 'कविराय' से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते है।

शेख बहाउद्दीन :

इनका स्वर्गवास शाहजहाँ के दूसरे राज्यवर्ष (सन् १६२८ ई०) में हुआ। ये अपने समय के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। २५ वर्ष की आयु में इन्होने गृहत्याग किया। विरक्ति का कारण यह था कि एक दिन ये एक हरिण को बन्दूक से मार डालना चाहते थे। हरिण ने कहा कि बहाउद्दीन, तुझे ईश्वर ने इसी कार्य के लिए उत्पन्न किया है या तुझे कोई अन्य कार्य भी है ? बहाउद्दीन ने समझा कि कोई मनुष्य कह रहा है। इन्होंने दाहिने-बायें देखा, परन्तु कोई मनुष्य दिखाई नही दिया। हरिण ने दो-तीन कदम बढ़कर फिर वही बात कही। शेख ने समझा, कोई और आदमी कह रहा है, फिर इधर-उधर देखा। कोई नही दिखाई दिया। हरिण ने दो-तीन कदम बढकर कहा—'मैं हरिण हूँ, जो तुमसे बात कर रहा हूँ' और पुनः अपने शब्द दुहराये। देखते-ही-शेखते शेख ने बन्दूक फेक दी और देशाटन के लिए निकल गये। इन्होंने २५ वर्ष देशाटन में व्यतीत किये। अनेक साधुओं का सत्संग किया।

ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे। सदा हरे रंग के वस्त्र पहनते थे और कहते थे कि यह वेष हमें परमात्मा की ओर से मिला है।

कवित्त, ख्याल, ध्रुवपद और तरानों की रचना खूब करते थे। रबाब, वीणा और अमरती खूब बजाते थे। 'ख्यालो तराना' नामक एक तन्त्री-वाद्य का आविष्कार भी इन्होंने किया था।

इनके दो वाद्यकला-निपुण शिष्य फकीरुल्लाह के पास थे।

शेख बहाउद्दीन का दर्शन फकीरुल्लाह न कर सके। शेख की मृत्यु ११७ वर्ष की आयु में हुई थी।[1]

इनका जन्मवर्ष प्रायः सन् १५११ ई० है। इनकी रचनाएँ अबतक अप्राप्त है।

शेख पीर मुहम्मद :

शेख बहाउद्दीन की महत्ता से परिचित होकर ये भी गृहत्यागी हो गये और उनके सत्संग में भी रहे थे।

---

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १३१—१३३, मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २६।

बाल्यकाल में ही पीर मुहम्मद को पितृस्नेह से वंचित होना पडा और ये अपने रिश्तेदार शेख नसीरुद्दीन के पास रहे ।

इन्होंने शेख बहाउद्दीन की भली भाँति सेवा की । उनका अनुग्रह इन्हें प्राप्त हुआ । इनकी युवावस्था में ही शेख बहाउद्दीन का देहान्त हो गया । ये देशाटन के लिए निकल पड़े । इनका सम्पर्क विभिन्न कलाकारों के साथ हुआ । फकीरुल्लाह ने जब इन्हें देखा, इनमें परहेजगारी न थी, दर्द था ।

शेख नसीरुद्दीन के संसर्ग से इन्होंने संगीत में अत्यन्त उन्नति कर ली थी , उस युग में इनसे अच्छा गायक न था । इन्होंने ध्रुवपदों और तरानो की भी रचना की । सरोद बजाने की शैली में नवीन आविष्कार किये थे । पचास-साठ वर्ष की आयु में जलोदर से इनकी मृत्यु हो गई ।[1] इनकी रचनाएँ अप्राप्त है ।

यहाँतक जिन ध्रुवपदकारों की चर्चा हुई है, वे सभी अर्थ की दृष्टि से सगीत-साधना करते थे । यद्यपि उनकी रचनाओं मे देवी-देवताओं अथवा पीरो की स्तुतियाँ है, तथापि वे हिन्दू-आश्रयदाताओं के दरबारों, मन्दिरों अथवा अन्य पर्वो पर गाने के लिए हैं । उनमें रचयिता का आन्तरिक आत्मनिवेदन नही है । इतना अवश्य है कि उनकी कुछ रचनाएँ उस दैनिक पूजा-पाठ का निर्वाह-मात्र करने के लिए है, जो दैनिक जीवन का एक अंगमात्र है । हमारा यह कहना नही है कि उन्हें देवी-देवताओं से कोई चिढ थी, जो ऐसी स्तुतियो के रचयिता थे; परन्तु रचनाओं के कारण उन्हे भक्तों की कोटि में रखा जाना उचित नही है ।

तृतीय अध्याय में यह कहा जा चुका है कि मानसिंह तोमर के प्रयत्नों ने भक्त-गायकों को भी प्रभावित किया । उन गायकों में वृन्दावनवासी रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी प्रमुख है । अष्टछाप के महान् गायकों में सभी अच्छे सगीतसाधक थे, परन्तु शिल्प की दृष्टि से उनकी रचनाएँ विष्णुपद की शैली मे आती हैं और उनमें छन्द और ताल का समन्वय है । उनमें काव्य प्रधान है और संगीत आनुषंगिक । इसका कारण यह है कि मन्दिरों में प्रतिदिन गाये जानेवाले कीर्त्तनों की रचना अष्टयाम के अन्तर्गत विभिन्न प्रहरों में सीमित समय के अन्दर गाने के लिए हुई है, सगीत-कौशल का प्रदर्शन लम्बे काल तक करने के लिए नहीं । हरिदासजी की रचनाएँ ध्रुवपद-शैली की है—और उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें प्रयोज्य सगीत और काव्य मे कौन प्रधान है और कौन आनुषगिक । इसका कारण यह है कि हरिदासजी की उपासना-पद्धति उनकी अपनी थी, निराली थी । नित्य निकुंज-विहार मे मग्न श्यामा-श्याम उनके उपास्य थे और भावमग्न रहकर वे मानसिक रूप से निरन्तर उनकी केलि का आनन्द लेते

---

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब; 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० १३३—१३४; 'मअदन्-उल्-मूसिकी' पृ०, २६ ।

रहते थे। जब मौज उठी, बुलाने लगे और प्रिय-प्रिया की लीलाएँ उनकी वाणी में मुखरित होने लगीं। इसीलिए, उनकी रचनाओं मे छन्द और ताल का वैसा समन्वय नही है, जैसा कि पदों में पाया जाता है।

श्याम-श्यामा ही हरिदासजी के आश्रयदाता हैं। नित्य-निकुंज ही उनके लिए दरबार है, श्याम-श्यामा की रहस्यमयी लीलाओं का वर्णन ही उनके द्वारा गाई जाने-वाली विरुदावली है और वे संगीत और काव्य के संगम में निरन्तर निमज्जन करनेवाले एक ऐसे ध्रुवपदकार है, जिनका वर्णन किये विना ध्रुवपद पर विचार अपूर्ण माना जायगा।

स्वामी हरिदासजी :

स्वामी हरिदासजी की विरक्त-परम्परा में उनका जन्मवर्ष सन् १४८० ई० माना जाता है। उनके वंश के सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है। कुछ विद्वान् उन्हे **श्रीआसधीरजी** का पुत्र, सारस्वत ब्राह्मण एवं हरिदासपुर मे उनका जन्म मानते है[1] तथा अन्य उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण, **गंगाधर** का पुत्र, आसधीरजी का शिष्य एव राजपुर को उनका जन्मस्थान मानते है।[2] वास्तव में, द्वितीय पक्ष का प्रथम समर्थक ग्रन्थ 'निजमत-सिद्धान्त' है, जिसकी रचना सन् १७७५ ई० के लगभग **महन्त किशोरदास** द्वारा हुई। इस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमे लिखी अधिकाश बातें इतिहास-विरुद्ध, असगत एवं कपोल-कल्पित है। लेखक का उद्देश्य स्वामी हरिदासजी को निम्बार्क-सम्प्रदाय का अनुयायी तथा उन्हे प्रयत्नपूर्वक गंगाधर का पुत्र सिद्ध करना ज्ञात होता है। उक्त लेखक ने अपनी बात का न तो कोई आधार ही दिया है, न उसके कथनों की कोई पूर्व परम्परा ही प्राप्त होती है। 'निजमतसिद्धान्त' के पूर्ववर्त्ती तटस्थ लेखकों ने जो कुछ लिखा है, उससे भी 'निजमतसिद्धान्त' की परम्परा का खण्डन होता है, अतः उक्त ग्रन्थ के उल्लेखों को प्रामाणिक नही माना जा सकता।

स्वामी हरिदासजी के समकालीन भक्त-कवि **व्यासजी**,[3] **बिहारिणिदासजी**, **नाभाजी**, **लालस्वामी** आदि ने उन्हे 'आसू कौ हरिदास', 'हरिदास आसुधीर कौ'[4] अथवा 'आसुधीर उद्योतकर'[5] या 'आसू के हरिदास की'[6] कहा है। अन्य परवर्त्ती बाह्य साक्ष्यो मे

---

१. केलिमाल, भूमिका, श्रीचक्र, वृन्दावन, सं० २००९ वि०।

२. निजमतसिद्धान्त : किशोरदास।

३. आसू कौ हरिदास रसिक, हरिवंश न मोंहि बिसारौ।—भक्तकवि व्यासजी, मथुरा, पद-संख्या २१।

४. गुरुनि कौ गुर श्रीहरिदास आसुधीर कौ।—बिहारिणिदासजी (ह० वा० से)।

५. आसुधीर उद्योतकर रसिक छाप हरिदास की।—नाभाजी-कृत भक्तमाल, छप्पय ९१।

६. आसू के हरिदास की लगैं 'लाल' पग पौन।

—लालस्वामी-कृत हस्त० 'वाणी-संग्रह' से।

राधावल्लभीय श्रीहितरूपलालजी के शिष्य चाचा वृन्दावनदासजी[1] जयपुर के महाराज ईश्वरसिंहजी[2] आदि ने उन्हें स्पष्ट ही आसधीरजी का पुत्र लिखा है। ये सभी उल्लेख 'निजमतसिद्धान्त' से पूर्ववर्त्ती है, अतः यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि स्वामी हरिदासजी आसधीरजी के ही पुत्र थे।

आसधीरजी को सभी पक्ष सारस्वत ब्राह्मण एवं 'कोल' के निकट का निवासी मानते हैं। वही स्वामी हरिदासजी का जन्म हुआ था, अतः उस स्थान का नाम हरिदासपुर पड़ गया है। डॉ० दीनदयालजी गुप्त ने भी इसी मत का समर्थन किया है।[3] स्वामी हरिदासजी के भ्राता गोस्वामी जगन्नाथजी के वंशज, जो स्वामी हरिदासजी के सेव्य ठाकुर बाँकेबिहारीजी एवं उनकी साधना-स्थली निधिवन के परम्परागत अधिकारी है, स्वामीजी को अपना पूर्वज मानते है। उनके पास के प्राचीन वंशवृक्ष भी इसके प्रमाण है। उनके अनुसार स्वामी हरिदासजी के पूर्वज पंजाब मे मुलतान के निकट उच्चग्राम के निवासी थे। उनके पितामह गदाधर थे और पिता आसधीरजी। स्वामी हरिदास की माता का नाम गंगादेवी था। बैन कवि (सन् १८२२ ई०) की पदावली से भी स्वामीजी के पिता आसधीरजी, माता का नाम गगादेवी तथा जन्मस्थान कोर या कोल (कोयल, अलीगढ का प्राचीन नाम) सिद्ध है।[4]

स्वामी हरिदासजी के गुरु और सम्प्रदाय :

स्वामी हरिदासजी के दीक्षा-गुरु श्रीआसधीरजी ही माने जाते है, इस सम्बन्ध मे सभी पक्ष एकमत है। परन्तु, इस सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है कि स्वामी हरिदासजी किस सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। 'निजमतसिद्धान्त' प्रथम बार उन्हे निम्बार्क-सम्प्रदाय का अनुयायी घोषित करता है। कुछ उन्हें विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानते है। परन्तु, स्वामी हरिदासजी ने अपने-आपको किसी भी प्रचलित वैष्णव-सम्प्रदाय से सम्बद्ध नही माना है।

---

१. सुता आसधीर सूरत अनन्द।—चाचा वृन्दावनदास-कृत वसन्त का एक पद। द्र० 'हितहरिवंशगोस्वामी-सम्प्रदाय और साहित्य', पृ० २१८।

२. 'अयमाशुधीरतनयो हरिदासः परमरसिकवरः।'—ईश्वरी सिंह द्वारा सम्पादित भक्तमाल, सं० १७४७ वि०।

३. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डॉ० दीनदयालु गुप्त, प्रयाग, पृ० ६८-६९।

४ (क) नमो नमो जै श्रीहरिदास रसिक कुल मण्डन।
भादौं मास उज्यारी आठै, प्रघट भये आसधीर के नन्दन।
सब सुखदाई बजत बधाई, सब ही के मन भाई, करत सकल जन वन्दन।
गंगारानी जायौ, दास बैन, मन भायौ, छिरकत दूध दही केसर घसि चन्दन।
—बैनदास की पदावली, हस्त०, पद-सं० ८।

(ख) आजु बधाई बाजै रे व्रज-कोर-पै।
भादौं मास मनोहर मंगल आठै, सुकलपक्ष, गरजत घनघोर पै।
—पद-सं० २।

उनके शिष्य श्रीठल विपुलजी और प्रशिष्य विहारिणिदासजी ने भी अपना निम्बार्क आदि कोई सम्प्रदाय नही बताया है। उनके सिद्धान्त और उपासना की प्रणाली को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि वे स्वतन्त्र पथ के अनुगामी थे। उनकी सखी-भाव की रसोपासना के ही कारण उनके द्वारा प्रवर्त्तित सम्प्रदाय 'सखी-सम्प्रदाय' कहलाया। वास्तव में, स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय स्वतन्त्र ही मानना चाहिए।

हरिदासजी के संगीतगुरु :

स्वामी हरिदासजी की आयु सन् १४८६ ई० मे ६ वर्ष की थी, जबकि ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का राज्याभिषेक हुआ। मानसिंह तोमर की मृत्यु सन् १५१६ ई० में जब हुई, तब हरिदासजी प्रायः ३६ वर्ष के थे। मानसिंह के राज्यकाल में सहस्रों ध्रुवपदों की रचना हुई थी और उसके दरबार में बैजू जैसे ध्रुवपदकार थे। एक ध्रुवपद में बैजू ने स्वय को 'आदिकवि' कहा है,[1] जिससे यह ध्वनित होता है कि मानसिंह द्वारा प्रवर्त्तित परम्परा के सर्वप्रथम ध्रुवपद-रचनाकार बैजू थे। यह सर्वथा सम्भव है कि हरिदासजी की सगीत-शिक्षा ग्वालियर के किसी कलावन्त द्वारा हुई हो। वह व्यक्ति कौन था, यह बताया जाना तो सम्भव नही है, परन्तु यह निश्चित है कि व्रजभाषा-ध्रुवपद के जन्मस्थल ग्वालियर से स्वामी हरिदासजी के व्यक्तित्व का संगीत-पक्ष पूर्णतया प्रभावित था। भक्त-कवियों मे श्रीस्वामी हरिदासजी को ही ध्रुवपदकार कहा जाता है। तानसेन के प्रकरण में यह चर्चा आ चुकी है कि संगीत-विद्या में हरिदासजी तानसेन के गुरु हो सकते है, भले ही वह शिक्षा बहुत लम्बे समय तक न चली हो। हरिदासजी के समाधि-स्थल निधिवन में तानसेन की समाधि भी रही, अनेक वृन्दावनवासी इस तथ्य के साक्षी है।[2]

रीतिकालीन ध्रुवपदकार

शाहजहाँ को बन्दी बनाकर औरंगजेब सन् १६५८ ई० में मुगल-सम्राट् हो गया था। अपने शासनकाल के ११वे वर्ष में इसने कवियों और गायक-वादकों का सम्बन्ध दरबार से विच्छिन्न कर दिया। सन् १५८३ ई० के बाद से यह दक्षिण की ओर युद्धों में उलझा रहा। महाराष्ट्र में शिवाजी, बुन्देलखण्ड मे छत्रसाल, मेवाड़ मे महाराणा राजसिंह, मारवाड़ मे वीर दुर्गादास तथा पंजाब मे सिख-गुरु गोबिन्दसिंह इसकी धर्मान्धता को विनष्ट करने के लिए प्रयत्नशील थे। फलतः, अपने राज्यकाल के उत्तरार्द्ध मे इसे साँस लेने का अवकाश न मिला। निरन्तर युद्धों के कारण पीढ़ियों से सचित मुगल-राजकोष नष्ट हो गया था और सेनाओं को कभी-कभी यथासमय वेतन मिलने में भी कठिनाई होने लगी थी। साम्राज्य का आर्थिक ढाँचा बिगड़ ही चुका था, फलतः सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति भी उस बिगड़ी हुई परिस्थिति का शिकार बनी। औरंगजेब के साथ जगह-जगह धक्के खाते

---

१. परिशिष्ट आ, ८।

२. संगीत, फरवरी, १९५९ ई०, पृ० ८६–९१।

हुए सामन्त भी निरन्तर शिविर-जीवन से ऊब गये थे। वर्षो से घर न लौटने के कारण उनके वंश की वृद्धि बन्द हो गई थी और वे नष्टप्राय हो रहे थे। फलतः, कला के विकास और प्रसार पर भी इस समस्त वातावरण का प्रभाव पडा। इतना सब कुछ होने पर भी औरंगजेब के विभिन्न शाहजादे और सामन्त किसी-न-किसी रूप मे गायको, वादकों और ध्रुवपदकारों को आश्रय देते चले आ रहे थे। हाँ, इतना अवश्य था कि उन कलाकारों की प्रतिभा कुछ कुण्ठित-सी हो गई थी और वह मानों बुझ-सी गई थी। उस अवांछनीय एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में भी ध्रुवपद-परम्परा उच्छिन्न नही हुई और उसमे भी सदारंग जैसे कुछ ध्रुवपदकार उत्पन्न हुए, जो अगली पीढ़ियो के लिए प्रकाश-स्तम्भ बने। रीतिकाल के ध्रुवपदकारों का परिचय तो इस अध्याय मे है भी, कुछ ऐसे ध्रुवपदकारों की भी चर्चा है, जिनके आश्रयदाताओं के विषय में कोई परिचय उपलब्ध नही है।

खुशहाल खाँ कलावन्त :

यह गुनसमुन्दर खाँ का बेटा और तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दौहित्र था। यह अपने भाइयों में सर्वश्रेष्ठ गायक था। शाहजहाँ को इसका संगीत बहुत भाता था। यह विवेक एवं वास्तविक शिष्टाचार से युक्त था और अपनी रचनाएँ 'शाहजहाँ' के नाम से किया करता था।

एक दिन शाहजहाँ ने **अली मर्दानखाँ** (महामन्त्री अमीरुल्-उमरा) से पूछा कि तुम्हारी दृष्टि में कौन-सा शाहजादा बादशाह बनेगा। अलीमर्दान खाँ अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था, इस बात को ताड़ गया कि बादशाह का अनुराग दाराशिकोह की ओर है, यद्यपि उसमें बादशाह बनने की विशेषताएँ नही हैं। साथ ही, यह विचार हुआ कि यदि स्पष्ट निवेदन करता हूँ, तो शिष्टता के विरुद्ध होगा और गलत बात करना भृत्य-धर्म और ईमानदारी के विरुद्ध है। इन बातों पर विचार करके कहने लगा, जिस शाहजादे का साथी **मुर्शिदकुली खाँ** होगा, सम्भवत. वही सफल होगा। यह खान ईरान के शाह अब्बास की सभा का एक अमीर था और अली मर्दान खाँ के साथ शाहजहाँ की सेवा में उपस्थित होकर सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। शाहजहाँ को अलीमर्दान खाँ की सम्मति पर पूरा भरोसा था। दाराशिकोह को उपदेश किया कि मुर्शिदकुली खाँ का मन हाथ में ले। इधर मुर्शिदकुली खाँ को शाहजादे के समीप नियुक्त कर दिया। दाराशिकोह ने अपने पूज्य पिता के सबकों की कद्रदानी न की। मुर्शिदकुली खाँ थोडे ही दिनों में उससे बचने लगा। इसी समय औरंगजेब को दक्षिण के प्रान्त सौपे गये। वह रुग्ण अलीमर्दान खाँ को देखने का बहाना निकालकर उसके घर पहुँचा और इस बात के लिए आग्रह किया कि मुर्शिदकुली खाँ को साथ में भेज दे और कहने लगा कि इस सम्बन्ध में मै बादशाह की सेवा में कुछ निवेदन करना उचित नहीं समझता। आप स्वयं इस बात के लिए प्रयत्नशील हो जायँ। अमीरुल्-उमरा ने वचन दे दिया, परन्तु अपनी पिछली सम्मति को देखते हुए साहस नहीं होता था। मन में निरन्तर चिन्ता रहती और प्रायः चिन्तित और मुरझाया हुआ दिखाई देता। एक दिन अपने किसी मुसाहब से चिन्ता का कारण प्रकट कर दिया। वह व्यक्ति खुशहाल खाँ का मित्र था। निस्संकोच बातचीत में उससे कह बैठा। खुशहाल खाँ ने

कहा कि यदि नवाब साहब मुझे एक लाख रुपये देने की कृपा करें, तो उनके प्रार्थना-पत्र पर स्वीकृति मैं दिलाये देता हूँ। शर्त्त यह है कि जिस समय मैं संकेत करूँ, उस समय बादशाह की सेवा मे प्रार्थना करें। मुसाहब ने यह बात अमीरुल्-उमरा तक पहुँचा दी, उन्होंने स्वीकृति दे दी।

कुछ दिनों के पश्चात् नौरोज के उत्सव मे **खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ** अपनी जगह खड़े हुए तोड़ी गा रहे थे और बादशाह का हृदय पूर्णरूपेण प्रभावित हो रहा था। इस समय खुशहाल खाँ ने अमीरुल्-उमरा को संकेत किया कि तत्काल मुर्शिदकुली खाँ का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत कर दे। क्योकि, बादशाह उस समय रस में सर्वांगमग्न थे। उन्होंने विना पढ़े प्रार्थनापत्र पर स्वीकृति दे दी। अमीरुल्-उमरा ने यह आज्ञा 'खिलअतखानः' भेजी। खान को दूसरे दीवानखाने में विदाई देने के लिए बुलाया गया। 'खिलअतखानः' के दारोगा ने राजकीय आज्ञापत्र (बादशाह की सेवा में खिलअत देने की आज्ञा प्राप्त करने के लिए) प्रस्तुत किया। आदेश हुआ कि विदा का प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जाय। अमीरुल्-उमरा ने प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। बादशाह ने स्वीकृति देते समय पढ़ने की ओर ध्यान नही दिया था। इस असावधानता को प्रकट करना उचित न समझते हुए विदा की खिलअत देने की आज्ञा दे दी। शाहजादा औरंगजेब ने मुर्शिदकुली खाँ के साथ को गनीमत जाना और उसके साथ सदा अनुग्रहपूर्ण व्यवहार किया, यहाँतक कि दाराशिकोह के दूसरे युद्ध में उसने वीरों की भाँति प्राणत्याग किया।

कुछ दिनों के पश्चात् पूरी बात शाहजहाँ को ज्ञात हो गई और इस अपराध के दण्ड में दोनों भाई **खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ** को आनुवंशिक पद से च्युत कर दिया, अर्थात् ये दोनों तानसेन के स्थान पर खड़े होने से वंचित कर दिये गये।[1]

सवाद खाँ ढारी :

ये बहुत अच्छे गायक थे। फतेहपुर के रहनेवाले थे। 'मानसिंह और मानकुतूहल' में 'फतेहपुर-हसुवा' और 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में 'फतेहपुर-झुँझनू' लिखा है। रचनाएँ भी अच्छी थीं, जो प्राप्त नही होतीं। जन्मस्थान में ही देहान्त हुआ।[2]

किशनसेन 'नायक अफजल' :

ये अपने-आपको भत्तू (भन्नू ?) का पोता कहते थे। कुछ पढ़े-लिखे भी थे। इनकी उपाधि 'नायक अफजल' थी। अपने काल मे 'मार्ग'-सगीत में सर्वश्रेष्ठ थे। इनकी रचनाएँ अच्छी होती थीं। इनका ५०-६० वर्ष की आयु में कश्मीर में देहान्त हुआ। आजकल इनकी रचनाएँ अप्राप्त हैं।[3]

---

१. 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही' एवं 'मिराति आफताबनुमः', पृ० ३९० बं० का अनुवाद; 'आजकल', म्यूजिक-नम्बर।

२. रागदर्पण १०वाँ बाब; मानसिंह०, पृ० १३८; मअदन्, पृ० २७।

३. रागदर्पण, दसवाँ बाब; मानसिंह०, पृ० १३६; मअदन्, पृ० २७।

गुलाम मुहीउद्दीन :

यह एक अमीरजादे थे । सैनिक-जीवन का परित्याग करके फकीर हो गये । धनी व्यक्ति इनसे उदासीन थे और ये उनकी ओर से । रचनाएँ अच्छी होती थी,[१] जो आजकल प्राप्त नही ।

'मार्नासह और मानकुतूहल' में भ्रमवश इनका परिचय खुशहाल खाँ के साथ मिल गया है ।[२]

किशन खाँ कलावन्त :

सुलतान शुजा ने इन्हें शाहजहाँ से माँग लिया था । इनकी रचनाएँ भी अच्छी होती थी (जो आज प्राप्त नही है) । 'मार्ग-सगीत' में इनकी कुछ गति थी । इनका देहान्त बंगाल में हुआ ।[३]

सालिम खाँ डागुर :

ये अच्छे गायक थे । इनकी रचनाएँ भी अच्छी होती थी, जो आजकल अप्राप्त हैं। 'मअदन्-उल्-मूसिकी' एवं 'मार्नासह और मानकुतूहल' में इनका नाम सालिमचन्द लिखा गया है ।[४]

कसबकुव्वतधारी :

इनका मूल निवास फुल्लौर था । रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब प्राप्त नहीं) । अस्सी-नब्बे वर्ष की आयु में फुल्लौर मे इनका देहान्त हुआ ।

'मार्नासह और मानकुतूहल' मे इनका नाम 'केशव' और 'मअदन्-उल्-मूसिकी' मे 'कब जोयत' छपा है । 'रागदर्पण' की रामपुर-प्रति के अनुसार, 'कसबकुव्वत' नाम ही ठीक है, जो 'उपाधि' प्रतीत होता है । 'कसबकुव्वत' का अर्थ 'कला ही जिसका बल हो' होता है ।[५]

पूजा :

ये शेख पीरमुहम्मद के भाई थे । रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब प्राप्त नहीं है) । उनमें बड़ा दर्द होता था । ये फकीरुल्लाह के साथ रहे । साठ-सत्तर वर्ष की आयु मे भगन्दर से, आगरा में ही इनका देहान्त हुआ ।[६] 'मार्नासह और मानकुतूहल' में इनका नाम भ्रमवश 'बूचा' छपा है ।[७]

---

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब; मअदन्०, पृ० २८ ।

२. 'मार्नासह०', पृ० १३८ ।

३. 'रागदर्पण', दसवाँ बाब; 'मार्नासह०', पृ० १३८; 'मअदन्०' पृ० २७-२८ ।

४. 'रागदर्पण', दसवाँ बाब; 'मार्नासह०', पृ० १३९; 'मअदन्०', पृ० २८ ।

५. 'रागदर्पण', दसवाँ बाब; 'मार्नासह०', पृ० १४१; 'मअदन्'०, पृ० २८ ।

६. उपरिवत् ।

७. 'मार्नासह०', पृ० १४१ ।

रहीमदाद ढारी :

सन् १६६२ ई० में वृद्ध थे। रचनाएँ अच्छी होती थी (जो अब नही मिलती)। 'मार्ग-सगीत' से भी परिचित थे।[1]

मुहम्मद बाकी :

इनकी आयु सन् १६६२ ई० में ५० वर्ष से अधिक थी। रचनाएँ अच्छी होती थी, जो आज अप्राप्त है। अफीम खाने से गला बिगड़ गया था।[2] 'मानसिंह और मान-कुतूहल' में भ्रमवश इनका नाम मुहम्मद वारी छपा है।

सुधीनसेन :

यह सोहिलसेन का पुत्र और मियाँ तानसेन का प्रपौत्र था। सन् १६६२ ई० (१०८३ हि०) में यह जीवित थे और अच्छी रचनाएँ करते थे।[3] रचनाएँ अप्राप्त है।

मियाँ डालू ढारी :

ये साधुओं की भाँति जीवन-यापन करते थे। धनियों की उपेक्षा करते थे। फकीरुल्लाह ने इन्हें आगरा में देखा था। इन्होंने अनेक ध्रुवपदों की भी रचना की। फकीरुल्लाह के युग के धनियों की रुचि सगीत की ओर भली भाँति थी, परन्तु मियाँ डालू की ओर से वे उदासीन रहे। इनका देहान्त यौवनकाल में ही आगरा में हो गया।[4]

'डारू' छाप का एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम' भाग प्रथम, पृ० १६२ पर है, जो शैली और वर्ण्य विषय को देखते हुए इनका ही माना जा सकता है।

मधुनायक :

इनका वास्तविक नाम सैयद निजामुद्दीन था और ये बिलग्राम-निवासी सैयद हमजा के पुत्र थे। अत्यन्त उदार एवं विनोदी स्वभाव था। संस्कृत और हिन्दी-भाषा काशी में पढी। शास्त्रों मे निष्णातत्व प्राप्त किया। संगीतशास्त्र से प्रगाढ परिचय प्राप्त करके नायक कहलाये। इनके 'नक्श' प्रसिद्ध है और इनका नाम आ जाने पर गायक कान पकड़कर सम्मान प्रकट करते है। इनके गाने में विचित्र प्रभाव था। मनुष्य तो मनुष्य, मनुष्येतर प्राणी भी प्रभावित होते थे। नवाब दिलेर खाँ के पुत्र नवाब कमालुद्दीन खाँ के पास शाहाबाद में चिरकाल तक सम्मानपूर्वक रहे थे। एक रमजान (१०९९ हि० : २० जून, १६८७ ई०), बुधवार को बिलग्राम में इनका देहान्त हुआ।[5] मोहम्मद करम इमाम ने इन्हे भ्रमवश अकबर का समकालीन समझ लिया है।

---

१. 'रागदर्पण', दसवाँ बाब, 'मानसिंह', पृ० १४०-१४१; 'मअदन्', पृ० २८।
२. उपरिवत्, मानसिंह०, पृ० १३९।
३. उपरिवत्, मानसिंह०, पृ० १३६; 'मअदन्', पृ० २७।
४. उपरिवत्, पृ० १३४-१३५; 'मअदन्', पृ० २६।
५. आजकल, म्यू० नं०, पृ० १०८; सर्वआजाद, १।३५६, खं० १।

बिसराम खाँ :

ये विलास खाँ के दौहित्र थे और लाल खाँ कलावन्त के पुत्र। खुशहाल खाँ के ये छोटे भाई और श्रेष्ठ गायक थे।[१] शाहजहाँ के काल में इन्हे पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई[२] और ये औरंगजेब के भी आश्रित रहे।[३] सन् १६७१ ई० में इनका देहान्त हुआ।[४]

मिसरी खाँ ढारी :

ये विलास खाँ के शिष्य थे। शाहजहाँ के पुत्र सुलतान शुजा के साथ ये बगाल में रहते थे। बंगाल में ही इनकी मृत्यु प्रायः अस्सी वर्ष की आयु में हुई। इनकी रचनाएँ अच्छी होती थी।[५] रचनाएँ आजकल अप्राप्य हैं।

भूपत :

ये बिसराम खाँ के पुत्र थे। बिसराम खाँ की मृत्यु सन् १६७१ ई० मे होने पर औरंगजेब ने इन्हें और खुशहाल खाँ को मातमी खिलअत दी थी।[६]

संगीत के लिए आलमगीरी दरबार मे अवकाश न रहने पर इन्हें अन्य आश्रयदाताओं का मुँह देखना पडा। रमपुरा-नरेश छत्रसिंह की प्रशंसा मे इनके ध्रुवपद प्राप्त होते है।

रसबीन खाँ :

ये भी शाहजहाँ-काल में प्रसिद्ध थे और सम्भवतः खुशहाल खाँ के भाई थे। औरंगजेब के भी आश्रित रहे। सन् १६६७-६८ ई० मे जब औरगजेब ने दरबार में गाना-बजाना बन्द किया, तब ये भी दरबारी गायक थे।[७]

रागदर्पणकार फकीरुल्लाह ने इनका वास्तविक नाम मोहम्मद बताया है और इन्हे अद्वितीय वाद्य-वादक भी कहा है।[८] इनकी रचनाएँ मौखिक रूप मे प्रसिद्ध है।

नायक पूरन :

इन्होने एक ध्रुवपद (रा० क०, पृ० ५०,१०९) मे औरंगजेब की प्रशसा की है और एक अन्य ध्रुवपद (तत्रैव, पृ० २९०) मे सरस्वती की स्तुति की है।

मुबारक

'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० २९६ पर इन्होंने शाह आजम की प्रशसा की है। आजम औरंगजेब का पुत्र था और उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ मारा गया था।

---

१. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८।
२. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८; मिराति आफताबनुमः, ३९० ब।
३. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८।
४. उपरिवत्, पृ० १०८; औरंगजेबनामः, दूसरा भाग, पृ० ३२।
५. रागदर्पण, दसवाँ बाब, मानसिंह०, पृ० १३६; 'मअदन्', पृ० २७।
६. औरंगजेबनामः, भाग २, पृ० ३२; परिशिष्ट अ, २२३–२३०।
७. उपरिवत्, पृ० ६।
८. रागदर्पण, रामपुर-प्रति, दसवाँ बाब; मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० ३०।

सदारंग :

संगीत-जगत् में शाह सदारंग का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है, 'सदारंग' इनका उपनाम था और 'नेमत खाँ' नाम। ये ध्रुवपदकार एवं गायक होने के साथ ही प्रसिद्ध वीणावादक भी थे।[१]

औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जमशाह की सभा मे तत्तारी कव्वाल, बंगाली नटवा (संगीतजीवी जाति का व्यक्ति-विशेष) और देवदत्त कवीश्वर (महाकवि देव) तथा अन्य कलामर्मज्ञों से इन्होंने संगीत की शिक्षा ली।[२]

मुअज्जमशाह (बहादुरशाह) के राज्यकाल के पश्चात् इन्होंने जहाँदारशाह की सभा में सम्मान एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त किया।[३]

तत्पश्चात् मुहम्मदशाह रँगीले ने इन्हें संरक्षण दिया और इनका अत्यन्त सम्मान किया। मुहम्मदशाह के राज्यकाल के अन्तिम भाग में इनका देहावसान हुआ।[४] इनके द्वारा रचित अनेक ध्रुवपद प्राप्त हैं।[५] इन्होंने 'ख्यालों' और 'तरानों' की भी रचना अत्यन्त उत्कृष्टतापूर्वक की। आजकल के ख्याल-गायकों में कोई ऐसा न होगा, जिसे 'सदारंग' के कुछ ख्याल याद न हों।

मुहम्मद करम इमाम ने 'सदारंग' के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती लिखी है, जिसका सारांश यह है कि 'सदारंग' और 'अदारंग' नामक दो सहोदर भ्राता आलाप करने और ध्रुवपद गाने के पश्चात् अभिमानपूर्वक कहने लगे कि काले के सामने चिराग नही जलता, अब कोई ऐसा गाये, बजाये। उन दोनों के पश्चात् रसूल खां नामक कव्वाल की बारी थी। उसने 'कौल' और 'ख्याल' गाया, जिसका आविष्कार इसलामी रीति से हुआ है। इन गीतों मे अल्लाह और पैगम्बर की स्तुति थी। रसूल खाँ ने ऐसा गाया कि समस्त श्रोता एवं बादशाह 'वज्द' (आत्मविस्मृति) में आ गये। अन्ततोगत्वा, जब किसी ने सिर न उठाया, तब सभी आनन्दातिरेक से झूमते हुए दृष्टिगोचर हुए। प्रत्येक व्यक्ति अल्लाह की प्रशसा करने लगा। उन कलावन्तों (अदारंग और सदारंग) की चौकड़ी भूली, आँखों मे सरसों फूली। रसूल खाँ को खिलअत और पुरस्कार मिला। सदारंग और अदारंग लज्जा के समुद्र में डूब गये, बगैर मारे मर गये। उस दिन से इन दोनों ने ध्रुवपद गाना छोड़ दिया और सैकड़ों ख्याल बनाये और गाये, जो कि इस समय भी लोकप्रिय हैं।[६]

---

१. मिराति आफताबनुमः, पृ० २९३ अ।

२. उपरिवत्।

३. उपरिवत्।

४. उपरिवत्।

५. परिशिष्ट आ, १११, ११९।

६. मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० १३९।

प्रत्येक बात को कट्टर और हठी मुसलमान के दृष्टिकोण से देखना मुहम्मद करम इमाम की विशेषता है। आलाप और ध्रुवपद को 'हिन्दू' और ख्याल को 'मुसलमान' कहकर उसने अपनी सकीर्ण दृष्टि-विशेष का परिचय दिया है। अल्लाह, पीर और पैगम्बर की स्तुति में तो अकबरी दरबार के सुरज्ञान खाँ[1] और तानसेन[2] अनेक ध्रुवपद लिख चुके थे। पश्चाद्वर्त्ती कलाकारो ने भी ऐसी रचनाएँ की। गंगाधर ने ख्वाजाहिन्द[3] की प्रशंसा में ध्रुवपद-रचना की है। पीर गुलशन[4] की स्तुति का अदारग-कृत एक ध्रुवपद परिशिष्ट में दिया गया है। सदारग और अदारंग दोनों ही मुसलमान थे। 'ख्याल' का आविष्कार अरब मे नही हुआ और इस्लाम की दृष्टि से तो गाना-बजाना सर्वथा त्याज्य है; परन्तु मुहम्मद करम इमाम सदारंग और रसूल खाँ में 'हिन्दू-मुस्लिम-दंगा' कराये विना नहीं रहता।

मुहम्मद करम इमाम के ऐतिहासिक अज्ञान का परिचय देनेवाली एक बात अदारंग और सदारंग को सहोदर कहना है। अदारग सदारग के शिष्य और दामाद थे, तथा इनका वास्तविक नाम फीरोज खाँ था।[5]

अदारंग :

जैसा कहा गया, इनका वास्तविक नाम फीरोज खाँ था[6] और ये 'अदारंग' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये 'सदारग के शिष्य और जामाता थे। अपने युग के ये सर्वश्रेष्ठ गायक थे। इनके गाने मे जो प्रौढता, जटिलता एवं रंगीनी देखी गई, दूसरों के गाने में उसका चिह्न तक नही। वीणावादन में भी ये अपने युग में एक एव अनुपम थे। ध्रुवपदों, ख्यालों एवं तरानों की रचना करने पर इनका पूरा अधिकार था।[7]

वास्तविकता से परिचय न होने के कारण कुछ लोग इन्हें 'सदारंग' का भाई समझ बैठते है। मुहम्मद करम इमाम ने भी इनके सम्बन्ध में यही भूल की है।[8]

सदारंग के सम्बन्ध मे इनके एक ध्रुवपद में कहा गया है कि जहाँ गाने का अवसर हो, वहाँ सदारंग का नाम लेकर गाना चाहिए।[9] यह वाक्य सदारंग के प्रति पूज्य भाव प्रकट करके इनका सदारंग का शिष्य होना सिद्ध करता है।

---

१. परिशिष्ट आ, ८६।
२. परिशिष्ट आ, २८-२९।
३. परिशिष्ट अ, ९४।
४. परिशिष्ट आ, १२०।
५. मिराति आफताबनुमः, पृ० २९३ ब।
६. मिराति आफताबनुमः, पृ० ३९२ आ; आजकल, म्यू० नं०, पृ० १०८।
७. उपरिवत्।
८. 'मअदन्'-उल्-मूसिकी', पृ० २३९।
९. परिशिष्ट आ, १२४।

मुहम्मदशाह रँगीले की प्रशंसा में भी इनकी रचनाएँ मिलती है[1] और 'आलमगीर सानी' की प्रशंसा में भी।[2] सदारंग का देहान्त तो मुहम्मदशाह के युग के अन्तिम भाग में हो गया था। आलमगीर सानी की प्रशंसा में इनकी रचनाओं का अस्तित्व इनका उसके युग में भी जीवित रहना सिद्ध करता है। मुहम्मदशाह के राज्यकाल का अन्त सन् १७४८ ई० मे हुआ और आलमगीर द्वितीय ने सन् १७५९ ई० तक राज्य किया। इसका अर्थ है कि अदारंग सदारंग की अपेक्षा बहुत बाद तब जीवित रहे होंगे।

शाह आलम की सभा में ये रहे या नही, यह कहा जाना कठिन है। 'मिराति आफताबनुम:' नामक फारसी-ग्रन्थ में अदारंग का परिचय प्राप्त है।

इंछाबरस :

'रागकल्पद्रुम' में इनकी रचनाएँ यत्र-तत्र बिखरी मिलती हैं। इनकी कुछ रचनाओ में मुहम्मदशाह की प्रशंसा है,[3] अत: इन्हें 'सदारंग' का समकालीन होना चाहिए।

मुहम्मद करम इमाम ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण इन्हें सुजान खाँ का समकालीन बना डाला है और लिखा है कि सुजान खाँ ने इंछाबरस की रचनाएँ मदीना में जाकर गाई थी, जिससे इंछाबरस का कोढ़ ठीक हो गया था।[4] परन्तु, यह दन्तकथा असंगत है।

इस्लाम और मुसलमानों की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए करम इमाम ने ऐसे जोड़-तोड़ बहुत लगाये हैं। सैयद निजामुद्दीन 'मधुनायक' बिलग्रामी सन् १६८८ ई० में दिवंगत हुए थे।[5]

तानसेन की मृत्यु के समय 'मधुनायक' केवल एक वर्ष के थे; जबकि औरंगजेब को तख्त पर बैठे तीस वर्ष और तानसेन के स्वर्गवास को ६९ वर्ष बीत चुके थे। परन्तु मुहम्मद करम इमाम ने तानसेन का, 'मधुनायक' की सेवा में उपस्थित होना और उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करना वर्णित किया है।[6] यही दशा 'सुजान खाँ-इंछाबरस' की किंवदन्ती की भी है।

इंछाबरस मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार में रहे। नही कहा जा सकता कि इनकी मृत्यु कब हुई। इंछाबरस का एक ध्रुवपद ऐसा मिलता है, जिसमें अमीर खाँ की भी प्रशंसा है।

---

१. परिशिष्ट आ, १२७।

२. परिशिष्ट आ, १२१।

३. परिशिष्ट आ, १३८ से १४१।

४. 'मअदन्'-उल्-मूसिकी, पृ० २४०-२४१।

५. 'आजकल', म्यू० नं०, पृ० १०८; स० आ०, भाग १, पृ० ३६५।

६. 'मअदन्-उल्-मूसिकी, पृ० २४३।

प्रेमदास :

प्रेमदास नामक एक सज्जन ने हितहरिवंशजी की रचना 'हितचौरासी' की टीका व्रजभाषा-गद्य मे लिखी है ।[1] प्रेमदास की रचनाएँ वैष्णवों के कीर्त्तन-संग्रहों में भी मिलती हैं । 'रागमाला' में प्रेमदास की जिन रचनाओं का संग्रह है, वे इन लोगों से भिन्न हैं या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता ।

'रागमाला' मे प्रेमदास की छाप से युक्त जो रचनाएँ मिलती है, उनमें ऐसी भी है, जिनका विषय गणेश और सरस्वती की स्तुति भी है । एक ध्रुवपद में अर्द्धनारीश्वर का भी वर्णन है । इनकी कुछ रचनाएँ इन्हें संगीतजीवी सिद्ध करती है । सम्भव है कि ये अपनी आयु के अन्तिम भाग में वैष्णव हो गये हों ।

'हितचौरासी' के टीकाकार प्रेमदास श्रीहितरूपलाल गोस्वामी के शिष्य थे । 'हितचौरासी' की टीका संवत् १७९१ वि० (सन् १७३४ ई०) में पूर्ण हुई, इस समय दिल्ली में शाहआलम (रा० का० सन् १७५९–१८०६ ई०) का शासन था । चाचावृन्दावनदासजी-कृत 'हरिकलावेलि' में लिखा है कि संवत् १८१३ (सन् १७५६ ई०) में यवनों का जो उपद्रव हुआ, उसमें घनानन्दजी के साथ प्रेमदासजी भी मारे गये थे ।[2]

अपने एक ध्रुवपद में इन्होंने करनसाहि नामक किसी आश्रयदाता को सम्बोधित किया है ।

मनरंग :

ये प्रसिद्ध ध्रुवपदकार एवं गायक नेमत खाँ (सदारंग) के पुत्र थे । इनकी रचनाओं में 'होरियाँ' भी हैं और 'ख्याल' भी । निम्नाकित होरी मे इन्होंने अपने पिता सदारंग की चर्चा श्रद्धापूर्वक की है :

> **आदि महादेव बीन बजाई ।**
> **पाई नियामतखान पीअ सदारंग करि करिमैं (करम) दिखाई ।।**
> **सुर सप्त सुरनि की सुरसुर की सप्तक करि 'मनरंग' लै ।**
> **उनन्चास कोटि (कूट) तानिलै सब गुनिअनि कौं समुझाई ।।**

'रागमाला', पृ० २४० अ पर यह होरी सगृहीत है, जिसे आजकल के गायक खण्डित एवं भ्रष्ट रूप मे 'ख्याल' कहकर गाते है ।

'रागमाला', पृ० १२३ आ पर इनका निम्नाकित ध्रुवपद दिया हुआ है, जिसमें इन्होंने मोहम्मदशाह के गुण की प्रशंसा की है :

ताहि बदौं रीझि रिझाइ पिअ कौं मेरे जान गाइ बजाइ ग्यान करि और सुरतार । फुनि नृप धाइ राग धाइ परकीरन जे 'मनरंग' ऐसी कौन विद्या और जानते सब अंग अंग

---

१. हि० सा० इ०, पृ० २१९ ।

२. श्रीहितहरिवंश गोस्वामी, सम्प्रदाय और साहित्य : ले० ललिताचरण गोस्वामी, वेणु प्रकाशन, वृन्दावन, सं० २०१४ वि० ।

प्रकार। जा भुश्रलोक की कहा कहौं जे इन्द्रलोक कहिश्रत सुनिश्रत नारद तुम्बर कमलासी पातुर एहो नाही तुश्र सम हिश्र जिश्र सोच करौ विचार। सर्व कला सम्पूरन साहि जलाल मोहम्मद एक रचौ मद संसार।

परिशिष्ट श्रा में संकलित ध्रुवपद-सं० १२८-१२९ भी इनकी ही रचनाएँ हैं।

शम्भु :

ये कवि श्रौर बन्दीजन थे। ग्रियर्सन ने सन् १७५० ई० में इनका उपस्थित होना लिखा है।[1] ये दौलतपुरवाले सुखदेवमिश्र के शिष्य श्रौर 'रामविलास' नामक रामायण के रचयिता थे। किसी उदयराज की प्रशसा में इन्होंने ध्रुवपदों की रचना की है।[2]

आलम :

इनका विशिष्ट परिचय उपलब्ध नहीं है। मुगल-सम्राट् श्रहमदशाह की प्रशंसा में इनका एक ध्रुवपद 'रागकल्पद्रुम', भाग प्रथम, पृ० २८८ पर मिलता है।

देवीदत्त :

'रागमाला', पृ० २८४ श्रा पर इनकी एक रचना संगृहीत है, जिसका विषय श्रादर्श-गान है। ग्रियर्सन ने भी एक देवीदत्त कवि की चर्चा की है।[3] सर्वेक्षणकार ने लिखा है कि देवीदत्त ने 'बैतालपचीसी' का भाषानुवाद संवत् १८१२ (सन् १७५५ ई०) मे किया था।[4] 'रागमाला' के देवीदत्त श्रौर ग्रियर्सन के देवीदत्त एक ही प्रतीत होते है।

चेतसिंह 'राजबहादुर' :

महाराज चेतसिंह काशी-नरेश महाराज बलवन्तसिंह के पुत्र थे। इतिहास-लेखक टॉरेन्स के श्रनुसार, बलवन्तसिंह के राज्य में प्रजा श्रत्यन्त सुखी थी श्रौर देश खुशहाल था। किसानो को न बेजा माँग का डर रहता था श्रौर न किसी तरह की जबरदस्ती का। वे श्रपने खेतों को बागों की भाँति जोतते थे श्रौर श्रपने श्रथक परिश्रम की पैदावार पर फूलते-फलते थे।[5]

बनारस की समृद्ध रियासत उस समय श्रवध के नवाब श्रासफुद्दौला के श्रधीन थी, किन्तु श्रवध के नवाब बनारस के महाराजा से श्रपना वार्षिक खिराज लेते थे श्रौर बनारस-राज्य के श्रान्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करते थे।[6]

---

१. हि० प्र० इ०, पृ० २०७।
२. परिशिष्ट श्र, २८६।
३. हि० प्र० इ०, पृ० ३१५।
४. सर्वेक्षण, पृ० ३६६ (हि० प्र० इ०, पृ० ३१५)।
५. भारत में श्रँगरेजी-राज्य, द्वि० सं०, सन् १९३८ ई०, भाग १, पृ० २४७-२४८, श्रोंकार प्रेस, इलाहाबाद।
६. उपरिवत्, पृ० २४७।

सन् १७७६ ई० में अवध के नवाब ने बनारस का इलाका कम्पनी के नाम कर दिया। कम्पनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी करके बलवन्तसिह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिये। एक अँगरेज रेजीडेण्ट बनारस में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह कम्पनी के मित्र समझे जाने लगे।[1]

अँगरेजों और फ्रांसीसियों में लड़ाई छिडने पर वारेन हेस्टिंग्स ने महाराज चेतसिंह को यह आज्ञा दी कि वे पाँच लाख रुपये के वार्षिक व्यय पर अपने यहाँ तीन पलटनें रखें। इन पलटनों के अफसर अँगरेज थे और उनपर कम्पनी का अधिकार था।[2]

दो साल के पश्चात् चेतसिंह को सवारों की भी एक पलटन रखने का आदेश हुआ। महाराज ने इनकार किया। हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँचकर महल को घेर लिया और रेजीडेण्ट को आज्ञा दी कि चेतसिंह बन्दी बना लिये जायँ।[3]

यह देखकर बनारस की प्रजा ने अँगरेजो के एक-एक सैनिक को मार डाला। बदला लेने के लिए अँगरेजों की अधिक सेना भेजी गई, भीषण युद्ध हुआ।[4]

किले की सुरक्षा असम्भव समझकर महाराज चेतसिंह रानी के साथ रामनगर के किले में चले गये। रामनगर के किले पर भी अँगरेजों का अधिकार हो गया और महाराज चेतसिंह भागकर ग्वालियर चले गये।[5]

थोड़े दिनों के पश्चात् वारेन हेस्टिंग्स ने स्व० शुजाउद्दौला की वृद्धा माता और विधवा बेगम को यह निराधार आरोप लगाकर लूटा कि वे चेतसिह के साथ मिलकर अँगरेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रही है।[6]

महाराज चेतसिंह का स्वर्गवास ग्वालियर में ही हुआ।[7] ये अच्छे संगीतज्ञ एव ध्रुवपदकार थे और ध्रुवपदों में अपनी मुद्रा 'राजबहादुर' रखते थे।[8]

शेख मीर :

इनका पूरा नाम ख्वाजा मीर दर्द था। ये उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। संगीत-विद्या में मुगल-सम्राट् शाह आलम के गुरु थे। 'रागमाला', पृ० ९६ अ पर इनका एक ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय सूफी-सन्तों की प्रशंसा है।

---

१. भारत में अँगरेजी-राजा, ओंकार प्रेस, इलाहाबाद, पृ० २४८।
२. उपरिवत्।
३. उपरिवत्, पृ० २४९।
४. उपरिवत्।
५. उपरिवत्, पृ० २४९-२५०।
६. उपरिवत्, पृ० २५२।
७. उपरिवत्, पृ० २५०।
८. परिशिष्ट अ, २३१ से २६७।

गुलाब :

गुलाब नामक जिस ध्रुवपदकार की रचनाएँ प्राप्त है, उसने कुछ ध्रुवपदों मे 'माधो महाराज' का वर्णन किया है ।[1]

'करहिया कौ रायसो' के रचयिता कवि गुलाब माथुर चतुर्वेदी, ऑतरी-निवासी थे । इस ग्रन्थ में वर्णित युद्ध सन् १७६७ ई० के १५ अगस्त को उनके समक्ष हुआ था ।[2]

जिस समय यह युद्ध हुआ था, जयपुर पर **सवाई माधवसिंह** का शासन (सन् १७५० ई० से) था, जो एक गुणग्राही वश के रत्न थे । इन माधवसिंह का स्वर्गवास सन् १७६८ ई० में हुआ था ।

सम्भव है, ध्रुवपदकार 'गुलाब' और 'करहिया कौ रायसो' के रचयिता 'गुलाब' एक ही व्यक्ति हों और इन ध्रुवपदो के प्रशस्य पात्र एवं आश्रयदाता जयपुर-नरेश सवाई माधवसिंह हो । जयपुर के साथ जाट-नरेशो के सम्बन्ध कभी अच्छे और कभी बुरे होते रहते थे । इसलिए, दोनों राज्यों के साथ 'गुलाब' कवि का सम्बन्ध होना असम्भव नही है ।

कृष्णानन्द रागसागर :

ये गौड़ ब्राह्मण थे और इनका जन्मस्थान उदयपुर था । इनका जन्मकाल सन् १७९५ ई० है । इन्होंने वृन्दावन और गोकुल मे सगीतशास्त्र पढाया । गोकुल के **गोस्वामी कल्याणराय, गिरधर** और सुप्रसिद्ध संगीताचार्य **दामोदर** ने इनकी विद्या से प्रभावित होकर इन्हें 'रागसागर' की उपाधि दी थी ।

बत्तीस वर्ष तक इन्होने उत्तर और दक्षिण भारत में भ्रमण किया और बड़े-बड़े उस्तादों, गायकों और रचनाकारों से मिलकर बिखरे हुए गेय साहित्य को एकत्र किया । सन् १८२२ ई० मे 'शब्दकल्पद्रुम' के सम्पादक **राजा राधाकान्तदेव** से इनका परिचय हुआ । **राजा राजेन्द्रलालमित्र** भी इनके परिचितों में से थे और उन्होंने कहा है कि **कृष्णानन्दजी** अपने द्वारा संकलित गेय साहित्य को 'शब्दकल्पद्रुम' की भाँति सात खण्डों में प्रकाशित करने की बात सोचते थे, परन्तु इसके तीन खण्ड ही प्रकाशित हो सके । सन् १९१४ ई० में प्राच्यविद्यामहार्णव **श्रीनगेन्द्रनाथ वसु** ने इस ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन कराया । इसका प्रथम सस्करण सन् १८४३ ई० में निकल चुका था ।

श्रीवसु महोदय ने कई विद्वानो की सहायता से इस ग्रन्थ के मूल पाठ मे संशोधन कर दिया । मूल पाठ की दृष्टि से यह सन्तोषजनक नही हुआ । संशोधक-मण्डल की असंगीतज्ञता और फारसी एवं अरबी से अपरिचय के कारण सहस्रों स्थानों पर इस ग्रन्थ का पाठ भ्रष्ट हो गया है । अनेक तद्भव शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्द भी कर दिये गये है । **ग्रियर्सन ने** हिन्दी-साहित्य का जो इतिहास लिखा, उसमें कृष्णानन्द के 'रागकल्पद्रुम' की सामग्री अत्यन्त सहायक हुई ।

---

१. परिशिष्ट आ, १४६–१५१ ।

२. हि० वी० का०, पृ० ३२ ।

कृष्णानन्द ने अपनी पुस्तक में एक भूमिका भी लिखी है, जिसका शीर्षक 'रागसागर की सूचना' है। इसमें कुछ बाते अत्यन्त उपयोगी है। ध्रुवपद की चार 'बानियों' की चर्चा करते हुए इन्होने तानसेन, बैजूबावरे, गोपाल नायक (द्वितीय) और सूरदास (महाकवि सूरदासजी) की बानियाँ क्रमशः गोबरहारी, खण्डारी, डागुरी और नौहारी बताई है। साथ ही, मुसलमान गायकों के लिए 'मुसलमान गवैया' शीर्षक जैसा बनाकर उनकी चर्चा की है और तानसेन, बैजूबावरे और गोपाल नायक को इनसे पृथक् गिनाया है। इसका अर्थ यह है कि कृष्णानन्द के समय तक तानसेन को मुसलमान नही समझा जाता था।

इन्होंने लिखा है कि इनके द्वारा सकलित गीतों की सख्या १२,२५,००० थी। खेद की बात है कि इस विशाल संग्रह का बहुत ही थोड़ा भाग प्राप्त है।

ये अनेक राजाओं के सम्पर्क में आये थे और इन्होंने अपने समकालीन अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों और नरेशो को अपना ग्रन्थ भेजा था। नरेशो की सूची अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। ये नरेश निम्नाकित है :

१ उदयपुर-नरेश महाराज स्वरूपसिंह
२. मुगल-सम्राट् बहादुर शाह द्वितीय
३. पंजाब के श्रीमहाराज रणजीतसिंह
४. अरब के सम्राट्
५. फारस के सम्राट्
६. रूस के सम्राट्
७. महारानी विक्टोरिया
८. महाराजा खड्गसिंह
९. महाराजा नौनिहालसिंह
१०. महाराजा शेरसिंह
११. महाराजा दिलीपसिंह
१२. चीन-नरेश
१३. बर्मा-नरेश
१४. बलख-बुखारा-नरेश
१५. बाजीराव पेशवा
१६. विनायकराव पेशवा
१७. निजाम हैदराबाद
१८. मकसूदाबाद के नवाब जुल्फिकार
१९. फर्रुखाबाद के नवाब
२०. नैपाल-नरेश विक्रमशाह
२१. जोधपुर-नरेश तखतसिंह
२२. जयपुर के सेनापति रघुजी भोंसले
२३. कर्नाटपति पद्मनाभ
२४ श्रीरामराजासिंह
२५ सवाई राजसिंह
२६. बूँदी-नरेश रामसिंह
२७. कोटा-नरेश रामसिंह
२८. रीवाँ-नरेश विश्वनाथदेवसिंह
२९. बड़ौदा-नरेश सियाजी गायकवाड़
३०. द्वारकादेशाधिपति भोजराजसिंह
३१. काशी-नरेश उदितनारायणसिह तथा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह
३२. काशी के राजा देवकीनन्दन
३३. भावनगर-नरेश विजयसिंह
३४. नवानगर-नरेश राजा जामशाह
३५. भरतपुर-नरेश बलवन्तसिंह
३६. कच्छ के राजा देशरजी
३७. काशी-नरेश बलवन्तसिंह,
३८. बक्सर के उदितप्रकाशसिंह
३९. पन्ना के राजा हितनारायणसिह
४०. बेतिया के राजा नवलकिशोरसिंह
४१. छोटानागपुर के जगन्नाथसिह
४२. दरभंगा के राजा रुद्रसिंह तथा अन्य अनेक रईस

'रागकल्पद्रुम' के प्रकाशित भाग को भी अनेक दृष्टियों से एक बृहत्कोश कहा जाना चाहिए। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। अनेक ऐसे कवियों और ग्रन्थों की चर्चा इसमे आती है, जिनकी उपलब्धि अबतक नही हो सकी है।

कृष्णानन्द रचनाकार भी थे और अपनी रचनाओं में अपना नाम अथवा अपनी उपाधि 'रागसागर' की छाप से रखते थे। 'रागकल्पद्रुम' में इनकी अपनी रचनाएँ भी है। एक रचना में इन्होंने अवध के नवाब **गाजिउद्दीन हैदर**[1] तथा एक अन्य ध्रुवपद मे किसी **राजाराम**[2] की प्रशंसा की है।

मियाँ ज्ञानी :

ये अवध के नवाब **आसफुद्दौला बहादुर** के आश्रित थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा भली भाँति हुई थी और अपने युग में ये अद्वितीय कलाकार गिने जाते थे। यद्यपि वह युग ख्याल और ठुमरी का था, तथापि अपनी गुणज्ञता को सिद्ध करने के लिए ध्रुवपद की रचना भी करते थे।

'रागमाला', पृ० १२४ आ पर देवी-स्तुति-विषयक इनका एक ध्रुवपद संगृहीत है।

अचपल :

ये प्रसिद्ध गायक **तानरस खाँ** (मृ० सन् १८८५ ई०) के गुरु थे। मियाँ अचपल दरवेश सिफत (साधु-स्वभाव) व्यक्ति थे, इसीलिए इन्हे 'मियाँ अचपल' कहा जाता है। इनके वास्तविक नाम का पता नही चलता। इनका निवासस्थान दिल्ली था और ये प्रतिदिन प्रात. घोड़े पर सवार होकर **हजरत कुतुब साहब** के यहाँ हाजिरी देने (दर्शन करने) जाया करते थे और शाम को वापस आते थे।

इनको ख्यालियों के प्रसिद्ध घराने 'कव्वाल बच्चों' का वंशज कहा जाता है[3] यद्यपि वह युग ख्याल का था, तथापि इन्होंने ध्रुवपदों की भी रचना की है।[4]

कवि गोपाल :

'रागमाला', पृ० २०२ आ पर इनका गणेश-स्तुति-विषयक एक प्रसिद्ध ध्रुवपद विद्यमान है, जो तेवरा ताल मे निबद्ध है और छन्द एवं ताल मे समन्वय का परिचायक है।

ग्रियर्सन ने एक **गोपाल बन्दीजन** की चर्चा की है, जो चरखारी-नरेश **रतनसिंह** के दरबारी कवि थे।[5] बन्दीजनों मे एक ही व्यक्ति का कवि, गायक और ध्रुवपदकार होना

---

१. रा० क०, भाग १, पृ० २१४,।

२. उपरिवत्।

३. उर्दू-'आजकल', पृ० ११७ (म्यूजिक नम्बर)।

४. रागमाला, पृ० ६४ अ।

५. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २३७।

परम्परा-सिद्ध है। अतः, यह अनुमान किया जा सकता है कि ग्रियर्सन के गोपाल बन्दीजन और 'रागमाला' के कवि गोपाल एक ही व्यक्ति हैं।

अज्ञातपरिचय ध्रुवपदकार

अदारस : इनकी एक रचना परिशिष्ट आ, पृ० १३५ पर है।

आदिनराइन : इनका एक ध्रुवपद 'रागमाला', पृ० ८६ अ पर संगृहीत है, जो द्रुत लय में गेय ध्रुवपदों का उदाहरण है। ऐसे ध्रुवपद गायकों की परम्परा में लड़न्त के ध्रुवपद कहे जाते हैं।

इश्करंग : इनकी कुछ रचनाएँ राजस्थानी-भाषा में हैं और कुछ में राजस्थानी और व्रजभाषा का मिश्रण है। 'रागमाला' पृ० २६६ अ पर इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं, जो राजस्थानी-भाषा पर ध्रुवपद-शैली के प्रभाव का परिचय कराती हैं।

खेमरसिक : 'रागमाला', पृ० १८६ अ पर इनका एक प्रसिद्ध ध्रुवपद संगृहीत है, जिसका विषय नायिका के अंगों का वर्णन है। इससे अधिक इनके विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है।

जुगराजदास : 'रागकल्पद्रुम' के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग में इनकी रचनाएँ हैं, जिनकी संख्या लगभग १३ है।

तानवर : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १०८, १३८ पर इनकी दो रचनाएँ संगृहीत हैं। एक ध्रुवपद में इन्होने तानसेन की प्रशंसा की है।

तानवरस : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १३२ तथा 'रागमाला', पृ० १२५ अ पर इनकी एक-एक रचना मिलती है।

नूररंग : सम्भव है कि ये सदारंग के कोई वंशज हों। इनके विषय में कुछ पता नहीं चलता। परिशिष्ट अ १३० से १३२ तक इनकी रचनाओ का नमूना है।

प्रेमरंग : 'रागदर्पण', प्रथम भाग, पृ० २५, द्वितीय भाग, पृ० १४ एवं तृतीय भाग, पृ० १६ एवं ५५ पर इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। इनका काल सदारंग के बाद का हो सकता है।

महानादसेन : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ५० और ५१ पर इनके दो ध्रुवपद है। 'महानादसेन' उपाधि प्रतीत होती है, जिससे इनका तानसेन के पश्चात् होना सम्भव प्रतीत होता है।

मुरसद : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ५६ पर अल्लाह की स्तुति में इनका एक ध्रुवपद है।

रसरंग : ये अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। परिशिष्ट अ पर संकलित १३४ संख्यक ध्रुवपद इनकी रचना का एक नमूना है। ये सदारंग के पश्चाद्वर्त्ती प्रतीत होते हैं।

रामराय : इनका एक ध्रुवपद 'रागमाला', पृ० ५८ अ, पर संगृहीत है, जिसका विषय दूती-वचन है।

लक्ष्मणदास : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० २११ पर गणेश-स्तुति-विषयक इनका एक ध्रुवपद विद्यमान है।

वंशीधर : 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ६० पर किसी की वर्षगाँठ से सम्बद्ध इनका एक ध्रुवपद है।

सबरंग : ये महानुभाव भी 'रंगान्त' उपाधि से विभूषित गायकों की परम्परा के कोई रत्न हैं। परिशिष्ट अ पर १३३ संख्यक ध्रुवपद इनकी रचना का नमूना है।

षष्ठ अध्याय

ध्रुवपदों का शिल्प-विधान और साहित्यिक मूल्यांकन

(अ) व्रजभाषा-ध्रुवपद की परिभाषाएँ, बानियाँ, धातुएँ और अंग

व्रजभाषा-ध्रुवपद की परिभाषाएँ :

मानसिंह की सभा मे विरचित 'मानकुतूहल' की मूल प्रति उपलब्ध नही है। 'रागदर्पण' नामक फारसी अनुवाद-ग्रन्थ में अनुवादक ने अपनी ओर से भी बहुत कुछ सम्मिलित कर दिया है।[1] अतः, 'रागदर्पण' मे दी हुई 'ध्रुवपद' की परिभाषा को सर्वथा असन्दिग्ध प्रमाण नहीं माना जा सकता, परन्तु यदि 'रागदर्पण' की परिभाषा को मानसिंह के 'मानकुतूहल' में दी हुई ध्रुवपद-परिभाषा माना जाय, तो वह यों है :

रागदर्पण में ध्रुवपद की परिभाषा : इसमें चार पंक्तियाँ होती है।... इसकी भाषा 'देशी' होती है।... समस्त रसों में इसे बाँधा जाता है।... सुदेश से हमारा तात्पर्य ग्वालियर है, जो आगरा के राज्य का केन्द्र (!) है, जिसके उत्तर में 'मथुरा' तक, पूर्व मे 'उन्नाव' तक, दक्षिण में 'ऊँज' तक तथा पश्चिम मे बारों तक (का क्षेत्र है)। हिन्दुस्तान में इतने बीच की भाषा सबसे अच्छी भाषा है। यह खण्ड भारत में उसी प्रकार है, जिस प्रकार ईरान में शीराज।

इस परिभाषा के अनुसार, 'ध्रुवपद' मे छन्द का बन्धन अनिवार्य नही है। 'ध्रुवपद' का विनियोग सभी रसों में किया गया है और भाषा का क्षेत्र निश्चित करके 'ध्रुवपद' में सुदेश की भाषा अनिवार्य बताई गई है।

तानसेन के द्वारा ध्रुवपद की परिभाषा : तानसेन ने ध्रुवपद की कोई स्वतन्त्र परिभाषा नहीं दी है, परन्तु उनके कुछ ध्रुवपदों से उनकी ध्रुवपद-सम्बन्धी धारणा का बहुत कुछ परिचय प्राप्त होता है।

तानसेन की दृष्टि में ध्रुवपद की चार तुके होनी चाहिए।[3] ध्रुवपद को शुद्ध अक्षरों से युक्त, अच्छे गुरुओं के शिष्यों द्वारा विरचित तथा नवरसों मे यथावसर किसी भी एक रस से युक्त होना चाहिए। राग और रस में उनकी प्रकृति की दृष्टि से सामंजस्य भी उचित है।[4]

---

१. 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० ५८।

२. उपरिवत्, पृ० ६०।

३. परिशिष्ट आ, ६६।

४. परिशिष्ट अ, ५१।

यहाँ अक्षरों की चर्चा है, परन्तु छन्द की नहीं। निपुण व्यक्ति की रचना ही ध्रुवपद हो सकती है, निगुरे (गुरुहीन) व्यक्तियों की नही। राग और रस का सामंजस्य 'ध्रुवपद' का प्राण बताया गया है।

अबुल फजल की परिभाषा : अबुल फजल ने 'आईने अकबरी' में ध्रुवपद के सम्बन्ध में कहा है कि ध्रुवपद तीन या चार लयबद्ध पंक्तियों से निर्मित 'पद' है। उन पंक्तियों की लम्बाई कुछ भी हो सकती है। इन ध्रुवपदों का विषय प्रधानतया उन व्यक्तियों की प्रशंसा होती है, जो अपने पौरुष अथवा गुणो के कारण प्रसिद्ध होते हैं।[१] ध्रुवपद आगरा, ग्वालियर, बैरी (?) तथा आसपास के प्रदेशों में प्रचलित गीत है।[२]

इस परिभाषा में भी छन्द की चर्चा नही है, परन्तु गान की दृष्टि से पंक्तियों की लयबद्धता अनिवार्य है।

अबुल फजल उन गीतों को 'ध्रुवपद' न कहकर 'विष्णुपद' कहता है, जिनमें कृष्ण की स्तुति हो। 'ध्रुवपद' गानेवाले अबुल फजल की दृष्टि में 'कलावन्त' हैं[३] और सम्भवतः 'विष्णुपदों' के गानेवाले कीर्त्तनियाँ।[४] हम जानते हैं कि मन्दिरों में 'पदों' के द्वारा कीर्त्तन करनेवाले व्यक्ति 'कीर्त्तनियाँ' या 'कीर्त्तनकार' कहलाते है। 'अष्टछाप' के आठों कवियों की रचना का प्रयोजन भगवन्नामकीर्त्तन ही था।

'ध्रुवपद' और 'विष्णुपद' में अन्तर जानने के लिए अबुल फजल के अनुसार मथुरा में गाये जानेवाले वे गीत 'विष्णुपद' है, जो चार या छह पक्तियो से निर्मित खण्डों से बने होते है। इनका विषय कृष्णस्तुति होता है।[५]

वेद-कृत ध्रुवपद-परिभाषा : शिवाजी के पिता शाहजी का दूसरा नाम मकरन्द था। इन्ही के नाम पर इनके आश्रित **पण्डित वेद** ने 'संगीतमकरन्द' की रचना की है।[६] 'संगीतमकरन्द' में ध्रुवपद की परिभाषा यह है कि 'ध्रुवपद' में उद्ग्राह, ध्रुवक, आभोग ये

---

१. "The Dhoorpad, consists of stanza of three or four rhythmical lines of any length. They are chiefly in praise of men, who have been famous for their valour or virtue."—AIN, Glad. p. 140.

२. Dhoorpad in Agra, Gualior, Bary and the neighbourhood. —Ibid, p. 130.

३. "The Karawund (Kalawant) chiefly sing the Dhroopad." —AIN. Glad. p. 734.

४. "The Keertaniyas are Brahmins, whose instruments are such as were in use among the ancients, viz. the Pakhawaj, Rabab and Tal." —AIN. Glad. p. 734.

५. "Those of Mehtra (Mathura) are called Bishenpad consisting of stanzas of four or six lines and are in praise of Kishen (Krishna)." —AIN. Glad., p. 130.

६. भरतकोष, पृ० ६६३।

तीन 'धातु' होते हैं, जो प्रायः मध्यदेशीय भाषा मे निबद्ध होते है। कुछ लोग ध्रुवपद को उद्ग्राह-रहित और कुछ लोग आभोग-रहित भी प्रयुक्त करते है और कुछ लोग इसके 'ध्रुव' नामक भाग को ही 'ध्रुवपद' कहते है। यह भेद अन्वर्थ (ध्रुव नामक धातु में निबद्ध पद) हो जाता है।[1]

वेद के काल तक दो-तुके और तीन-तुके ध्रुवपद भी अस्तित्व में आ चुके थे। अबुल फजल भी तीन-तुके ध्रुवपदों का अस्तित्व मानता है। द्विधातु एवं त्रिधातु प्रबन्धों का अस्तित्व शुद्ध सूड-प्रबन्धों में मिलता ही है। अतः, वेद की दृष्टि ध्रुवपद का लक्षण करते हुए इन तथ्यों पर गई है, परन्तु ध्रुवपद को उद्ग्राह (आरम्भ) से हीन कहना ठीक नही है; क्योंकि आरम्भहीन गीत की तो सत्ता ही सम्भव नही। ध्रुवपद के चार धातुओं की पश्चात्कालीन संज्ञाओं—'स्थायी', 'अन्तरा', 'संचारी' और 'आभोग' पर प्रबन्ध के चतुर्धातु-वर्गीकरण का सीधा प्रभाव है। 'अन्तरा' और 'आभोग' तो सीधे ही 'सालगसूड'-प्रबन्धों से आये है।

भावभट्ट की परिभाषा : 'अनूप-संगीत-रत्नाकर' के रचयिता भावभट्ट ने अट्ठारहवी शती ई० में ध्रुवपद की परिभाषा इस प्रकार की कि 'ध्रुवपद' की भाषा संस्कृत या मध्यदेशीय हो सकती है। इसमें दो या चार वाक्य होते हैं, जिनमें नर-नारी की कथा होती है। शृंगार रस, भाव आदि होते है। यह रागालाप और पद से युक्त होता है, इसका प्रत्येक पाद पादान्त-अनुप्रास या पादान्त-यमक से युक्त होता है, इस प्रकार के चार पादों का अस्तित्व जहाँ हो और जिसमें 'उद्ग्राह', 'ध्रुवक' और 'आभोग' नामक तीन धातु हों, वह ध्रुवपद कहलाता है।[2]

भावभट्ट की परिभाषा में संस्कृत-रचनाएँ भी 'ध्रुवपद' की परिधि में आ गई हैं, परन्तु विषय-संकोच हो गया है। अबुल फजल जहाँ 'ध्रुवपद' का विषय वीरों और गुणशालियों की प्रार्थना-मात्र बताता है, वहाँ भावभट्ट 'ध्रुवपद' का विषय केवल 'नर-नारी-कथा' निर्दिष्ट करते हैं। 'ध्रुवपद' का त्रिधातुरूप इन्हें मान्य है और चरणों में पादान्त-

---

१. प्रायशो मध्यदेशीयभाषया यत्र धातवः।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगास्त्रय एते भवन्ति ते॥
उद्ग्राहरहितं केचित्परे त्वाभोगवर्जितम्।
उद्ग्राहाभोगरहितमन्वर्थमपरे जगुः॥ —भरतकोष, पृ० २९९।

२. गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम्॥
शृङ्गाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्तं पादान्तयमकं च वा॥
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम्॥
—उत्तरभारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २३।

अनुप्रास अथवा पादान्त-यमक की बात भी ये कहते हैं। एला-प्रबन्ध के प्रथम चरण के दो भागों को 'सानुप्रास' बताया गया है, यही तत्त्व भावभट्ट के पादान्त-अनुप्रास में दिखाई देता है। यमकों का अस्तित्व प्रकरण-गीतों में कहीं-कहीं प्रयोज्य 'विविध' नामक भाग में भी होता था।[१]

नृत्तसंग्रह की परिभाषा : नृत्य-सम्बन्धी एक पुस्तक-खण्ड को सम्पादित करके **डॉ० प्रियबाला शाह** ने व्यवहार के लिए 'नृत्तसंग्रह' नाम दे दिया है, जिसे डॉ० शाह दो-तीन सौ वर्ष पुराना समझते है,[२] परन्तु इस संग्रह में भावभट्ट की परिभाषा ज्यों-की-त्यो उद्धृत कर ली गई है।[३] अतः, सम्भव है कि यह खण्डित एवं अज्ञातकर्तृक रचना भावभट्ट की परवर्त्ती हो।

मुहम्मद करम इमाम की परिभाषा : मुहम्मद करम इमाम वाजिद अलीशाह का आश्रित था। उसका कथन है कि ध्रुवपद मे चार-पाँच चरण होते है और दो चरण भी होते हैं।[४] . चरण का अर्थ 'तुक' है, प्रथम तुक को स्थल कहते है, जो जनसाधारण मे 'आस्ताई' कहलाती है, दूसरी तुक को 'अन्तरा', तीसरी तुक को 'भोग' और चौथी तुक को 'आभोग' कहते है। तुक को 'खण्ड' भी कहा जाता है।[५]

मुहम्मद करम इमाम की परिभाषा में चरणों या तुकों की चर्चा तो है, परन्तु विषय, रस, भाव इत्यादि के सम्बन्ध में मौन का आश्रय लिया गया है। मुहम्मद करम इमाम में सूक्ष्म दृष्टि का सर्वत्र अभाव है।

भातखण्डे की परिभाषा : भातखण्डे ने ध्रुवपद की आधुनिक परिभाषा इस प्रकार दी है कि उसके चार भाग, स्थायी, अन्तरा, आभोग और संचारी होते है और कुछ ध्रुवपदों में केवल स्थायी और अन्तरा ही होते है।... वीर, शृंगार और शान्त रस की प्रधानता ध्रुवपदों में होती है और भाषा उच्च श्रेणी की होती है, इनका गान चौताल, सूलफाक (उसूले फ़ाख्तः), झम्पा, तेवरा, ब्रह्म, रुद्र इत्यादि तालों में होता है।[६]

भातखण्डे ध्रुवपद-गान को 'मर्दाना' और जोरदार कहते हैं,[७] परन्तु उन्हें जो ध्रुवपद सुनने के लिए मिले, वे वस्तुतः 'ध्रुवपद' के शव थे। स्त्रियों के द्वारा ध्रुवपद-गान

---

१. विविधो द्विविदारीकः स त्रिधा परिकीर्त्तितः।
सासुद्गश्चार्द्धसामुद्गो विवृतश्चेति सूरिभिः॥

—सं० र०, अ० स०, ताला० पृ० ३४।

२. नृत्तसंग्रह, इण्ट्रोडक्शन।

३. उपरिवत्, पृ० १८।

४. मअदन्०, पृ० १५६।

५. उपरिवत्, पृ० १६१।

६. क्रमिक पुस्तक-मालिका, चतुर्थ भाग, पृ० ४६-४७।

७. उपरिवत्, पृ० ४७।

की चर्चा अबुल फजल ने की है और बताया है कि 'दफ़ज़न' (दफ=ढप या डफ, 'ज़न=स्त्री) नामक स्त्रियाँ 'ध्रुवपद' भी गाती थी।[1] भरत के अनुसार तो गाना स्त्रियों के लिए ही स्वाभाविक है; क्योंकि स्त्रियों का कण्ठ निसर्गतः मधुर होता है। पुरुषों का प्रधान कार्य 'पाठ्य' है। यदि स्त्रियों में 'पाठ्य' की शक्ति और पुरुषों के गान में कही मधुरता दिखाई दे, तो यह उनका 'अलंकार' (अतिरिक्त या अपवादरूप विशेषता) है, स्वभाव नही।[2]

ध्रुवपदों की चार बानियाँ :

ध्रुवपदों में चार बानियाँ प्रसिद्ध अकबरी युग के कही पश्चात् हुई। भातखण्डे 'बानी' का अर्थ स्वराश्रित गानशैली या 'गीति' समझते है। एक ध्रुवपद को तानसेन-कृत कहा जाता है, जो वस्तुतः, तानसेन की कृति प्रतीत नहीं होता, इसमें अचल 'षड्ज-पंचम' की चर्चा है, जो इस ध्रुवपद के अतिरिक्त तानसेन की कृति में कही नही मिलती। ध्रुवपद मे चारों बानियों के ब्यौहार गिनाये गये है, वस्तुतः इस ध्रुवपद की रचना 'डागुर' लोगों को नीचा दिखाने के लिए की गई है, जो तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य कहते है। ध्रुवपद निम्नाकित है :

बानी चारौं के ब्यौहार सुनि लीजै हो गुनीजन तब पावै यह विद्यासार।
राजा गुबरहार, फौजदार खंडार, दीवान डागुर, बकसी नौहार।
अचल सुर पंचम, चल सुर रिषभ, मध्यम, धैवत, निषाद, गंधार।
सप्त तीन इकईस मूर्च्छना, बाईस सुरति, उनचास कूट तान तानसेन अधार।

इसमें 'गुबरहार' को 'राजा', अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, खण्डार को 'फौजदार', अर्थात् गुबरहार की अपेक्षा हीनतर, डागुर को दीवान, अर्थात् पूर्वोक्त दोनो की अपेक्षा हीन और नौहार को 'बख्शी' कहा गया है।

तानसेन के ध्रुवपदों में 'सुध बानी'[4] (शुद्ध वाणी) की चर्चा मिलती है। 'वाणी' का अर्थ 'रीति' कही नही होता। सन्तों की उक्ति को भी 'बानी' कहते है। प्रदेश-विशेष अथवा जाति-विशेष की भाषा को तत्तत्प्रदेश अथवा तत्तज्जाति की 'वाणी' कहा जा सकता है, गानशैली अथवा 'गीति' को नही।

---

१. "The Dufzun are chiefly Panjabi women, who play on the Dufs and Dehl (Dhol) and sing the Dhrupad." —Ain. Glad, p. 734.

२. **प्रायेण तु स्वभावात् स्त्रीणां गानं, नृणां च पाठ्यविधिः।**
स्त्रीणां स्वभावमधुरः कण्ठो नृणां (च) ललितत्वम्॥
ये स्त्रीणां पाठ्यगुणा भवन्ति नराणां च गानमधुरत्वम्।
ज्ञेयोऽलङ्कारोऽसौ नहि स्वभावो ह्ययं तेषाम्॥
—ना० शा०, ब० सं०, पृ० ६०४।

३. **रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ४८, ३५१।**

४. **उपरिवत्, पृ० ६१।**

मुहम्मद करम इमाम ने चार बानियों की चर्चा करते हुए 'बानियों' को जाति या प्रदेश से ही सम्बद्ध किया है। उसके अनुसार, **ब्रजचन्द** दिल्ली के निकट 'डांगर'-प्रदेश, **समोखनसिंह** 'खण्डहर'-प्रदेश और श्रीचन्द 'नौहा' नामक प्रदेश के रहनेवाले थे।[1] एक अन्य स्थल पर वह **तानसेन** को 'गौरारी' (गोबरहारी नही), ब्रजचन्द को 'नौहारी', श्रीचन्द को 'डाँगरी' और समोखनसिंह को 'खण्डारी' बानी का प्रवर्त्तक मानता है।[2] करम इमाम के इन दोनो वक्तव्यो मे विरोध है। चौबीसवे पृष्ठ पर वह **श्रीचन्द** को 'नौहा'-प्रदेश का निवासी बताता है और दो सौ तैंतीसवे पृष्ठ पर उनका निवासस्थान दिल्ली का 'डॉगर'-प्रदेश हो जाता है। इसी प्रकार, चौबीसवे पृष्ठ पर व्रजचन्द डाँगर-निवासी है और २३३ वे पृष्ठ पर वे 'नौहार' तथा दिल्लीवासी हो जाते है। व्रजचन्द ब्राह्मण कहे गये है और श्रीचन्द राजपूत। मुहम्मद करम इन दोनों को मुसलमान बना मानकर इनका नाम क्रमशः 'चॉद खॉ' और 'सूरज खॉ' रख देता है।[3] परन्तु, 'रागदर्पण' से उद्धृत भाग मे चाँद खॉ और सूरज खॉ सहोदर है।[4] असंगतियों के कारण हम मुहम्मद करम इमाम को ऐतिहासिक दृष्टि से तो भ्रान्त मानते है, परन्तु उसकी इस धारणा से सर्वथा सहमत है कि 'बानियों' का सम्बन्ध 'जाति' या 'प्रदेश' से था।

गौरारी बानी : 'गौरारी' शब्द 'ग्वालियरी' का अपभ्रंश (ग्वालियरी > ग्वारेरी > गौरेरी > गौरारी) है और ग्वालियर में बोली जानेवाली भाषा का द्योतक है, फकीरुल्लाह ने इसी भाषा को श्रेष्ठ कहकर इसका क्षेत्र निश्चित किया है, जिसकी चर्चा आ चुकी है। यही भाषा ध्रुवपदकारों की 'सुध बानी' (शुद्ध वाणी) है।

खण्डारी : खण्डार नामक स्थान पर एक दुर्ग भी था। इसपर बाबर के आक्रमण के समय राणा साँगा ने अधिकार किया था।[5] इस स्थान के निवासियों की भाषा का 'खण्डारी बानी' होना सम्भव है।

डागरी : मुहम्मद करम इमाम ने दिल्ली के निकट स्थित 'डाँगर' नामक एक प्रदेश की चर्चा की है। सम्भव है, वह आधुनिक 'दाँग' नामक स्थान हो। यहाँ के निवासियों की भाषा 'डाँगरी' हो सकती है। **सालिमचन्द 'डागुर'** (या डागर) की चर्चा फकीरुल्लाह ने भी की है।[6] डागर एक जाति भी है।

नौहारी : मुहम्मद करम इमाम तो एक प्रदेश को 'नौहा' बताकर वहाँ के व्यक्ति को 'नौहार' कहता है। **हसन खाँ नौहार** की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है। इन लोगों की भाषा का नौहारी कहलाना सम्भव है।

---

१. मअदनु०, पृ० २४।
२. उपरिवत्, पृ० २३३।
३. उपरिवत्।
४. उपरिवत्, पृ० २७।
५. बाबरनामः, पृ० २५२।
६. 'मानसिंह०', पृ० १३६।

व्रजभाषा-प्रबन्धों के चार धातु :

वस्तुतः, व्रजभाषा-ध्रुवपद 'ध्रुव' तथा 'मण्ठ' इत्यादि सालगसूड-प्रबन्धों के तत्त्व अपने-आपमें समेटे हुए है। चौदहवी शती ईसवी में गोपाल ने गान का आधार 'स्थाय' (ठाय), 'आलाप', 'गीत' और 'प्रबन्धों' को मानकर इन चारों के समुच्चय का नाम 'चतुर्दण्डी' रखा था। चतुर्दण्डी की उपमा उन चारो दण्डों से दी जाती है, जो किसी वितान 'शामियाना' का आधार बनकर उसे अपने ऊपर साधे रहते है। दूसरे शब्दों में इस बात को यो कहा जा सकता है कि गान-रूपी वितान को, आधार बनकर, ताने रहनेवाले चार आधार-दण्ड क्रमशः 'स्थाय' (राग-वाचक स्वर-समुदाय से युक्त वाक्य अथवा पाटाक्षर), 'गीत' (तीनों सप्तको मे व्याप्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश), 'आलाप' (वातावरण मे राग को व्याप्त करने के लिए प्रयोज्यमान स्वर-प्रयोग) और 'प्रबन्ध' है। ध्रुवपदों में 'चारो डाडी बाध आयै गोपाल' मे 'चारौ डाडी' 'चतुर्दण्डी' का ही अपभ्रश है।

व्रजभाषा-ध्रुवपद मे 'स्थायी' नामक धातु 'स्थाय' का स्थानीय है, 'अन्तरा' नामक धातु 'मण्ठ' जैसे सालगसूड-प्रबन्धो से आया है, 'सचारी' का मूल राग-सम्बन्धी विशिष्ट वर्णक्रम 'सचारी' में है और समाप्ति का वाचक 'आभोग' प्रबन्धो से सीधा आया है। अतः, हम यह कह सकते है कि व्रजभाषा-प्रबन्धों के चारों धातुओ की योजना भले ही नई हो, परन्तु वे कोई नवीन उद्भावना नही है, उनकी मौलिकता योजना मे है। मानसिंह तोमर के पण्डितों और गायको ने व्रजभाषा-ध्रुवपद के लिए अपनी सामग्री का संकलन संगीत के परम्परागत शास्त्रों से ही किया था।

व्रजभाषा-ध्रुवपद-प्रबन्धों के छह अग :

(अ) **स्वर :** ध्रुवपदों का अंग है। यह 'अंग' स्वर-संज्ञाओं का गान है।

(आ) **विरुद :** ध्रुवपदों का विकास मन्दिरों, नाट्यशालाओं और राजसभाओं की देन है, इसीलिए आश्रयदाता अथवा वर्ण्य 'नायक' की प्रशंसा विरुद के रूप में ध्रुवपद का अंग है।

(इ) **पद :** पद का तात्पर्य यहाँ सार्थक वाक्य है। विभिन्न रसों में प्रयोज्य काव्य ही 'पद' है। यही अंग साहित्य और संगीत का सगम है। अधिकांश प्रबन्धों का यह अनिवार्य अंग होता है।

(ई) **तेनक :** यह एक प्रकार का सस्वर जप है। एला-प्रबन्ध की चर्चा में यह बताया जा चुका है कि 'ॐ तत्सत्' मे जो 'तत्' शब्द ब्रह्म का बाचक है, उसकी तृतीया विभक्ति का रूप 'तेन' (उसने) ब्रह्म के कर्त्तृत्व का ज्ञान कराता है। 'उसने' चराचर प्रपच की रचना की है। यही 'तेन' शब्द के सस्वर जप का अभिप्राय है। ध्रुवपद-गायकों के आलाप में 'तननन-तननन' के रूप मे यही 'तेनक' जीवित है।

(उ) **पाट :** (विभिन्न वाद्यो से निकलनेवाली ध्वनियाँ) : शिवताण्डव में 'डमड्डमड्डमड्डमड्' इत्यादि ध्वनियाँ डमरू के पाटाक्षर है और 'धिमिन्-धिमिन्-

धिमिन्-धिमिन् जैसी ध्वनियाँ मृदंग के। देवताओं को प्रसन्न करने के साथ-ही-साथ शब्दों का लयगत अनुरंजन भी इनका प्रयोजन है।

(ऊ) ताल : प्रतिष्ठार्थक 'तल्' धातु के पश्चात् 'घञ्' प्रत्यय लगने पर 'ताल' शब्द का निर्माण होता है। गीत, वाद्य और नृत्य ताल में प्रतिष्ठित होते है। ध्रुवपद में यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

एला-प्रबन्ध की चर्चा में यह बताया जा चुका है कि षडंग प्रबन्ध की जाति मेदिनी, पंचांग प्रबन्ध की जाति आनन्दिनी, चतुरंग प्रबन्ध की जाति दीपनी, त्यंग प्रबन्ध की जाति भावनी और द्वयंग प्रबन्ध की जाति तारावली होती है। व्रजभाषा-ध्रुवपदों मे इन अंगों सैं युक्त किन्ही-किन्ही जातियों के दर्शन होते है। बैजू के निम्नांकित ध्रुवपद में स्वर, पद और ताल तीनों अंगों का प्रयोग हुआ है और यह भावनी जाति का उदाहरण है.

सा रे ग म प ध नि सप्त सुर, मो मन में ऐसी ही आवै।
आरोही अवरोही और संचारी लय दिखावै॥
नी ध प म ग रे स नीनी धध पप मम गग रेरे स।
स रे ग म प ग म प ध नी सा रे स।
नीध नीध पम पम गम नीध रेगम पम गग रेरे,
अलंकार नाद तीन ग्राम मूर्च्छना श्रुति प्रमान
सा नी ध प स रे गम, कंठ बरन बनावै।
कहै बैजू बावरे सुनियै गोपाल, संगीत मुद्रा सुद्ध बानी।
तन्त्र मत सौं बतावै।[1]

पाटाक्षरों का प्रयोग हमीर राग और चौताला ताल में गेय निम्नांकित ध्रुवपद में किया गया है :

बाजत हैं हो मिरदंगी इनि भेदनि तकिटि तक धि धि किटि तक धा धा किटितक। सम विसम अतीत अनाघात आंन आंन भांतिनि दिषावत तकिटि धिकिटि धितांग तकधा किटितक। उलटि पलटि परनि ढरनि मुरनि संगीत रीति नैन विरस सरस करत सुध मुद्रा जानत। प्रेमदास यह प्रकाल गुनीअनि मन भावत तकिटि तक धिधिकटि तक्धि धिलांग धिलांग धिलांग तकिध्धा धिलांग धिलांग धिलांग तक धाधा किट तक।[2]

इस ध्रुवपद का विषय आदर्श-गान और वादन है तथा इनमे ताल-मृदंग के पाटाक्षर पद और ताल का प्रयोग हुआ है। यह दीपनी जाति का उदाहरण है। राजबहादुर के एक और ध्रुवपद को उदाहरण के रूप में यहाँ दिया जाना पर्याप्त होगा, जिसका विषय लक्ष्मीनारायण की स्तुति है और जिसमें पद, पाटाक्षर स्वर और ताल का

---

१. बैजू और गोपाल, पृ० ७४।

२. परिशिष्ट आ, १७३।

प्रयोग है। चतुरंग होने के कारण यह भी भावनी जाति का ही उदाहरण है। इसमें दूसरी तुक में आये हुए अर्थहीन अक्षर मृदंग के और चौथी तुक में आये हुए अक्षर 'ती अैय', 'ती अैय' नृत्य के पाटाक्षर 'थेईया थेईया' के अशुद्ध रूप है। प्रतिलिपिकर्त्ता का प्रमाद इस अपभ्रंश में कारण है। ध्रुवपद निम्नाकित है :

परमात्मा जीवात्मा तुं अन्तरात्मा श्रीलक्ष्मीनाराइन जगव्यापक।
संगीत नाद ताल सकल आपु तकिटितक धि धि किटि तकध्रुम्ं॥
तक जग नग नग धुम किटि तक धा गुप्त आपु ही व्यापक।
सप्त सुर सम्पूरन तुम ही प सां रे रे रे रे रे सा सा नी ध प
मा ग रे सा तुम ही जप जापक।
ती अैय ती अैय आ सब तुम हीं 'राजबहादुर' परम पुरिष श्री
श्रीधर साहिब ध्यान आपु ही ध्यापक।[1]

जिन ध्रुवपदों में आश्रयदाता की प्रशसा है, उनमें सार्थक वाक्य-समूह पद है और प्रशंसा-विरुद। वे व्यंग माने जाने चाहिए; क्योंकि ध्रुवपदों का अनिवार्य अंग ताल है। ऐसे सभी ध्रुवपद भावनी जाति के उदाहरण है। जिनमे केवल वर्ण्य विषय है, उनमे केवल दो अंग—पद और ताल समझे जाने चाहिए, वे तारावली जाति के उदाहरण है। इनसे अधिक अंगवाले ध्रुवपदों की सम्भावना भी है, जिनका उल्लेख विस्तार-भय से नहीं किया जा रहा है।

(आ) वाग्गेयकारों की परम्परा और ध्रुवपद के विषयों का स्रोत

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। इन पुरुषार्थो की प्राप्ति मानव-जीवन का ध्येय है। प्रथम तीन पुरुषार्थ इस जीवन मे प्राप्त होते है और यदि परस्पर अविरोधी रूप में मनुष्य इन तीनों पुरुषार्थो का साधन करता रहे, तो परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति मे बाधा नहीं पड़ती। धम अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों का साधन कहा गया है। जो अभ्युदय मे बाधा डालता हो, वह धर्म नही है और जो नि:श्रेयस-विरोधी हो, वह भी अधर्म है। जीवन में सन्तुलन बनाये रखकर धर्म के दोनों पक्षों की सिद्धि विवेकशील मानव का कर्त्तव्य है।

श्रेय की ओर प्रवृत्ति प्रयत्न से होती है और प्रेय की ओर मनुष्य स्वत: झुक जाता है। श्रेय भी मनुष्य को ललित प्रतीत हो, उसमे से उपदेश की कटुता निकलकर कान्ता-वाक्य जैसी मधुरता और प्रियता आ जाय, इसीलिए ललित कलाओं का विकास हुआ है। काव्य का प्रयोजन यश, अर्थ, व्यवहार-ज्ञान, अमंगल की शान्ति और लोक-रंजन है। यही स्थिति 'गीत' की है। उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का साधन बताया गया है। वीणावादक ब्राह्मण किसी युग में यज्ञों में वीणा-

1. परिशिष्ट अ, २३८।

वादन करते थे, गाते थे। याजकों के धर्म की और गायक-वादक ब्राह्मणों के अर्थ की सिद्धि गीत से होती थी। श्रुति कहती है, स्त्रियाँ गायक की कामना करती हैं, अर्थात् गीत, कामसिद्धि का साधन है।[1] आहत नाद की सिद्धि से गायक को अनाहत की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार, हम देखते है कि गीत भी पुरुषार्थ-चतुष्टय का साधन है।

काव्य गीत का अंग है, और काव्य के लिए संगीतशास्त्र में 'पद' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथास्थान बताया जा चुका है कि यह पद निबद्ध और अनिबद्ध दो रूपों में विभक्त है। अनिबद्ध पद की संज्ञा चूर्ण-पद भी है। ये शब्द क्रमश. पद्य और गद्य के नामान्तर है।

वाणी की रचना करके उसे गेय रूप में ढालनेवाले व्यक्ति 'वाग्गेयकार' होते है, जिनमें व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, रस, भाव तथा देश-स्थितियो का ज्ञान अनिवार्य बताया गया है।[2] इनकी एक बहुत बडी विशेषता परचित्त-परिज्ञान बताई गई है,[3] जिससे कि ये श्रोताओं के प्रत्येक वर्ग को सन्तुष्ट कर सके। इस दृष्टि से यह सिद्ध होता है कि वाग्गेयकार को जहाँ एक ओर सगीत के शास्त्रीय एव व्यावहारिक दोनों पक्षो में निष्णात होना चाहिए, वहाँ उसे उन सभी बातों में चूडान्त पण्डित होना चाहिए, जो सत्साहित्य के निर्माण के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से वाग्गेयकार का स्थान बहुत ऊँचा और कर्त्तव्य कठिन है।

लोक की भिन्नरुचिता को दृष्टि में रखते हुए विचारको ने गीतों का वर्गीकरण किया है। भरत का कथन है कि आचार्य (सगीत के मर्मज्ञ) 'सम' गीत को पसन्द करते है। पण्डितो के लिए 'व्यक्त' गीत रुचिकर होता है। नारियाँ 'मधुर' गीत पर रीझती है और अन्य लोग 'विकृष्ट' गीत की कामना करते है।[4]

---

१. गीतस्य धर्मसाधनत्वं तावदश्वमेधप्रकरणे 'ब्राह्मणौ वीणागाथिनौ गायतः... ब्राह्मणोऽन्यो गायेत्' इति श्रुतेर्देवार्चनादिषु गीतादेस्तदङ्गत्वेन परिग्रहाच्च सिद्धम्। अर्थसाधनत्वं लोकतो दृष्टम्। कामसाधनत्वं तु 'तस्माद्गायन्तं स्त्रियः कामयन्ते' इति वेदतो लोकतश्च सिद्धम्। मोक्षसाधनत्वं च :

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं स गच्छति ॥

इति याज्ञवल्क्यस्मृतेः, प्रकरणाख्यमद्रकादिगीतेषु 'शिवस्तुतौ प्रयोज्यानि मोक्षाय विदधे विधिः' इत्युक्तत्वाच्च। —कल्लिनाथ, सं० र०, अ० सं०, प्रथम खण्ड, पृ० १७।

२. शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता।
छन्दः प्रभेदवेदित्वमलङ्कारेषु कौशलम् ॥
रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी। —सं० र०, खण्ड २, पृ० १३५।

३. परचित्तपरिज्ञानं। —सं० र०, खण्ड २, पृ० १३५।

४. आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदं तु पण्डिताः।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विकृष्टमितरे जनाः ॥ —ना० शा०, पृ० ६४१।

सम : जिसकी गति न द्रुत हो न विलम्बित, जो ऊँचे-नीचे स्वरो से युक्त हो, साथ ही जिसमें पद और ताल की योजना हो, वह गीत 'सम' कहलाता है ।

व्यक्त : क्रिया-कारक से युक्त, सन्धिदोष-हीन और स्वरों के व्यक्त रूप से युक्त गीत की संज्ञा 'व्यक्त' है ।

मधुर : ललित अक्षरों से युक्त शृंगार-रसपूर्ण और श्राव्य नाद एवं समता (काव्य और संगीत का सन्तुलन) से संवलित रूप 'मधुर' कहलाता है ।

विक्रुष्ट : तालस्वरयुक्त और प्रयोगबहुल गीत 'विक्रुष्ट' है ।[1]

पार्श्वदेव का कथन है कि उच्च-नीच स्वरों एवं वीर-रस-प्रयोज्य अक्षरों से युक्त आरभटी-वृत्ति-संवलित और उत्साहपूर्ण गीत वीरों को प्रिय होता है : शृंगार-रस-भूषित प्रेम का उद्दीपन करनेवाले शब्दों से युक्त तथा करुण कण्ठध्वनि से गाया जानेवाला गीत, विरही जनों को भला प्रतीत होता है । उल्टे-सीधे शब्दों से युक्त स्वरभंगी-प्रधान और परिहासपूर्ण गीत विटों का मनोमोहक है । गूढार्थ और परमार्थ को प्रकट करनेवाले वाक्यों से युक्त गीत योगिवल्लभ होते है, जिनका विषय अध्यात्म होता है । शुभ वाक्यों एव मगलमय शब्दो से युक्त विवाहादि उत्सव मे प्रयोग के लिए विरचित मगल-गीत महिलाओ को प्रिय होता है । देवता की स्तुति से युक्त उनके प्रभाव को बतानेवाला और श्रोताओं में आस्तिक्य-भाव की सचार करनेवाला गीत भक्तों को प्रिय होता है और गमक-बहुल, रूक्ष एवं विषम गीत वादिवल्लभ है (सगीत के उस्तादों को प्रिय है) ।[2]

---

१. आचार्याः सममिच्छन्ति व्यक्तमिच्छन्ति पण्डिताः ।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥
उच्चनीचस्वरोपेतं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
पदतालैः समं गीतं सममाचार्यवल्लभम् ॥
क्रियाकारकसंयुक्तं सन्धिदोषविवर्जितम् ।
व्यक्तस्वरसमायुक्तं व्यक्तं पण्डितसम्मतम् ॥
ललितैरक्षरैर्युक्तं शृङ्गाररसरञ्जितम् ।
श्राव्यनादसमोपेतं मधुरं प्रमदाप्रियम् ॥
स्वरैरुच्चतरैर्युक्तं प्रयोगबहुलीकृतम् ।
विक्रुष्टं नाम तद्गीतमितरेषां मनोहरम् ॥
—पार्श्वदेव : सं० र०, ख० २, पृ० १९३; सिंहभूपाल द्वारा टीका में उद्धृत ।

२. गानमारभटीवृत्त्या वीररसङ्गतवर्णकम् ।
उच्चनीचस्वरं गीतं सोत्साहं शूरवल्लभम् ॥
प्रेमोद्दीप्तपदप्रायं शृङ्गाररसभूषितम् ।
करुणाकाकुसंयुक्तं करुणं विरहिप्रियम् ॥

उपर्युक्त वर्गीकरण से हमे यह ज्ञात होता है कि वाग्गेयकार का कर्त्तव्य कितना कठिन है। साहित्यकार या कवि जहाँ अरसिक श्रोता की अरसिकता पर उपेक्षापूर्वक हँसकर छुटकारा पा लेता है, वहाँ वाग्गेयकार अथवा गायक को यह सुविधा नही। गीत की तो योजना ही सबको रिझाने के लिए है। भरत के रंगस्थल में स्त्रियाँ, बच्चे और मूर्ख भी है, जिनका रंजन करना गायक का कार्य है और गायक को सर्वलोकरंजक सामग्री देना वाग्गेयकार का। अत., वाग्गेयकारों का कार्य कवियों की अपेक्षा कही कठिन है। कवि अपनी रचना का आस्वाद सहृदयो को करा सकता है, परन्तु वाग्गेयकार द्वारा प्रस्तुत सामग्री में जनता के प्रत्येक वर्ग को रिझानेवाले तत्त्व होने चाहिए।

पन्द्रहवी शती ईसवी के ध्रुवपदकारो की योग्यता उपर्युक्त वाग्गेयकारो की अपेक्षा कम थी, परन्तु उनकी समस्याएँ वही थी; क्योकि लोक सदा ही भिन्नरुचि होता है। उनकी प्रवृत्तियाँ भी वही थी, उनका कार्य आनुवशिक था और कुछ विशेषताएँ उनकी घुट्टी मे पड़ी हुई थी। अतः, ध्रुवपदकारों की रचनाओं पर विचार करते समय हमे उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

प्रथम अध्याय में यह बताया जा चुका है कि वैदिक सगीत के आधार पर ही नाराशसी गाथाओ का निर्माण हो चुका था और वैदिक गायक नाराशंसी गाथाओं के गानेवालों को अच्छा नही समझते थे। यह भी बताया जा चुका है कि लोकरंजन के लिए संगीत के प्रयोक्ताओं की दृष्टि मे वैदिक लोग विनोद के पात्र-भर रह गये थे। यह प्रवृत्ति उस समय से आजतक चली आई है। निश्शक शार्ङ्गदेव जैसे चतुर्मुख आचार्य ने 'छान्दस' व्यक्तियो को 'अविदग्ध' कहा है[1] और मनुस्मृति मे हम गीत-वाद्य और नृत्य का निषेध देखते है[2] और यह व्यवस्था पाते है कि सवर्णो को गीत-वाद्य और नृत्य से आजीविका का

विपरीतपदैर्युक्तं स्वरभङ्ग्युपबृंहितम्।
गीतं हास्यरसोदारं परिहासं विटप्रियम्॥
गूढार्थैः परमार्थैश्च संसारसुखमुख्यकैः।
पदैर्नियोजितं गीतमध्यात्मं योगिवल्लभम्॥
शुभवाक्ययुतैर्गीतं शुद्धपञ्चमनिर्मितम्।
विवाहाद्युत्सवे गेयं मगलं महिलाप्रियम्॥
देवतास्तुतिसंयुक्तं तत्प्रभावप्रबोधकम्।
आस्तिक्योत्पादनं गीतं रम्यं भक्तजनप्रियम्॥
अभ्यवस्थानकं गीतं तालपाटैरलक्षितम्।
प्रयोगबहुलं रूक्षं विषमं वादिवल्लभम्॥

—पार्श्वदेव : सं० र०, अ० सं०, खण्ड २, पृ० १६२ पर सिंहभूपाल द्वारा अपनी टीका में उद्धृत।

१. 'छान्दसोऽचतुरप्रियः'। —सं० र०, अ० सं०, खण्ड २, पृ० १६६।

२. न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्। —मनु०, पृ० १४७, श्लोक ६४।

उपार्जन नही करना चाहिए। मनुस्मृति सूतों, मागधों और नटों को वर्णसंकरता का परिणाम बताती है। ब्राह्मणी और क्षत्रिय के धर्म-बाह्य सम्बन्ध का परिणाम 'सूत', ब्राह्मणी और वैश्य के अधर्मयुक्त देह-सम्बन्ध का फल 'मागध' और व्रात्य (धर्मच्युत) क्षत्रिय से सवर्णा में उत्पन्न सन्तान 'नट' कहलाती है।[1]

वर्णसकर जातियों की आजीविका के लिए जब उनके व्यवसायो की व्यवस्था की गई, तब सूतों, मागधों और नटों को कुछ कार्यों के करने का एकाधिकार मिला। उन कार्यों से आजीविका कमाना सवर्ण जातियो के लिए निषिद्ध कर दिया गया। सूतो, मागधों और नटों की चर्चा हम अत्यन्त आरम्भिक कहे जानेवाले युग मे भी पाते है। 'वाल्मीकि-रामायण' मे सूतों, नटों इत्यादि की चर्चा अनेक स्थानों पर आई है। ये हमें स्तुतिकर्त्ताओं एवं सगीतजीवियों के रूप मे मिलते है।

'नाट्यशास्त्र' के 'नटशाप' अध्याय में बताया गया है कि ऋषियों के शाप से भरत-मुनि के पुत्रों का वंश शूद्राचार, अशुचि एव स्त्री-बालोपजीवी हो गया।[2] जातिवाची 'भरत' शब्द का अर्थ 'जायाजीव' (स्त्रियों की कमाई खानेवाला) हुआ। अमरकोश मे 'शैलाली', 'शैलूष', 'जायाजीव', 'कृशाश्वी', 'भरत', 'नट', 'चारण' और 'कुशीलव' सगीत-जीवी जातियों मे गिनाये गये है।[3]

'कुशीलव' का मूल राम के पुत्र कुश और लव के जोड़े मे है। 'वाल्मीकिरामायण' में इन दोनों भाइयों के नाम का साथ-साथ प्रयोग 'कुशीलवौ' कहकर अनेक स्थलों पर किया गया है।

वाल्मीकिरामायण के टीककार 'राम' ने लिखा है कि कुशीलव शब्द में पृषोदरादि गण के प्रभाव से 'कुश' का 'कुशीभाव' हो जाता है और 'कुश' तथा 'लव' के वाचक 'कुशीलवौ' पद की सिद्धि होती है।[4] हम यह जानते है कि कुश और लव इन दोनों को

---

१. क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।—मनु०, पृ० ४०४, श्लोक ११।
वैश्यान्मागधवैदेहौ ... ... ॥ –उपरिवत्।
झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च॥–मनु०, पृ० ४०६, श्लोक २२।

२. निर्ब्रह्मणो निराहूतः शूद्राचारो भविष्यति।
यश्च वा भवतां वंशः स चाशौचो भविष्यति॥
ये च वो वंशजास्तेऽपि भविष्यन्त्यथ नर्त्तकाः।
परोपस्थानवन्तश्च पुंस्त्रीबालोपजीविनः।—ना० शा०, व० सं०, पृ० ६६१।

३. शैलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवाः कृशाश्विनः।
भरता इत्यपि नटाश्चारणास्तु कुशीलवाः॥—अमरकोश, पृ० २४१।

४. कुशीलवौ कुशलवौ। कुशशब्दस्य कुशीभावः पृषोदरादित्वात्।—वा० रामायण, पृ० १७ की टीका।

भगवान् वाल्मीकि ने रामायण की शिक्षा गेय रूप में भी दी थी और दोनों ने सर्वथा अपरिचित रहकर भगवान् रामचन्द्र की सभा में गुणियों के समक्ष इसका गान किया था। रामायण-गान के लिए कुश और लव को अयोध्या भेजते समय वाल्मीकि ने उपदेश दिया था कि तुम्हें जब रामचन्द्र राजसभा में गान के लिए बुलाये, तब धन की इच्छा से तनिक भी लोभ न करना; क्योंकि फल-मूल पर निर्वाह करनेवाले आश्रमस्थ व्यक्तियो को धन का क्या करना है।[1] प्रतीत यह होता है कि कालान्तर में कुछ संगीतजीवियों ने अपने-आप को गायक-वादक होने के कारण कुश और लव के सम्प्रदाय से सम्बद्ध बताना आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि 'कुशीलव' शब्द नित्य द्विवचनान्त न रहकर जातिवाची बन गया। अमरकोश के टीकाकार महेश्वर ने कुशीलव शब्द का अर्थ 'कुत्सित शील से युक्त' कर डाला।[2] महेश्वर की यह चेष्टा जातिवाची 'कुशीलव' शब्द को बलात् अन्वर्थ बनाने का प्रयत्न है।

अस्तु; यह सिद्ध है कि संगीतजीवी ध्रुवपदकारों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और वे अपनी लीक की रक्षा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी करते चले आ रहे थे।

बात-वात पर नैतिकता की दुहाई देनेवाले कुछ सज्जन भारतीय संस्कृति को ब्राह्मण युग, क्षत्रिय-युग इत्यादि में बाँटकर और नटों, नर्त्तकों, गणिकाओं, वेश्याओं तथा उनके आश्रयदाताओं को क्षत्रिय-युग की देन कहकर उस भरत को भी निवृत्तिमार्गियों में गिना डालते हैं, जिसके नाट्यशास्त्र का मुख्य प्रयोजन जनरजन है और जिसमे कवियों, गायकों, नटों, विटो और नायिकाओं की ही चर्चा मुख्य विषय है। यहाँ इतना कहे विना नहीं रहा जाता कि पाश्चात्त्यों ने भारत पर शासन करने के लिए यहाँ की वर्ण-व्यवस्था का चित्र वर्ण-भेद के रूप में करके हिन्दुओं में परस्पर फूट डालने के लिए ही सवर्ण-असवर्ण और उच्च-नीच के भेद को उभारा और भारतीय मूल ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा से असम्पृक्त भारतीयो को अपने 'नारे' दुहराने के लिए 'मसाला' दे दिया।

जैसा कि कहा जा चुका है धर्म, अर्थ और काम में सन्तुलित साधन एक आदर्श है, परन्तु ब्रह्मवादी जनक जैसे व्यक्तियों की सेनाएँ नही उत्पन्न होती और न शंकराचार्य जैसे व्यक्ति ही प्रतिदिन उत्पन्न हुआ करते है। ऐसे व्यक्ति लोक के लिए आदर्श होते हैं, परन्तु लोक के समस्त व्यक्तियों को अपने समान बना देने में कभी सफल नही होते।

आश्रयदाताओं की प्रशसा, नायिकाओं के रूप-वर्णन और ईश्वरो के विलास को हेय दृष्टि से देखनेवाले व्यक्तियों में अधिकाश ऐसे होते है, जिनके लिए यह स्थितियाँ स्वप्नमात्र होती है। अयोध्या का तथा किष्किन्धा और लकापुरी के अन्तःपुरो का जो वर्णन महर्षि

---

१. लोभश्चापि न कर्त्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा॥
—वा० रा०, उ० का०, पृ० १११०।

२. 'कुत्सितं शीलमस्त्यस्य कुशीलवः।—अमरकोश-टीका, पृ० २४१।

वाल्मीकि ने किया है, वह उन मूर्त्तियों की आँखें खोल देनेवाला है, जिन्होंने सम्भवतः **वाल्मीकि** और **भरत** के ग्रन्थों का दर्शन किये विना ही इन वस्तुओं को तथाकथित क्षत्रिय-सस्कृति की देन बना डाला है। वाल्मीकि और भरत को एक तथाकथित ब्राह्मण-युग में जिस निर्दयता के साथ इन बेचारों ने ढकेला है, वह अपना उदाहरण स्वय है।

पन्द्रहवी शती ईसवी के ध्रुवपदकारों ने जिन सम्राट् आश्रयदाताओ के गुणों का वर्णन किया है, वे कालचक्र के कारण अहिन्दू है। यदि यही हिन्दू होते, तो उनके विलास सम्भवतः हमारी दृष्टि मे उतनी घृणा का विषय न बनते, क्योकि 'मालविकाग्निमित्र' और 'मालतीमाधव' जैसे नाटकों के नायकों को हम घृणा की दृष्टि से नही देखते और इन नाटको के काव्यगत सौष्ठव पर निरन्तर मुग्ध होते आ रहे हैं।

राजनीतिक दृष्टि से हम मुगल-सम्राटों के विषय में कोई भी सम्मति रखे, परन्तु इतना हमे मानना होगा कि **अकबर से बहादुरशाह द्वितीय** तक काव्य, संगीत और विलास की जो परम्पराएँ उनके दरबारों और अन्तःपुरों में रही है, वे उन्हे भारत से ही मिली है। सचमुच, इन परम्पराओं की रक्षा करने के लिए हमे उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

'श्रीमद्भागवत' के अनुसार, इतिहास के सर्वप्रथम राजा **स्वायम्भुव मनु** की कन्या एवं **महर्षि कपिल** की माता **देवहूति** ने अपने पति **महर्षि कर्दम** के प्रभाव से जो प्रासाद प्राप्त किया था, उसमे सहस्रों अलकृत सुन्दरियाँ उन दोनों की सेवा के लिए विद्यमान थी। अतः, मुगलों के बड़े-बड़े महलों मे सहस्रों दासियों की उपस्थिति न तो आश्चर्य का विषय होना चाहिए, न आपत्ति का।

स्मृतिकार **मनु** परदाराओं से बातचीत करने की अनुमति केवल भिक्षुकों, बन्दीजनों यज्ञ के लिए दीक्षित ब्राह्मणों और भृत्यजनों को देते है,[१] परन्तु नट इत्यादि जाति की स्त्रियो से वार्तालाप की अनुमति वे सभी को निर्बाध रूप में देते है, क्योंकि नट तो अपनी स्त्रियों को अलंकृत करके आजीविका कमाने के लिए पर-पुरुषों के पास प्रच्छन्न रूप से भेजते ही है।[२] बादशाह, अमीर या कलाकार यदि रूपाजीवाओं पर रीझते और नायिका-भेद के वर्णन मे आनन्द लेते है, तो वे बेचारे हमारी दृष्टि में तो मनु के नियम का उल्लंघन नही करते।

जिन कलावन्तों, ढारियों अथवा अन्य संगीतजीवियों की चर्चा ध्रुवपदकार के रूप में की जा चुकी है, उनकी आजीविका का आनुवशिक साधन संगीत था। इसीलिए,

---

१. **भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा।**
सम्भाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः॥—मनु०, अ० ८, पृ० ३३५,
श्लो० ३६०।

२. **नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु।**
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च॥
—मनु०, अध्याय ८, श्लो० ३६२, पृ० ३३६।

हम उनमें ब्राह्मण इत्यादि सवर्ण जातियों में उत्पन्न व्यक्तियों का प्रायः अभाव पाते है। जिन जातियों का आनुवंशिक कार्य विरुद अथवा स्तुति का गान करना रहा, वे जब मुसलमान हुई, तब भी उनकी आजीविका का साधन यथापूर्व बना रहा। कलावन्त, ढारी इत्यादि जातियाँ भी प्राचीन संगीतजीवी जातियों के मध्यकालीन रूप हैं। बन्दीजनों में स्तुतिपाठ के साथ-ही-साथ गान-वादन भी आजीविका का साधन हो गया था, आज भी है। इस जाति ने जहाँ अनेक समर्थ कवि उत्पन्न किये, वहाँ अच्छे वाग्गेयकार भी। इन जातियों में साहित्य और संगीत दोनों की सेवा करनेवाली महान् विभूतियाँ हुई है। आज भी ग्वालियर इत्यादि स्थानों में इसके अनेक उदाहरण विद्यमान है।

राज्याश्रित व्रजभाषा-कवियों ने जीवन की जिन झाँकियों को अपने काव्य का विषय बनाया है, वे सभी विषय ध्रुवपदकारों के साहित्य का भी विषय बनी हैं, उनका स्रोत एक है और वे उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। ध्रुवपदकारों ने अपनी जिन कृतियों से वाङ्मय के प्रासाद को सजाया है, वे उतने ही समादर की अधिकारिणी है; जितना कि हम पाठ्य अथवा श्रव्य रचनाओं को देते हैं। मानव-जीवन को जिन चार आश्रमों में हमारे पूर्वजों ने बाँटा है, वे चतुर्वर्ग के साधन है। परन्तु, विशिष्ट-विशिष्ट पुरुषार्थ के साधन में विशिष्ट-विशिष्ट आश्रम अधिक उपयुक्त है। धर्म की चिन्ता प्रतिक्षण की जानी चाहिए, परन्तु विशेषतया मोक्ष का साधन बुढापे की बात समझी जाती है।

जिस प्रकार राज्याश्रित व्रजभाषा-कवियों के मन में वृद्धावस्था एक प्रकार के निर्वेद का उदय करती थी और वे चौथेपन में काशी, वृन्दावन अथवा गगातीर का आश्रय लेना चाहते थे, उसी प्रकार ध्रुवपदकार भी चौथेपन मे प्रायः हरिनाम की ओर झुकते थे। अनेक देवी-देवताओं की स्तुति मे सफल छन्दों की रचना करनेवाले **पद्माकर भट्ट** जिस प्रकार अपनी उन रचनाओं के कारण भक्तों की कोटि में नही आ पाते, उसी प्रकार बुढ़ापे में शिथिलेन्द्रिय गायकों की विरक्तिपरक रचनाएँ उन्हें भक्त नही सिद्ध करती। गायक-वादक और ध्रुवपद-रचनाकार राज्याश्रित थे तथा उनका राजकीय वातावरण से प्रभावित होना आश्चर्य की बात नही है। वे एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति थे, जो अनुकूल स्थिति पाकर ही पनपता है, लहलहाता है और इस स्थिति के अभाव मे मुरझा जाता है।

निम्नांकित पंक्तियों में हम उन विषयों और उनके उदाहरणों का उल्लेख-मात्र करेंगे, जो ध्रुवपदों की परिधि में आये है। उनका साहित्यिक मूल्यांकन इस प्रकरण के अन्तर्गत नहीं है।

स्तुति : ध्रुवपदकारों ने जिन स्तुतियों की रचना की है, वे राजाओं के मन्दिरों मे अथवा उनकी दैनिक विधि में पुजन के समय गान के लिए है। हिन्दू-राजाओं के आश्रित मुसलमान-ध्रुवपदकारों ने विष्णु, शंकर, गणेश इत्यादि देवताओं की स्तुति में और हिन्दू-ध्रुवपदकारों ने अल्लाह, पीर, पैगम्बर इत्यादि की प्रशंसा में आजीविका के कारण ही ध्रुवपद लिखे हैं। यह आश्चर्य की बात नही है। उनकी स्थिति उन व्यवसायियों जैसी थी,

जिन्हें प्रत्येक वर्ग के ग्राहक को प्रसन्न करने और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सब प्रकार की वस्तुओं का मेल अपनी दूकान में रखना पड़ता है। हिन्दू-ध्रुवपदकारों ने जिन ध्रुवपदों की रचना हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुति में और मुसलमान-ध्रुवपदकारों ने इस्लाम से सम्बद्ध महापुरुषों की प्रशंसा जिन ध्रुवपदों मे की है, वे उनके लिए 'एक पन्थ दो काज' की कहावत को चरितार्थ करनेवाले सिद्ध हुए। ऐसी रचनाओं से उनकी अपनी धार्मिक भावनाओं को सन्तोष भी होता था और उपर्युक्त आश्रयदाता की भी मनस्तुष्टि हो जाती थी। ध्रुवपदों मे एक बडी मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यह दिखाई देती है कि मुसलमान आश्रयदाताओ को 'अशीस' देते अथवा उनके लिए मगल-कामना करते समय ध्रुवपदकारों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गुरु, गणेश, सरस्वती इत्यादि का भी स्तवन किया है और सम्बद्ध ध्रुवपदों की रचना अपने मुस्लिम-आश्रयदाताओं के समक्ष उनके दरबारो मे गाने के लिए की है। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरगजेब, बहादुरशाह प्रथम इत्यादि मुगल-सम्राटो के दरबारो मे गाये जानेवाले ध्रुवपद इस प्रवृत्ति का परिचय देते है। औरगजेब के लिए मगलकामना करते हुए किसी ध्रुवपदकार ने कहा है :

गुर गनेस्वर सरसुती नरहर और ब्रंम्ह परब्रंम्ह प्रसन भऐ आराधें तब ऐसौ साहिब मैं पायौ। साहिब किरानमानी साहि जिहां नंदन जगवदन सुलितानि औरंगजेब चतुरदिसि विद्यानिधांन क्रपांन (ल) जिहांन में नर जाते रीझि जसु गायौ।

—परिशिष्ट आ, १५६।

एक और मनोरंजक प्रवृत्ति यह है कि जो आश्रयदाता स्वय भी ध्रुवपदकार थे, उन्होने अन्य धर्मो के महापुरुषो से मंगलकामना की है। केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह 'धीरज' को गणेश, रामचन्द्र, गगा, विष्णु, शंकर तथा अन्य तैंतीस करोड देवता पर्याप्त न प्रतीत हुए और उन्होंने निम्नाकित ध्रुवपद मे ख्वाजा हिन्द से रोग-दोष दूर करने तथा किसी शत्रु के नाश करने की प्रार्थना की है :

बरसत घटा रितु ख्वाजा हंद (हिन्द) चातुरीमास। दुरजन वाह (बांह) विलन्द (बुलन्द) कीनि (कीन्हीं) काई फटत बूंद की तांस। रोग दोख दूरि करौ धीरज को होउ सत्रु कौ नांस।

दूसरी ओर बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने दक्खिनी-भाषा के अपने ध्रुवपदों में हिन्दू-देवी-देवताओं का स्मरण किया है। एक ध्रुवपद निम्नाकित है :

गनपति मूरत हस्तमेघ मन्द बरखत पानी। दंत दामिनी घंट घोर घोर गोर संडान भाल बिधु बानी। सरसुती पवित्र स्वांति घन जल कैसे जिय जानी। 'इबराहीम' नवरस मगुता निकसत या कारन नहिचें मानी।—किताबे नवरस, पृ० १०६।

इब्राहीम का विश्वास था कि सरस्वती और गणेश जैसे देवताओं की उपासना से कण्ठस्वर मधुर होता है और सरस्वती के प्रसाद के विना सगीत नहीं आता। उसने अपनी

पुस्तक 'किताबे नवरस' का मंगलाचरण सरस्वती की प्रार्थना से किया है और मोहम्मद की प्रशंसा दूसरे छन्द में की है। ध्रुवपद निम्नांकित है:

नवरस स्वर जुग जग जोति आणीं सर्व गुनी।
यो सत् सरसुती माता इबराहीम प्रसाद भई दुनी।[1]

अलख: ऐसे आश्रयदाताओ की कमी नही थी, जो अपने दैनन्दिन जीवन में सन्तुलन रखने के कारण मर्यादाओं से बाहर नही जाते थे अथवा अपने किसी लौकिक मनोरथ की पूर्त्ति के लिए साधुओ, सन्तों, पीरों और फकीरों के प्रति आस्था रखते थे। ऐसे रचनाकार भी थे, जिनकी भक्ति स्वतः सन्तों और साधुओं की ओर होती थी और आश्रयदाताओं की, अथवा अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा से इन ध्रुवपदकारों को साधुओं के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था। उन लोगों की चर्चाओं से ये प्रभावित होते थे। पन्द्रहवी शती और उससे पूर्व अलख, अनाहत नाद, जोगी और चौरासी सिद्धों की चर्चा लोक में भली भाँति हो चुकी थी। भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा से सम्बन्ध रखनेवाले सन्त घर-घर घूमकर अपना सन्देश दे चुके थे, अतः उपर्युक्त विषय भी ध्रुवपदों में मिलते है। बैजू, तानसेन, मदनराय, हरिदास डागुर आदि ध्रुवपदकारों ने अपनी रचनाओं में इसे स्थान दिया है।[2]

हरिदास डागुर की एक रचना इस दिशा मे उल्लेखनीय है:

ग्यान मध मति जे नल (नर) निसु दिन तिनकौं कबहूं न होत षुमारी (खुमारी)। सत्त के प्याले में धर्म भरि-भरि पीवत छके रहत निसु दिन, लगी रहत तारी। तनकरि भाटी मन करि चढ़ाओ पंच भूतारी अगिन परजारी। 'हरिदास डागुर प्रभु' तुम्हारो सुमिरन करत धनि विधना रचौ पुरिष यौर (और) नारी।[3]

इस्लाम-प्रशंसा: मानसिंह ने जिस शैली का प्रवर्त्तन किया, उसने मुस्लिम-क्षेत्रों को भी प्रभावित किया और उन सूफी खानकाहों (मठो) में भी ध्रुवपद गूँजने लगे, जहाँ कि एक समय खुसरो के चलाये हुए 'कौलो' की धूम थी। जो इस्लाम संगीत का घोर विरोधी है, उसके 'रसूल' और 'कलमा' तक ध्रुवपद-शैली से प्रभावित हुए और व्रजभाषा ने अपना अंचल वहाँ तक फैलाया। सुरज्ञान खाँ का निम्नस्थ ध्रुवपद इस प्रवृत्ति का प्रमाण है:

करत सब जग कां मे सुभै होत तब ही जब पैहैलैं कैहै लेत बिस्मिल्लाह। जासों बढ़ै दीन उदोत इलम जे पावें अतिबुधि को ततछिन पढत रहत मोंला मोंला। अरस कुर (स) लोह कलम कौ भेद जब पावे रसनां सों पढत रहत लाइलाइइलिला (लाइलाह

---

१. किताबे नवरस, पृ० ६५।
२. परिशिष्ट आ, १, २७,६५,८४,६५,६६।
३. परिशिष्ट आ, ६६।

इल्लल्लाह्) । फरज सुनति (सुन्नत) सों लगाइ ग्यांन ध्यांन 'सुजान' सेवक पर करम कीजै महंमद रसूलिला (मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह) ।[१]

वैराग्य : कभी-कभी सगीतज्ञ भी सांसारिक उतार-चढ़ाव से ऊबने पर संगीत को भगवत्प्रसन्नता के लिए प्रयुक्त करते थे। राजदरबारो के कटु और मधुर अनुभवो की स्मृतियाँ इनकी दृष्टि मे सासारिक मान-सम्मान और धन-सम्पत्ति को निस्सार सिद्ध कर देती थी और वे वृद्धावस्था मे सचमुच ईश्वर के प्रेम की ओर झुकते थे। बैजू एक ध्रुवपद मे कहते है :

विद्या सोई क्यों न गाइये, जासौं मिलि हैं री नन्दलाल ।
वृन्दावन सघन कुंज रणित, नाचत रास, बाजे मृदंग, ताकिट तक ताकिट तक धुमकिट तक गावत विविध दै दै ताल ।
सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना प्रमान, वंशी मदि टेरत तान,
थकित सुर नर मुनि विमान, राखत है कुसुम माल ।
'बैजू प्रभु' के साधे तीन लोक मोहि लियौ ब्रह्मा महादेव ध्यान थकि चन्द्र सूर्य, पवन पानी सेष पाताल ।[२]

सासारिक भोग-विलास की एक सीमा होती है और व्यक्ति कभी-कभी आत्म-चिन्तन करता है। जिस प्रकार बड़े-बड़े भक्त-कवियों ने अपने मन को सम्बोधित करके ईश्वरोन्मुख होने की प्रवृत्ति दिखाई है, उसी प्रकार ध्रुवपदकार भी इस दिशा में प्रवृत्त हुए हैं। राजाओं और सम्राटों के वैभव की गोद में खेले हुए तानसेन भी अन्ततोगत्वा प्रभु-चरणों में रत होने के लिए अपने मन को इस प्रकार प्रेरित करते है :

तू जपि जपि रे मन रांम नांम जामें होइ कांम बनवारी श्यांम हरिनराइन निरंजन । भक्त वछिल जगदीस गोसाईं अनांथन नाथि श्रीपति सुदांमा दालिद्र भंजन । दीनबंधु दीनानाथ मनोहर कंसराइ निकंदन । 'तानसेन' लघु विनती करत राधापति मन रंजन ।[३]

यह प्रवृत्ति गुलाब और प्रेमदास जैसे रीतिकालीन ध्रुवपदकारों मे भी दिखाई देती है।

गुरु-महिमा : ज्ञानाश्रयी शाखा में और सगुण सम्प्रदायों में गुरु का महत्त्व बहुत अधिक है। ध्रुवपदकारों पर भी यह प्रभाव है और वे गुरु के चरणों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का दाता मानते है। राजबहादुर ने गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए कहा है :

गुरु सहाइ ते उनिके चरण कृपा ते सब कांम बनि आवै । मन भरि अर्थ धर्म काम मोक्ष आदि दै जोई जोई मागै (मांगै) सोई सोई पावै । ब्रम्ह रूप हरि बिस्न प्रजापति अगिम निगम गुन जाकौ यह विधि गावै । 'राजबहादुर' चहत लहत महामोद उपजावै ।[४]

---

१. परिशिष्ट अ, ६६ ।

२. बैजू और गोपाल, पृ० ७२-७३ ।

३. परिशिष्ट आ, २६ ।

४. परिशिष्ट अ, २३२ ।

कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ :

भगवान् कृष्ण की छवि, मुरली, उनपर रीझनेवाली गोपियाँ, वृषभानु-नन्दिनी तथा वृन्दावन मे होनेवाली लीलाएँ भी ध्रुवपदकारो को अपनी ओर आकृष्ट करने में भली भाँति सफल हुई हैं।

बैजू रास का वर्णन इस प्रकार करते है :

ब्रज ब्रनिता बनि बनि आवत भुषन सजि समूह ग्रह ग्रह तै मुरली की धुनि सुनि प्रान प्यारे। तजी लाज गुरजन की को जाने लगन मन की, तन की तपति बुझी दरस परस देवें ते तिहारे। इकटक रही निहारि मुगधा गौंयारि आइ रास मंडिल मंडि बीच वंसीवट पर विहारिनि विहारी विहरै। 'बैजू प्रभु' बदन चन्द निर्त करत नंद नंद भई छत्रासी रैन बाजत मंद बेन बिमान हू थकित भये देव पुष्प वरषा करत होत नहीं उदय भाने उडगन तिहारे।'[1]

कृष्ण-छवि पर मोहित गोपियो के मध्य मे विराजित 'लाल' लालिमा से किस प्रकार परिवेष्टित है, इसका वर्णन तानसेन की सीधी-सादी भाषा में दर्शनीय है :

लोचन लाल चुनरीलाल बूटे छूटे सबुज (सब्ज) लाल।
गरे बीच हीरा लाल, नासिका कौं मोती लाल, पांय लाल,
प्यारी लाल, सेज लाल, बाजूबंद लाल, लाल कर, कंगन लाल,
लाल चरन, पाइं लाल चलत हैं मंद चालि।
'तानसेन' भूमि लाल, ब्रज की सब गोपी लाल, ता मद मदन गोपाल लाल।[2]

यमुना-तीर पर विचित्र बानिक बनाये हुए मदनमोहन के अंग-प्रत्यंग एवं वेश-भूषा-सहित मुद्रा का सफल वर्णन धीरज ने इस ध्रुवपद में सफलतापूर्वक किया है :

बानिक बनि ठनि ठाड़े मोहन सुन्दर जमुना तीर।

मोर मुकुट कटि चन्दन षौरि कुटिल अलख भौहैं धनक दृग षंजन श्याम बरन नांस कीर।

अधर दसन अधर बिम्ब चिबुक गाड ग्रीवं मुक्तिमाल बनमाल और बिसाल छीन कट नाभि गंभीर।

पगनि उपर रुनुकि झुनुक पीत बसन मदन मोहन कर मुरली 'धीरज' प्रभु गोपीनाथ गोविन्द बलवीर।[3]

शरद् की रात्रि में कृष्ण की वंशी और कुलवधुओं पर उसके प्रभाव का वर्णन गुलाब ने पदशैली से प्रभावित इस रचना में किया है :

---

१. परिशिष्ट आ, १०।
२. परिशिष्ट आ, ४३।
३. परिशिष्ट अ, १००।

अरे निरदयी लंगर मोहन मोहि लई ;
बंसी तान सुनत ही श्रवननि सुधि बुधि बिसरि गई ।
इत कुल कान प्रीति अति तेरी तापर हो री चौप नई ।
'प्रभु गुलाब' दोउ और फिरत जैसे मानी फिरत रई ।[1]

गोरस बेचने के बहाने कृष्ण को ढूँढती हुई उत्सुक और विकल गोपी की छवि और चेष्टाओं का वर्णन करते हुए तानसेन का यह कथन अत्यन्त मनोहारी है :

लै चली हौ गोरस बेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल ।
तरफरात प्रान, बिथुरी अलकै आननि पर और सोहै कुम्हिलानी माल ।।
गोरस के मिस झूठेहु डोलत, ढूँढ़त फिरत गोपाल ।
'तानसेन' के प्रभु सों हिलि-मिलि ऐंन नैन चलि गज की चाल ।।[2]

होरी : तन और मन दोनों को रँग देनेवाला पर्व 'होली' हिन्दू और मुसलमान दोनो प्रकार के ध्रुवपदकारों को समानरूपेण रंगीन प्रतीत हुआ था । 'धमार' ताल में गाये जानेवाले गीतों की संख्या 'होरी' हो गई थी और ऐसे गीत ध्रुवपद-गायकों के गान का एक अनिवार्य और अत्यन्त ललित अग थे । होली का त्योहार मुगल-महलों मे भी प्रचलित था, यहाँतक कि मुगल-सम्राट् शाह आलम ने स्वयं भी अनेक होरियाँ लिखी है । होली और रंग की चर्चा आते ही जिस कन्हैया का स्मरण हो आता है, वह अपनी राधा और गोपियों के साथ मुगल-अन्त.पुरों तक मे विराजमान था । तानसेन, चंचलसस, सदारग, अदारंग, मनरंग, नूररंग, सबरंग, अदारस, इंछाबरस, गुलाब एव प्रेमदास जैसे सभी ध्रुवपदकारों ने होली का वर्णन किया है । प्रेमदास की एक होरी मे अपने रूप को बचाये-बचाये फिरनेवाली एक गोपी से कहा गया है :

अरी जह जोबन तेरो होरी मैं कैसे बचैगो री ।
एक डर है मोंहि वा दिन को सखि जा दिन रंग मचैगो ।।
जो कहुं डीठि परैगी स्याम की तब वासैं कौन पचैगो ।
'प्रेमदास प्रभु' कठिन कांन रस लै और संग नचैगो ।।[3]

होरियों में प्रोषितभर्तृका अथवा अन्य विरहिणियों की चर्चा भी ध्रुवपदकारों ने की है । नूररंग की किसी नायिका के लिए फागुन मास दु.खदायी हो गया है । चारो ओर ढप (डफ) बजने लगे है, कामदेव उसपर चढाई कर रहा है और उस बेचारी का पल-पल नही बीतता । यह ऋतु अपनी उत्तेजक स्थिति के कारण विरह-दुर्बल के लिए उद्दीपन बन गई है । नूररंग के शब्दों में नायिका अपनी स्थिति का वर्णन यो करती है :

---

१. परिशिष्ट आ, १४६ ।
२. परिशिष्ट अ, ४४ ।
३. परिशिष्ट आ, १६५ ।

आली आयो जह फागुन मास पीग्र कीनों गमन मो पै कैसें कटै जह रितु उन बिन माई।
ज्यों-ज्यों सुधि आवत मोहन की ग्रेह आंगन अति दूबर भईली देत विरह दुखदाई।
चहुं ओर डफ बाजन लागे मनमत (थ) करत चढ़ाई।
जह दुख बैरी पाछै लगौ बड़ौ कठिन है माई।।
पल-पल छिन-छिन ऐसी बीतत कैहै न सकत तेरी घुआई।
'नूर रंग' के दरस देखे बिना नैननि नींद न आई।।[1]

मियाँ 'मनरंग' मदनमोहन और वृषभानु-दुलारी का स्मरण होली के दिनो में इस प्रकार कर रहे है :

कछु ऐसो मंत्र पढ़ि रंग छिरकौ री होरी के दिनन में,
इन मनमोहन बनवारी।
सकल त्रीअनि में कोनें सिषाई हों,
न जानो ऐसी कौन है नारी वारी।
मोहि जानि व्रषभांन दुलारी मनहर लीनो नंद के विहारी।
जौ हों ऐसी जानती 'मनरंग' सैहैस गारी दै भई मतवारी बजाइ तारी।[2]

ऋतु-वर्णन : ऋतु-वर्णन की प्राचीन परम्परा का प्रभाव ध्रुवपदकारों पर भली भाँति है। कुछ राग ही ऐसे है, जो विशिष्ट ऋतुओं से सम्बद्ध है। उन रागों में गाया जानेवाला साहित्य अनिवार्य रूप से ऋतु-सम्बद्ध है। फलतः, ध्रुवपदकारो और गायको की परम्परा में ऋतु-वर्णन का होना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। हिन्दी के अधिकाश कवियो ने प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में किया है, यही प्रवृत्ति प्राय: ध्रुवपदकारों की भी है, परन्तु अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे ध्रुवपद भी है, जिनमे प्रकृति आलम्बन है। तानसेन का एक ध्रुवपद प्रस्तुत है, जिसमे वसन्त का वर्णन प्रातर्गेय राग भैरव की चर्चा के साथ है :

सघन वन छायौ द्रुमवेली मध,
पवन अति प्रगास बरन बरन पहुप रंग लायौ।
बोलत कोकिला कीर पीक कपोत चात्रक,
सब ही आनंद करै चहुँ ओर रंग बरसायौ।।
बाजत किंनिर रिसाल बीन मृदंग,
बीन मृदंग सुरसुती बर पायौ।
कहैं 'मीयाँ तानसैनि' सुनौं हो,
अलाप करि प्रथम ही राग भैरों गायौ।।[3]

---

१. परिशिष्ट अ, १३०।
२. परिशिष्ट अ, १२८।
३. परिशिष्ट आ, ७२।

तानसेन ने कृष्ण में घन का आरोप करके रस-वर्षण में बूँदों, मुरली-ध्वनि में गर्जन, मुस्कान में बिजली, दन्त-कान्ति इत्यादि मे वक-पंक्ति इत्यादि का निर्वाह करते हुए एक सांगरूपक बाँधा है :

काान्ह ओलरि आयौ हो,
बरसि बरसि रिमिझिमि रस-बूंदिनि ।
मुरली की गरजन तपनि तडत मुसिक्यानि,
दसन ओप बगपांति, सीस डुलनि पौहौप गूंधन ।।
चहूं ओर धुरवा सें थरें,
तामें मोर चंद्रका इंद भयौ रस गूंधन ।
'तानसेनि' प्रभु की अधिक झंकोरनि,
भीजि गई बृजबनिता सहित भूषन फूंदन ।[१]

काव्यगत विशेषताओं का दिग्दर्शन यहाँ नही किया जा रहा है, फिर भी इतना कहे विना मन नही मानता कि श्लेष के कारण 'झकोरनि' में जो ध्वनि है, वह सहृदय-संवेद्य है और समर्थ कवियों के काव्य मे ही सम्भव है ।

निम्नाकित ध्रुवपद मे नेत्र 'घटा' के आरोप का विषय बने है । उपमान के रूप में वर्षा की योजना 'इंछाबरस' की विदग्धता और सूक्ष्म दृष्टि की परिचायिका है :

तुम नैनां मैं मानौं काम की घटा सी उमड़ि आई ।
पलक पुनि सोई गरजनि चंचल,
विलवत चपला सी कौंधत ऐसी सुहाई ।
अरु वरुनी धुरवासी ताही बग पंथ,
तारन की जोति जीगन सी मन भाई ।
अरुन डोरिनि मांनौं इन्द्रवधू पाति सोहै पान पै,
रस बूंदिनि सौं 'महंमदसाहि' पीआ की अंछयावरसाई ।[२]

अन्य ऋतुओं का वर्णन भी ध्रुवपदों में हुआ है, परन्तु विस्तार-भय से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है ।

संगीत :

(अ) **सिद्धान्त के ध्रुवपद :** जिन ध्रुवपदों में संगीत के रहस्यगर्भ सूत्रो की योजना होती है और जिनका वास्तविक तात्पर्य समझना गुरु-हीन अथवा असम्प्रदायज्ञ व्यक्तियों के वश की बात नही होती, ध्रुवपद-परम्परा में वे सिद्धान्त के ध्रुवपद कहलाते है । यद्यपि ऐसे ध्रुवपदों का विषय हमारे विचार-क्षेत्र से बाहर है, तथापि एक ऐसे ध्रुवपद को उद्धृत करने का लोभ हमें होता है, जिसमें भारत के प्राचीन मूर्च्छना-सिद्धान्त और मुस्लिम-

---

१. परिशिष्ट आ, ४१ ।
२. परिशिष्ट अ, २८१ ।

प्रभाव के कारण भारत-भर में आज प्रचलित मेल-सिद्धान्त में एक सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। यहाँ इतना और कहना पर्याप्त होगा कि मूर्च्छना-सिद्धान्त का प्रतिपादन करनेवाले भरत मुनि जैसे हमारे पूर्वज 'स्वर' और 'भाव' एवं 'राग' और 'रस' के जिस सम्बन्ध का विवेचन कर चुके हैं, वह मूर्च्छना-सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के विना असम्भव है। तानसेन का निम्नांकित ध्रुवपद शताब्दियों से उलझी हुई इस ग्रन्थि के खोलने में सफल होता है :

धईवत पंचम मधिम गंधार,
रेषव षरज सुर साधि साधि साधि गुनी निषाद रे।
तेरौ अलंकार बाईस श्रुती साधि, बाद चारि (उचारी?),
सा रे ग म प ध नीं सा सु ध र सा नी धा नी ध प म ग रे।
अविधि त्रविधि सुरनि मधि त्रतीव्र त्रतीव्र त्रतीव्र अरे नित्तत
जानत वेदमांन (विद्वान्),
सप्त सुर तीनि ग्रांम इकईस मूर्च्छना छतीस भेद नाद वा तानसैं नि विधान रे।[1]

(आ) अन्य ध्रुवपद : संगीत से सम्बद्ध ध्रुवपद सांगीतिक परिभाषाओं से भरे हुए हैं और उनमें संगीत के प्रयोग पर अनेक साग-रूपक बाँधे गये हैं। तानसेन के 'नाद-सागर',[2] 'नाद-समुद्र',[3] 'नाद-नगर',[4] 'नाद-गढ़';[5] चंचलसस का 'नाद-समुद्र',[6] सुरज्ञान खाँ का 'नाद-दल',[7] हरिदास डागुर का 'नाद-गढ',[8] और इंछाबरस का 'नाद-बन्दूक'[9] ध्रुवपदकारो की उस प्रवृत्ति के परिचायक है, जिनमें उनकी दृष्टि के साहित्य-पक्ष और संगीत-पक्ष दोनो उभरकर आते थे। सागीतिक परिभाषाएँ हमारे विचार का विषय नही है, इसलिए इस प्रवृत्ति का उल्लेख-मात्र कर दिया गया है।

नख-शिख-वर्णन : ध्रुवपदकारो का सम्पर्क निरन्तर सत्कवियो से हुआ करता था। अनेक कवि और गायक एक ही आश्रयदाता के आश्रय मे रहते थे। छन्द के बन्धन में जकड़ी हुई रचनाओं में प्राय· वर्णो की कृष्यता सम्भव नही थी, जो सांगीतिक दृष्टि से ध्रुवपद-गान में कभी-कभी परम अनिवार्य है। इसीलिए उन विषयों पर ध्रुवपदकार स्वयं रचनाएँ

---

१. परिशिष्ट अ, १८७।
२. परिशिष्ट अ, १२।
३. परिशिष्ट अ, ४८।
४. परिशिष्ट आ, ६७।
५. परिशिष्ट आ, ६८।
६. परिशिष्ट आ, ७७।
७. परिशिष्ट आ, ८७।
८. परिशिष्ट आ, १०२।
९. परिशिष्ट आ, १३७।

करते थे, जो व्रजभाषा-कवियों के भी विषय थे। प्रेमदास का निम्नाकित ध्रुवपद नख-शिख-वर्णन का एक सुन्दर उदाहरण है :

आली तेरौ चन्द्रभाल कला, भौहैं धनक, पला सुख पला, नेत्र षंजन, बरुनी संम्हारि, श्रवन छीप, दसन हीरक, रसना पौहौंपदल, कपोल दर्पन, नासा कीर, अध (अधर) बिद्रम, कंचन की पाटी पीठि, तापर सोहै बैनी ब्याल। ठोड़ी गा(ड़), स्याम बुंद रूप दस गुनौ भयौ, कु(च) श्रीफल, अधर पान, रौमावली सलिता, ना(भ) भ्रमर, भुज म्रनाल (मनाल)॥ कड भ्रंगीरव, षंभ जांघे, पिडरीं बिनान, जावक चरन, ऐंडी तरवां, अंगुरी नष अरुन अति रिसाल। यह छवि देषि रीझे नाइक दछिन चतुर बिचछिन सुलछि भलछिन वौ हौ भांतिनि करि 'गुलाब' कौ प्रभू माधौ मन मोहन लाल॥[1]

सिंगार : अंग-अग में आभूषण पहने नायिकाओं की छवि का चित्रण भी कवियों का प्रिय विषय रहा है। ध्रुवपदकारों ने भी सद्यःस्नाता अथवा अन्य नायिकाओं के श्रृंगार का वर्णन किया है। मोहम्मदशाह रँगीले के दरबार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी गायिका नूरबाई की छवि निम्नाकित ध्रुवपद में अकित है :

करि मंजन प्यारी ठाढ़ी चौहोर पवन लेत लागत,
जैसे जलधर की घटा उनै आई।
लाल जरद बस्तर सोहत अंबर तामै हरी कोर धनक,
कैसी दांमिनि चौका चमकनि भारी।
ऐसी कच स्यांमतासी देषी नांहि,
न मानौ निभि गिरवर पर घूमरी धाई।
पौहौप माल और बगुला सी करवट लीनै,
साहि अचानक 'नूरसाहि' कौं अंकौं भरि लई याते रंग महल रंग मूरति
उमगि काम की चौंप बरसै बड़ी-बड़ी बूंदिनि छिन-छिन नई-नई।[2]

अंग-अंग मे श्रृंगार का वर्णन अकबर की मुद्रा से अकित तानसेन-रचित निम्नांकित ध्रुवपद में और है :

प्रथम मंजन करें पैहैरें सारी अंगीआ करनाटी झूमि रही काननि बेल फूल फूली मांग मुकताहल सीस फूल टीकौ जामें जम उदोत कापे सुजा प्यारी के मांथे चंदन लायें बीरा षायें चौका अधर बनायें और छवि छूटी अलष सोहत कूं कूं की आड। नासिका बेसरि सोभा लायें कांननि करनफूल षुटिला पीग्र के नग अमोलक तिनिकों आटक फाटक बनाइ राखौ कोउ लैन हूं न पावत। मञ्ञ गरे झूले पौहौपनि की माला टूटी सेवा पूजा चढ़ायें राजत भुजनि टाड। ताईता पोंची आ माला मौतिन की पांति भाई नीकी लगत मकतूल फूल फूदा कर कमलनि से भमरनि से भूलि रहे छुद्र घंटका की लर लगी सोभा की कसक गाढ़ी अनवट बिछीआ बरषा कैसे बोलै कमल पांति जगमगाति महावर ऐंन गजनि चालि

१. परिशिष्ट आ, १५२।
२. परिशिष्ट आ, २७८।

चलत गति सी दिषावत भाव तिरी राग धुनि सी उपजत कोउ कुमुकुमु डारत कोउ करत सौतिनि की नजरि न लागत चिर चिरजीवो साहि अकबर जाके सुष ऐसी नारि सुहाग भाग लाडिली लाड ।।[१]

नेत्र-वर्णन : अंग-वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। अंगों मे भी नेत्रों को देखने पर विदग्धहृदय 'जिग्रतु-मरत झुकि-झुकि परत' वाली स्थिति में प्रसन्नतापूर्वक आते रहे हैं। ध्रुवपदकारों ने नेत्रों का जो अनोखा सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, वह किसी भी महाकवि के वर्णन से हल्का नही पडता। रात्रि मे नायक के साथ जागी हुई नायिका के नेत्रों का वर्णन 'अकबर' की छाप से अंकित एक ध्रुवपद मे तानसेन ने किया है। जहाँगीर ने सम्भवत: तानसेन के इसी ध्रुवपद की प्रशंसा 'तुजुके जहाँगीरी' में की है। ध्रुवपद निम्नाकित है :

लाल के संग ललनि रेंनि जागी और लाल लोइनि लागे री मांनों बंदूके (बन्धूक) पौहोप डीठें। ता मध पुतरी ऐसी लागे मानो भमर लटपटात उनि गध उडि परे रंग मजीठे ।। उनि के हेष भेष रही हों मेरे जांन कमल षंजन मीन म्रग लागे हैं सीठें। साहि अकवर की सों हो वापै रीझी अलक लड़े फुनि बड़े छबीले ढीले चितवत नीके ।।[२]

रात्रि में जागे हुए नयनो पर तानसेन की एक अन्य अति सुन्दर रचना इस प्रकार है :

ऐसे नैनां अरुन बरन ते रे री पीअ संग जागे रंग रस पागे।
सेत सेत तारे कमल दल लोचन निरखि आंनन कुल त्यागे ।।
पलक पषुरीआं सी मुदत चितवत ही मनों वांन से लागे।
पौहोप सरोवरि पांनप पूरे तानसेनि प्रभु अनुरागे ।।[३]

नायक-रूप-वर्णन : नायकों के प्रताप, पराक्रम, शील, दानशीलता, उदारता इत्यादि गुणों की प्रशंसा साहित्य में होती रही है। राम और कृष्ण जैसी अलौकिक महाविभूतियों के रूप का वर्णन माधुर्यभाव की उपासना के परिणामस्वरूप हुआ है, परन्तु नायिका-सामान्य के रूप का वर्णन कवियों का जितना प्रिय विषय रहा है, उतना प्रिय नायकों के रूप का चित्रण नही। फारसी और उर्दू-साहित्य मे प्रेम-पात्र पुल्लिग होता है और उर्दू के कवि उसी परम्परा का निर्वाह आजतक किये जा रहे हैं। ईरानी संस्कृति का एक विशिष्ट

---

१. परिशिष्ट अ, ५७।

२. (क) परिशिष्ट अ, ८०।

(ख) Of these poets the chief was Tansen Kalawant who was without a rival in my father's service (in fact there has been no singer like him in any time or age). In one of his compositions he has likened the face of a young man to the sum and the opening of his (her) eyes to the expanding of the Kanwal and the exit of the bee.
—Tuzuk-Jahangiri, Vol. I., p. 413,

३. परिशिष्ट अ, ४९।

अंग समानलिंगीय प्रेम है। आयुर्वेद-ग्रन्थों मे जहाँ नपुंसकों के प्रकारों का वर्णन किया गया है, वहाँ यह सिद्ध करता है कि ऐसी प्रवृत्ति भारत मे भी थी। स्मृतियों के प्रायश्चित्त-प्रकरण' और 'कामसूत्र' के 'औपरिष्टक-प्रकरण' के अध्ययन से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि समानलिगीय यौन-सम्बन्ध समाज मे थे। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ भारत में इस अप्राकृतिक प्रवृत्ति को घृणित एव त्याज्य माना गया, वहाँ ईरान जैसे देशों में इसे बुरा नहीं समझा गया। घृणित समझना तो दूर की बात है, वहाँ के साहित्यकारों ने ऐसे 'माशूकों' के रूप की प्रशंसा मे 'गजले' लिखी, जिनकी मसे भीगी न थी।

दूसरे अध्याय में **जलालुद्दीन** और **अलाउद्दीन** के दरबारी संगीत का वर्णन करते हुए हम सुप्रसिद्ध इतिहासकार **बर्नी** का उद्धरण देकर यह बता चुके है कि **अमीर खुसरो** का कार्य उन 'मरदो' (किशोर लडको) के हाव-भाव-कटाक्ष और रूप की प्रशसा करना भी था, जिनके कपोलों पर रोएँ तक न जमे थे और जो युवतियो की भाँति सुन्दर थे। समानलिंगीय आकर्षण की यह भावना मुसलमानो के आगमन के साथ भारत में अधिक फैली और फैशन हो गई। अलाउद्दीन का पुत्र **कुतुबुद्दीन मुबारक शाह** अपने प्रेमपात्र सेनापति **खुसरो** खाँ के हाथ से ही मारा गया था। बर्नी ने तारीखे-फीरोजशाही में इन सम्बन्धों का वर्णन अत्यन्त खुले शब्दों में किया है। अस्तु, बादशाहो और अमीरो के अनुकरण से यह प्रवृत्ति कलाकारों में भी आई थी। परिणामस्वरूप, मुस्लिम-दरबारों मे इन रूपवान् पुरुषों के रूप की प्रशंसा मे भी ध्रुपवद लिखाये और लिखे गये।

इस्लामशाह सूर की आसक्ति उस **दौलत खाँ** पर थी, जिसका परिचय भक्तिकाल के आश्रयदाताओं में दिया जा चुका है और कहा तो यहाँतक जाता है कि **तानसेन** के नयन-चकार भी दौलत खाँ के मुख-चन्द्र की रूप-सुधा का पान आतुरतापूर्वक करते थे। इसीलिए, हमने अनुमान किया है कि दौलत खाँ के रूप की प्रशंसा मे विरचित ये ध्रुवपद तानसेन के ही है। बड़ी निपुणता के साथ भारतीय परम्परा की रक्षा के लिए इन ध्रुवपदों को नारी की उक्ति बना दिया है। रचना निम्नांकित है :

माई प्यारे की मुरति कौ री, मुष प्रकास काहू पर कह्यो न जातु री मन ही मन आंनीये। जेती सिराहना कीयौ चाहत सु उचरै जाके तेई चित जांनीये। उपमा काहू की दई न जाइ दूजौ रचौ हौ तौ ताको समझ गति जांनीये। ऐसौ जु प्यारौ दौलतिषांन जीवत कौ फलु तौ गिनीये वाके संग सुष मांनीयै।[1]

एक अन्य ध्रुवपद में दौलत खाँ मान किये बैठे है। भारतीय साहित्य के विद्यार्थी के लिए यह स्थिति सर्वथा विलक्षण है। मान कामिनियों का अस्त्र है, पुरुषों का नही। इस ध्रुवपद को नारी की उक्ति बनाकर भारतीयता का जामा पहनाने की जो चेष्टा की गई है, वह दौलत खाँ के मान से व्यर्थ हो जाती है। रचना इस प्रकार है :

---

१. परिशिष्ट अ, ४६।

मोसौं रूसनौं ही कित करत हौ प्यारे,
जो मोते कछू चक परी ताहि तुमही सुधारन हारे।
अब तौ गरै लगाई जीअ में उताउल भई,
पीति वचन तजि अऐ न्यारे॥
कौनै जहं सीष दई कहा तुम जीअ धरी,
मोसौं यौं कहा हा हारे।
हसि करि बूझत उतर काहे न देत,
दौलतिखांन उज्यारे॥[२]

दम्पती-केलि : सयोग में वियोग की आशका रागवर्द्धक होती है और वियोग मे संयोग की आशा प्रेमियों के जीवन का आश्रय होती है। फलतः, संयोग और विप्रलम्भ दोनों को चित्रित करने मे महाकवियों ने अपने कौशल का परिचय दिया है। आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार की रतियो का विशद वर्णन संस्कृत के महाकाव्यों मे हुआ है। भक्त-कवियों ने और भक्त-गायकों ने केलि-वर्णन मे विशेष आनन्द का अनुभव किया है। एकमात्र भक्त ध्रुवपद-गायक स्वामी हरिदासजी की लीला-सम्बन्धिनी रचनाओ के एकमात्र संग्रह का नाम ही 'केलिमाल' है। ध्रुवपदकार साहित्य की इस दिशा मे भी पीछे नही रहे है। दम्पती-केलि का वर्णन उन्होंने भी सफलतापूर्वक किया है। जगन्नाथ कविराय का यह ध्रुवपद इस विषय में ध्रुवपदकारो की सफलता का सुन्दर प्रमाण है :

ऐहो बैठे दम्पति सुरति सुष की बातें करत,
प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत।
छिनुक आंषि षुलि जाल पुनि मुसिक्यात अंचल ओट दै,
जम्हांत अरसात वहि रसिक रंग उपजावत।
बदन चिबुक गहि आपु तन सूधौ करि,
हरषि निरषि हरि हीये लगावत जगंनाथ कविराइ के प्रभु।
रिझवार रीझि नैननि सो बेन प्रान प्यारे मुष गावत।[१]

नायिका-भेद : भरत मुनि के युग से आजतक नायिका-भेद सहृदयों के लिए प्रिय विषय रहा है। गुण-रूप-स्वभाव-अवस्था, अंगयष्टि एव देश के भेद से आचार्यो ने सुन्दरियों के वर्गीकरण किये है। उन वर्गीकरणों में हमे उन मनीषियों की उस सूक्ष्म दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है, जो मानव-स्वभाव का पूर्णतया विश्लेषण करने मे समर्थ थी। यह वर्गीकरण हमारे पूर्वजों का प्रयास है, परन्तु अन्तिम नही। युग के परिवर्त्तन से आज अनेक प्रकार की नायिकाएँ केवल चर्चा का विषय रह गई है। सभ्य कहलानेवाले

१. परिशिष्ट अ, १४५।
२. परिशिष्ट आ, १०६।

समाज में घूँघट, सास-ससुर की लाज इत्यादि मर्यादाएँ शिथिल होती जा रही हैं। उस स्थिति का धीरे-धीरे सर्वथा लोप हो रहा है, जो पति के मन में पत्नी के लिए एक प्रकार की उत्सुकता जगाये रखती थी और एक ही घर में रहते हुए पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए प्रतिदिन की दाल-रोटी नहीं थे। आज न पायल की ध्वनि है, जो कभी सुन्दरी के प्राण-प्यारे के शरीर में रोमांच कर दिया करती थी और न आज छिप-छिपकर किये जानेवाले नयत-संकेतों की आवश्यकता है।

रीतिकाल की कुलवधुओं के ऐसे अनेक मनोरम चित्र आज केवल इतिहास की वस्तु रह गये है, रीतिकालीन कवियों के द्वारा जिनका अंकन आज भी सहृदयो के तन-मन को गुदगुदा देता है। अस्तु; प्रस्तुत विषय यह है कि सुन्दरियों के मनोरम चित्र ध्रुवपदकारों ने भी खीचे है और नायिका-भेद की नित्य-नूतन परम्परा का निर्वाह भली भाँति किया है।

मानसिह तोमर के युग से रीतिकाल के अन्त तक नायिका-भेद की परम्परा ध्रुवपदकारों में भली भाँति फली-फूली और उसने हमारे गेय साहित्य को भली भाँति समृद्ध किया। इस स्थान पर ध्रुवपदकारों के द्वारा प्रस्तुत किये हुए, सुन्दरियों के कुछ रूपों को उपस्थित करना अप्रासगिक न होगा।

तानसेन की खण्डिता अपने प्रियतम के अलसाये गात, डगमगाते चरण, असंगत वचन और बारम्बार की जमुहाइयाँ इत्यादि देखकर कहती है:

आजु आऐ रसमसे अलसांनै गात, धनि वह को है जानै वसरि राषे हौ जू। चरननि डगमगात बचननि तुतरात बारबार हौ जम्हात सौहैं जूठी हौ जु षात। फूनि के चिन्ह जानै जानै हौ जू जांनि जाउ प्रगट बताऐ देत दुरत न रस बात। तानसैनि कौ प्रभु तुम वौ हौ नाइक भली कीनी सुधि लीनी मेरं आए हौ जू प्रात।[1]

चंचलसस द्वारा प्रस्तुत खण्डिता प्रियतम के अधरों पर किसी की बरौनियों का अंजन, कपोलों पर कुछ निशान, पीठ पर मुद्रिका के चिह्न और मस्तक पर किसी के तिलक का अंक देखकर उस दृढ आलिगन के विषय में जान जाती है, जिसे प्रियतम के माध्यम से मानों उसे जलाने के लिए ही उसकी सौत ने भेजा है। ऐसी अवस्था में भला धैर्य कहाँ सम्भव है? उसके हृदयोद्गार सहसा इन शब्दों में फूट पड़ते हैं:

> **बरुनीनिकी अंजन ऐ बिराजे लाल अधरनि पर ताही में अंत ही उजागर कपोलनि लागीयें ते ऐ ठंठे अंक। विना अंग पीठि पाछें मुद्रका गढि रही गाढे आनंदन (आलिंगन) सोहत मुक्तिमाल और और अंक॥ फुनि भाल तीलक दीयें लिलाट सौं लगै जगै और दोउ पर रीझीं सूधी सूधी अलक परत परत वंक। चंचलससि प्रभु रीझे भीजे वा छवि सों आए मेरे' सोंहैं भए निसंक॥**[2]

---

१. परिशिष्ट आ, ५७।

२. परिशिष्ट आ, ८३।

प्रीतम को वश मे करनेवाली सौत किसी भी सुन्दरी के लिए 'आँख की किरकिरी' ही होती है। 'धीरज' की खण्डिता के प्रियतम भी सौत की सौगाते अपने साथ लाये है। वह प्रियतम का स्वागत इस प्रकार करती है :

ढीले-ढीले पग धरत ढीली पाग ढरकि रही,
ढऐ से परत ऐसे कौंन पर ढऐ हौ जू।
गाड़ी जू पीग्रा के हीग्र ऐसी गाड़ी,
कौंन त्रीग्रा गाढे गाढे भुजति सों गाढे करि गहे हौ जू।
लाल लाल लोहें लाल उनींदी आंषें सांची,
का हौ पीग्रा हौं तो लाल लहे हौ जू।
कहि धीरज प्रभु निसुके उनींदे जागे भयौ,
प्रात कहै वात राति कहां रहे हौ जू।[1]

बहादुरशाह की मुद्रा से अकित एक ध्रुवपद मे खण्डिता कुछ अधिक तीखी है। प्रियतम के अगो पर जली, सौत के सम्भोग-चिह्न देखकर उसके धैर्य का बाँध अकस्मात् टूट जाता है। वह अपने प्रियतम को तबतक देहरी के अन्दर पैर भी नही रखने देना चाहती, जबतक कि वह सिर से पैर तक नहा न ले। 'मरगजे' वस्त्रो का परित्याग न कर दे। चतुर प्रियतम की चतुराई-भरी बातो में आनेवाली वह नही है, उसके सम्मुख वह दर्पण प्रस्तुत किये देती है। ध्रुवपदकार ने इन शब्दों मे यह चित्र अंकित किया है;

ठाडे रहौ आंगन ही मेरं जौ लौं देह नष सिष भीजै।
न्हाइ लेउ गंगवा नैं पांनीं उतारि धरौ
जे बस्तर जब ग्रेह देहरी पग दीजै।
अधरनि अंजन लिलाट महावर चतुर चतुरई जिनि कीजै।
साहि बहादुर तुम बौहौनाइक सकुचौ जिनि दर्पन लीजै।[2]

उल्लेख-मात्र के लिए तानसेन के काल से बहादुरशाह तक के युग में लिखे हुए केवल खण्डिता के उदाहरण ही प्रस्तुत कर दिये गये हैं। अन्य नायिकाओं की चर्चा यथास्थान आयगी।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा · एक बार में एक करोड स्वर्णमुद्राएँ देनेवाले **राजा रामचन्द्र** को **तानसेन** ने 'गाहक' और स्वयं को 'व्यापारी' कहा है। कीर्त्ति को **अमर कर** देनेवाला **अकबर** तानसेन के शब्दों में 'पारखी' है और वे स्वयं 'जौहरी' हैं। **आनन्द खाँ** को भरपूर पुरस्कार देते रहकर भी अमीरो और सरदारों से मिली हुई एक दिन की समस्त भेटें दे डालनेवाला जहाँगीर भी ध्रुवपदकारों की दृष्टि में प्रशंसा का पात्र बना है **और जगन्नाथ कविराय** को चाँदी से तुलवाकर सम्मान बढ़ानेवाला शाहजहाँ ध्रुवपद-

१. परिशिष्ट अ, ११५।
२. परिशिष्ट अ, १८७।

कारो की दृष्टि मे प्रशसा का पात्र हुआ है। यहाँतक कि औरंगजेब ने भी कलाकारों को हजारो मुद्राएँ और खिलअतें देकर प्रशंसा प्राप्त की है।

जहाँतक हम जानते है, वहाँतक राज्याश्रित किसी भी कवि को तानसेन जैसा बडा पुरस्कार नही मिला। उस युग में इतना धन और सम्मान भला किस कलाकार को आश्रयदाता की प्रशसा करने के लिए विवश न कर देगा।

राजा राम ने पर्याप्त समय तक अकबर से डटकर मोर्चा लिया और अकबर के राज्याभिषेक से प्राय. २९ वर्ष पश्चात् वे अकबर से मिलने तब गये, जब कि उन्हें लेने के लिए जैन खाँ कोका और बीरबल जैसे प्रतिष्ठित सामन्त भेजे गये। इनकी प्रशंसनीयता असन्दिग्ध है।

अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के पराक्रम और प्रताप में किसे सन्देह है। अपने इन आश्रयदाताओं के पराक्रम और प्रताप का वर्णन ध्रुवपदकारों ने यदि जी खोलकर किया है, तो ठीक किया है। उसमें अत्युक्ति नही है। हाँ, औरंगजेब के बाद जो मुगल-सम्राट् गद्दी पर बैठे, उनमें पूर्वोक्त सम्राटो जैसा ऐश्वर्य, तेज, प्रताप और पराक्रम न था और उनके आश्रित ध्रुवपदकारों को शान्त, निश्चिन्त एवं उच्चस्तरीय वातावरण भी उपलब्ध न था। उस काल के ध्रुवपदकारो ने अपने आश्रयदाताओं के पराक्रम और प्रताप का जो वर्णन किया है, वह या तो आंशिक सत्य है या परम्परा का निर्वाह-मात्र।

सम्राट् वैसे न रहे थे, परन्तु भुवनमोहिनी सुन्दरियों की उत्पत्ति पर कोई प्रतिबन्ध न हो सकता था, इसीलिए रीतिकालीन ध्रुवपदकार नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन में अधिक सफल हुए।

आश्रयदाताओं के परिचय के साथ ध्रुवपदकारों द्वारा किया हुआ उनका चरित्र-चित्रण भी यथास्थान दे दिया गया है, अतः पराक्रम, दानशीलता, उदारता इत्यादि से सम्बद्ध ध्रुवपदों को यहाँ दुहराना पिष्ट-पेषणमात्र होगा।

(इ) भक्तिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन

सामान्य परिचय :

पिछले अध्यायों में वैदिक संगीत से लौकिक संगीत के विकास, मुसलमानो के आक्रमण के कारण राजकीय सांगीतिक परम्पराओं के विनाश, मानसिंह तोमर के प्रयत्न से व्रजभाषा-ध्रुवपद के जन्म और मुगल-सम्राटों तथा अन्य आश्रयदाताओं, उनसे सम्बद्ध ध्रुवपदकारों एवं अज्ञातपरिचय रचनाकारों की चर्चा भी की जा चुकी है। ध्रुवपदकारों की प्राचीन परम्परा और उनके क्षेत्र का वर्णन भी यथास्थान हो चुका है। यहाँ हम उन सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करेंगे, जो अधिकांश ध्रुवपदकारों में पाई जाती है।

ब्रजभाषा-ध्रुवपद का जन्म अत्यन्त विषम परिस्थितियों में हुआ था। लोदी-वश का अन्त और सूरवंश का उत्थान-पतन तानसेन जैसे ध्रुवपदकारों ने अपनी आँखों से देखा था। बाबर और इब्राहीम लोदी तथा हुमायूँ और शेरशाह के पारस्परिक संघर्षो का दर्शन बैजू, गोपाल, तानसेन, रामदास और वृन्दावनवासी स्वामी हरिदास ने अपने जीवनकाल मे किया था और उन लोगों के जीवन के आदिम भाग राजनीतिक अस्थिरता के युग मे व्यतीत हुए थे।

ऐसे कलाकार सौभाग्यशाली होते हुए भी गिने-चुने ही थे, जिन्हे अकबर के आश्रय में मान-सम्मान, अर्थ, ख्याति आदि सब कुछ प्राप्त हुए थे। बैजू और गोपाल जैसे कलाकारों को जिन राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था, वे स्वयं संघर्षो में फँसे थे। जिस कोटि के वे आश्रयदाता थे, उसी कोटि की रचना उनके सम्बन्ध में ध्रुवपदकारों ने की है। इन आश्रयदाताओं मे केवल रामचन्द्र बघेला ऐसा था, जिसकी वीरता और उदारता की प्रशसा करने के लिए अकबरी दरबार का इतिहासकार बदायूँनी मुल्ला भी विवश हुआ है। अस्तु, अस्थिरता के उस युग मे ध्रुवपदकारो को दरबार छोडकर भटकने के लिए विवश होना पडा। इसका एक शुभ परिणाम यह हुआ कि दरबारों की परिधि से निकलकर उन्हे जनता का भी थोड़ा-बहुत सम्पर्क मिला। बैजू और तानसेन जैसे ध्रुवपदकारों की रचना मे विषय-सम्बन्धी विविधता के पाये जाने का एक यह भी कारण है।

धार्मिक पर्वो, उत्सवो अथवा कीर्त्तनों के अवसर पर राजाओ के पराक्रम और प्रताप का वर्णन नही गाया जा सकता था। अतः, आजीविका के लिए इन्हे इस प्रकार के ध्रुवपद लिखने पड़े, जिनके विषय की संगति उपर्युक्त अवसरों के साथ थी। जनता के सामाजिक उत्सवों मे गा-बजाकर अर्थोपार्जन करने के लिए भी इस प्रकार की मांगलिक रचनाएँ उपयुक्त नही थी, जिनमें किसी विशिष्ट आश्रयदाता को सम्बोधित किया गया हो। फलत., इस प्रकार के ध्रुवपदकारों द्वारा ध्रुवपदों की रचना हुई, जो उत्सवों एव विभिन्न संस्कारों के अवसर पर किसी भी गोष्ठी में गाये जा सके।

सांसारिक अभावों से त्रस्त व्यक्ति अनेक दिशाओ मे हाथ-पैर मारता है। निराकार भगवान् तो उसे दिखाई नही देता, मन्दिरों में जाता है और वहाँ मनोरथ-पूर्त्ति की प्रार्थना करता है। वहाँ भगवान् साकार होते है, परन्तु बोलते-चालते नही। इसीलिए मनोरथ-पूर्त्ति की आशा मन में लिये हुए लोग सिद्धों, सन्तों और पहुँचे हुए फकीरों की शरण में भी जाते है, जिन्हें अल्लाह या भगवान् से नित्य-सम्पृक्त समझा जाता है। ये पीर और गुरु साक्षात् ईश्वर होते है; क्योंकि ये मुरीदों, शिष्यो और भक्तों की कठिनताओं को सुनते हैं, सम्मति, सान्त्वना और आशीर्वाद भी देते हैं। ध्रुवपदकार भी सामान्य जीव थे, जीवन की विषमताएँ इनके लिए भी थी। हिन्दू-सन्त और मुसलमान सूफी गाने-बजाने पर रीझते ही थे और ध्रुवपदकारों के पास उन्हें रिझाने के लिए अपनी कला के अतिरिक्त और था ही क्या। इसीलिए, निर्गुण ब्रह्म, अलख, नाद, मुद्रा, सेली, पैगम्बर और पीर भी ध्रुवपदों मे दिखाई देने लगे।

नारी, किसके लिए आकर्षण की वस्तु नही है। भर्तृहरि ने कहा है :

एताञ्चलद्वलयसंहतिमेखलोत्थझङ्कारनूपुरपराजितराजहंस्य : ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ।।

अर्थात्, 'वे तरुणियाँ अपने वित्रस्त और मुग्ध हरिणियो जैसे कटाक्षो से किसके मन को वश में नही करतीं, जिन्होंने हिलते हुए कंकणों, मेखलाओं और नूपुरो के झंकार से राजहंसों को पराजित कर दिया है।' नारी के इस विश्वविमोहन रूप की विभिन्न झाँकियों का वर्णन ध्रुवपदकारों ने लोकरंजन के लिए किया, जिनमे किसी भी आश्रयदाता को सम्बोधित नही किया गया है। राजा हो, चाहे रंक, अपनी प्रेयसी के लिए वह 'दुष्यन्त' है और प्रेयसी उसके लिए 'शकुन्तला'। ऐसी रचनाओ ने सभी के मन को मोहा है। अबुल फजल ने मानसिंह तोमर के दरबार मे जन्म लेनेवाली जिस गीत-शैली को सर्वजनमोहक कहा है, वह इन्हीं गीतों की शैली है। बख्शू जैसे कलाकार को बहादुरशाह गुजराती के दरबार में ऐसी रचनाओ के प्रताप से ही हाथो-हाथ लिया गया था।

कुछ बातें मांगलिक समझी जाती है और रूढ हो जाती है। विभिन्न अवसरो पर दरबारों में गायकों द्वारा मंगल-गान अथवा विरुद-गान की एक परम्परा रही है। अतएव, पराक्रम एवं प्रताप जिन ध्रुवपदों का विषय है, वे विभिन्न उत्सवो, मागलिक अवसरों और त्योहारों पर आम दरबार मे गाने के लिए है। उनका प्रयोजन सगीत-गोष्ठियों में श्रोताओं को रससिक्त करना नही है। इसीलिए, इन ध्रुवपदों मे समर्थ ध्रुवपदकारों का मन भी पूर्णतया रमा नहीं है। व्यक्ति-विशेष भले ही अपनी प्रशंसा से सन्तुष्ट होता हो, परन्तु जो व्यक्ति राम और कृष्ण के समान लोकनायक न होकर केवल कोई राजा या बादशाह होता है, उसकी प्रशसा से पूर्ण कविताएँ श्रोताओं को रसमग्न करने में सदा असमर्थ रहती है।

ध्रुवपदकारों की रचनाओं में भक्ति-सम्बन्धी ध्रुवपद भी है और कही-कही ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वान्तःसुखाय भी लिखे गये है। दरबारों की परिधि में न रह-कर जिन्होंने सर्वथा अपने आराध्य को रिझाने के लिए ही रचना की, ऐसे एकमात्र ध्रुवपदकार वृन्दावनवासी **स्वामी हरिदासजी** है, जिनकी पंक्ति-पंक्ति से रस की धाराएँ प्रवाहित होती है। इनके पदों में एक प्रकार का आर्जव है, बाल-सुलभ भोलापन है और एकान्त अनुभूतियों का अत्यन्त मनोरम एवं हृदयस्पर्शी चित्रण एवं विश्लेषण भी। ये अपने समान स्वयं ही है। इस स्थान पर उस काल के समस्त सन्तों अथवा भक्त-कवियो के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है, जो उस युग को अपने बहुमूल्य व्यक्तित्व से प्रभावित कर रहे थे और जिनके सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य के विद्वान् पर्याप्त मात्रा मे अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ सामग्री प्रस्तुत कर चुके है। ध्रुवपदकार भी समकालीन सन्तो के परिचय में आये थे और उनसे प्रभावित हुए थे। **तानसेन और सूर के पारस्परिक मिलन की बात अत्यन्त प्रसिद्ध है।** कहा जाता है कि तानसेन ने—

किधौं सूर को सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, जो अस बिकल सरीर ।।

कहकर 'सूर' के पदों की प्रशंसा की थी और सूरदास ने—

बिधना यह जिय जान कै, सेषहिं दिये न कान ।
धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान ।।

कहकर तानसेन का अभिनन्दन किया था। यदि सचमुच सूर की प्रशसा से युक्त उपर्युक्त दोहा तानसेन का है, तो वह उनकी ऐसी कविता का एकमात्र प्राप्त उदाहरण है और उन्हें शब्दों का निपुण शिल्पी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। स्वामी हरिदासजी तो तानसेन के गुरु प्रसिद्ध ही हैं।

ध्रुवपदों के विषयों और उनके स्रोतों का वर्णन हो ही चुका है, अतः ध्रुवपदकारो की उपलब्ध कृतियों के आधार पर साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

काव्यपुरुष का प्राण 'रस', शब्द एवं अर्थ 'शरीर', 'ओज', 'माधुर्य' और 'प्रसाद' गुण तथा काव्यगत 'अलंकार' आभूषण हैं। इन वस्तुओ मे काव्य के अन्तरग और बाह्य पक्षो का अन्तर्भाव प्रायः हो जाता है। इसी दृष्टि से हम ध्रुवपदों का अध्ययन करेगे।

१. बैजू :

मानसिह तोमर के काल से बहादुरशाह गुजराती तक के काल मे इनकी चर्चा मिलती है। इन दरबारों के पण्डितों, कवियो और कलाकारो से इनका सम्पर्क था। 'मानकुतूहल' की रचना में जिन गुणियों का योग रहा, उनसे इनका परिचित होना स्वाभाविक है। एक ध्रुवपद में इन्होंने स्वय को आदिकवि (परिशिष्ट, आ ८) कहा है और हमारी दृष्टि में भी व्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदिकवि यही है। इनकी रचनाएँ गायको के मुख से सुनाई देती है। 'रागकल्पद्रुम' मे इनके ध्रुवपद यथास्थान विद्यमान है; क्योंकि गेय रचनाओं का रागानुसारी वर्गीकरण रागकल्पद्रुमकार ने किया है। 'राग-कल्पद्रुम' के द्वितीय संस्करण का सम्पादन जिन पण्डितो की सहायता से हुआ, वे संगीत और उसके इतिहास से परिचित नही थे। उन सज्जनो ने मूल पाठ का मनमाना सशोधन भी किया है। सम्पादक ने संगीत से अपनी अनभिज्ञता स्वीकृत की है।[१] इन्ही कारणो से 'रागकल्पद्रुम' में संकलित कुछ ऐसी रचनाएँ भी बैजू-कृत मान ली गई है, जो बैजू-कृत नही हैं। उदाहरण के लिए, निम्नाकित रचना मे संकेतवाचक विशेषण 'वे' और 'जू, मिल कर 'बैजू' हो गये हैं :

दोनों करतार तुमें राज साज की
सकल सोभा ऐसो नाह और कोउ जानी ।
साहब सुजान समझ तान की राखत हो तुम
गुनी आय गावत ए नीकी सुध बानी ।

१. रागकल्पद्रुम, भाग २, ग्रन्थकार और ग्रन्थ का परिचय, पृ० ४।

जानत है नीके भाग आपन बैजू रहत है
रीझ जगत में तुमारी अमीर रावरानी ।
देत हो दान सनमान दुख दारिद्र विडयन (विडारन) हमरे कारण
कियो तुमहूँ को अब साहिब किरानसानी ।[1]

'साहिब किरानसानी' शाहजहाँ की उपाधि है, जिनकी प्रशंसा में किसी ने इस ध्रुवपद की रचना की है । शाहजहाँ के युग से बैजू का कोई सम्बन्ध नही । 'बैजू और गोपाल' नामक पुस्तक मे 'साहिब किरानसानी' को सम्पादित करके 'साहब फिरा निसानी' कर डाला गया है। मानों इस ध्रुवपद में कोई किसी से अपनी 'निसानी' वापस माँग रहा हो ।[2]

बैजू की रचना के विषय—गणेश, दुर्गा, शकर, हरिहर, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, राम, कृष्ण और सर्वदेव की स्तुति, गुरु-महिमा, हरि-स्मरण, नाम-महिमा, ब्रह्म की व्यापकता, ५बोध, नाद-साधन, संगीत, नायिका-भेद, जन्मोत्सव की बधाइयाँ, वशी और रास हैं ।

वस्तुतः, इन्हे एक युगप्रवर्त्तक ध्रुवपदकार माना जाना चाहिए, जिनके दिखाये हुए मार्ग पर चलकर तानसेन और अन्य ध्रुवपदकारो ने संसार मे प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

शैवों और वैष्णवों के परस्पर सिर फोडनेवाले दलों में बँटी हुई जनता जब विष्णु और शिव की एकता को भूलकर पारस्परिक विग्रह मे निमग्न थी, तब 'रामचरितमानस' की रचना से कही पूर्व यह महान् गायक विष्णु और शिव की एकता का प्रतिपादन करता हुआ कह रहा था :

बंसीधर पिनाकधर, गिरवरधर गंगाधर, चंद्रमालीलाधर हो हरिहर ।
सुधाधर, विषधर, धरनीधर, शेषधर, चक्रधर, त्रिसूलधर नरहरि शिवशंकर ।
रमाधर, उमाधर, मुकुटधर, जटाधर, भस्मधर, कुंकुमधर, पीताम्बरधर, व्याघ्रांबरधर ।
नन्दीधर गरुड़धर कैलासधर बैकुंठधर, कहै 'बैजू बावरे' सुनौ हो गुनीजन, निसदिन
हरिहर ध्यान उर धर रे ।।[3]

केवल विशेषणों के प्रयोग से बैजू ने इस रचना मे विष्णु और शंकर दोनों को सफलतापूर्वक मूर्त्त रूप मे चित्रित कर दिया है । इस प्रकार की अन्य रचनाएँ भी बैजू के साहित्य में प्राप्त होती है ।

बैजू का पौराणिक ज्ञान अच्छा था और वे अपनी नाभि से ब्रह्मा को प्रकट करनेवाले विष्णु-स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का भी प्रतिपादन करते थे। विष्णु और परब्रह्म की यह एकता उनके इस ध्रुवपद मे भली भाँति प्रतिपादित है :

---

१. रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ० १२६ ।
२. 'बैजू और गोपाल', पृ० ५६ ।
३. उपरिवत्, पृ० ४५-४६ ।

निरंजन निराकार परब्रह्म परमेश्वर, एक ही अनेक होय व्याप्यौ विस्वंभर।
अलख ज्योति अविनासी जोतिरूप जगतारन, जगन्नाथ जगतपति जगजीवन जगधर।
वाही में सब जीव-जंतु सुर-नर-मुनि गुनी-ज्ञानी, नाभि-कमल ते ब्रह्मा प्रकटायौ
और सतरूपा मन्वंतर।
कहै 'बैजू' वही ब्रह्म वही विराट रूप वही आपु अवतार भये चौबीस वपुधर।[१]

रूप-वर्णन साहित्य का एक विशिष्ट अंग है। बैजू की पद्मिनी सुन्दर, नवेली और प्रवीण होने के साथ ही नितान्त कोमल है। स्वकीया के रूप मे यदि ऐसी रमणी किसी को प्राप्त हो, तो उसके समान भाग्यशाली कौन होगा। जिन उपमानो से बैजू ने पद्मिनी को सजाया है, वे भारतीय साहित्य में नये नही है, परन्तु ध्रुवपद-साहित्य के आदिकवि बैजू ने उनका परिचय अपने क्षेत्र मे अत्यन्त सफलतापूर्वक दिया है। रचना प्रौढ है, उसमे शिथिलता नही है। अत्यन्त शान्त और कोमल यह पद्मिनी 'कामसूत्र'-वर्णित विशेषताएँ अपने अन्तरग और बहिरग में लिये हुए कृशता के कारण केश-भार से दबी-सी जा रही है.

सुन्दर अति नवीन प्रवीन महाचतुर, मृगनैनी मनहरनी चपकबरनी नार।
केहरि कटि, कदली जंघ, नाभि सरोज, श्रीफल उरोज, चन्द्रबदनी, सुक नासिका,
भौंह धनुष, काम द्वार॥
अंग-अंग सुगंध पद्मिनी, भंवर गुंजत सुवास आवत क्रोध नही, सांत सरूप, कृसता
ही दबी जात बारन के भार।
धन-धन ताकौ भाग, तोसी तिया जा घर बैजू प्रभु रस बस कर लीने, काम-जाल
डार॥[२]

पति की प्रतीक्षा में निमग्न वासकसज्जा का एक रूप बैजू के द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रित हुआ है। 'शंका', 'उत्सुकता', 'वितर्क' इत्यादि सचारी भावों को अत्यन्त सक्षिप्त रूप में जिस प्रकार बैजू ने इस छन्द में प्रस्तुत किया है, वे कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते है। नायिका बेचारी को न लेटे ही चैन है, न बैठे ही। शृंगार करने पर भी वह विरहिणी जैसी है। मन मे उमंग है और अंग-अंग को वह अँगडाई ले-लेकर मरोड़ रही है। प्रतीक्षा का मूर्त्त रूप यह सुन्दरी स्वयं है। भाव, अनुभाव और संचारी भाव इस रचना में सजीव हो उठे हैं। रचना इस प्रकार है:

कर पै गुलफ धरें तिय दुचित अनमनी, करके सिंगार बिरहिन ह्वै बैठी री।
पिय-पिय, रट लागी, मग जोहत, मोहत रंग, उमंग भरी आलस अंग-अंग मरोरत हैं
ऐंठी री॥
नख-सिख लौं आभूषन भूषन जगमग रहे, पिय आवन की उछाह, नांहिन पत कल
नेंक लेटी री।

---

१. बैजू और गोपाल, पृ० ५१।
२. उपरिवत्, पृ० ६५।

'बैजू' प्रभु मनमानी आय गये वाही छिन, धन-धन भाग सुहाग नारि अंग-अंग भेंटी री ॥[1]

प्रमियों के लिए स्वप्नों का संसार अत्यन्त मनोरम रहा है। निष्ठुर-से-निष्ठुर प्रेमपात्र भी अत्यन्त हताश प्रेमियो को स्वप्न में आकर दर्शन देता रहा है। जो सुन्दर मुख जागरित अवस्था मे प्रेमी के लिए दुर्लभ रहता है, वह स्वप्नों के स्वर्णमय जगत् में प्रेमी के मनोरथो की पूर्त्ति करता है। उस संसार में जो व्यक्ति प्रेमपात्र के साथ प्रेमालाप मे निमग्न होता है, उसके लिए आँख का खुलना अत्यन्त अवांछनीय होता और उसके मन मे प्रियतम से साक्षात् मिलन के लिए एक तीव्र उत्सुकता जगा देता है। संचारी भाव 'स्वप्न' के साथ अन्य सचारी भावों के द्वारा विप्रलम्भ-श्रृंगार का सुन्दर परिपोष बैजू के इस छन्द में हुआ है, जिसमे नायिका स्वप्न-मिलन के सुख का अनुभव करने के साथ-ही-साथ विरह की तीव्रता से अनमनी हो रही है :

आज सुपने में सांवरी सलौनी सूरत देखी, सैनन करी मो सौं बात।
तबतैं मै बहुत सुख पायौ, जागत भई परभात।
मधुर बचन बोल मदन मंत्र पढ़ि डारौ, उन बिन छिन-छिन कछु न सुहात।
'बैजू' ब्रज की नारी, जंत्र-मंत्र लिख सारी, कल न परत गात, सब दिन-रात ॥[2]

बैजू की भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है, परन्तु अपने तद्भव रूप के कारण वे भाषा में घुल-मिल गये हैं। व्यर्थ शब्दों का प्रयोग बैजू नही करते और उनके यहाँ भरती के शब्द नही है। सादृश्यमूलक अलंकारो का प्रयोग उनकी कविता मे स्वयं हो गया है, वे प्रयत्न का परिणाम नही हैं। माधुर्य और प्रसाद उनके काव्य के सहज गुण है और अनुभूति उनके ध्रुवपदों मे पद-पद पर है।

यहाँ यह दुहराने की आवश्यकता नही कि जिस मानसिंह तोमर की राजसभा मे बैजू की वाणी का स्रोत खुला, उसके राज्याभिषेक के समय महाकवि सूरदास की आयु प्राय· चार वर्ष की थी और गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्म (सन् १५३२ ई० अथवा सवत् १५८६) के लिए भारतवर्ष को प्राय: ४७ वर्ष की प्रतीक्षा करनी थी।

बैजू के काव्य ने पश्चाद्वर्त्ती सरस्वती के वरद पुत्रों को कहाँतक प्रभावित किया, यह चिन्तन का विषय है। इस दृष्टि से भी साहित्य में बैजू का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हमारी दृष्टि में 'सूर' और उनके साथी कवियों को व्रजभाषा की जिन रचनाओ ने प्रभावित किया, उनमें बैजू की रचनाएँ प्रमुख हैं।

२. बख्शू :

बख्शू की ख्याति संगीतज्ञों में बहुत अधिक है और इन्हें अत्यन्त सुन्दर ध्रुवपदों का रचयिता कहा जाता है। शाहजहाँ के काल तक इनकी रचनाएँ सहस्रों कण्ठों से गुंजित

---

१. बैजू और गोपाल, पृ० ६८।

२. उपरिवत्, पृ० ६७।

होती थी। 'रागकल्पद्रुम', द्वितीय भाग, पृ० २२३ पर गणेशस्तुति-विषयक इनकी निम्नांकित रचना दी हुई है :

पूजौ रे गणेश को गुनि।
रिद्धि सिद्धि के दाता विघ्न हरण दुनि॥
जिन ध्यायौ तिन पायौ मन इच्छा भनि।
बख्शू के प्रभु को ध्यावत, सुर-नर-मुनि॥

इस पद मे 'रागकल्पद्रुम' के पण्डितो ने कृपा करके 'रिधि-सिधि' के स्थान पर 'रिद्धि-सिद्धि' और 'विघनहरन' के स्थान पर 'विघ्नहरण' करके मूल पाठ का 'सम्पादन' कर डाला है। साथ-ही-साथ लेखक-सूची मे ऐसी रचनाएँ भी बख्शू के नाम में गिना दी हैं, जिनमें 'दो' के अर्थ मे 'बख्शो' क्रिया का प्रयोग किया गया है। इतना ही नही, 'बाँक बख्श' की मुद्रा से अकित ठुमरियाँ भी वहाँ बख्शू के खाते मे जमा कर दी गई है।

कहा जाता है कि शाहजहाँ ने इनके सहस्र ध्रुवपदों का सग्रह कराया था।

३. गोपाल द्वितीय.

गोपाल द्वितीय बैजू के शिष्य थे। इनकी रचना के विषय संगीत, कृष्णलीला और गान-प्रतियोगिता है। कुछ ध्रुवपदों में ये प्रतिस्पर्द्धी की भाँति बैजू को सम्बोधित करते दिखाई देते है, तो कुछ में बैजू के द्वारा इनकी भर्त्सना भी मिलती है। सम्भवत:, इन्हे अभिमान हो गया था और ये अपने गुरु से स्पर्द्धा करने लगे थे। इनके ध्रुवपदों में सिकन्दरशाह (सिकन्दर सूर) और छत्रपति संग्राम, राणा सांगा तथा राजा राम (रामचन्द्र बघेला) को सम्बोधित किया गया है। इनकी रचनाएँ सगीत के पारिभाषिक शब्दों से भरी हुई हैं और प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये शुष्कहृदय व्यक्ति थे। परिशिष्ट अ में ११ और १२ संख्यक इनकी रचनाएँ हैं।

४ श्रीस्वामी हरिदासजी :

वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी एक विशिष्ट सखीभाव की उपासना के प्रवर्त्तक हैं। ये रस मे सर्वागमग्न महापुरुष थे। इनके श्याम-श्यामा अलौकिक हैं, उनकी 'केलि' भी अलौकिक तथा उनका नित्य निकुंज-विहार भी अलौकिक एव नित्य है। सखियाँ अपने सख्य के कारण श्याम-श्यामा के परम गोपनीय एवं रसमय एकान्त व्यापारों के देखने की अधिकारिणी होती हैं। स्वामी हरिदासजी स्वयं मे सखी-भाव का आरोप करके अपने उपास्य 'युगल' की लीलाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं। वे उनके समक्ष सदा विद्यमान हैं, वियोग के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है। नित्यविहार में वियोग के लिए अवसर ही कहाँ ? वे कहते हैं :

माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम घन दामिनि जैसें।
प्रथमहूँ हुती अबहू आगे हूँ रहिहैं न टरिहैं तैसें।
अंग-अंग की उजराई सुखराई चतुराई सुन्दरता ऐसें।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा, कुंजबिहारी सम वैसें-वैसें।

केलि-सम्बन्धी पदों मे हरिदासजी ने श्याम-श्यामा के स्वाभाविक मधुर और कान्त क्रीडा-व्यापारों का जो ऋतु-वर्णन किया है, वह स्वतः प्रवाहित अमृतस्रोत के समान है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि हम कोई दृश्य सचमुच देख रहे है, उसमे कोई प्रयत्न नही है। श्याम श्यामा से पूछते है : 'प्रिये ! जैसे मैं तुम्हारी आँखों मे स्वयं को देखता हूँ, उसी प्रकार तुम्हें भी मेरे नेत्रों में अपना दर्शन मिलता है या नहीं ?' उत्तर मिलता है, : 'मै तो आँखे मूँदे हुए हूँ, फिर भला लाल निकलकर कहाँ जायेंगे ?' श्याम फिर कहते हैं : 'मुझे निकलने के लिए स्थान तो बताओ। सच कहो, पैर पडता हूँ, बलि जाता हूँ। निरन्तर तुम्हें केवल देखना चाहता हूँ। मेरे लिए अन्य कोई सुख नही है।' हरिदासजी के शब्द है :

प्यारी जू जैसें तेरी आंखिन में हौं अपनपौ देखत हौं,
ऐसें तुम देखत हौ किधौं नाहीं।
हौं तोसों कहौं प्यारे आंखि मूंदि रहौं,
तौ लाल निकस कहाँ जाहीं॥
मोकौं निकसिबे को ठौर बतावौ,
सांची कहौ बलि जांव लगौं पाहीं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी,
तुम्ह देख्यौ चाहत और सुख लागत काहीं।[1]

ऐसी रचना को केवल आलंकारिकों की दृष्टि से देखकर यहाँ 'स्वभावोक्ति'-मात्र बताना इस दूध से धुले हुए ध्रुवपद का अपमान करना है। परम सुन्दरी अप्सरा का दर्शन करके उसके उत्तरीय की किनारी पर दृष्टि गडाना है। इस काव्य-मन्दाकिनी मे सर्वांगमग्न होकर स्वय रस-रूप हो जाने में ही आनन्द है। विभाव, अनुभाव और संचारी भाव खोज-कर भी ऐसी रचनाओं का मूल्यांकन सम्भव नही। इसमें जो कुछ है, वह सहृदय-जन-संवेद्य है, उसका विश्लेषण द्रौपदी का चीरहरण है।

हरिदासजी की श्यामा सकल कलाओं की मर्मज्ञा हैं। उनके सामने गुण की बात भला कौन जान सकता है ? यदि कोई कुछ जानता है, तो वह ज्ञान भी उन्ही का प्रसादमात्र है :

गुन की बात राधे तेरे आगे को जानै।
जो जाने सो कछू उनहारि।
नृत्य गीत ताल भेदन के भेद न जाने।
काहू जिते तिते देखे झारि।[2]

बाह्य प्रकृति ने स्वयं श्याम-श्यामा की केलि में सहयोग देना आरम्भ कर दिया। कोई सखी कहती है कि "अरी राधे चल, हरि बुला रहे हैं, कोकिला आलाप कर रही है, विहंग स्वर दे रहे हैं, राग बन गया है। वहाँ चल, जहाँ मोर काँछ बाँधे नृत्य कर

१. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ७१।
२. उपरिवत्, पृ० १२।

रहे हैं, मेघ पखावज बजा रहे हैं और बन्धान गिना हुआ है। ये सब वस्तुएँ लौकिक नही है, फलतः ध्यान के बल पर मैंने इस स्थिति को जाना है और मैं आई हूँ, कहना कुछ चाहा था, कह कुछ और रही हूँ" :

राधे चलि री हरि बोलत ।
कोकिला अलापत, सुर देत पंछी, राग बन्यौ ।
जहां मोर कांछ बांधे निर्त करत, मेघ पखावज बजावत, बंधान गन्यौ ।
प्रकृति की कोऊ नाहीं याते ।
सुरति के अनुमान गहि हौं आई मैं जन्यौ ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा
कुंजविहारी की अटपटी बानि औरै कहत कछू औरै भन्यौ ।।[1]

ये ऐसी उक्तियाँ है, जो साहित्यशास्त्र को नये नियम देती है। विष्णु और लक्ष्मी जैसे पौराणिक नायक-नायिकाओं में इन श्याम-श्यामा की गणना नही हो सकती, क्योंकि इस रूप मे ये पुराणसिद्ध नही है, यहाँ कोई कथा नही है, नित्यकेलि है। इन्हें अन्य दिव्य पात्रों की भाँति भी नही कहा जा सकता। श्याम-श्यामा प्रकृति के लिए स्वयं उद्दीपन हो गये है और राधा की प्रतीक्षा मे निमग्न है। साथ ही यह प्रकृति सामान्य बाह्य प्रकृति नही है। वे कोकिलाएँ अलौकिक है, वे पंछी अलौकिक है, वे मेघ अलौकिक है। इस तथ्य का पोषक अन्तःसाक्ष्य 'प्रकृति की कोऊ नाही' मे निहित है। गिने-बँधे प्रकारो में ऐसी रचनाओं का वर्गीकरण नही किया जा सकता और सचमुच इनमे आलम्बन-उद्दीपन गिनाया जाना सम्भव नही है। जो स्वय में अपूर्ण है, उसे किसी बाह्य उद्दीपन की आवश्यकता होती है। जो स्वतः पूर्ण है, उसे उसकी क्या आवश्यकता? उद्दीपन कहलानेवाली वस्तुएँ स्वय उससे जीवन लेंगी। प्रकृति का कवि के शब्दों मे यह अलौकिक एवं परम रहस्यमय रूप साहित्यशास्त्र मे गिनाई हुई विधाओं के अन्तर्गत कम-से-कम हमारी दृष्टि मे तो नही आती और हम ऐसे वर्णन को प्रकृति के आलम्बन या उद्दीपन-रूप मे वर्गीकृत करने के लिए स्वय को सर्वथा असमर्थ पाते हैं। सब कुछ कहने के पश्चात् भी सखी उस स्थिति की अवर्णनीयता की ओर सकेत करती हुई कहती है कि 'मै कहना चाहती थी कुछ, कह गई कुछ'। यहाँ आलकारिक विश्लेषण कौन करे?

प्रेम के अनेक अगों का वर्णन हरिदासजी के यहाँ है। ढूँढनेवालो को उसमें 'मान' भी मिल जाता है, परन्तु 'विरह' खोजनेवालो को हरिदासजी के द्वार से निराश लौटना पड़ेगा। हमारे द्वारा उदाहृत प्रथम पद्य की आदिम पक्ति मे उत्प्रेक्षा अलकार है, परन्तु वह सीधी-सादी उत्प्रेक्षा नहीं है। वहाँ उपमान-द्वय और उपमेय-द्वय मे केवल वर्णसाम्य ही नही, कुछ और भी है। जोड़ी प्रकट हुई है, परन्तु वे एक और एक दो नही है, घन-दामिनी है। घन से अतिरिक्त दामिनी की सत्ता सम्भव नही। अत', इस उत्प्रेक्षा में स्वयं में

---

१. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ८६।

उस जोड़ी के पारस्परिक नित्य ऐक्य को प्रकट करनेवाली जो ध्वनि है, उसपर मन नाच उठता है।

द्वितीय रचना में परस्पर एकटक देखना और अटपटी-सी बातों में उत्तर-प्रत्युत्तरो का बहक-बहका होना अनुभाव हैं और वे इन अलौकिक छवियों के अलौकिक शृंगार का पोषण करते हैं। चतुर्थ रचना मे कोकिल-कोकिला, विहंगों के कलरव, मयूरों के उल्लास और मेघ के गर्जन में आलाप, स्वर छिड़ना, नृत्य और मृदंग का साम्य आदि 'साध्यवसाना लक्षणा' द्वारा देखे गये है, जहाँ उपमानस्थानीय व्यापारों ने उपमेयस्थानीय व्यापारों को सर्वथा निगीर्ण कर लिया है।

केलि-सम्बन्धी ध्रुवपदों के अतिरिक्त स्वामीजी के जो ध्रुवपद मिलते है, वे सिद्धान्त-सम्बन्धी है। उनमे जीव की विवशता, ईश-कृपा का महत्त्व, प्रबोध, विनय इत्यादि भाव है। एक विशिष्ट पद में जीव और ब्रह्म में जन्य और जनक का सम्बन्ध देखा गया है। पद है:

बन्दे, अख्त्यार भला।
चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला॥
न फिर दर-दर पिदर दर न होहु अंधला।
कहि श्रीहरिदास करता कीया सो हुआ सुमेरु अचल चला॥[१]

प्रस्तुत पद में हरिदासजी की भाषा सर्वथा परिवर्त्तित है। 'अख्त्यार, बन्दे, दर-दर, पिदर' जैसे फारसी शब्द स्वामीजी की सहज प्रवृत्ति नहीं है। 'कीया' और 'हुआ' जैसे खडी बोली के क्रियापद भी यहाँ विद्यमान हैं और 'करता कीया' में 'ने' की अनुपस्थिति खड़ी बोली की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देती है।

अन्तिम उदाहरण मुसलमानों अथवा फारसी के पण्डितों के साथ उनके सम्पर्क का परिचायक है और कुछ सधुक्कडी प्रवृत्ति का है। इसमें उपदेश की रूक्षता है, कविता की कान्ता-सम्मितता नहीं।

५. भगवन्त :

इनकी अधिक रचनाएँ अभी तक प्राप्त नही है। परिशिष्ट आ मे १३, १४, १५ और १६ संख्यक इनकी रचनाएँ हैं, जिनमें प्रथम तीन पर पद-शैली का कुछ प्रभाव है। उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक इत्यादि अलकारों का प्रयोग इन्होंने सफलता के साथ किया है। भाषा में प्रवाह है और जहाँ ये केवल भगवान् के नाम गिनाने में नही लगे है, वहाँ लालित्य भी है। इनकी रचनाओं के विषय शोभा-वर्णन, प्रेम, अंग-वर्णन और भगवन्महिमा है।

६. तानसेन :

समसामयिक एवं पश्चाद्वर्त्ती राज्याश्रित ध्रुवपदकारों मे ये सर्वश्रेष्ठ हैं और बैजू के योग्य उत्तराधिकारी। इनकी रचनाओं के विषय देवस्तुति, विनय, प्रबोध, पीरों की स्तुति,

१. संगीत, हरिदास-अंक, पृ० ६७।

प्रताप, कृष्णलीला, गोपी-प्रेम, नायिका-भेद, अनाहत नाद, अलख, ऋतु-वर्णन ऐतिहासिक घटनाएँ तथा संगीत हैं। अपने युग में प्रवर्त्तित व्रजभाषा-काव्य की परिधि मे आनेवाले प्रायः प्रत्येक विषय का सफल स्पर्श इन्होने किया है।

'मिश्रबन्धुविनोद' में तानसेन-कृत तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। उनके नाम 'संगीतसार', 'रागमाला' और 'श्रीगणेशस्तोत्र' हैं। उनमें प्रथम दो उपलब्ध हैं और उनका विषय संगीतशास्त्र है। 'श्रीगणेशस्तोत्र' अनुपलब्ध है।

जहाँगीर के अनुसार, तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की थी। इनमें से अधिकांश की खोज अबतक नहीं हुई है। **डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल** ने तानसेन-कृत १८२ ध्रुवपद संगृहीत किये हैं। **श्रीनर्मदेश्वर चतुर्वेदी** ने 'कवि तानसेन और उनका काव्य' में इनके २४९ ध्रुवपद संकलित किये है। 'हिन्दी के संगीतज्ञ कवि और उनकी रचनाएँ' नामक एक दूसरे संग्रह में तानसेन-कृत कहकर २४७ ध्रुवपद दिये गये है और **श्रीप्रभुदयाल मीतल** ने 'संगीत-सम्राट् तानसेन' मे २८८ ध्रुवपद तानसेन-कृत समझकर संगृहीत किये है। इन चारों संग्रहों का आधार प्रधानतया 'रागकल्पद्रुम' है, जिसके दूसरे संस्करण का पाठ प्रयत्नपूर्वक भ्रष्ट किया गया है।

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट 'अ' में अकबर की मुद्रा से अंकित तानसेन-कृत ६१ और परिशिष्ट 'आ' में तानसेन की मुद्रा से अंकित ५८ ध्रुवपद 'रागमाला' के आधार पर, संगृहीत किये गये हैं। इनमें अनेक ऐसे हैं, जो अभी तक अप्रकाशित है और अवशिष्ट ऐसे है कि जिनके पाठ का 'स्वछन्द' सम्पादन किसी ने नही किया है, अतएव इन सभी ध्रुवपदो का बहुत महत्त्व है।

अकबर के साथ स्थायी एव अस्थायी रूप मे हिन्दी के अनेक कवि सम्पृक्त रहे थे। 'करनेश', 'दुरसाजी', 'होलराय', 'ब्रह्मभट्ट', 'कुम्भनदास', 'सूरदास', 'व्यास', 'चन्द्रभान', 'चतुर्भुजदास ब्राह्मण', 'राजा आसकरण', 'पृथ्वीराज', 'सूरदास मदनमोहन', 'मनोहर', 'टोडरमल', 'नरहरि', 'बीरबल', 'गंग' और 'रहीम' ऐसे ही कवियों मे है। अकबरी दरबार में अपने जीवन के अन्तिम २८-२९ वर्ष बितानेवाले तानसेन का परिचय अथवा निकट सम्बन्ध इन कवियों के साथ अवश्य रहा होगा। इन सज्जनों की कृतियों का आनन्द लेने और उन्हें अपनी कृतियों से आनन्दित करने की पूर्ण क्षमता तानसेन में विद्यमान थी। जीवन की स्वच्छ अनुभूतियों के साथ, समर्थ कवि की सूक्ष्म दृष्टि और अभिव्यक्ति की प्रौढता के साथ-साथ कल्पना की भरपूर उडान हमे तानसेन की रचनाओं में वहाँ मिलती है, जहाँ उन्होंने स्वान्तःसुखाय लिखा है।

अकबर के महान् ऐश्वर्य का उन्होंने दर्शन ही नही किया था, वे उसके अत्यन्त निकट रहकर उपभोग में भी एक प्रकार से इस गुणग्राही और कला-मर्मज्ञ आश्रयदाता के सखा रहे थे, इसीलिए उनमें वह दृष्टि थी, जो एक निष्णात ध्रुवपदकार मे होनी चाहिए।

'ध्रुवपदों के विषय' नामक प्रकरण में उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ दी जा चुकी है जिनमे 'कृष्ण-जलद' का साग-रूपक उनकी प्रतिभा का प्रगाढ परिचय देता है। जिस

स्वाभाविकता के साथ उन्होने वहाँ साग रूपक का निर्वाह किया है, वह कुशलता उन समर्थ कवियों मे ही मिलती है, जिनके समक्ष अलंकार हाथ बाँधे खडे रहते हैं ।

उस प्रकरण में तानसेन द्वारा नायिका के शृंगारों का वर्णन हुआ है, जो हमारे समक्ष एक ऐश्वर्यशालिनी नायिका का चित्र खड़ा कर देता है ।

वहाँ नयन-वर्णन से सम्बद्ध एक ध्रुवपद भी दिया जा चुका है, जहाँ तानसेन ने नयनों और उसके भावों में सहज सुन्दर एव मोहक उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। यहाँ हम उनके काव्य-सौष्ठव का परिचय देने के लिए कुछ अन्य ध्रुवपद प्रस्तुत कर रहे है।

नायिका के मद-भरे नयन झूम-झूम आते हैं। छूटी हुई अलकें श्याम घन जैसी प्रतीत होती हैं और झपक-झपककर उघड जानेवाले नयन तारे के समान प्रतीत होते हैं। अरुण-वर्ण नैन, उनमें लाल-लाल डोरे और साथ-ही-साथ उन नयनों मे मद की लहर देखकर तानसेन इस छवि पर वारि-तरंगो को न्योछावर कर रहे है। ये नयन अंजन के विना ही काले है । जो इन्हे देखता है, वह सदा छका ही रहता है । ध्रुवपद निम्नांकित है :

झूमि-झूमि आवत नैनां भारे तिहारे ।
बिथुरी अलकैं श्याम घन सीं लागत झपकि-झपकि उघरि जात मेरे जान तारे ।।
अरुण बरन नैनां तामैं लाल लाल डोरे तापर यह मौज, वारि-वारि डारे ।
तानसैनि कौ प्रभु सदांई छके रहत, कोकिला की धुनि मोहि बिनै अंजन कारे ।।[1]

यह उक्ति वस्तु-व्यंजना का सुन्दर उदाहरण है। नयनों का विशेषण 'भारे' और व्यापार 'झूमि-झूमि आवत' इस तथ्य की स्पष्ट व्यजना कर रहे है कि इस सौभाग्यशालिनी स्वाधीनपतिका को इसके पति ने रात-भर सोने नही दिया है। बिखरी हुई अलकों को श्याम घटा कहना तो कोई विशेष बात नही है, परन्तु उनमे छिपते नेत्रो मे मेघखण्ड-विचुम्बित तारकों की उत्प्रेक्षा करना तानसेन की अपनी विशेषता है, जो उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती है। नयन अरुण-वर्ण है, उनमें लाल-लाल डोरे है, यहाँतक भी कोई विशेष बात नही, परन्तु 'मौज' शब्द का साभिप्राय प्रयोग तरग से साम्य स्थापित करने के लिए ही है। संयोग-शृंगार के केवल एक अनुभाव नयनों के भारी होने और झूमने के आधार पर तानसेन ने एक रमणीय चित्र थोड़े-से शब्दों में हमारे सामने उपस्थित कर दिया है ।

स्वाधीनपतिका का एक और उदाहरण प्रस्तुत है :

लोचन जु मिलि करि कमल उनींदी निस अलकैं विथुरि रही आंनन अंक पर।
ठौर-ठौर आभूषन चल कोंचल विथुरे वार अमल सुफल फल कुभ वरसत कंचुकी तर ।
रसन वसन देखौ री है री लटपटे री तन-तन सोहै री अनोषी छवि पीअ कमलनि पर।
साहि अकबर पीअ सों रितु मांनी सब सखीअन में तू ही वर।[2]

१. परिशिष्ट आ, ५१ ।

२. परिशिष्ट आ, ७४ ।

'ठौर-ठौर आभूषन चल कोचल' और 'सुफल फल कुंभ' में जो सूक्ष्म व्यजना है, आलोचना मे उसे अभिधा बना डालना सहृदयता नही, उसके विपरीत है। मर्यादा की रक्षा करते हुए 'सुफल फल' में जो एक लम्बी कहानी कह दी गई है, वह तानसेन की अपनी प्रतिभा का परिणाम है। 'पीअ कमलनि' मे अलंकार ढूँढनेवालों को अपनी अतिशयोक्ति भी मिल जायगी।

प्रतीत होता है कि तानसेन अवश्य किसी के नयन-बाणों से विद्ध थे, इसीलिए नयन-वर्णन में उनका मन झूम-झूम उठता है। मानिनी की तिरछी चितवन का वर्णन करते हुए तानसेन कहते हैं :

त्रिवेनी उलटि बहीं मानों तिरछी चितवनि श्रीश्रा पीश्रा तन देखौ।
त्रिवेनी गंगा सलिता कौं संग लीयें सागर सों कछु अनमत देखौ॥
कँधौं कहू पतितन घेरी कँधौं कहूं पाप मोछ कँधौं बौहौराइवे के ठनगन पेखौ।
तानसेनि कौ प्रभु मोहिनी सी पढ़ि डारत कँधौं कहू जागे संकर मुनि देखौ॥[1]

'सेत, स्याम, रतनार' आँखों को त्रिवेणी कह देना कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु स्वकीया मानिनी की तिरछी चितवन के रूप में उस त्रिवेणी को उलटा बहा देना एक अनूठी उत्प्रेक्षा है। नायिका स्वकीया है, पतिप्राणा है, उसके पति को सागर बताकर त्रिवेणी के अवरोध में जिस प्रकार औचित्य दिखाया है, उसकी प्रशसा के लिए हमारे पास शब्द नहीं हैं। माना कि त्रिवेणी सागरोन्मुखी है, परन्तु यदि पतित उसे घेर ले, तो उसे एक क्षण के लिए ठहरना होगा। यदि कुछ पापी मुक्त करने से रह गये हों, तो उनके लिए पीछे भी लौटना होगा। सन्देहालंकार के द्वारा त्रिवेणी और नायिका के व्यापारो में सादृश्य प्रतिष्ठित करके तानसेन ने पातिव्रत्य की मर्यादा को जिस प्रकार से सुरक्षित रखा है, वह प्रकार अन्य कवियों में ढूँढ़ना पड़ेगा। यदि राजा रामचन्द्र ने ऐसी उक्तियों पर एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दी थी, तो उचित ही किया था।

अनेक अभियानों में तानसेन भी अकबर के साथ रहे थे, वे केवल गायक-वादक नहीं थे। युद्धक्षेत्र का उन्होंने अनेक बार प्रत्यक्ष दर्शन किया था। वर्षा ऋतु मे आकुल विरहिणी के मुख से अपह्नुति अलंकार द्वारा मेघों और कामदेव की सेनाओं मे जो साम्य प्रस्तुत किया है, वह केवल गाने-बजानेवालो के बस की बात नही है। विरहिणी की दृष्टि में वर्षा के मेघ 'बादल' नही हैं, उस बेचारी पर आक्रमण करने के लिए मन्मथ की सेनाएँ हैं। बिजली उनका खड्ग है, बूँदें बाण-वर्षा हैं और गर्जन दमामों की वीरोत्तेजक ध्वनि है। चातक इस सेना का जासूस है, जो उस बेचारी को ढूँढ लाया है, दादुर नफीरी बजा रहे हैं। नाच-नाचकर मोर शहनाइयों जैसी आकृति बनाये हुए हैं। वह बेचारी इस सेना से अपनी रक्षा भला किस प्रकार करे? तानसेन के शब्दों में इस विरहिणी की स्थिति इस प्रकार है :

---

१. परिशिष्ट आ, ५०।

घन न हौइ री माई जो आई मोपर मनमथ की फौजें धावन ।
दामिनीं षर्ग लीयें बूंद वान वरसत गरजन बीर रस दमांमौ बजावन ।।
जासूस चात्रग लायौ हो टेर मोहि माहि अकेली सप्त सुरन दादुर नफीरी सुनावन।
से हैंनाइनि मोर करत हैं नाचि नाचि जे सब तानसैनि के प्रभु के आंगें आवत करन ।।[१]

उपर्युक्त क्षेत्र से हटकर तानसेन ने स्वान्तःसुखाय जो रचनाएँ की है, उनमें भी तानसेन तन्मय हो गये है। कृष्ण के विरह में आकुल गौओं का स्वाभाविक वर्णन इस रचना में है :

कान तेरें बिन देषें गईयां काजर पीअरी धौरी धुंमरी वूबरी ।
और ग्वाल पैहैंचानत नाहीं, अधरनि दसनि तिरन चरत जह पाप लीयौ है कूबरी ।
ऐकनि तजे षान ऐकनि तजे प्रांन ऐक रहीं सूषि सूषि री ।
तानसैनि को प्रभु वेगि आंमन कीजें कब वेंहो हेरी ऊबरी ।'[२]

अत्यन्त सरल भाषा में गोपाल की विरहिणी गौओं का यह चित्र स्वभावोक्ति का सुन्दर उदाहरण है। गौओं के वियोग को तो वियोग-शृगार कोई नहीं कहेगा, परन्तु उनकी 'वकालत' करके गोपियाँ बात अपनी कह रही है। 'जह पाप लीयौ है कूबरी' में स्थित 'ईर्ष्या' संचारी भाव के रूप में वस्तुस्थिति स्पष्ट किये दे रही है।

कविता के विषय मे तानसेन के दृष्टिकोण पर एक अन्तःसाक्ष्य प्रस्तुत करके हम सन्तोष करेंगे। किसी मूर्ख रचनाकार का वर्णन करते हुए तानसेन कहते है :

जौ धुरपद नां सुध अछिरनि उक्त जुक्त न संगति राग बनावें ।
जे अरथांन गुनीमन को पचावे भिम सें निगुइनि को कीयौं गावें ।।
नौंरस राग जानें नअ लोकमध वाद ही कवि कहावें ।
साहि अकबर कीसों मोहितौं वुष और हांसी याहीते आवति अरथ पूछे ते कवि नांहीं करि आवत ।।[३]

तानसेन की आडम्बरहीन मनोरम शैली और प्रसादगुणयुक्त भाषा का दर्शन प्रस्तुत उदाहरणों से भली भाँति होता है। विदेशी शब्दों का प्रयोग इनमें नहीं जैसा हुआ है, परन्तु जिन ध्रुवपदों का विषय इस्लाम, पीर इत्यादि की प्रशंसा है, उनमे फारसी और अरबी के शब्दों का अपभ्रंश-रूप भली भाँति दिखाई देता है। पराक्रम और प्रशंसा जिन ध्रुवपदों का विषय है, उनमें कही-कही ओज गुण के दर्शन होते हैं।

दशहरा और ईद जैसे त्योहार भी इनके वर्णन का विषय बने है और कुछ ध्रुवपद अकबर के व्रजमण्डल में आगमन अथवा इलाहाबाद (इलाहाबाद के दुर्ग) से सम्बद्ध हैं। इनकी रचनाओ से उस समय के शृंगार की शैली का भी पता चलता है।

१. परिशिष्ट आ, ६४।
२. परिशिष्ट आ, ४७।
३. परिशिष्ट आ, ५१।

७. बाबा रामदास :

इनका परिचय यथास्थान दिया जा चुका है। इनकी रचनाएँ अनुपलब्ध है।

८. व्यास (हरीराम)

ये सत्कवि थे। इनकी अधिक रचनाएँ उपलब्ध नही है। अकबर की प्रशंसा में रचित इनके ध्रुवपद परिशिष्ट आ (सं १०४, १०५) में सकलित है। अपनी एक रचना में इन्होंने अकबर के पुत्र (जहाँगीर) के टीके का वर्णन करते हुए गगन-थार का सुन्दर सांग-रूपक बाँधा है। इनकी भाषा मे प्रवाह है और वह प्रसादगुणयुक्त है। ये रचनाएँ सिद्ध करती है कि इनके अन्य ध्रुवपद भी प्रयत्न किये जाने पर सम्भवतः मिल सकते हैं।

९. चंचलसस :

परिशिष्ट आ में इनकी रचनाएँ दी गई है, जिनके विषय नाद-समुद्र, मेघ, नायिका-भेद और होली है। काव्य के भावपक्ष पर इनकी दृष्टि गई है। भाषा सरल और स्वाभाविक है, जो कि ध्रुवपदकारों की विशेषता है; क्योकि इन रचनाओं के रस का आस्वाद अपने युग के श्रोतृ-सामान्य को कराना इनका तात्पर्य था। ध्रुवपदों के वर्ण्य विषयो की चर्चा करते समय इनके कुछ ध्रुवपद प्रस्तुत किये जा चुके हैं। अनुरक्ता नायिका का चित्रण करनेवाला इनका एक ध्रुवपद प्रस्तुत है :

बुरि बुरि देषत मुरै मुरि चलत है री सु कौन कारन मानों पीआ को अंको भरत पल पल पल कलनां।
मोसी चातुर आतुर मिलों चाहत दरस परस करि हों रीझे तुम रीझे निरषत फिरि फिरि फिर चल द्रग मलिन ॥
अब जानी रितु मानीअै मनमांनी अैसी कंधौं नंद वहैरत फिरत चित्त कल ल्यान।
चंचल ससि प्रभु मोहन के अंग सग देषिवे को जे अचरज जे कटाछि बस्तर निर्मल ते भए मलिन ॥[1]

प्रियतम की प्रतीक्षा में आकुल एक अन्य कामिनी अपने मान करने पर पछता रही है और प्रियतम के दर्शन के लिए उत्सुक है। यौवन-गर्व के कारण प्रिय के मनाने पर भी उसने 'अनबोला' साध लिया है। अपनी इस निष्ठुरता की स्मृति उसे इस समय रह-रहकर सता रही है। उसे विरह का प्रथम अनुभव है और वह विरह की 'सार' नही जानती। उत्सुकता, स्मृति, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव यहाँ वियोग-शृंगार का स्वाभाविक पोपण कर रहे हैं। विरहिणी की मानसिक अवस्था का सीधा-सादा चित्र यहाँ कवि ने प्रस्तुत किया है और यही इस रचना का सौन्दर्य है।

री हौं तौ मांन करि पछितानी माई बौहौरि आवें कब मिलेंगे री मनभांमन।
वे जौ मनावत हौं अनबोली ह्वै रही जोबन अति गर्व कहा कीजे लागौ बिरहा तनतावन।

---

१. परिशिष्ट आ, ७९।

हौं तौ कबहू न भई न्यारी अब तौ मैं जानीं बिछुरन की सार ।
त्यौं त्यौं सुधि आवत पीअ की त्यौं त्यौं लागी दुष पावन ।
मेरो तौ जनम जीतव तबही गिनौं भाई जब मिलें चंचल ससि प्रभु आवेंगे मेरे
प्रांन जिवावन ।[1]

सुरतान्ता का एक चित्र चचलसस इस प्रकार प्रस्तुत करते है :

उरझे फूल वसीले वारन मानौं घटा मधि ताराइन अैसे नीके मो मन मुक्तिमाल बगपांति तरषा सी कौंधन सुरति अंत लट छूटी स्यांमघन जहू अचरज देषौ सषी मृग मीन कमलवनि रहे एक ठौर मो मन सोभन चंचलससि प्रभु के अंग संग राषी री मुअ पर तुम बनि रही ईधनिधनि ।[2]

वेणी-मोचन के परिणाम-स्वरूप अलकें बिखर गई हैं और जूड़े के फूल सुगन्धित केशों में इधर-उधर उलझकर रह गये हैं। इस स्थिति को देखकर कवि मेघशावकों में से चमकनेवाले तारों की उत्प्रेक्षा करता है। मुक्तमाल में उसे बकपंक्ति का सादृश्य दिखाई देता है। इतना कहकर ही कवि को सन्तोष नही होता, छूटी हुई अलकों से झलकती हुई वह माला घन के अंक में चमकती हुई चचला-सी प्रतीत होती है। उक्ति का चरमोत्कर्ष तीसरी पक्ति मे होता है, जहाँ अतिशयोक्ति के द्वारा मृग और मीन के समान चंचल नेत्रों को रतान्त के परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली अचंचलता के कारण कमल बताया गया है। मर्यादा का रक्षण करने के लिए यहाँ 'साध्यवसाना लक्षणा' का आश्रय लिया गया है। ऐसे काव्य की शोभा अलकारों से नही होती, अपितु अलंकार स्वयं ऐसे काव्य के कारण शोभित होते हैं।

१०. सुरज्ञान खाँ :

इनकी रचनाएँ परिशिष्ट आ में है, जिनका विषय इस्लाम, संगीत और नायिका-भेद है। रचना साधारण कोटि की है। इस्लाम-सम्बन्धी ध्रुवपदों में मुसलमानो का पूरा 'कलमा' विद्यमान है। अरबी एवं फारसी के शब्दों का प्रयोग संस्कृत-शब्दों के साथ हुआ है और दोनों ही भाषाओं के शब्द तद्भव रूप में प्रयुक्त हुए हैं। संगीत-सम्बन्धी रचनाओं मे एक ध्रुवपद का शीर्षक 'नाद-दल' है, जिसमें संगीत के उपकरणों पर दल का आरोप किया गया है, जो परिशिष्ट आ (सं० ८८) में संगृहीत है। स्वाधीनपतिका का एक उदाहरण परिशिष्ट आ ८९ है, जो साधारण कोटि का है। इन रचनाओं में फारसी और अरबी शब्द नही है।

---

१. परिशिष्ट आ, ८४ ।
२. परिशिष्ट आ, ८२ ।

११. ज्ञान गुरु :

इनकी कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम', भाग प्रथम मे है, जिनका विषय संगीत है। एक रचना में सरस्वती का ध्यान करने के लिए ये तानसेन को उपदेश दे रहे है। रचना इस प्रकार है :

पार नहीं पाइये गुण समुद्र अथाह कौन विधि तरीऐ ।
कहा करिऐ कवन भांति जानीऐ मन ज्ञान नेत्रन असुज लागै ।
सुरतान ताल किस तरह घट मै आनीयै ।
जब उठत है ध्यान अति प्राण डरौ जाय चरण धरौ धाय-धाय कैसे गरढानीयै ।
कहै गुरु ज्ञान तानसेन, सुरसुती ध्यान धर अगस्तनो अचपानीयै ।[1]

सम्पादको की कृपा से 'गुन', 'प्रान', 'चरन' के 'नकार' का रूप 'णकार' ने ले लिया है। खड़ी बोली का 'किस तरह' न जाने किस तरह आ घुसा है और 'अगस्तनो अचपानीयै' सम्भवत: 'अगस्त ज्यौ अचमानीऐ' है।

१२. मदनराय ढारी :

इनकी प्राप्त रचनाओं का विषय सरस्वती-कृपा, अलख-वर्णन, अल्लाह का स्मरण तथा नाद है। एक रचना मे इन्होंने गर्वोक्तिपूर्वक कहा है कि मदनराय को[2] सरस्वती का ऐसा प्रसाद मिला है कि वह 'निकाई' के अनेक अग सुनाता है। एक अन्य रचना मे यह 'आनन्द सुजान' को सम्बोधित कर रहे है, जो सम्भवत. जहाँगीरी दरबार के 'आनन्द खॉ' है।[3] इनकी भाषा में कही-कही 'अल्ला' और 'साहब' जैसे अरबी शब्द आते है। भाषा मुहावरेदार है। इनकी प्राप्त रचनाओं मे कोई लालित्य नही है। अलख का वर्णन इन्होंने तन में मन्दिर का आरोप करते हुए इस प्रकार किया है :

कांम नींम (नींव) धरौ हो तापर अग्न माटी पांनी बयारि मिलि कियौ गारौ ।
अस्त पषांन वनाइ धरे विचित्र रजरो सन सजि कै प्रकत पचीस लगाइ कीनौं मंदिर भारौ ॥
आंवै करीअ झरोखा पलक पट और धरे कुच कलस नीकी बात धरिवे को कीनौं हो विलुआरौ ।
मदन कौ साहिब अलष लष्यौ न जाइ सो रसनां के बोलन मैं उनारौं ।[4]

सांग-रूपक का निर्वाह इस ध्रुवपद मे सफलतापूर्वक हुआ है। जबतक इनकी अन्य रचनाएँ न प्राप्त हों, काव्य की दृष्टि से इनके स्थान का निर्धारण करना कठिन है।

---

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० १३२ ।
२. परिशिष्ट आ, ९३ ।
३. परिशिष्ट आ, ९६ ।
४. परिशिष्ट आ, ९४ ।

१३. धोंधू :

कीर्त्तन-संग्रहों में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। मानव-हृदय के व्यापारो पर इनकी दृष्टि पहुँची है और विषय के चित्रण की भी क्षमता इनमें भली भाँति है। गुप्तानायिका का सफल चित्रण इन्होंने निम्नांकित रचना में किया है। नायिका 'गुप्ता' होते हुए भी 'प्रगल्भा' है :

अरे कान्ह धीरौ रे धीरौ रे।
हाथ लकुटिया कांधे कमरिया निडर निडर आवै नीरौ ।।
जानत हौं कुल गोत बड़े हौ काहे कौं होत रातौ पीरौ ।
धोंधू के प्रभु तुम वीहौनाइक आषरि जात अहीरौ ।।[1]

ध्रुवपद-शैली की निम्नाकित रचना मे प्रकृति का वर्णन संयोग-शृगार के उद्दीपन के रूप में हुआ है। रचना बँधी-बँधाई परिपाटी की है :

आली री गरजत घन रिमि झिमि झनंकार ता समये प्यारे कीनौ आंमन ।
चात्रग घन मोर सोर तैसोई तैसी तिरछी तरेर बूंदिनि परसत सांमन ।।
कोकला रितु मांनी प्रान प्यारे सुष दैनी बोलत इम्रत बानी हर्ष बढ़ावन ।
धोंधू के प्रभु तुम बहुनाइक पै नहीं मानत दंपति प्रीति बाढी लोगे (लागे) री अति सुष पावन ।।[2]

भाषा का सारल्य इनकी रचनाओ में पाया जाता है और ध्रुवपद-शैली की ऋजुता भी उसमें है। यहाँ प्रथम ध्रुवपद मे 'आषरि जात अहीरौ' जैसे वाक्य से भाषा में दैनिक बोलचाल की भंगिमा का प्रवाह उत्पन्न हो गया है।

१४. चरजू :

इनका परिचय यथास्थान दिया गया है। इनकी रचनाएँ अभी तक अनुपलब्ध हैं।.

१५. रूपमती .

इस प्रसिद्ध सुन्दरी की केवल एक रचना का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध होता है, जिसमें विरहिणी का चित्रण है। वह एक रचना ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि इस एकमात्र ध्रुवपद-निर्मात्री में अनुभूति की गहराई है। भाषा सरल, सुन्दर, प्रवाहमयी एवं प्रसादगुणयुक्त है। रचना निम्नांकित है :

विछुरि दुष दीनों हो प्रान मेरे आवत कँहूं न लाज ।
जव जु लालन संग निकसि न गऐ अब धों रहे कौंन काज ।।
पापी प्रान रहत घट भीतर करें ही चाहत सुष राज ।
रूपमती पीअ हम सी न दुषीआ कहा धों बहादुर बाज ।।[3]

---

१. परिशिष्ट आ, पृ० ९१।
२. परिशिष्ट आ, ९३।
३. परिशिष्ट अ, २३।

यह सम्पूर्ण उक्ति वियोग-शृंगार का अनुभव है। निर्वेद और ग्लानि जैसे संचारी भाव विप्रलम्भ को परिपुष्ट कर रहे हैं। रचना का ऐतिहासिक महत्त्व है। अकबर से संघर्ष मोल लेने के कारण बाजबहादुर को इधर-उधर भटकना पडा था। सम्भवतः, बाजबहादुर की पतिप्राणा प्रेयसी ने अपने हृदय की वास्तविक स्थिति का चित्रण पूर्वोक्त रचना मे किया है।

१६. लाल :

इनकी एकमात्र रचना प्राप्त है, जिसमें अनेक नायिकाओं तथा बहुनायक अकबर की चर्चा है। मुगल-अन्तःपुरों में गायिकाओं को विशेष उपाधियाँ मिला करती थी। उनमें किसी नायिका की उपाधि 'मृगनयनी' है, तो किसी की 'पिकबैनी'। मनुचिक के अनुसार, ये हिन्दू-घरों से भगाई हुई लड़कियाँ होती थी। रचना निम्नांकित है :

सोई भली है री जाकौं साहि अकबर देहै बड़ाई।
ऐक तो विचित्र नारी प्रउडा (प्रौढा) अंग अंगली ताई की विद्या अंतिम ताई की निकाई।
ऐक तौ म्रंगनैनी ऐक तो पिकवैनी ऐक तो आनंदवैनी सब सुषदाई।
ताई कौ भाग सुहाग ताही कौ लाल जलाल तुम लाड़ लड़ाई ॥[1]

१७. गंग :

'तुलसी गंग दुऔ भये, सुकविन के सरदार' में जिन गंग कवि की चर्चा है, उनका एक कवित्त बड़हंस राग और चौताला ताल में गेय बताकर ध्रुवपदों मे संगृहीत किया गया है। फकीरुल्लाह ने भी अपने युग के कुछ गायकों को कवित्त गाने में दक्ष लिखा है। रामपुर-दरबार के कुछ ध्रुवपद-गायक भी कवित्तों को ध्रुवपद-शैली में गाते थे। स्तुति-वाचक जातियों में एक ही व्यक्ति का कवि के साथ-साथ गायक होना आश्चर्य की बात नही। एक विशिष्ट प्रवृत्ति की ओर संकेत करने के लिए हमने गंग का उल्लेख इस प्रकरण में किया है। 'रागमाला' में संगृहीत छन्द का विषय भिखारियों के कार्य का औचित्य सिद्ध करता है। प्रतीत होता है कि इस मस्त और दूर की कौडी लानेवाले कवि को किसी ने विरुदावली बखाननेवाली जातियों का प्रसंग उठाकर छेड़ दिया है और परिणामस्वरूप इन्होने बड़े-बड़ों को अपनी बिरादरी मे सम्मिलित कर लिया है :

कन्यादान लेत कर ओडत हौं छत्रपती,
हमें दांन गज दांन भुमिदांन भारी है।
राउ माँगै राजनि सों, राजा उमराउनि पै,
षांन सुलितांननि पै मागिबो का पारी है॥
माँगिबे के काजैं कवि गंग कहैं बलि द्वार,
ठाढ़ो कर ओडै तीनि लोक को विहारी है।

---

१. परिशिष्ट अ, ७७।

सम्पदा के काजें कहौं कोकों न पसारें हाथ,
जी कौ जैसो दाता तीको तैसोई भिखारी है ॥[१]

१८. हरिदास डागुर :

इनकी रचनाओं के विषय शिवस्तुति, त्रिवेणी, ज्ञान-प्रशंसा, कृष्णलीला तथा संगीत है। रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी की अनन्यता से अपरिचित व्यक्ति हरिदास डागुर की रचनाएँ स्वामी हरिदासजी की रचनाओं के साथ नत्थी करते चले आये हैं, परन्तु इन दोनों व्यक्तित्वों मे कोई तुलना नहीं है। भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से इनकी रचनाओं में बहुत बड़ा अन्तर है।

हरिदास डागुर संगीतजीवी ध्रुवपदकारों की परम्परा के व्यक्ति हैं और इनका स्मरण जगन्नाथ कविराय ने सम्मानपूर्वक किया है। प्राप्त रचनाओं के आधार पर ये अच्छे ध्रुवपदकार सिद्ध होते है। 'बहुनायक' का वर्णन करते हुए इनके एक ध्रुवपद में कहा गया है :

लाल कहां आज कौन कौन सौं रितु भांनी कासौं कासौ कीनी प्रीति कासौं नेह
वाढ़ौ है वोहौरमनीरमन।
कौंन कौंन धौं मनाई कौंन कौंन धौं रिसाई, कासौं कासौं कीनी भामरि को है
भागिमंती कांम हू के कांम डोलत हौ भमन भमत।
तुम वौहौनाइक ऐकनि सौं हसत वौलत डोलत ऐकनि रिझावत ऐकनि षिजावत ऐकनि
सौं घातै मिलवत ता त्रीअ के कठिन जो तुम्हें ही देषें ही अनदेषे वीकल होत घर
घर के गमन।
हरदास डागुर के प्रभु या प्यारी सौं अवधि वदि जात जे होत वोल पवन।[२]

दूती के द्वारा बहुनायक के प्रति उपालम्भ का यह अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। जिस शैली से दूती प्रश्न कर रही है, उसमें नारी-सुलभ व्यंग्य स्वाभाविक रूप में चित्रित हुआ है। 'कांम हू के कांम' कहकर नायक के सौन्दर्य और कमनीयता को अत्यन्त संक्षेप मे पूर्णतया व्यंजित कर दिया गया है। किसी को वचन देना, किसी से प्रीति करना, किसी को मनाना, किसी को रिसाना और किसी 'भागिमंती' के बन्धन में बँध जाना बहुप्रेयसीक कामियों का स्वभाव है। उपालम्भ में इसका चित्रण भली भाँति हुआ है और यह सब कुछ किसी एक ऐसी सुन्दरी का स्मरण दिलाने के लिए है, जो विचारी 'काम हू के काम' नायक का दर्शन न करने के कारण विकल हो रही है, एक-एक घड़ी जिसके लिए कठिनता-पूर्वक व्यतीत हो रही है और जिसके प्रियतम अवधि देकर भी किसी के साथ हँसते-बोलते डोल रहे हैं और किसी के साथ घातें कर रहे हैं।

---

१. रागमाला, पृ० ८५ आ।

२. परिशिष्ट आ, १००।

रचना में प्रवाह है। भापा प्रसादमयी और स्वाभाविक है, इसीलिए पाठक के मन में एक चित्र खडा कर देती है।

एक अन्य रचना में उस ग्वालिन का वर्णन है, जिसे किसी से अनुराग हो गया है और भाँति-भाँति के बहाने करके वह पनघट पर आती ही रहती है। सचारी भावों के द्वारा शृंगार का पोषण परकीया के इस रूप मे भली भाँति हुआ है और उसके व्यापारो का चित्रण कवि ने सफलतापूर्वक इन शब्दों मे किया है :

> भरि भरि धरि धरि आवत गागरि नांगरि नांरि तू कौन के रस, मिस करि।
> थोरे दिननि तू ऐक ही वेर हरी पनीआं भरन, आज कईऔ वेर आई गई असे
> कहा भअे नंद के हरि ॥
> जौ तू सास नंनद की कांन न करिहै, तौ तू अपने कुलहि लजावै करि।
> मोहि दोश हरिदास डागुर के स्वामी नैन प्रांन जुगऐ डरि ॥[1]

हरिदास डागुर ने संगीत और उससे सम्बद्ध परिभाषाओ को लेकर उनमें एक दुर्ग का रूपक बाँधा है[2] तथा एक अन्य रचना मे संगीत उन्हे एक सैन्य के रूप में दिखाई दिया है।[3] दोनों रूपक अत्यन्त सुन्दर है। हरिदास डागुर के विषय मे उनकी प्राप्त रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी दृष्टि भावपक्ष और कलापक्ष पर समान रूप से पड़ती थी और ये ध्रुवपद-शैली के समर्थ कवि थे।

१६. तानतरंग :

इनकी रचना का विषय कृष्णलीला एवं संगीत है। अपने पिता तानसेन का वास्तविक उत्तराधिकारी इन्हें कहा जा सकता है। ध्रुवपद-शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रौढ कही जा सकती है, परन्तु अभी तक अधिक परिमाण मे प्राप्त नही हुई हैं। इनकी भाषा में सारल्य एवं प्रवाह है और वर्ण्य विषय को मूर्त्त रूप देने में ये अत्यन्त कुशल है। इनकी निम्नांकित रचना में पनिहारिन सुन्दरी का चित्र है, जिसमे अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक रूप में स्वतः आ गये है :

> चुनरीआरीं प्यारी पचरंग पेंहैरैं सु पनीआ गगरीआ भरैं आवत और दोउ हाथ
> ग्रीवानि धरैं।
> गोरे भुंजनि में गाढे वश फूनि दड़वनि मैं स्याम चुरीं, हथेरिनि नौंहिनि मेंहदी
> गेंहैरोई रंग करैं।
> उसासनि वेसरि वधिसुत डोलत ता मध मुष प्रसिधि, भौंहैं तानैं अधर वसन
> दंपति सो कांननि वीरैं गरैं मोतिनि लरैं।

---

१. परिशिष्ट आ, १०१।

२. परिशिष्ट आ, १०२।

३. परिशिष्ट आ, १०३।

कुच उतंग मतंग से देषीअत वनीताजनौरी सु चोषे कुलेल भरैं ।
जे हरि जोति सूरज सौं होड़ परी आगें बिछीआ बाजनें तिनि मध लाल गुधाअे
लगाअे महावर पगनि तरें।
तानतरंग प्रभु को मन मोहत गति सी विषावत सो मुसिक्याइ बाल हरें ।।[1]

इनका एक अन्य ध्रुवपद और प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे कोई ग्वालिन प्रतिदिन दान माँगनेवाले कृष्ण पर अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे झुँझला रही है। भाषा अत्यन्त सरल, प्रसादगुणयुक्त और मुहावरेदार है। कन्हैया के छल-बल और कौशल को वह भली भाँति पहचानती है और उसे प्रतिदिन की इस छेडछाड पर खीझ है। यह 'खीझ' वस्तुतः 'रीझ' का एक बडा ही सुन्दर रूप प्रकट करती है। यह उपालम्भ नही है, अपितु ग्वालिन का वह सौभाग्य है, जिसपर वह गर्वित है और सचमुच उसे यह छेड़छाड अत्यन्त प्रिय है। रचना इस प्रकार है :

सूधेई मागि लैहो दांन ।
हम पर जाति को रह्यों न नातौ,
मन मिली बातें काहे कों बनावत राषौ जू अपनो ग्यान ।।
अैसी छल बल की वतीआ काहे कों करत हो जू,
जैसी न देषी सुनी कहूं कांन ।
'तान तरंग' प्रभु अपने ही गों की करत,
मानत न काहू की आंन ।।[2]

२० सूरदास :

अकबरी दरबार के इस संगीतजीवी आनुवंशिक ध्रुवपदकार की कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' में हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से ये रचनाएँ अच्छी हैं। परम्परा के अनुसार, इन्होंने अपनी कृतियों में नायिकाओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं। खण्डिता का एक चित्र प्रस्तुत है, जिसमे वाक्यों के खण्ड अनुप्रास-युक्त है। व्यर्थ शब्दों का कही पता नही है और निरन्तर एक प्रवाह बना हुआ है :

मै जानी जहाँ रित मानि आये हो लालन,
जब चिरियां चुहचुहानी ।
ऐसे पद अंखियां रसमसानी और पाग लटपटानी,
भाल जावक रंग चिन्हांनी ।
अधर अंजन प्रगटानी विन गुन माल बनानी,
सब अंग अंग उलटी निसानी ।
'सूरदास' गुन निधानी धन तिय जो तुमकों सुखदानी,
संग जागत रैन विहानी ।[3]

---

१. परिशिष्ट आ, ७५।
२. परिशिष्ट आ, ७६।
३. 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० ४८।

यह रचना कवि के काव्यरचना-सामर्थ्य को भली भाँति प्रकट करने को पर्याप्त है। यद्यपि विषय नया नहीं है, तथापि शैली में अत्यन्त प्रौढता है। 'चिरियाँ चुहचुहानी' कहकर प्रभातवेला का वर्णन साकेतिक रूप में करके इन्होने वर्णन में एक स्वाभाविकता ला दी है।

२१ विलास खाँ :

तानसेन के इन प्रसिद्ध उत्तराधिकारी ध्रुवपदकार की रचनाओं का विषय कृष्ण-लीला और सगीत है। प्राप्त रचनाओ के आधार पर ये अच्छे ध्रुवपदकार सिद्ध होते हैं। निम्नाकित ध्रुवपद स्वकीया नायिका का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

पिय के मन में न नैनन भावै तेरो जोबन नियको।
तेरे रूप रस बस भयौ प्रानपति तौ जिय चाहे,
आन न काहू तियको।
रूप जोबन तो है दीनों करतार बनाय,
आली कोप ना रहो गर्भ (गर्व) हिय को।
प्रभु विलास नवललाल रिसाल प्रीत नई,
आली री आनन्द बढ़ो जिय को।[1]

एक अन्य ध्रुवपद में इन्होने अज्ञानियो को प्रेरणा दी है कि यदि राग, रग, तान और अक्षर सीखना है, तो तानसेन जैसे ज्ञानी गुरु की शरण मे जाना आवश्यक है। ध्रुवपद के तृतीय चरण मे कुछ ऐसा सकेत है कि सगीतजीवी कलाकार साधु (फकीर) गायको को प्रामाणिक गायक नही मानते। रचना निम्नाकित है :

कौन भ्रम भूल्यो रे मन अज्ञानी,
सीखत न राग रंग तान अक्षर सुधबानी।
और स्वारथ सों जनम गंवायो,
विद्या बात अधिक सयानी।
जे साधु गुणी भए तिन कौन गुण की मत ठानी।
विलास के प्रभु को जो भलो चाहत,
तो मिलाओ तानसेन गुरु ज्ञानी।[2]

२२. आनन्द प्रभु :

इनकी रचनाओं का विषय कृष्णलीला और नायिका-भेद है। मुरली की ध्वनि से आकुल एक सुन्दरी का चित्रण एक ध्रुवपद में है, जिसे एक अच्छी रचना कहा जा सकता है। सुन्दरी से मुरली-ध्वनि सही नही जाती; वह मृग की भाँति भूल रही है, उसकी सुध-बुध बिसर गई है, रोमाच (सात्त्विक भाव) उसे पल-पल पर हो रहा है,

---

१. 'रागकल्पद्रुम', प्रथम भाग, पृ० १२१।

२. उपरिवत्, पृ० १२९।

छाती धक-धक कर रही है और आँखों मे आँसुओं (सात्त्विक भाव) की नदी-सी भर आई है। वह कहती है कि कोई जाकर कन्हैया को बरज दे कि वे मुरली न बजाये। 'कुल कांनि', 'लोक-लाज' और 'घर की मर्यादाओं' से विवश परकीया का यह चित्रण इस प्रकार है :

> कन्हैआ आजु बन बनि बांसुरी बजाई,
> सुधी सूधी सूधीताननि।
> सुनत हीं धुनि मृग यों (ज्यों) भूलि रही,
> सोचि समुज जीअ सुधि बुधि सब बिसराई।
> रोम उठि आऐ छतीआ धकधक करत,
> नैननि असूआ नदी सी भरि आई।
> कोउ जाइ बरजौ आनंदप्रभु कौं,
> नैक राषि धीरज देइ वह रोइ रोइ अति अकुलाई।'[1]

जडता, मोह इत्यादि सचारी भावों ने इस कृति में संयोग-शृंगार को भली भाँति परिपुष्ट किया है।

२३. धीरज :

केशव और प्रवीणराय के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह 'धीरज' की रचनाओं के विषय देवस्तुति, कृष्णलीला, नायिका-भेद और सगीत है।

युगल-केलि का वर्णन करते हुए उद्दीपन के रूप में वर्षा के दृश्य की योजना इन्होंने इस रचना में की है :

> बोलत मोर चहूं दिसि चात्रग पिक दादुर,
> घोरि घुमड़ि घहरानो घन।
> इत दामिनि भामिनि, भुमि भारी हरी भई,
> जित तित वे लिपिटि झुकि झूमि सघन वृन्दावन।
> राधामाधव दोउ क्रीला (क्रीडा) रीझत भींजत टपकत जोबन।
> ता चढ़ि दंपति काम ही रंग हिडौरें,
> धीरज प्रभु हरषि निरषि झुलावत गोपीजन।[2]

पहली पंक्ति में 'घ' के छेकानुप्रास तथा 'ड', 'ह' और 'र' अक्षर एक नाद-सौन्दर्य उत्पन्न कर रहे हैं, जो घुमडती हुई घटाओं का रूप सम्मुख ला देता है। दूसरी पक्ति में भी छेकानुप्रास के सुन्दर प्रयोग है। अतिशयोक्ति द्वारा भीगे हुए क्रीडारत राधा-माधव के वस्त्रों से टपकती हुई बूँदों का स्वाभाविक वर्णन 'टपकत जोबन' कहकर किया गया है और पूरे छन्द में भावानुसारिणी शब्दयोजना बल खाती हुई चलती है।

---

१. रागमाला, पृ० ५१ अ।

२. परिशिष्ट, अ ६७।

एक भी व्यर्थ शब्द का प्रयोग न करना, छोटे-छोटे वाक्यांशों से वर्ण्य विषय का चित्र प्रस्तुत कर देना और अलंकार का साभिप्राय प्रयोग करके प्रभाव में वृद्धि कर देना धीरज की प्रमुख विशेषताएँ है। 'छेकानुप्रास' का विदग्ध-जन-सुलभ प्रयोग इन्हें अत्यन्त प्रिय है, जिसमें कही भी सायासता नही प्रतीत होती। निम्नांकित रचना मे 'धीरज' जिस गूजरी का चित्र प्रस्तुत कर रहे है, उसके लिए 'लाल' का ललचाना स्वाभाविक है :

नैन नचावत गूजरी उजरी, गोरैं गात,
भौहैं कसत, मन कसैं जात।
हरी लैहैंगा, केसरि भरी अंगीया,
सूही सारी, तन सुष अति सुहात।
भुष की निकाई कहा कहौं माई,
चन्द्रमा की जोति मलिन हों जात।
रौंम रौंम छवि पर वारौ धीरज प्रभु,
क्यों न लाल ललचात।[1]

भौहों को कसकर मन को बन्धन में कस लेना इस सुन्दरी की विशेषता है। नयन-बाणों के प्रयोग की इसे आवश्यकता नही है, भ्रू-धनुष ही अपने आखेट को बाँध लेने के लिए पर्याप्त है। 'नैन नचावत' में इस जोबन-भरी का मनोहारी हाव किसे वश में नहीं कर लेगा। हरे केसरिया और गहरे लाल रंगों ने इस सुन्दरी को, मानों इसके व्यक्तित्व को, इन्द्रचाप बना दिया है। इस कोमलांगी के मुख की 'निकाई' का सादृश्य चन्द्रमा की ज्योति में ढूँढ़कर दो अमूर्त्तों को 'व्यतिरेक' का आधार बनाया गया है।

खण्डिता का एक चित्र प्रस्तुत है :

ढीले-ढीले पग धरत ढीली पाग ढरकि रही,
ढऐसे परत असे कौन पर ढऐ हौ जू।
गाढ़ी जू पीश्रा के हीश्र असी गाढ़ी कोन,
त्रीश्रा गाढ़े गाढ़े भुजनि सों गाढ़े करि गहिहौं जू।
लाल लाल लोहें (लोही) लाल उनींदी आंषें सांची का हौ,
पीश्रा हौं तौ लाल लहे हौ जू।
कहि धीरज प्रभु निसु के उनीदे जागे,
भयौ प्रात कहौ बात राति कहां रहे हौ जू।[2]

इस छन्द का भावपक्ष तो कविजन-सुलभ है, परन्तु कलापक्ष मे धीरज की अपनी विशेषता है। 'ढ' जैसे महाप्राण एव माधुर्य-विरोधी अक्षर को वृत्त्यनुप्रास का आधार बनाकर जागे हुए नायक की दशा और व्यापारो का मूर्त्त-वर्णन 'ढकार' की कटुता और महाप्राणता

१. परिशिष्ट अ, १०३।
२. परिशिष्ट अ, ११५।

को भुला देता है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने 'अटवर्गारणौ लघू'[1] कहकर माधुर्यगुण 'टवर्ग' के प्रथम चार अक्षरों को एक प्रकार से शृंगार-रस का विघातक बताया है, परन्तु 'धीरज' अत्यन्त धैर्य-पूर्वक प्रस्तुत चित्रण में इस नियम का सफल उल्लंघन करते है। दूसरी तुक में फिर 'ड' और 'ढ' विराजमान हैं और अपनी ध्वनि के कारण ही नायिका की सौत के द्वारा किये हुए प्रियतम के 'प्रगाढ आलिंगन' का परिचय दे रहे हैं। 'ढऐ-ढऐ', 'गाड़ी-गाड़ी' तथा 'लाल-लाल' जिस रूप में यमक का उदाहरण बने है, वहाँ प्रयत्न का कोई चिह्न तक नहीं है। रतजगे नयनों की लाली के लिए प्रत्यूष की लाली का उपमान अत्यन्त सात्त्विक एवं निर्मल है।

काव्य के उभय पक्षों को देखते हुए निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि धीरज ध्रुवपद-परम्परा के प्रतिनिधि कवियों में अन्यतम है।

२४. जगन्नाथ कविराय :

इनकी रचनाओं का विषय नायिका-भेद, आश्रयदाता की प्रशंसा और संगीत है। कुछ गुणियों के कालक्रम का निर्देश करनेवाला इनका एक ध्रुवपद ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्य है। 'रागमाला' के ८६वें पृष्ठ का जो चित्र इस ग्रन्थ में दिया गया है, उसमें यह ध्रुवपद विद्यमान है।

दम्पती-केलि पर इनकी एक रचना ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय निर्दिष्ट करते हुए दी जा चुकी है, जिसकी आलोचना के अवसर पर पुनः उद्धृत करने का कारण इनकी रचनाओं का अधिक संख्या में न मिलना है। रचना निम्नांकित है :

ऐहो बैठे दंपति सुरति सुष की बातें करत,
प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत।
छिनुक आंषि षुलि जात पुनि मुसिक्यात अंचल ओट दै जम्हांत,
अरसात वहि रसिक रंग उपजावत।
वदन चिवुक गहि आपुतन सूधौ करि,
हरषि निरषि हरि हीयें लगावत।
जगंनाथ कविराइ के प्रभु रिझवार रीझि,
नैननि सो वैन प्रान प्यारे मुष गावत।[2]

इस रचना में जो आर्जव है, वह राज्याश्रित ध्रुवपदकारों में प्रायः नहीं देखा जाता, अपितु इसमें अनन्य रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी की रचनाओं जैसी सुगन्ध मुखरित है। सुरति-सुख की बाते करते हुए प्यारी की पलकों का झपक-झपक जाना, कान में कूक देकर प्रियतम का उन्हें जगाना, क्षण-भर के लिए प्यारी की आँखों का खुल जाना, मुसकाना और अंचल की ओट देकर जमुहाना, नायिका के ऐसे अनुभाव है, जिन्होंने संयोग-शृंगार का चित्र मूर्त्त कर दिया है। प्रिया के चिबुक को स्वयं हाथ से उठाकर अंगयष्टि

---

१. काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास, कारिका ७४, पृ० ४८४।
२. परिशिष्ट आ, १०६।

को सीधा करते हुए उसका आश्लेष नायक के सुन्दर अनुभाव है और प्यारी के नेत्रों पर रीझकर प्राणप्रिय का गा उठना केवल सहृदय-जन-सवेद्य रस की सृष्टि कर रहा है।

यदि शाहजहाँ ने इस समर्थ ध्रुवपदकार को चाँदी से तुलवाया था, तो उस सम्मान में ऐसी अनूठी उक्तियाँ ही कारण है, जिनमें अधिकांश का प्राप्त करना अभी अवशिष्ट है।

यहाँ इतना कहना अप्रासंगिक न होगा कि शाहजहाँ के आश्रित, **पण्डित सरस्वती-कवीन्द्र**, प्रसिद्ध कवि **चिन्तामणि, सुन्दरदास**, शिरोमणि और **वेदांगराय** से **जगन्नाथ कविराय** का घनिष्ठ परिचय रहा होगा।

२५ शेख बहाउद्दीन : २६. पीर मोहम्मद :

इन दोनों ध्रुवपदकारो का परिचय यथास्थान दिया जा चुका है, जिनकी रचनाओं की खोज करना हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए अवशिष्ट है।

भक्तिकाल में इन छब्बीस ध्रुवपदकारों का पता चलता है, परन्तु इनके अतिरिक्त अनेक समर्थ रचनाकार ऐसे हुए होगे, जिनके विषय मे खोज करने पर कुछ पता लगना सम्भव है। अकबर के दरबार मे सगीतज्ञो को सात भागों में इस प्रकार विभक्त किया गया था कि सप्ताह में किसी-न-किसी दिन प्रत्येक की बारी आ जाती थी।[1] **अबुल फजल** का कथन है : 'अकबरी दरबार के संगीतज्ञों का विस्तृत वर्णन अत्यन्त कठिन है, परन्तु मैं केवल प्रमुख संगीतज्ञों की चर्चा कर रहा हूँ।'[2] यह इस तथ्य का अखण्डनीय प्रमाण है कि तानसेन के युग में अनेक ऐसे कलाकार भी विद्यमान थे, जो राज्याश्रित होने पर भी प्रमुख गुणियों की कोटि में न आ पाये। यह आवश्यक नही है कि उनकी इस स्थिति के कारण गुण-सम्बन्धिनी निकृष्टता हो, अपितु दलगत राजनीति भी उनकी प्रमुखता मे बाधक हो सकती है। तानसेन से स्पर्द्धा करनेवाले गुणी कदापि राजकीय इतिहास मे चर्चा का विषय नही बन सकते थे। ऐसे इतिहास लिखाये जाते है, स्वय कम लिखे जाते है। **जौक और गालिब** के सेहरे उन दोनों की प्रतिस्पर्द्धा के परिचायक है और इस तथ्य के भी कि 'गालिब' जैसे महाकवि को भी बादशाह के उस्ताद 'जौक' से एक प्रकार क्षमा ही माँगनी पड़ी थी। अकबर के लाड़ले ध्रुवपदकारों और गायकों के समान विरुद-गान जिन अच्छे कलाकारो ने नही किया होगा, उन्हें उचित सम्मान से भी वंचित रहना पड़ा होगा; क्योंकि अकबरी दरबार मे निकृष्ट कलाकारों की तो पहुँच ही सम्भव नही थी। आनुवशिक गायकों के पास इस प्रकार की सामग्री का मिलना सम्भव है, जो अकबरकालीन ध्रुवपदकारों की संख्या मे वृद्धि कर सकती है। भले ही, उन्हें अकबर से उपयुक्त सम्मान न मिला हो, परन्तु साहित्य का विद्यार्थी उनके काव्य-सौष्ठव को देखकर उनके वास्तविक स्तर का निर्णय कर सकेगा।

---

१. 'संगीत', मार्च, १९६० ई०, पृ० १३८।

२. A detailed description of this class (musicians) of people would be too difficult, but I shall mention the principal musicians.

—AIN. BLOCH, p. 680

यही स्थिति अन्य मुगल-सम्राटों के दरबार की है, जिनमे गायक और वादक प्रभूत संख्या में थे।

भक्तिकाल की समाप्ति के साथ-ही-साथ ध्रुवपद का स्वर्णयुग भी समाप्त होता है। रीतिकालीन ध्रुवपदकारों के साहित्य का परिचय अगली पंक्तियों मे दिया जा रहा है।

(ई) रीतिकालीन ध्रुवपदों का साहित्यिक मूल्यांकन

सामान्य परिचय :

हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल का आरम्भ एक प्रकार से ध्रुवपद के पतनकाल का आरम्भ है। **औरंगजेब** ने **खुशहाल खाँ**, **बिसराम खाँ** और ऐसे अन्य कलाकारों को राजदरबार से छुट्टी दे दी थी, जिनकी पीढियाँ मुगल-दरबारों में पली थी। जो ध्रुवपदकार **शाहजहाँ** के युग में वैभव और सम्मान का उपभोग कर रहे थे, उन्हें औरगजेब के शासन-काल के आदिम दस वर्षो के पश्चात् आजीविका के लिए छोटे-मोटे गढपतियों और जमीन्दारों का मुँह देखना पडा।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल-साम्राज्य का दिवाला निकल चुका था और उसके उत्तराधिकारियों का प्रताप धीरे-धीरे क्षीण पड़ता जा रहा था। **बहादुरशाह (प्रथम)** का शासनकाल केवल पाँच वर्ष, **जहाँदारशाह** का केवल ग्यारह मास और **फर्रुखसियर** का केवल छह वर्ष रहा। ये सभी अस्थिर रहे और इनके दरबारों में कलाकारों को अपने पूर्वजो जैसी निश्चिन्तता एवं वातावरण न मिला। **मोहम्मदशाह** ने प्राय: उन्तीस वर्ष राज्य किया। इसके दरबार में अवश्य **सदारंग** और **अदारंग** जैसे ध्रुवपदकार हुए, परन्तु उस समय दरबार मे वेश्याओं का प्रभाव बढ गया था। मोहम्मदशाह के उत्तराधिकारी **अहमदशाह** के राज्यकाल में हम ध्रुवपदकारों का एक क्षीण स्वर पाते है और **आलमगीर (द्वितीय)** के पचवर्षीय राज्यकाल मे भी। **शाहआलम** कहने के लिए तो सैंतालीस वर्ष तक मुगल-सम्राट् रहा, परन्तु उसका साम्राज्य केवल लाल किले की सीमा में ही था। अँगरेजों, मरहठों एवं अन्य सरदारों की अँगुलियों पर इसे नाचना पड़ा और उस विपरीत परिस्थिति में भी ध्रुवपदकारों का क्षीण स्वर कभी सुनाई पड़ जाता था। **अकबर (द्वितीय)** का दरबार भी इस दृष्टि से सम्पन्न नही कहा जा सकता और न **बहादुरशाह (द्वितीय)** का ही।

वाजिद अलीशाह के मुसाहब **मुहम्मद करम इमाम** ने सांगीतिक दृष्टि से उस काल का जो चित्रण किया है, वह ध्रुवपद की हीन स्थिति का परिचय देता है। मुहम्मद करम इमाम के शब्द इस प्रकार हैं : "इस युग में ख्याल, ध्रुवपद, होरी इत्यादि का गाना अत्यन्त अल्पमात्रा में अवशिष्ट रह गया है और वह भी जैसा होना चाहिए, वैसा नही। अमीरों और रईसों में आजकल ठुमरियाँ पसन्द की जाती है और वे लोग उनके खब्त में फँसे हुए हैं : 'आदमियान गुमशुदन्द मुल्के ख़ुदा ख़र गिरफ़्त', अर्थात् 'मनुष्य लुप्त हो गये और ईश्वर की सृष्टि गधों की गिरफ्त मे आ गई।'

यह सब कुछ होते हुए भी चेतसिंह, राजबहादुर, प्रेमदास, गुलाब इत्यादि ध्रुवपदकार इस युग मे ऐसे हुए है कि जिनपर किसी अश तक गर्व किया जा सकता है।

इस युग के गिने-चुने ध्रुवपदकारों की रचना का संक्षिप्त साहित्यिक मूल्याकन करके हम सन्तोष करेंगे और व्यर्थ विस्तार से बचने के लिए कुछ ध्रुवपदकारों की रचनाओं के नमूने देंगे। इस अवसर पर हम उन व्रजभाषा-कवियो की भी सूची दे देना आवश्यक समझते हैं, जो औरंगजेब एवं इसके उत्तराधिकारियो के आश्रय में रहे और जिनके सम्बन्ध स्वाभाविक रूप मे उन सम्राटों के आश्रित ध्रुवपदकारो के साथ रहे। यद्यपि रीतिकालीन कवियों के समान ध्रुवपदकार रीति-ग्रन्थो की रचना नही कर रहे थे, तथापि उनके काव्य के विषय समसामयिक अन्य कवियों से पृथक् नही थे।

औरंगजेब के आश्रित कवि कालिदास, किशन, वृन्द, ईश्वर, इन्द्रजीत, कासीराम एवं सामन्त थे।

शाहजादा आजम के आश्रित थे रीतिकाल के प्रख्यात महाकवि देव और कवि नेवाज।

मुगल-सम्राट् बहादुरशाह के आश्रय मे रहकर कविता-कामिनी की कमनीयता की चर्चा में व्यस्त थे कवि आलम, अब्दुर्रहमान और मदनकिशोर। आजम के पश्चात् महाकवि देव और वृन्द भी बहादुरशाह के दरबार की शोभा बने।

मुगल-सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के दरबारी कवि थे आजम, युगलकिशोर गुमान मिसिर, रसमूर्त्ति और व्रजभाषा-काव्य के प्रधान स्तम्भ थे घनानन्द और लक्षण-ग्रन्थों के महान् रचयिता सूरतिमिश्र।

मुगल-सम्राटों के अतिरिक्त अन्य आश्रयदाताओ की सभा मे भी कवि एवं ध्रुव-पदकार विद्यमान और परस्पर सम्पृक्त थे। रीतिकालीन अन्य आश्रयदाताओ का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

२७ खुशहाल खाँ कलावन्त :

वास्तव में, ये उन ध्रुवपदकारों में है, जिन्होंने भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि देखी थी। तानसेन के दौहित्र लाल खाँ के पुत्र होने के कारण इन्हे शाहजहाँ और औरंगजेब के दरबार में उच्च स्थान मिला था। तानसेन और उनके वंशजों की यह परम्परा रही थी कि वे अपने आश्रयदाताओं के नाम से अकित ध्रुवपदो की रचना किया करते थे।

इनके जीवन का परिचय देते हुए यह तथ्य सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है, कि शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद इनकी रचनाएँ हैं। इस दृष्टि से औरगजेब की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद भी इनके ही होने चाहिए, क्योकि औरगजेब के राज्यकाल के आदिम तेरह वर्षो मे इनको निश्चितरूपेण औरगजेब का आश्रय प्राप्त रहा। इस दृष्टि से इनकी रचना के विषय अभिषेक और वर्षगाँठ जैसे उत्सव, नौरोज और वसन्त जैसे त्योहार,

पराक्रम, प्रताप, प्रशसा और नायिका-भेद रहे। शाहजहाँ की मुद्रा से अकित उन्नीस और औरगजेब की मुद्रा से अकित पन्द्रह रचनाएँ हमने 'परिशिष्ट अ' में संगृहीत की है।

शाहजहाँ की मुद्रा से अंकित मानिनी का एक चित्र इस प्रकार है :

बैठी री कर पै कपोल धरे रीजीयें दुचिती,
अनमनी आज पिया सों कछू अनबनी।
रूठी सी रूठी से आंननि विलषी सी मनु मारे तामस कीयें,
मानत न काउ को कहौ सकल औरनि में तूंही मन मांनी।
साहिजहां पीअ तेरे रस बस भऐ वे बना तू बनी॥

प्रस्तुत रचना मानिनी के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों का चित्रण करती है। 'बैठी-री कर पै कपोल धरे कहकर नायिका की मूर्त्ति की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है और 'रूठी सी आंननि विलषी सी' कहकर मानों उस रूपरेखा मे रंग भरे गये है। 'दुचिती', 'अनमनी', 'मनु मारे', 'तामस कीये' आदि मानिनी के अन्तर का चित्रण करते है। साथ-ही-साथ 'मानत न काऊ को कहौ' कहकर उसे रूपगर्विता बताया गया है तथा 'तेरै रस बस भऐ', 'वे बना तू बनी' कहकर उसे स्वाधीनपतिका के रूप में चित्रित किया गया है। थोड़े-से शब्दों में बड़ी बात ऐसी रचनाओं का प्रधान गुण हुआ करता है। भाषा की विशुद्धता सरलता, प्रवाहमयता और प्रसादगुणयुक्तता दर्शनीय है।

औरगजेब की मुद्रा से अंकित एक अन्य रचना मे एक अनुपम चौपड़ प्रस्तुत की गई है :

तै तौ आपु ही मै बनाई अनूपम चौपरि ऐ।
रूप जोबन गुन वानिक बिसाति माध वसीकरन,
घर कीनौं फुनि दीनौ त्रविधि कटाछि पांसे करि।
नौ सुभ दांव षतन तोही कौं फुरेरी औरनि के,
चौक चाक वांधि वांधि चतुर वतीआं कीनी जाही ते पूजी सार।
सौतिनि सों वाजू पीअ जीति लीनी,
साहि औरंगजेब रीझि रुचि सौं कंठ लगाई भुज भर।[1]

नायिका प्रणय-द्यूत में प्रियतम को सौत से जीतने के लिए बैठी है। अपने रूप, यौवन, गुण और शोभा को उसने चौपड़ की बिसात के चारो पट बनाये है। वशीकरण उस चौपड़ का 'घर' (गोटे लाल होने का स्थान) है। नवीन (नव-नउ-नौ) दाँव (चातुरी) ही चौपड़ का शुभ दाँव (नौ) है, जिसके अनुसार चाल चलकर (नीति बरत कर) और अन्य सौतों के चौक-चाक (उपमेय-पक्ष में प्रयत्न और उपमान-पक्ष मे चौपड़ के वे घर, जिनपर बैठी हुई गोट पिटती नही और प्रतिस्पर्द्धी की गोटों को आगे बढने से रोक लेती है) बाँधने के कारण उसे प्रसन्नतामय रोमांच हो रहा है और प्रियतम से चतुरतापूर्ण

१. परिशिष्ट अ, ६५।

बातें करना ही उसका 'सार पूजना' (मनोरथ पूर्ण होना, गोटे लाल करना) है। इस प्रकार, उसने जब बाहुबल के द्वारा शाह औरंगजेब को जीत लिया, तब शाह ने उस सुन्दरी को भुजाओं मे भरकर कण्ठ से लगा लिया।

रचना मे सांगरूपक अलंकार है, जो कई स्थानो पर श्लेष से अनुप्राणित है। 'नौ', 'दाँव', 'चौक-चाक', 'पूजी सार' इत्यादि शब्दों का सफल प्रयोग अभंग श्लेष की सृष्टि कर रहा है। रचना मे कवि का प्रयत्न है, परन्तु जिस प्रकार वह प्रस्तुत किया गया है, उससे उक्ति मे सरलता और प्रवाह की सृष्टि हो गई है।

उदाहृत दोनो रचनाओ मे भाषा सरल, स्वाभाविक एव प्रसादगुणयुक्त है।

२८. सवाद खाँ ढारी, २९. किशनसेन (नायक अफजल), ३०. गुलाम मुहीउद्दीन, ३१. किशन खाँ कलावन्त, ३२. सालिम खाँ डागुर, ३३. कसबकुव्वतधारी 'कबजायत', ३४. पूजा, ३५. रहीमदाद ढारी ३६. मुहम्मद बाकी और ३७. सुधीन सेन की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है। इनकी रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नही है।

३८. मियाँ डालू ढारी :

इनकी कुछ रचनाएँ 'रागकल्पद्रुम' में है। एक रचना प्रस्तुत है, जिसमे दिल्ली के बादशाह के लिए मंगलकामना की जा रही है। रचना प्रत्येक दृष्टि से साधारण कोटि की है :

सोहै उत्तम गढ़ औ रंगमहल बनाए तिनहूं में सुन्दर नारन।
अति ही रही और पवन की छवि ऐसी लागत है,
मानो पहिरे हरी सारी फुलवारी आनन पर वन रही धरन।
और जे छूटत है फुहरि मानो अलम बनाए नोछावर, करत तन मन धन।
डारु भाग जागे दिल्ली के श्रवणन कों सुव दिए शाहपति,
पातसा चिरंजीव रहो करोर बरस नरन॥[1]

३९. मध(धु)नायक :

इनकी रचना का विषय कृष्णलीला और राजप्रशसा है। औरंगजेब की प्रशंसा से युक्त इनका एक ध्रुवपद परिशिष्ट अ मे (स० १५३) संगृहीत है। इनका एक अन्य ध्रुवपद भी प्राप्त है :

कारे री कारे कुंजनि कारे वंडनि दारें कामरि कारी,
कालिंदी तट टेरें धेनि कारी।
कट छुद्र घंटका रीझ वंसीहितकारी,
कारी कर पल्लवनि अंगलता कारी।

---

१. रागकल्पद्रुम, पृ० १९२।

गौपी ग्वाल हंस कारी नांचै,

नट निर्तकारी होत है किलकारी कोकिला रव धिकारी ।

मधनाइक नाथौं कारी संग सुन्दरि राधिका री,

जिमि दांमिनि चमकत घटा कारी ।[1]

भाषा पर कवि का अधिकार है। प्रस्तुत रचना में कवि की दृष्टि पादान्तयमक पर अधिक है। व्यतिरेक और उपमा का प्रयोग यथास्थान हुआ है।

४०. बिसराम खाँ : ४१. मिसरी खाँ :

इन दोनों की रचनाएँ प्राप्त नहीं है।

४२. भूपत :

इनकी चार रचनाएँ परिशिष्ट 'अ' में संगृहीत है, जिनमें रमपुरा-नरेश छत्रसिंह की चर्चा आती है। सम्भव है कि केवल छत्रसिंह के नाम से अकित रचनाएँ भी इन्ही की हों। नायिका-भेद-सम्बन्धी दो रचनाओं में भी केवल छत्रसिंह का नाम है। भूपत की मुद्रा से अंकित ध्रुवपदों के विषय रूढ और भाषा सरल है। एक रचना में नाद-बाग की रचना सांग-रूपक के द्वारा की गई है, जिसमें गुणियों का कण्ठ 'भूमि', सप्तस्वर 'तरुवर', अक्षर 'पुष्प' और शुद्ध वाणी 'पत्ते' हैं। सुर-नर-मुनि इस तरुवर को सिंचित करते है और इसमें उपज (नवीन सांगीतिक उद्भावना)-रूपी 'फल' लगते है, जो सुघर व्यक्तियो को भले प्रतीत होते हैं। इस उपवन की सैर महाराज छत्रसिंह के श्रवण करते हैं।[2]

४३. रसबीन खाँ :

इनकी रचनाएँ कतिपय ध्रुवपद-गायक प्रायः गाते है, परन्तु लिखाने में उन्हें आपत्ति होती है।

४४. नायक पूरन :

इनकी कुछ कृतियाँ 'रागकल्पद्रुम' मे संगृहीत है। औरंगजेब की शोभा का वर्णन करनेवाली एक रचना मे तैमूरलग, बाबर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरगजेब के नाम गिना दिये गये है और एक अन्य रचना मे सरस्वती की चर्चा है।[3] रचनाएँ प्रत्येक दृष्टि से साधारण कोटि की है। औरगजेब से सम्बद्ध रचना निम्नांकित है :

छत्र छवि छाजै बिराजै हुमाऊं तखत,

बैठो चारों चक जोत आयो दिल्लीवर ।

ऐसो हठीली नर नरेन्द्र नरेश धावत,

शत कोस काहू पै न रोको जाय तकवर ॥

राख लई इमर तिमिर लिंग बाबर की,

वृद्ध किरात साहन मन बादसाह ताहि दयो अलहुबर ।

---

१. रागमाला, पृ० २८२ आ।

२. परिशिष्ट अ, २२३–२३०।

३. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २६०।

नायक पूरन करत बखान तेरी बाबरसुत,
तांको सुत हुमाऊं अकबर सबल नर ।
अकबरसुत जहांगीर ताको साहजहां,
ताको औरंगजेब भयो है भुव पर ।।[1]

४५. मुबारक :

इनकी एक रचना नायिका-भेद के सम्बन्ध में है, जिसमें शाह आलम की चर्चा है। रचना साधारण है, जिसमें रूढि का पालन-मात्र किया गया है :

निपट कर जो दुराव करत मो सों हौं नहीं जानत,
पीय अधिक चतुर तुमही और हौही अयानी ।
कोटि जतन करत हैं तिन गुण कर प्यारे तुम्हारे,
देखीयत जे करत फिरत घर घर मनमथ के वस,
ज्यों तिया अंग संग रंग करत वहु ज्ञानी ।।
अटपटी पाग पेच लटपटे कीन्हे बोलत मन्द वचन,
चक कहत कहानी ।
शाह आजम विचित्र छत्रपति की बाते तेऊ मेरे,
जान पाई तब त्योंहीं मुबारक ना आवत तुमारी,
गत हम मन विच क्रम कर पहचानी ।।

४६. सदारंग :

इनकी रचनाओं का विषय, संगीत, नायिका-भेद और होली है। मुहम्मदशाह की मुद्रा से अंकित रचनाएँ भी इन्हीं की कही जाती है। तानसेन की परम्परा में उत्पन्न गायकों के आश्रयदाता के नाम से ध्रुवपद-रचना करना सिद्ध एव विख्यात है। निम्नांकित रचना मे इन्होंने नवोढा स्वकीया का चित्र अंकित किया है :

कोउ तो मोहि बताओ री पीअ सों मान करिवे कौ ढवा ।
पै असै कीजे जामैं नैक मलीन न होवे और अपनी हूं बात रहौ सब ।
उनिको कहा कहौ वै तो निपट प्रवीन रसिक लाल,
देखि रहे अनेग जोषिनि की फरकनि तिनि सों छिपि सकै कब ।
यह भूल मो मन आई गई ताते सदारंग पीअ सों,
रिस हूं गे व रूसीअै कवहूं अब जब तब ।[2]

नायिका नवेली है। मान की रीति नहीं जानती, परन्तु मान करना चाहती है। स्वकीया है, अपनी बात भी रखना चाहती है और उसकी यह भी इच्छा है कि मन भी मैला न हो। प्रियतम के अपराधों को वह मार्जनीय समझती है और इसके लिए प्यारे की भूलें मन में आई-गई हो जाती हैं। वह अपने प्राण-धन से कोप की अवस्था में भी

१. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २०६।

२. परिशिष्ट आ, ११६।

रूठना नहीं चाहती। सदारंग ने नवोढा के हृदय का वास्तविक चित्रण किया है। सीधी-सादी मुहावरेदार भाषा नायिका के हृदय का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देती है।

एक अन्य रचना में विरहिणी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। उसका मनचीता वसन्त आ गया और उसकी संगिनी कोकिला ने विरहिणी को सताना आरम्भ कर दिया। रचना निम्नांकित है :

अब तौ कोकिल धूम मचाई पीआ बिदेस मोहि पाइ अकेली बिरहिनि जानि सताई।
एक तौ हती में बैरिनि उनिकी करत चवाउनि आई,
बोलि बोलि जब बांन से मारत तन मन वेधत जाई।
कुकि कुकि डरपाई री जीअ में अति ही ऊक बढ़ाई,
बीतौ बसंत जब आयौ फागुन अब कहा करौं मोरी माई।
ये समये सुधि लीजौ सदारंग सुषदाई दुषदाई।[1]

सदारंग में मानव-जीवन के अन्तर तक पहुँचने की दृष्टि है। अलंकारों की ओर उनका मोह नहीं है और जब वे रूढ शैली मे वर्णन करते हैं, तब भी उनका व्यक्तित्व रचनाओं में दिखाई दे जाता है।

४७. अदारंग :

इनकी रचनाओं का विषय आश्रयदाता तथा पीरों की प्रशंसा, नायिका-भेद, संगीत और होली-वर्णन है। ऐसा लगता है कि किसी समय ये आश्रय-विहीन हो गये। किसी शाहशाह (सम्भवतः, आलमगीर द्वितीय) की याद में ये एक ध्रुवपद मे कह रहे है कि अदारंग सदा से तुम्हारा ही कहलाता है और तुम कृपा करके उसे कब याद करोगे।[2] अपने ध्रुवपदों में इन्होंने मुहम्मदशाह और आलमगीर द्वितीय की स्तुति की है। इनकी रचनाओं में तानसेन-परम्परा की विशेषताएँ लक्षित होती है। नायिकाभेद-सम्बन्धी इनकी एक रचना प्रस्तुत है, जिसमें मानिनी का चित्रण है :

ए री यह औसर भली है अलबेली चतुर नारि,
चलि चलि पीअ पास।
नव सत सिंगार साज तजि दीअ लाज आस,
अधराति भई चंद्र हू चढ़ौ अकास।
मेरीऐ कहौ मांनि ऐसी छांड़ि कै रसरी कांम तुम,
अब जोनि करि बिविधि बिलास आस।
जब तें निहारी तोहि अदारंग जब तें महेमद सा प्यारे,
देषि प्रान लागि रही तेरी आस।[3]

---

१. परिशिष्ट आ, ११८।

२. परिशिष्ट आ, १२२।

३. परिशिष्ट आ, १२७।

होली-विषयक इनकी एक रचना निम्नांकित है :

अरगजा गुलाल लै केसरि रंग पिचकारी भरि भरि छोड़त।
अतर गुलाब और चोवा चंदन पीअ मुष मींजत वनि वनि
वनिता सों तव वेहू लाल मिलि गऐ गुपित गांठ टकटोरत।
लाज सकुच छाड़ि दीनी लोगनि की जब ऐक ऐक कों जो
वस करि रस में वोरत।
कहा कहों समयौ अति सुंदर सदारंगीले ऐ नोंला सी तिनिकों भुज भेंटत
कुचहि मरोरत।
मध कौ मतवारौ अदारंग करि दौर गरवहीआं डारत मसकोरत।
ऐ सषी री याह वौहौत दिननि कौ विछुरौ मिलौ याते फागु प्रीति
वाहन जुरत।[1]

४८. इंछाबरस

रूप-वर्णन, ऋतु-वर्णन, होली और संगीत इनकी कृतियों के विषय हैं। 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय' नामक प्रकरण में इनकी एक सुन्दर रचना दी जा चुकी है, जिसमे नेत्रों में घटाओं का सादृश्य देखा गया है। वर्षा मे विरहिणी की स्थिति को प्रकट करनेवाला इनका एक ध्रुवपद निम्नाकित है :

भमन जानौं सूनौं भाई कांम कैसैं षाइ मोपै आज,
घन असवारी करी है जहै कोप।
पवन तुरंग छाडि धुरवा निसांन आंगें गरजि दमामुद,
पंछी मोर व्रम्हांवत चपलान होइ दई अती अरुन ओप।
अनेग दल वादल सैना तमकि पचि पैहैरवान वूंद
वरसावत धीरन जांमगीलगामारंत ओला गोला धरधरात
सों मानौ वरषौं तोप।
सुष सब लूटि लयौ बैठौ जब दिनकर छत्रपती महंमद
साहि अपनी अंछ्यावर सौं साहि नाहीं करत है तप।[2]

भवन सूना जानकर काम ने मेघ को वाहन बनाकर विरहिणी पर चढ़ाई की है। पवन 'तुरंग', बादल 'निशान', गर्जन 'दुन्दुभी' और मोर 'बन्दीजन' है। चपला नहीं, अपितु आक्रान्ता का तेज है। बादलों के दल सेना है, जिसके योद्धा तमककर परिश्रम-पूर्वक बूँदों के रूप में बाणों की वर्षा कर रहे है, उन्हें धैर्य नही है और जामगी (तोप मे आग देने का पलीता) लगाकर ओले बरसा रहे है, मानों तोपे अग्नि-वर्षा कर रही है।

इंछाबरस की दृष्टि सादृश्य-विधान पर भली भाँति पड़ती है। प्रयत्नपूर्वक वह वर्षा में चढ़ाई का आरोप अच्छे ढंग से कर लेते हैं। इस प्रकार के रूपकों की रचना

१. परिशिष्ट आ, १२५।
२. परिशिष्ट, आ, १४१।

ध्रुवपदकारों की एक विशिष्ट परम्परा बन गई थी, जिसका निर्वाह इंछाबरस ने पूर्ण योग्यता के साथ किया है। एक अन्य ध्रुवपद में उन्होने गुण (संगीत-कला) पर समुद्र का आरोप किया है। गुण 'समुद्र' है, उसमें तन 'जहाज', मन 'सौदा', कण्ठ की साँस 'पवन की गति', गमक 'बादबान' (पोतपट्ट) और सप्तस्वर 'लंगर' है। सुर (तम्बूरे पर निरन्तर छिड़नेवाला स्थायी स्वर)-रूपी 'महानाविक' (कप्तान) श्रुतियों की 'ऐनक' लगाये हुए विवादी (राग के विघातक स्वर) की ओर उससे बचने के लिए देख रहा है। ध्रुवपद की चारो तुके ही इस जहाज के चार प्रकोष्ठ हैं, जिनमें बोल (सार्थक शब्द)-रूपी मोती भरे हैं, उनकी कान्ति जवाहरों जैसी है और अनन्त अच्छे 'वर्णो' (स्वर-सन्निवेषण), सुन्दर अक्षरों का ओर-छोर नही दिखाई देता। मुहम्मदशाह के समक्ष ऐसे ध्रुवपद और जहाज से युक्त गायक लाओ और गाओ। इच्छा पूरी करने के लिए सबको लाख-करोड़ गिन दिये हैं। ध्रुवपद निम्नांकित है :

गुन समुद्र तामैं तन जिहाज मन सौदा गलौ सांस पवन कै जोर।
गमन बादवान सप्तसुर लंगर परे सुरनि षुदा (नाखुदा=कर्णधार)
सुरति अैनक दीअै चितवत मगर विवादी की ओर।
चारौं तुकैं तेउ चारौ कोटनि मैं बोल मोती जोति जवाहर अनंत सुवरन
न देषत ओर छोर।
अैसौ धुरपत जहाज सौ पूरौ महम्मदसाहि कौं लाओ गावो अंछ्यावरसन
कौं सकल गिन दीन्हें लाष करोर।[1]

इंछाबरस से पूर्व 'बैजू', 'तानसेन' और 'चंचलसस' भी नाद अथवा सगीत मे समुद्र का आरोप कर चुके थे।[2]

४६. प्रेमदास :

ये इस युग के समर्थ ध्रुवपदकार हुए है। परिशिष्ट 'आ' मे इनके सत्रह ध्रुवपद संगृहीत है। इनकी रचनाओं के विपय देवस्तुति, देवरूप-वर्णन, ऋतुवर्णन, नायिका-भेद, प्रबोध एवं संगीत हैं। 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विपय' नामक प्रकरण मे इनकी एक 'होली' उद्धृत की जा चुकी है। भाषा पर इनका अधिकार है। चित्रण में यह किसी भी अन्य दरबारी ध्रुवपदकार की अपेक्षा कम नही है। निम्नाकित रचना में शकर के अर्द्धनारीश्वर रूप का चित्रण है :

ऐक ओर पाटी सम्हारि गुहे मुकताहल ऐक ओर जटाजूट सोहत हैं सिर गंग।
ऐक ओर चंद्रभाल ऐक ओर आड दीये ऐक ओर नेत्र लाल ऐक ओर अंजन छवि
ऐक ओर गौर वदन ऐक ओर भसम लायें ऐक ओर अरुण अधर तमोल (ताम्बूल)
ऐक ओर विष मुख अचवत लै भंग।

---

१. परिशिष्ट आ, १३६।

२. 'बैजू और गोपाल', पृ० ५८; परिशिष्ट अ, १२ एवं परिशिष्ट आ, ७७ क्रमशः।

ऐक ओर श्रवन ताटंक नासा वेसरि ऐक ओर मुद्रा छवि अर्द्धंवदन केस ऐक ओर स्याम पोति ऐक ओर लीलकंठ ऐक ओर रत्नहार मुंडमाल ऐक ओर वाघंबर
ऐक ओर कंचुकी वसन अति सुरंग ।
ऐक ओर अंग अंग आभूषन झिलिमिलात एक ओर ठौर ठौर नाग लिपिटाऐ ऐक ओर वीन वजत ऐक ओर डवरू नाद, ऐक ओर त्रसूल कर कमल ऐक ओर ऐक ओर चरनपाद ऐक ओर नूपुर धुनि प्रेमदास जाकौं त्रैलोक सकल ध्यांन धरत सो
गिरिजापति अर्द्धंग ।[1]

नायिका के समस्त शृंगारो का वर्णन भी इन्होंने किया है । इनकी नायिका मज्जन करने के पश्चात् शृंगार करने बैठी है । माँग, सिर, कान, भृकुटियाँ, नेत्र, नासिका, अधर, दशन, स्मित, कण्ठ, उरोज, उर, भुजाएँ, मणिबन्ध, हाथ, अँगूठा, कनिष्ठिका, कटि, चरण, पैरों की अगुलियाँ और एडी सभी को इन्होने सजाया है । बीच-बीच मे उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग से इस रचना के कुछ अंश अलंकृत किये गये है । रचना मे स्थान-स्थान पर एक लय बनती है, मानों कोई मुक्तवृत्त पढ़ा जा रहा हो, परन्तु ध्रुवपद के विशाल प्रवाह में तरंगों की भाँति प्रकट और लुप्त होती चलती है ।

यह बात नही, कि ये सीधे-सादे ढग मे कोई बात न कहते हों । निम्नाकित ध्रुवपद उस स्वाधीनपतिका का एक रूप प्रस्तुत करता है, जिसके वदन-चन्द्र को देखते ही सपत्नियों के मुख फीके पड़ गये हैं, जिसकी छवि ने सजी-सँवरी सौतों के मद और मान को विचूर्ण कर दिया है । विधना ने उसे ऐसा रूप दिया है, जिसपर सुन्दरियों को बारम्बार न्योछावर कर दिया जाता है । इस छवि को देखकर प्रियतम तो कुदृष्टि से बचाने के लिए तिनका तोड़ते हैं, और दूसरी (सौतें) खीझ-खीझकर कामोपम प्रियतम से झगड़ा करती है । रचना इस प्रकार है :

तेरौ वदन चंद नीकौ लगत अति सौतिनि के देषि मुष रूषे परे हैं री ।
आई सब सजि सिंगार अनेग प्रकालन (प्रकार) करि जाकी छवि छीनि मध मान
हरे हैं री ।
औसो सरूप रूप विधना दीयौ सम्हारि वार वार नारिनि जू उतार धरे हैं री ।
प्रेमदास प्रभे प्यारे रीझि रीझि तोरत त्रन दूजें षीझि षीझि रति पति झगरे हैं री ।[2]

उपर्युक्त रचनाएँ प्रेमदास की चित्रण-शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती हैं। अन्तिम रचना में भाषा सरल, प्रसादगुणयुक्त एवं मुहावरेदार है ।

५०. मनरंग :

इनकी एक 'होरी' ध्रुवपदों का वर्ण्य विषय बताते समय दी जा चुकी है, जिससे इनकी भाषा मुहावरेदार और सरल प्रतीत होती है । शैली मे कोई मौलिकता नही है । सम्भव है, खोज होने पर अच्छी कही जा सकनेवाली वस्तुएँ मिलें ।

---

१. परिशिष्ट आ, १५६ ।

२. परिशिष्ट आ, १६६ ।

५१. सिम्भू :

इनकी एक रचना प्रस्तुत है, जिसमें दूती मानिनी को मना रही है। काव्यगुण इसमें है और इससे सिम्भू अच्छे रचनाकार प्रतीत होते है। रचना यों है :

धरीअैं जू धरीअैं महल पग धरीअैं पीअ मग जोवत प्यारी।
चित्र की लिखी सी वल कैसी कहा बैठीं हौं जू।
नवसत साज तन भूषन सम्हारीअैं जू।
कहौं री निहोरि हारी सौहं कर जोरि षात चित धरि और न विसारीअैं जू।
'सिंभू' नवललाल रसिक पीतम प्यारे उठि चलि हिलि मिलि वचन न टारीअैं जू।[1]

५२. आलम :

मुगल-सम्राट् अहमदशाह की मगलकामना से युक्त इनकी एक रचना निम्नांकित है :

देश देशन की पातुरन तेरो बहुत यश करो।
तोरे रंग राय तोसोको पै सरवर वांधे को धरो॥
करीम रहीम अब चल पातसाही,तुम कीनें करतार के।
धन करम जान आए खिदमत में तुमारी सब सरस भट आवत संसार के।
जैसो नीमरुव भूलो आपन तन सम मकरन लागा, सकत आगे साहब की भार कै।
अहमदशाह राज करो कोटि वरस लों आलम हुसैनन के सिपाई सरकार के॥[2]

५३. देवीदत्त :

संगीत से सम्बद्ध इनकी यह रचना रागमाला में है :

अहो तुम गाओ होरी सुर संगति सौं सब गुनीअनि मिलि लेत तांन नईअ नईअ गुरनि के मति की।
नीके अछिर गति अनूठी तार सुरति अति गति की।
सांचे सुरनि बुलाई लीजै रंग राग बहु हित की।
ऐते निपट प्रवीन वीन नवलाला देवीदत्त की।[3]

५४. चेतसिंह राजबहादुर :

इनकी रचनाओं के विषय विभिन्न देवताओ की स्तुति, ऋतु-वर्णन, नायिका-भेद और संगीत है। विषय के अनुसार, इनकी भाषा बदलती हुई चलती है। स्तुति-विषयक रचनाएँ संस्कृत-शब्द-बहुल है तथा नायिकाभेद-सम्बन्धी रचनाओं की भाषा सरल और प्रवाहमयी हैं। इनके द्वारा की हुई सूर्यस्तुति इस प्रकार है :

श्री मारतंड प्रचंड वृम्हांड मंडन तिमिरहरन त्रभूवन कौ।
चंड करि भासमान अर्क आदित्य रवि ऐक चक्र रथ रूढ़ ईस जगत कौ॥

---

१. परिशिष्ट अ, २८०।

२. रागकल्पद्रुम, प्र० भा०, पृ० २८८।

३. रागमाला, पृ० १८४ अ।

बल प्रताप अघ आप संघार करता ग्यांन वान धर्मदान सुषदाता तिनिकौ ।
राजबहादुर कौ दुषमोचन मोदभरन पूरन करत प्रन (त)मन कौं ।।[1]

होरी के दिनों में एक उमंग भरी मदमाती मदनमोहन के साथ बरजोरी करने के लिए उद्यत है। वह मानों उनकी की हुई बरजोरियो का भरपूर बदला इन दिनों चुका लेना चाहती है। वह प्रियतम को गाकर, बजाकर, नाचकर रिझायेगी। उसके पास कुचों का कुमकुम है और वह मदनमोहन को अपने हृदय से लागकर मुख में रोली मल देगी। मदनमोहन के अधरों पर उसका अंजन, ललाट पर महावर और पलकों पर पीक के गहरे चिह्न होंगे। आज वह अपने मन की •करने पर उतावली है। नायिकाएँ सदा प्रियतम के अधरों पर सपत्नियो के नेत्रों का अंजन, ललाट पर महावर इत्यादि देखती और कुढ़ती चली आई है, परन्तु राजबहादुर की यह मदभरी नायिका प्रियतम के शरीर पर उन्ही चिह्नों को बनाने के लिए उत्सुक है। रति में वह 'कर्म' नही, 'कर्त्ता' बनना चाहती है। अपनी बात वह मन मे ही नही सोचती, अपितु मदनमोहन के समक्ष उसने अपने उन संकल्पों की घोषणा भी कर दी है, जिन्हें मनोरथ के रूप मे वह न जाने कब से सँजोती चली आई है। नायिका का यह चित्र इस प्रकार है :

गाइ नाचि बजाइ रिझैहों पीअ तुमकों रची होरी।
कुचनि कौ कुमकुम उर बिच लैहौं मुष सों मांड़िहौं रोरी ।।
अधरनि अंजन जावक लिलाट पलकन पीक न थोरी।
राजबहादुर मन की करिहौं मदनमोहन बरजोरी ।।

५५. शेख मीर :

इनकी एक रचना रागमाला में संगृहीत है, जिसमे पीरों की एक सूची प्रस्तुत करके उनकी स्तुति की गई है।[2]

५६. गुलाब :

इनकी रचनाओ के विषय देवस्तुति, प्रबोध, ऋतुवर्णन, कृष्णलीला, होली एव नायिका-भेद है। 'ध्रुवपदों के वर्ण्य विषय' नामक प्रकरण में इनके कुछ सुन्दर ध्रुवपद दिये जा चुके हैं, जिनमें से एक मे 'नख-शिख-वर्णन' और दूसरे में 'वंशी' है। निम्नाकित रचना में इन्होंने कनीनिका में नर्त्तकी का आरोप किया है :

आली री तेरी पुतरी पातुर नीकौ निर्त करत है डोरे वस्तर पंहैरें सुरंग ।
हाउ भाउ जैसी सुधंग बतावत निपट चतुर अंग अंग ।।
अविधि कटाछि संगीत भेद सों सौभा अधिक सुधंग ।
तार हीं तार गुलाब बाजत सम पलक थाप नैंनां म्रदंग ।।[3]

---

१. परिशिष्ट अ, २४३।

२. रागमाला, पृ० ६६ अ।

३. परिशिष्ट आ, १५३।

इस रचना में गुलाब ने अपनी संगीतज्ञता और सूक्ष्म दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। कनीनिका में नर्त्तकी का आरोप प्रधान है। लाल डोरे उस नर्त्तकी के अच्छे वस्त्र हैं। हाव-भाव के सांगोपांग अभिनय में कुशल होना कनीनिका और नर्त्तकी में सामान्य धर्म है। त्रिविध कटाक्ष संगीत के तीन अंग—गीत, वाद्य और नृत्य हैं। अनुरंजन दोनो पक्षों में सामान्य धर्म है। नेत्रों के तारे ही तार (ताल=मंजीरे) हैं, जो नृत्य के 'सम' (काल का वह भाग, जहाँ गायक, वादक और नर्त्तक आकर मिल जाते है) पर बज रहे है। पलक 'थाप' दे रहे है और नेत्र मृदंग हैं।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय, तो इस रूपक में कुछ सूक्ष्म विशेषताएँ है। वस्त्र अपने-आप में धारणकर्त्ता को लिये होते है, इसीलिए पुतली के चारों ओर विद्यमान डोरों को कनीनिका-नर्त्तकी का वस्त्र कहा गया है। साधारण नर्त्तक शरीर के अनेक अगो के द्वारा जिस भाव का अभिनय कर पाते है, कुशल नर्त्तक उन सब भावों को केवल नेत्रों से अभिनीत कर देते है। पुतली शरीर का अग-मात्र है और नर्त्तकी शरीर के समस्त अवयवो से युक्त होती है, इतना होने पर भी सम्पूर्ण हाव-भावो के प्रदर्शन की क्षमता यहाँ उपमेय और उपमान का साधारण धर्म है। बात केवल यहीं समाप्त नही होती, जो काम नर्त्तकी (उपमान) समस्त अंगों का सहारा लेकर करती है, वह कार्य कनीनिका (उपमेय) केवल एक अंग होकर कर देती है। अतएव, यह अलंकारध्वनि का उत्कृष्ट उदाहरण है और यहाँ व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

त्रिविध कटाक्ष, केवल संख्या-साम्य को देखते हुए ही 'संगीत' (गीत, वाद्य और नृत्य) में नहीं बता दिये गये हैं, अपितु गीत का कार्य आकृष्ट करना, वाद्य का श्रोताओं में चंचलता उत्पन्न करना और नृत्य का कार्य गीत और वाद्य के प्रभाव को उपरंजन के द्वारा अभिवृद्ध कर देना है। आकृष्ट करना, तड़पा देना और मोह लेना त्रिविध कटाक्षों के भी गुण हैं, इसीलिए कटाक्ष और संगीत में सादृश्य ढूँढ़ा गया है।

मंजीरों का आधार नर्त्तकी होती है। पुतली नयन-तारों को अपने-आप में धारण किये हुए है। मंजीरे भी वृत्ताकार होते है और आँखो के तारे भी। इसीलिए, इन दोनों में साम्य देखा गया है। पलक 'थाप' है और नेत्र 'मृदंग'। नेत्र और मृदंग का सामान्य धर्म क्रमशः पुतली और नर्त्तकी को अपने-आप मे प्रतिष्ठित करना है। मृदंग, ताल का व्यंजक होता है, और 'ताल' (तल् प्रतिष्ठायाम्, घञ्=ताल) में गीत, वाद्य और नृत्य की प्रतिष्ठा (स्थापना) होती है। यही प्रतिष्ठा उभय पक्ष में सामान्य धर्म है।

ऐसी रचनाओं का आनन्द लेने के लिए साहित्य और संगीत दोनों की मर्मज्ञता अनिवार्य है।

५७. कृष्णानन्द रागसागर :

इनकी रचनाएँ साधारण कोटि की है, जिनमें ध्रुवपदकारों की परम्परा का पालन-मात्र किया गया है। यथानिर्दिष्ट ध्रुवपद में नवाब गाजिउद्दीन हैदर की प्रशंसा की गई है :

ए गाजुद्दीन हैदर पातसाहु शाहु जमन
पिय कब आवेंगे मेरे घर सजनी ।
चिर चिर जीयो ध्रुव धरन तरन जोलौं,
मेरु पवन पानी राज करो दिन रजनी ।।
गुनी पंडित नायक गावे मन इच्छाफल पावै,
दुख दारिद्र दूर तजनी ।
अचल राज करो महिमंडल में देत अशीश,
यही रागसागर अविचल रहो मन रजनी ।।[1]

५८. मियाँ ज्ञानी :

इन्होंने देवी की कृपा को अच्छे संगीत की प्राप्ति के लिए कारण मानते हुए उनसे कृपा-प्रार्थना निम्नांकित ध्रुवपद मे की है :

ग्यांन नाद धरें सुर बुधि पाउ जब हो प्रगास भमानी ।
सीषत सुनत रहत धरनि मुरनि सौं लेत तांन रसषानि ।।
उतिम मधिम प्रकाल (प्रकार) सीषि सोचि संगति गुर तें पाईअत कहें मींआं ग्यांनी ।
जब गुनींअनि मन मांनी कृपा कीजै भमानी नंग्रकोट रानी ।।[2]

५९. अचपल :

इन्होंने प्रधानतया ठुमरियाँ लिखी है, परन्तु रागमाला में इनकी कुछ ऐसी रचनाएँ है, जो ध्रुवपद की परिधि में आती है और जिनमें पाटाक्षरों का प्रयोग है ।[3] जबतक इनके अन्य ध्रुवपद प्राप्त न हों, साहित्यिक दृष्टि से इनके स्थान का निर्धारण सम्भव नहीं है ।

६०. कवि गोपाल :

इनकी इस प्रौढ रचना में गणेश की स्तुति है, जिसमें व्यर्थ शब्द कोई नही है और जो ताल और छन्द के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है, साथ ही द्रुतलय में गेय है :

गवरी नंदन गजवंदन, जगईस परमानंदन,
गजराज मस्तक सुंड डुंड, कर त्रसूल धरंत ।
चंद्रभाल सिंदूर सोहै गुन अपार अनंत इक दंत
गनपति विघन हरता सुख सहाइ करंत ।
प्रबंद दलन प्रचंड कहिअत कोटि विघन हनत ।[4]

---

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम, भाग पृ० २१४ ।
२. रागमाला, पृ० १२४ आ ।
३. उपरिवत्, पृ० ६४ अ ।
४. उपरिवत्, पृ० २०८ आ ।

अज्ञातपरिचय ध्रुवपदकारों की रचनाएँ

६१. अदारस :

कहा बैठी है री तू नारि उठि चलि पीश्रा पास षेलि लै होरी ।
अतर गुलाब और चोवा चंदन और अबीर गुलाल की भरि लै झोरी ।।
मेरे कहैं तूं उठि चलि पीश्र पर मति करि मान ऐ गोरी ।
अदारस मिलि करि फागु षेलि लै अभिचल रहौ राधा कस्न की जोरी ।।[१]

६२. आदिनराइन :

सिवू हर रे गंगाधर रे कांम तजन मन चिन्तामनि कल्प व्रछ कांम धेंनि मन संपूरन करि रे ।
करि त्रसूल त्रैलोचन मांत मंतंग कालकट अंवर रे लीलकंठ भसम भूषन रे फुनि मन मुनी मांन मुद्र षपर धर रे ।।
चंड करन नव कुंडि मंडित श्रवन अषंड हर लेके तंडव सिवराजत मुष मंडित भंड भंड भंडासुर भानन रे ।
दंड दंड दानव कुल वेवतरे करि प्रताप सुर नर मुनि रंजन रे ता तीश्रम श्रै अ श्रैश्रमश्रैया आदि नराइन कवि भनत गीत श्री उरव तु ववंत रे अवमतिफल (अभिमतफल) दाइक नाइक जनु प्रीश्र करि रे ।।[२]

६३. इस्करंग :

राजस्थानी-भाषा पर होरी-शैली का प्रभाव दिखाने के लिए इनकी प्रस्तुत रचना का उल्लेख किया जा रहा है। रचना धमार ताल में गेय है :

उभी श्रगा नैनी जोवै थारी गैल मध
छकौ वालम आजौ म्हांरे मैं हैल ।
दारुडी पिलावै सावां रैनि जगाश्रो
इस्क रंगीलौ रसीश्रा छैल ।।[३]

६४. खेमरसिक :

वैनी निरषत भुजंग तजि पताल लोक
गऐ जे व्रप देवै तै मींन जलज दुरे ।
छवि निरषत कलाहींन उड़गन ससि भूश्र ईस हसन
वसन दामिनि दुति उर अनार दरकि मुरे ।
सिंघसकुच कट निहारि लंघन दस कीयें चारि पावस तन जरि जरि ।
कंचन तन वारि वारि षैम रसिक छवि निहांरि डारौं तिनुका टोरि ।।[४]

१. परिशिष्ट आ, १३५ ।
२. रागमाला, पृ० ८९ आ ।
३. उपरिवत्, पृ० २६९ अ ।
४. उपरिवत्, पृ० १८६ अ ।

६५. जुगराजदास :

सर्वाणी सर्वकलाशक्ति सारदा सरस्वती,
श्यामा सुन्दरी सुखकरनी दुखहरनी ।।
कामरूकामाख्या कामदायनी काली,
कल्याणी दुष्टहरनी ।
कमलवदनी करणकारणी काश्मीररानी,
कैलासी कालहरनी ।।
परमेश्वरी पार्वती परमपुण्यपावनी,
जुगराजदास श्यामवरणी महाकाली तारणतरनी ।।[1]

६६. तानवर :

वर्ण में पवित्र ब्राह्मण पशुन पवित्र गऊ
भोजन पवित्र घृतसार ।
जल में पवित्र गंगाजल देवन में पवित्र विष्णु महेश,
तृण में पवित्र कुशतार ।।
धातु में पवित्र सोनो पत्र में पवित्र तुलसीपत्र,
पोहाप में पवित्र पारिजात पछिन में पवित्र हंसप्यार ।
कहे कवि तानवर तानन में पवित्र तानसेन,
नाम में पवित्र हरिनाम उरधार ।।[2]

६७. तानबरस :

विद्या में नाद विकट शास्त्रन में न्याय विकट गढ़ में
लंक विकट लोक में विकट सुरलोक देव विकट हर जान ।
पशुन में विकट सिंह मुनिन में विकट दुरवासा
मणिन में विकट कौस्तुभमणि पचभूत में विकट अग्निमान ।।
पछिन में विकट गरुड़ उदधि विकट छारोदिक
अवतार विकट नरसिंह मीन विकट मकर गीत विकट संगीत प्रमाण ।
कहत कवि तानवरस सुर विकट नामि,
गायन तान विकट तानसेन जाको सुयश बखान ।।[3]

६८. नूररग :

कट लचकावत भौंहैं मटकावत ग्रैसी ढीठ निलज यह दइग्रा ।
जहाँ पावत तहाँ पकरि रंग में बोरत है हलधर कौ भइग्रा ।
नूररंग कहैं या कौं तकत है जैसौ होइगौ व्रज कौ वसइग्रा ।[4]

---

१. रागकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ४४ ।

२. उपरिवत्, पृ० १३२ ।

३. उपरिवत् ।

४. परिशिष्ट ग्रा, १३२ ।

६६. प्रेमरंग :

प्रेमरंग होरी खेल मचाएं। जो न सुनी देषी रीं सजनीं सो नैंननि बिषसाएं।
हरि सौं रची मची मति मेरी अब नतु में सकुचाएं।
तारी दैं दै हसि व्रज सगरौ लाज अबीर उडाए ।।
सांची कहौं सुनौं यह सब ही उनहीं कौ गुन गाएं।
गोकुल वास कांन कौ संगम फेरि जनम कहां पांउं ।।[१]

७०. महानादसेन :

प्रथम अलाप ठीक तान शुद्ध अक्षर सों कीजिए प्रमान।
सुरताल श्रुतिग्राम मूर्च्छना की वानी सों करो गुनी जन गान ।।
और को कह्यो न माने हिय जिय हठधरे याही है अतिमूढ़ज्ञान,
नाद ही को करविनान।
महानादसेन कहे गुण के जानकार एक आद होत है तुम बूझो जान सुजान ।।[२]

७१. मुरसद :

मेरे मन अल्ला अल्लाहु रट रे रसना ज्यो करे आय।
निशि दिन ज्ञान ध्यान और जप मुरसद को यह सीख सीख ले सप्तधाय ।।[३]

७२. रसरंग :

जो पीअ तोसों कहत सषी सो पीअ है प्यारी राधे संग।
वह देषौ जमुना कुंजविहारी निरतंत मोहन भयौ रस रंग ।।[४]

७३. रामराय :

तें बस कीनो री प्यारी नंद नंदन वर गिरधारी।
तुअ मुष देषत चंद लजावत तो कों नही सुधि मतवारी ।।
तेरौई ग्यांन ध्यांन तेरौई सुमिरन, तेरी रट लागी रहत निसुदिन री।
रामराइ प्रभु तेरे रूप लुभ्यांनो विकानों अनमोलौ श्री व्रषभान दुलारी ।।

७४. लक्ष्मणदास :

शिवसुत गणपति तें ज्ञान पावै अनेक प्रकार जाते अति ही बुध आवै।
गायन विद्या सब निगम मूल चार वाजे सुरवाणी सों गावै ।।
गिरिजा को नन्दन आनन्दकन्द जगवन्दन सब देवन में सोहावै।
लक्ष्मणदास पै अपनी मया कीजो दीजो मन इच्छा फल पावै ।।[५]

---

१. रागमाला, प्रथम भाग, पृ० २४३ अ।
२. रागकल्पद्रुम, पृ० ५१।
३. उपरिवत्, पृ० ५६।
४. परिशिष्ट आ, १३४।
५. रागकल्पद्रुम, पृ० २११।

७५. वंशीधर :

सब मिल गावो बजावो मृदंग, आज हमारे लालन को बरसगांठ।
कनक थार भर मुक्ता हसकर करि न्योछावर पायो॥
नव नव पल्लवन की माला द्वारन द्वार बंधायो।
वंशीधर प्रभु को जस सुनियत है सबही को लागत सुहायो॥[1]

७६. सबरंग :

लाल लै गुलाल सषी मेरौ मुष गहै मींडो गूंज मुरकी नय की इनि वरजोरी।
कंचुकी दरकी मोरी अंक भरि लीनी इहगति कीनी हैं मोरी॥
लाल लगर लगराई करत हैं गोरी विननि की थोरी।
जाही नगर में अब सब रँग सौ षेली हैं मनभाई होरी॥[2]

७७. साजन :

धुनि सुनी श्री मोहन के मुष मुरली वाजी री आज।
षरजकधर की मूरति नौछावरि सुर नर किंनर मुनि कों साज री आज।
सप्त सुर तीनि ग्राम उनंचास कोटि ताननि गाई री।
साजन कौ प्रभु लेत बलईआं जसोधा माई री आज॥[3]

७८. वाणीविलास :

सुनि धुनि डफ धुकार के सजनी बाजत आवत मघवन की ओर री।
धूंम धमार अबीर नव छायौ वरसत दूरि ते मुकट मोर री॥
चतुर षिलार ग्वाल गरभीले से रसभीनें सब सोर बोर री।
वांनी विलास सरसगति नांचत गावत आवत नवलकिसोर री॥[4]

७९. रसनिधान :

देवमणि विनमणि भान विन कहां से तिमिर हरत
रैनि तपनि त्रिगुण द्वादश आत्म नेत्र मार्तण्ड।
हस्नरम्मपुषा जगतारण जनचक्षु जगवन्दन
पापहरण प्रचण्ड॥
सूरज सुर सहस्र गृह तू वेजानपति,
अगति तू अगति सप्तद्वीप नवखण्ड।
रसनिधान सेवको दीजै सुवृष्ट कीजें
दीजिए सुर ताल अखण्ड॥[5]

---

१. उपरिवत्, पृ० ६०।
२. परिशिष्ट आ, १३३।
३. रागमाला, पृ० १२४ आ।
४. उपरिवत्, पृ० १३८ आ।
५. रागकल्पद्रुम, पृ० ७३।

(उ) उपसंहार

विक्टोरिया का शासन आरम्भ होने पर ध्रुवपदकारो को देशी नरेशों का आश्रय लेना पड़ा। पाश्चात्य सभ्यता का जितना-जितना प्रभाव देशी नरेशों पर पड़ता गया, संगीत, राजदरबारों से उतना-उतना ही दूर होता गया। रामपुर, जयपुर, उदयपुर ग्वालियर इत्यादि कुछ रियासतों में ध्रुवपद की लकीर पीटी जाती रही। इस युग में ध्रुवपद-गायक हुए, परन्तु उल्लेखनीय ध्रुवपदकार नही। रचना तो दूर, अनेक ध्रुवपद-गायक तो प्राचीन रचनाओ का अर्थ तक न समझने के कारण उन्हे अत्यन्त भ्रष्ट रूप मे चिल्लाते रहे। इनकी दृष्टि केवल सांगीतिक चमत्कारो की ओर थी। रस की तो बात ही क्या, वाच्यार्थ की भी उन्हें चिन्ता न थी। इस सम्बन्ध मे एक मनोरंजक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। भारत के एक ऐसे प्रसिद्धतम गायक, जिन्हें कि उच्चतम राजकीय सम्मान प्राप्त हो चुका है, निम्नाकित कृति का गान करते है :

> हर बिन नायक लम्ब्धरो छत्र गोपीअन गाय बजाय बृज में।
> ऐसो री गावै तान सुनावै नंद छैल नीके गाय सुनाय गुनिअन में।

इस रचना मे 'लम्बूधरो' लम्बोदर की कपाल-क्रिया का परिणाम है और 'छत्र' चतुर की 'हर बिन नायक' की सगति बिठाना तो ब्रह्मा के लिए भी दुस्साध्य है! इस रचना का एक रूपान्तर निम्नाकित है :

> **हर विनायक लम्बोदर चतुर गोपीजन गाय बजाय बृज में,**
> **ऐसो री गावे, तान सुनावे, नंद छैल, गीत छंद और ध्रुपद।**
> **नीके गाय सुनाय गुनीजन में।**

'नंद छैल' और गोपियों के गाने-बजाने मे 'हर' और 'विनायक' क्यों, कैसे और कहाँ से आ घुसे, यह जानना असम्भव है।

'गुनीजन में' आकर 'नंद छैल' और गोपियाँ किसके दरबार मे मुजरा कर रहे हैं, यह रहस्य योगियों के लिए भी अगम्य है!

संगीत के महान् उद्धारक कहे जानेवाले स्वर्गीय भातखण्डे महोदय ने यह गोरख-धन्धा जैसा-का-तैसा अपना कर केवल 'बृज' के स्थान मे 'बिरज' कर दिया है और 'ध्रुवपद' के पहले 'धोरू' और जोड़ दिया है।

प्रतीत होता है कि कोई खाँ साहब गणेश-स्तुति से सम्बद्ध किसी ध्रुवपद के आदिम वाक्यांश 'हरसुत विनायक' को 'हर बिन नायक' कह रहे हैं और उसके पश्चात् भ्रमवश किसी ऐसे ध्रुवपद के अंश जुड़ गये है, जिसका विषय कृष्णलीला है। इतना अनुमान कर लेने पर भी 'नीके गाय सुनाय गुनीजन मे' की संगति नही बैठती।

यह स्थिति इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि संगीत के आचार्य, युगप्रवर्त्तक तथा न जाने क्या-क्या कहलानेवाले साक्षर व्यक्ति भी अर्थ की उपेक्षा पूर्णरूपेण करते थे। ऐसी स्थिति में ध्रुवपदकारों के जन्म की आशा शशक-शृंग के दर्शन की अभिलाषा-मात्र है।

आज गीतकारों की कमी नही है, परन्तु सचमुच गेय तत्त्व के मर्मज्ञ वाग्गेयकारो का सर्वथा अभाव है, जो रस-परिपाक के समस्त पक्षो से अवगत हों और वाग्गेयकारत्व की कसौटी पर खरे उतरते हों। उन्हे कोई एक धुन रटी होती है और उसमे वे अपने समस्त गीतों की टेर कवि-सम्मेलनों में लगाया करते हैं।

दूसरी ओर इन गीतकारो की रचना को गेय रूप देनेवाले वे व्यक्ति उन गीतो की खींच-तान स्वच्छन्दतापूर्वक करते है और उनका 'कार्टून' बना देते है, जो इनमे साहित्य-पक्ष की ओर से विरक्त होते है। यह कभी नही भूलना चाहिए कि गेय काव्य के साहित्यिक और सांगीतिक पक्ष साथ-ही-साथ एक ही हृदय से उत्पन्न होते है, यह साझे की दूकान नही है। बाईं आँख के काने और दाईं आँख के काने दो व्यक्तियों को साथ-साथ बाँध देने से दो आँखवाला एक व्यक्तित्व तैयार नही होता। सस्कृत की एक प्राचीन उक्ति है :

सङ्गीतं चापि साहित्यं नृणामेतद्द्वयम्।
एकेन विकल. काणः द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थात्, संगीत और साहित्य मनुष्य के दो नेत्र हैं, इनमें से एक का अभाव उसे एकाक्ष और दोनों का अभाव प्रज्ञाचक्षु बना देता है।

प्रज्ञाचक्षु कहे जानेवाले महाकवि सूरदास उपर्युक्त दोनों नेत्रों से सम्पन्न थे। यह कौन नही जानता कि उनके पूर्ववर्ती विद्यापति 'मिथिला-कोकिल' कहलाते थे। काकली के विना कहीं कोयल का अस्तित्व होता है ?

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का लक्ष्य जहाँ गेय रचनाओं की ध्रुवपद-परम्परा का परिचय देना और उनका निर्माण करनेवाले ध्रुवपदकारो के साहित्यिक महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना है, वहाँ युग की इस कमी की ओर भी ध्यान दिलाना है, जो हिन्दी-साहित्य मे वाग्गेयकारो के अभाव से उत्पन्न हुई है। उस शास्त्रीय परम्परा को नवजीवन देने की ओर यदि हिन्दी के माननीय विद्वानों और साहित्यस्रष्टाओं का ध्यान गया, जो कि उत्तर भारत में अभिनवगुप्त के पश्चात् उच्छिन्नप्राय होती हुई कालान्तर में नष्ट हो गई, तो हमारा यह नगण्य परिश्रम सफल होगा।

परिशिष्ट 'अ'

आश्रयदाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद

(रागमाला से संगृहीत)

अलाउद्दीन खिलजी

प्रताप : भीमपलास-सूरफाकता, ८६ अ।

घकदलन रे प्रवल्लनाद सिंघनाद वल अपवल वक्कवर। कुडान धीर अडान मिलवत चपल चाप अचपल अक्कअर। गीत गावत नाइक गोपाल विद्यावर। साहिनिसाहि अल्लावदीं तपै डिली नरेस जाके वसुधा सुचित तुअत्तक्कधर ॥१॥

मानसिंह तोमर

प्रताप : गन्धार-तेवारा, ३२ आ

तुअ सुनत उनि पग डगे कहा करौं तेरौ वषांन तू महाजांन गुनिअनि देत गजदान दिल्ली नरेस रे, तेरौ वाजै बम्म रे चढि फौजैं संगनि और अमांन लीओ ललकारि माचौ हुंकारि रे। तू उगीओ सूरज मांन रे। धारू गावत गोपाल राजा मांन चंकवै सजांन रे ॥२॥

श्रेष्ठ वस्तुएं : षट-झपताला, ५८ अ

प्रथम मनि ओअंकार देवनि मनि महादेव ग्यांन मनि गोरिष वेदमनि ब्रम्हा। विद्यामनि सरस्वती नदीनमनि गंगा भक्तमनि नारद निर्तमनि रभा। ब्रछमनि कलपब्रछ गजमनि ऐरापति षर्ग मनि कलवार राग मनि इद्रा। भनत गोपाल सुनौं हो राजा मांन द्यौस मनि सूरज रैनि मनि चदा ॥३॥

धारू : धानी-तेवरा (धारू), ८६ अ

अत गत मत्र गाअैआ ममग मगे ममगे मगेम्यंगे म्माग। ताधम कटे ता ताता कै काक नांनां झेकझे। लैलैकभुमकमदन रे ततकाल निर्त अपार रे अै आ ओ धँ धै चंदा फुनि फुनि मन में। तडक्तकझूमल जुगलरे ततकाल निर्त अपार रे जह भार रे धारू गावत गोपाल राजा मांन चतुर उभै ॥४॥

राजा राम

मंगलकामना : वागेसुरी कान्हरा-चौताला, १८८ आ

अचल चक्रवती वघेलो चक्रता नरेस गुर गनेस बुधि सुरेस सकल विद्या विनानी। छत्र पाट सिंगासन अभिचल रहौ जौ लौ दधि सुमेर भुअ लौ सुलितानी। सप्त दीप नव षंड दसौं दिसा जसु छायौ षट दरसन निवास परम ग्यानी। बीरभान जू को नद करन ष (विशेष) मंहाराजा राजा रामचंद्र इंद्र सनमानी ॥५॥

दरबार : **षट-चौताला, ५७ आ**

देषी इंद्रलीला इंद्र सोभा इंद्र कैसो दरबार थकित भऐ है अचल मुनी। षंडनि में भर्तषंड, दीपनि में जंमू दीप, ऐसें दिपत जैसें समंद हीरा। ऐकनि बुलाई देत ऐकनि कों बकसत जरवाफ चीरा। राजा राम पीय तुम्हारो दरस देषे जिनिके आगे गुनी करत क्रीला ॥६॥

श्यामा : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ अ**

आली री बदन निर्मल बरस या चौदसे ग्यारै बरस लागी बतीआँ करन भोरी बांम। बारही बरस अेडी बेडी सी डोलत तेरे ही बरस लागी पीय तन हेरन भूलि रही ग्रेह धाम। हौं जु पाई जीअ की सोरह कला संपूरन आंनि व्यापौ तन काम। मेरे कहे तू उठि चलि राजा रांम पीअ पर घरी घरी पल छिन छिन सुषु पावैगी अस्ट जाम ॥७॥

नयन-तुरंग : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ**

आली री जिमि तुरंग बनाई राखीअै राजाधिराज कों विचित्र षदाई री कांम। पलकनि कें कर जीन पुछीअत भौहे मटुकी लाल डोरे पारे अत ही सुरग अंजन लीकल गाम। षुरीअ कटाछि कहावत आवत मानों अलकै उरझी ताजन स्यांम। पैहैलें साट बनाई रीझे राजा राम छत्रपती तन मन दीनही इनांम ॥८॥

दानशीलता : **पूरीआ-चौताला, ८१ अ**

दये जौ तुरंग राजा अधिराज ऐमोल अमोल तिनि कौ भयौ जगमगाट जराउ जीनै। अनेग गज कौं न गिनै बातिनि पाऐ अैरापति सम के असे दान दीनें कुंज कुंज दूरि बीनि लीनै। षट दरसन कौ निवास महांपर्म ग्यानी लाषति दीनै करोरनि दान सुषकरन। राजा राम छत्रपती मोजदरीआ दालिद्र भजन ॥९॥

बसन्त : **हिन्दोल-चौताला, २५० अ**

अहो नीकी घरी नीके दिन नीके महूरति नीके गुनीअनि बसन्त अस्थापी। बेल निवारी सौनजुही दै गुलाल बरन लाल पौहौप जाई दीनौ री भौर प्रान प्यारे कौ फुनि पंचम अलापी। बरन-बरन अबर तैसेई राजत गावत री विद्याधर जब श्रव(न) नि मैं व्यापी। सकल जाचक तिनि कौ भातिनि भातिनि दौनौ जब रीझे रामचद्र राजा प्रतापी ॥१०॥

सभा-संगीत : **टोड़ी धीमा-तिताला, ६५ अ**

जहाँ सभा पडित निर्त कालीन होइ तें मनरजन श्रवननि दुषभजन कलाअंत कलानिधि नाम। जोई जो राजा राम और जो कौन काम सुनि चक्रवती तहा रिधि सिधि नाम। प्रथम ही गाइ अलापि रसु राखि विनु रीझौअै कछू कहै अदना। जिनि जिनि के नेत्रनि सुषु जीवन कौ फलु सु तौ तुम नीके जानत जाकी सम को मेरे जांन कोउ जग मध ना ॥११॥

नादसागर : **मालकोस-तेवरा, २२८ अ**

अगम अपार नादसागर की राह तामैं तम जिहाज मान आहत अनाहत जंम जानि इकईस मूरछिनां वादवांन बाइस सुरति सौ चलावैं। कावि रीति सगीत गीत

प्रवद धुरपत धरू तत वितत जानि ता मध बैठि षरज लगाइ लंगर सप्त सुर मंदराचल उनचास कोटि सु तान सुध फिराइ मथन करै सु चउदह रतन लेइ निकारि नाम गनावै । ओडव षाडव संपूरन वादी संमवादी अतीत अनांघत सम विसम तीनि ग्रामिनि के करि दिषावै । दस विधि गमकलै आरोह अवरोह मंद्र सो मध तार स्फुरत प्रत्याहित उपज करि धरनि मुरनि अलापचारी सघन औ सुर बरज जांनै अस्थान चारि विचारि राग लीऐ निकारि अनेक रत्न संगीत रतनाकर सौं कहि माल धूम्र माठादि ताल समेति गाइ रिझाइ गुनी जन राम कौं तब भावै ।।१२।।

नयन : **सुध मलार-चौताला, २७५ आ**

अति सुघारे री तेरे नैंननि ता मध गज रंग मीन उज्यारे । षंजन मीन अगहू ते अति चंचल अमी भरे अनिआरे । आजु कौ वानिक वनि रह्यौ आली पुतरी स्यांम तामध सोहत तारे । निरषि निरषि (!) दुराई चतुराई राजा रांम पीअ प्यारे ।।१३।।

रूपयौवनगर्विता : **सारंग-चौताला, ७२ आ**

जोवन गरूर अति गिनत काहू न फुनि विद्यावर री और पीआ की मया तै । तूअ प्रताप तेज और सौतैं घटि लागै री जैसें दीपक मलिन हेतु और त्रीय लागत नीकी न यातै । चंदन जोति कुंदन चंपी वरनौ सव सौतै छीन भई तेरी छवि देषै तै । राजा राम कौ अंगु संग पायौ सुष समूह न टरत छत्रछाया तै ।।१४।।

दूतीवचन, मानिनी : **ईमन पूरीआ धीमा-तिताला, १४१ आ**

मांन नरम करि मन अग्यांन तेरौ आली जाई तै सुख आंननि । हौं जौ आई तोहि लैंन उठरी गौंयारि नारि मैं तो तेरौ कहा कीनौ तू जौ रूसि रही कौन काम । तेरी री अरति कौ पठई हौं पिआरे लैंन उठि चलि मेरे कहै त्रसुष करि धांम । दोछ न दीजै मो बापुरी कौ चढ़ाई बडाई राजा राम ।।१५।।

विप्रलब्धा : **पूरबी धीमा-तिताला**

मोहि गिनत अवधि गई तन मन छीन भई पीर न पाई पीअ मोर जीअ की । पतींआ न पठई प्यारे पीतम तुम असी क्यो बिसारि डारी षवरि न लई उनि मो जीअ की । घरी घरी पल छिन जुग से बीतन लागे देषौ धुनि कहारी अनि के जीअ की । राजा राम पी अनत बिलमि रहे कौंन सी टेउ परी पीअ की ।।१६।।

इस्लामशाह (सलीमशाह)

नायिका : **ईमनी बिराउरि-जलद, ३८ आ**

गोंहीं गोंहीं ते रिझायौ सुलितांन सलेम नांगर । तू ही विचित्र तीअ, तू ही चतुर, पीअ तोसों री परम सुषु पावै ।।१७।।

नायिका : **हमीर-चौताला, ११२ आ**

आनंद भयो आली, मेरे प्राननि कौ सुष, देखत ही पिया कौ मुष । जो कछू विथा व्यापति मो बिरहिनि पर भूलि गऐ तनमन के दुष । हों तौ तिहारौं सुष चाहत कीनी

नौछावरि पग परसत रोम रोम तब होत संतोष। पात साहि सलेम साहि मनसा के दाता तब भऐ सुष ॥१८॥

नायिका : **ईमन-चौताला, ११२ अ**

जी तौ तेरी आंनन पर कर धरे चद। चाल चलत तू री जोवन अति मति गइंद। एक रूप देषिवे की कही न जात असल्हेम साहि की तो ही सों भांभरि सुष आनन्द। जाते अति ही हासि लेत लटपटात दै रही मन फद ॥१९॥

दौलत खाँ

रूप : **मारुऔ-चौताला, १०१ अ**

भाई प्यारे की मुरति कौ री भुज प्रकाश काहू पर कहौ न जातु री मन ही मन आनीये। जेती सिराहना कीयौ चाहत सु उचरै जाके तेई चित जानीये। उपमा काहू की दई न जाई दूजौ रचौ हो तौ ताकी समझ गति बांनीये। अैसौ जु प्यारौ दौलति षान जीवत कौ पलु तौ गिनीये वाके संग सुष मानीये ॥२०॥

मनावन : **छाया-धीमा-तिताला, १४५ अ**

मौसौं रूसनौ हो किल करत हौ प्यारे जौ मोते कछू चूक परी ताहि तुम हीं सुधारन हारे। जब तौ गरै लगाई जीअ मे उताउल भई पीति बचन तजि अऐ न्यारे। कौनै जंह सीष दई कहा तुम जीअ धरी मोसौ यौ कहा हा हारे। हसि करि बूझत उतर काहे न देत दौलति षान उज्यारे ॥२१॥

बाजबहादुर

आगमिष्यत्पतिका : **गोरसा रंग-चौताला, ७९ अ**

सुनत भनक परी पीअ आंमन की, जातें प्यारी आभूषन सम्हारत। कबहूँ द्वारे षड़ी होत कबहूँ भूअन ऊपर होत सषिनि संग अैसी चोंप लगी मन भांमन की। अलबेली अलकै छूटीहै कुचनि पै और दीअें बेदी सोभा लामन की। रूपमती पीअ बाजबहादुर इतनी कही समझावन की ॥२२॥

विरहिणी : **नट-चौताला, ८७ अ**

बिछुरि दुष दीनों हो प्रान मेरे आवत कैहूं न लाज। जब जु लालन संग निकसि न गऐ अब धौं रहे कौन काज। पापी प्रान रहत घर भीतर करे ही चाहत सुष राज। रूपमती पीअ हम सो न दुषीआ कहा धौ बहादुर बाज ॥२३॥

वार्द्धक्य : **नटनाराइन-चौताला, ८८ अ**

जीवन जात दीये दगा। और रंगनि की कहा कहौ तोसौ जैसे कसूमी रगा। कारे काग गऐ घर अपने आऐ सेत बगा। रूपमती के बाजबहादुर कोऊ न जीवै सदा ॥२४॥

अकबर

प्रताप : **महीअरी टोड़ी-चौताला, ५२ आ**

धनि धनि तू चकवती नरेस जलालदीन सब देस लीश्रे कीअें जेर जबर अपने षर्ग कें बर। तूश्रे सब बिधि प्रथीपाल परवानन उदीआचल भरतेई नेहेचे जहां तहां सकल भूपनि पर। तौ सौ तुही ऐक अब बली माहासुभट नेहेची अली तूअ सभाई तूअ समान आंननि रचौ बिरंच कौन देहों पटितर। चर चरंजीओं जौ लौ तौ लौ धुअ धरनि तरनि गगा जमुनां जल क्षत्रपती साहिनिसाहि दालिद्र हर ।।२५।।

अकबर का ज्ञानित्व : **नट-चपक**

मेरै को घर-घर डोलै घट तै ग्यान बोलै कैधौं अल है डोलै। मांषन छीनि लीयौ साहि अकबर को मेरै छाछि बिलोवै आंगन डोलै घर तैं ग्यान बोलै ।।२६।।

मंगलकामना, अकबर बुजुर्ग मुर्शिद : **राग खट जलद-तिताला, ५८ ग्र**

आलम पनाई साहि अकबर चरजेवी होई जाके निस्तारन कों करों निहाल अपने सुभाय। अल्ला दीयौ तषत मो पर मेंहेंरबान सकल नरन मे। प्रभात हो तब ही परसे पाय। जनक जनम के दुष दालिद्र काटत है और देत अघाई। साहि अकबर बुजरक (बुजुर्ग) मुरसद (मुर्शिद) जामे अलाहि (अल्लाहि) पाइ सोई न्यामति देत अघाइ ।।२७।।

सिंहासन : **झझोटी-चौताला, २६३ अ**

आओ गाओ सब गुनी छंद महां जांन छत्रपती अकबर. । असदल सजि प्रचंड हिनाउ को नंद तषत बैठो बषत हिंदा ।।२८।।

प्रशंसा : **गौरी-परिताल, १०६ म**

साहि जलालदीन कवि रासनंद चतुर जान मान। अनेग कवि गिरंथं में जान संगीत मत मत लीने ।।२६।।

प्रशंसा : **नाइकी-चौताला, २०० आ**

भुअ लोक पद न तूअ समांन अकबर साहि चहु चक आन। कुलिपती ई पातुर छौ यै (!) ऐक छत्र धरै जलालदीन महमद सुग्यान सु मेरे विवप चेतामनि सब गुन निधान ।।३०।।

प्रशंसा : **टोड़ी-वरा, ६५ म**

कलि कर पूरौ मदार रमदाता अदेगनाल सुनि गंभीर अटल मेरे जान। जगपती जग उजिआरौ भुमिभार साहि जलाल प्रान प्यारौ अटल इद्र समान ।।३१।।

मन्दिर की मुबारकबादी, संगीतज्ञता : **खट-चौताला, ५७ आ**

मंदिर तुमकों नवल मुबारष हो यै कोटि बरस लों कीजै राज महराज। नाना प्रकालनि सों वे जौ मनाई इम्रत रस रंग छायौ काइम दाइम तौलौं चंद्रधरन अरु ब्रम्हांड ताज। जिनकी मति आगे और की न देखौं अस्तुति कै कैंस करों ऐक रसना मेरें संगीत रतनागर के भेद पढत न्यारे साज। साहि अकबर प्यारौ चिरजीव रहौ चरजेवी इंद्र सम

तौहि देंहों ने बरसत चत्रमास तुम द्वादस झर लायौ वै बिनि के गुनी गंध्रप निस्तारन तारन बिधनां रचि पचि के समाज ।।३२।।

मुहम्मदी नूर, शरणागतवत्सलता : **सहानां कान्हरा, जलद-तिताला, १६१ अ**

जहां महमदी नूर हुअ हुअ जहूर और न्यामति नित मामूर पूर गुन गध्रप गन और साजै । जे मन प्रतीत करि आवत चरननि धावत अकबर साहि छत्रपती साव करै ते अचल आराम राजै ।।३३।।

अकबर के लिए मंगलकामना, गौरक्षण, ईशरूपता : **ईमनी-बिराडरि, ३७ आ**

राजलीला रेंहो जग पर विस्वबर करै धर्म । जे भूले ते कहै परचाही तू आयु जगबदन साहि अकबर परम पुरिष परसोत्तम पाराकर्म । पुनि जीव जत्र तन्त्र मन्त्र गानि रछि पा कृपाल हो दयाल औतार लीओ सब सिस्टि पूरन व्रम । जे ग्यानी भक्त गुन गावे प्रभु 'सूरति' कों अस्ट सिधि रिधि नव निधि ततछिन जगाईये कर्म ।।३४।।

प्रताप, योद्धा-प्रशंसा, व्रजमण्डल-आगमन : **केदारा-जलद, १६७ अ**

आयौ आयौ रे ब्रजमडिल साहि छत्रपती अकबर । सप्त दीप नव षण्ड दसौं दिसा नर नरंद्र कांपौ थर थर डर । असदल गजदल नरदल प्याददल ऐक तै ऐक जोधा अजगर । ऐक तै ऐक सुभट करि आवै पावै कमान गुरज नेगा तंबल समसेर । हिमाउ के नदन पै बसन न पावत लंक नगर जित तित सुनी अतिदल भारी जलालदीन महंमद कौ लसकर ।।३५।।

प्रताप, अल्लाह, मुहम्मद, मुइनुद्दीन ख्वाजा : **केदारा-जलद, १६७ अ**

गिर मेर चढत चारौ चक कांपौ और आयो है घर घर घर कीयौ रेर । जित तित तकत भूप न नीद परै ज्यौ ही डर डरानौ साहि अकबर कै त्रासन निसु दिन आपुन ही और कर बर बरष कीऐ सब जेर । जासौं सम सर कैसे करी जांई जापै अलह महंमद करम कीजै मौंनदी मदति जु बधाई समसेर । ख्वाजा ऐसो छत्रपती भूअ दल मलन हौं जु कहत तजि जाइ जांन पावै कौंन हूं वेर ।।३६।।

प्रताप : **केदारा-चौताला, १६३ अ**

ऐ अनभाती बातै हो तुम्हारी प्रवीन अकबर साहि काहि दीजै उपेमां (उपमां) सु ताहि बताई है जताई हैं छत्रपती साहि जलाल जू । दसौ देस दसौं दिसा इतनैं नर नरेंद्र सम को करै को लरैहो को धीरज धरै का की मजाल जू । जौ परवांन अनुसरत तही तही भूप डरत मही वाहि पांइ परत तब ही कहत जोई दै जोई मांगीऐ इ रिसाल जू । ऐसौ रचि पचि बिरंच कानौ सेव आपने कर जानीयैं और मानीयैं ति निध हो तेजवंत प्रचंड प्रताप दिनकर जे सब मिलि बिनती करत है तुमकौ सुनि कृपाल दयाल जगपाल प्रथी-पाल जू ।।३७।।

प्रताप, आतंक, करनाल : **जैत-चपक, १५६ अ**

अकबर आयौ रे वैही देस बाजी करनाल। भाजनै होड़ सु भाजै रे सुनि बंम मीर मुगुल सब राजा राना राउ ॥३८॥

पराक्रम, कश्मीर, गुजरात : **श्रीजलद-तिताला**

अकबर दौरि दौरि आवे है बटपारी है सब ठौर। कहूं जीति लई कसमीर धरि गुजराति बल जह दौर ॥३६॥

प्रताप : **नटनाराइन जलद-तिताला, १८ अ**

तजि मरम भजि रे भजि कंथ जान जानत अकबर नर छायौ। चलत समीर मीर देषिअत चहू ओर जहं सुख सुनीअत अब जैसे उमड़ि घुमड़ि घन उनआयौ ॥४०॥

अकबर दूल्हा, दिल्ली दुलहिन, प्रताप : **राग खट-चौताला, ५७ आ**

दूल्हौ अकबर नरवर दिली दुलहिनि बर पायौ। छत्रकाली जे राजा जिन्हिं ते गाड़ी सांन पांनी समस (!) बषत प्रताप जगमगायौ। जब दिगानो ऐलि पेलि दीनो है दुरजन चारों दिसातें भयौं जगमगायौं। बजे निसांन आनंद मंगल गाऐ चरंजेवी हिमाउ कौ जायौ ॥४१॥

अकबर का पराक्रम, अनुपमता : **महीअरी टोड़ी-चौताला, ५२ आ**

धनि धनि तू चकवती नरेस जलालदीन सबदेस लीॳ कीॳ जेर जबर अपने षर्ग के वर। तूअ सब बिधि प्रथीपाल आंन परवांनन उदीआचल भर तेई नेंहेंचे जहां तहा सकल भूपनि पर। तो सौ तुही ऐक अपवली महासुभट नेहेंचे अली तूअ समाइ तूअ समान आंननि रचौ बिरंच कोंन देहौं पटितर। चर चरंजीजो जौलो तौलो धुअ धरनि तरनि गंगा जमुनां जल छत्रपती साहिनिसाहि दालिद्रहर ॥४२॥

गायक से प्रश्न : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १७६ अ**

प्रथम औॳं नाद अनहद दूजै आहद आहद तिनि करि छयासुट श्रुतै उपजाई भर कल्लिनाथ हनूमन्त भर्त (भरत) मत सगीत में षैवे कौंन धुनि होत तुम प्रवीन गाइंनि हौ तो गाओ तौ करौ अब इत बरवान। सो सुतै कौंन कौन केती केती षरजादिक सविद सविद सुर प्रत ठहरानी बारह विक्रत (विकृत) और सुर वादी संवादी अनुवादी विवादी तिनि मै होत ग्रहअंस न्यास तिनि ठौर रूप प्रधान। तिनितै तीनि ग्रांम बिस्तार बिस्तारी स रे ग म प ध नी ध प म ग रे सा रे सा आदि दै दै कै और कई अक तांन सु जांनत गुन मांन कीजै प्रवान पंद्रह गमक अलापत छिन वाहि त्रेसटि उनचांस कोटि (कूट ?) तान ओडव षाड़व कीजै निधांन जाते हो गुन मान नं कीजै आंन जह अगिम अथाह रनि कोउ जांनत संपूरन गुन मांन तौ गाई सुनाओ साहि अकबर के आगै सही होत विद्या की परिवान ॥४३॥

संगीतज्ञता : **गौड मलार-चौताला, २८१ अ**

तार सुरनि मिलिऐ जौलौ जांनि मांनि गर ग्यान के वरन। उगति जुगति जानत सुध्धं असुध्ध पहचानत रीझि रिझावत कवित कहावत। संगीत मति गति उगति जुगति

धरीऐ तब करीऐ सुमति सम्रान। जब रीझे साहि अकबर जांननि मन ग्यांन करत मांन ते मांन ।।४४।।

संगीतज्ञता : सुध मलार-चौताला, २७५ अ

तार काल की लै जानत अकबर गुन कौ है री निधान। जे गुन रूप प्रकालन ते तुम सब जानतै हौ राग उदै की जा छबि चितई ऐते पर सुरगुरु सुलितांन। राग धाइ (अध्याय) सुर धाई औड़व षाड़व सपूरन गुनीगंद्रप तिनि के करत बिनांन। सप्त धाइ संगीत कौ साह जलाल लाल री समाइ जब बैठि गुनीअनि देत विद्या दांन ।।४५।।

संगीतज्ञता, मेधा : ईमन-जलद, १२४ अ

धा छत्रपति साहि अकबर तान चट गाइनि आछिर चित कबि बात चट पंडित कैसी तनमन मे आंनत मांनत कैसे। जे कतूंत प्रत तांन गिनत प्रभू जाके ततछिन अनत ही गनत पर ।।४६।।

अकबर संगीतज्ञ, जगद्गुरु : गौरी-चौताला, १०६ अ

परगट करि विद्या तूही भरि पूरन काम कोटि जानी सुचित जुगति पुधि जु भली। साहि अकबर जगतगुरु जलालदीन उक्ति जामै विनान करत राग रंग महांवली ।।४७।।

संगीत : टोड़ी-चौताला, ६३ आ

अनूप बांम देषी री भाई नादसमुद्र भरौ अपरंपार संगीत गुर। पंचम साध वीर चारी (उचारि) जो कहै सारगराइ (शार्ंगदेव ?) गंधार मधिम सुर। कंद मति असतम-वन्त (?) कहत विस्राषारी जान जांनीऐ अपने मुष पर। करन साषि दै अस्टसिधि नवनिधि जांननि मन जानी साहि अकबर जानीअतु तिहू पुर ।।४८।।

प्रशंसा, संगीतज्ञता : दरबारी कान्हरा-चौताला, १८२ आ

सुरपत हू कै वाही साहि तिहारे से गुनी गुन पूरौ संगीत मत सरस सप्त धाइ (अध्याय ?) के न्यौरे न्यारे न्यारे करि दिषावत हैं। करतार ताकिटि किटि ताकिट किटि सुर बीध प म ग रे सा वाजै धिधिलाग धिलाग धुमकिटि तक थुंना तकट थेई थेई ते प्रबंद वद करै संकीरन सप्त राग बिवेष बिवेष करि कै वर साहि तुम ही आवत है। देव गुनी गंद्रप ते सब मोहि रहे सो देषत सुनत तेरी सभा असो को गुनी जाको धीरज न आवत। गावत बजावत गुरनि गुरु जलालदी महंमद असे जाके चहू दरसन संतोष पावत ।।४९।।

संगीतज्ञता : केदारा-चौताला, १६५ अ

प्रथम गुरनि मांनि कान गैहै वरतीऐ अषवत डर हो राग मूरति सूरति जा मैं ग्यांन सरंस सांनी। आंड तिलक गुरै पलटि तार समझि देषिअत तिनिहूं मै समझि बूझि होत गुर ग्यानी। सम बिसम आतीत आनाघात माते मते तेउ बेदनि जानी। जगतगुरु जलालदीन आवै कृपा करि मो पर दूध कौ दूध पानी कौ पानी ।।५०।।

मूर्ख गायक-वर्णन : **आसावरी-चौताला, ५३ अ**

जौ धुरपद ना सुध अछिरनि उक्त जुक्त न संगीत राग बनावै । जे अग्यांन गुनी मन को पचावे भिम से निगुरनि कौ कीयौं गावै । नौरस राग जाने नम्र लोकमध वाद री कबि कहावै । साहि अकबर की सौ मोहि तौं दुषं और हासी याही ते आवति अरथ पूछे ते कबि नांही करि आवै ।।५१।।

वसन्त : **हिन्दोल-चौताला, १५० अ**

रितुनि कौ राजा आयौ हौ बसंत वीर चत्र दिसां प्रगटौ सबनि मानौ आनंद । भांति भांति अरगजा अबीर भरतलाल कौ रहसि लहै अगसुगंद । विद्या द्रुम मौरे अगिमु जानि पुरले भमर आसु लौ ले भऐ मध मद । यह बिधि धामार षेली अकबर साहि प्यारे सुरति अंत के कंद ।।५२।।

शरद्, आगतपतिका : **अडानां-चौताला, १६५ अ**

ग्रीषम बीती हिनु वरषा रितु तेऊ गई री अस आई है रितु सरद । यह रितु जैसी पावस होति दूनी यह दुष पी परी भई जैसै हरद । सूनौ भवन नैना भरमत आली री जैसै पासे पीछै पीछैं फिरत नरद । यह विथा जानि आनि मिले साहि अकबर तब तैं गयौ दुष दरद ।।५३।।

वर्षा : **ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ**

पावस रितु हों न जानों मानों इंद्र पठाई साहिनि साहि को बधाई । म्रुदगी घनघोर तेउ संग करि धाऐ पवन तैसी बग पंथ सेवक वरन वरन अंवर तेउ अबीर डारे और नितं करत दामिनि पातुर चातुर नाइक सौंधाई । और जो बूदिनि बरसत मेरे जानि नोछावरि और जो कला गायें राग सुहाई । सही साहि अकबर पर वारने होत अठारा बास बनसपतीनि कौ त्रभूअन नर नारी सिस्टि मध को को न धाऐ ।।५४।।

शाहजादे का टीका : 'व्यास' की कृति : **नाइकी-चौताला, २०० आ**

आली री गगन धार, ता मैं उडगन पौहोप, सकल वरन वरनबादर चंदअबीर लीजै है री अवछरा (अप्सरा ?) साहजादे कौ ऐैहै बिधि इंद्र कीयौ टीकौ । सेत सेत अैरापति तुरंग अति सोहत तुम्र नारद मगल गावत है ऐम्रव तुम्र नर चारौचक्री कौ । कलपव्रछ सकल हम जानै री आंगै भऐ निहाल अदीआचल अस्ताचल ज्यौ बदी वदनी कौ । व्यास आसीरवाद यौ दीनों काइम सुलितांन जुगानिजुग चरंजीव अकबर छत्रपती कौ ।।५५।।

मालिन नौबहार मास ; **गौर सारंग-चौताला**

मालिनि ल्याई कसूंमी सारी पैहैरें गात ऐक ही हाथ नोंला सी (!) ऐक ही हाथ डलिया नऐ बास की । अगनैनी पिकबैनी अत ही सोभा देत तुम्र बेसरि नास की । चुनि चुनि कलीआ बेला चमेली गुलाब पुहुप माला गूंधि लाई गास की । चर चरजीजौ साहि अकबर छत्रपती कों आई देंन मुबारष नौबहार के मांस की ।।५६।।

नखशिख : **सुध कल्यांन-चौताला, ११८ अ**

प्रथम मंजन करें पैहैरें सारी अंगीआ करनाटी झूमि रही काननि बेल फूल-फूली मांग मुकताहल सीस फूल टीकों जामे जम उदोत कीये सु ना प्यारी के माथे चंदन लायें कौरा षायें चौका अधर बनायें और छवि छूटी अलष सोहत कं कूं की आंड । नासिका बेसरि सोभा लायें कांननि करनफूल षुटिला पीअ के नग अमोलक तिति कों आटक फाटक बनाई राखी कोउ लैन हूं न पावत मझ गरें झूलें पौहौपनि की माला टूटी सेवा पूजा चढायें राजत भुजनि टाड । ताईता पौंचीआ माला मौतिनि की पांति भाई नीकी लगत मकतूल फूलफूदा कर कमलनि से भमरनि से भूलि रहे छुद्र घटकारी लर लगी सोभा की कसक गाढी अनबट बिछीआ वरषा कैसे बोलै कमल पांति जगमगाति महावर अैन गजनि चालि चलत गति सी दिषावत भावति री रागधुनि सी उपजत कोउ कुमुकुमु डारत कोउ करत सौतिनि की नजरि न लागत चिर चिरजीजो साहि अकबर जाके सुष ऐसी नारि सुहाग भाग लाड़िली लाड़ ।।५७।।

नायिका-नयन-छवि : **गन्धार-चौताला, ३२ अ**

सेत औ सेत तारें जां तार को निर्मल जोमल नवल तिनि में पुतरी नों भाई कवि लीनों मासीऐ । पूरन चंद्र को छांह परी इनि नैननि की उपमा पान पै मंजन षंजन नैन धगै दीनौ मासीऐ । इनि कमलनि मै मजन छाप करी बिधि रिधि अकबर साहि कों छाजत ऐक सरस भयौ नीरज तिनि में औरन की बुधि नासीऐ ! जे अंषिआं जलाल मंहमंद की आरसी तिनि में आपुन कों देषौ चाहत मांनों अंजन कौ मजन श्रीभस्म मनों ओप न मन अग्रवासीऐ ।।५८।।

नायिका-छवि : **केदार मलार, ताल-चौताला, २७८ आ**

प्यारी के चौ हौंर बिथुरे मन मनाउ (उं) धर (झर) धारी स्याम घटा उनैआई सौतैं मधं पौहौप छूटि छूटि परत जैसे बड़ी बडी बूंदिनि । दसन बंग पंथ तामैं बिजुलता सी कौधंतं इंद्रानीं सी सोभा देत घूंघट पट ओट दीअै सु जैं नेत्र खंजरीट लीक पीक बोलत बोलै रुधेनि । लाल सारी पैहैरे हरी कोर मंदिर चलि घूंघट करि रही सौधें । पीछे ते देषीअत लाल मुनईआ सी मैहैदी की आकास बीरबहोटी सी बनी अैसी सुदर प्रवीन नारि अकबर साहि कौ कांम कौ हार लै चलीं गूंधन ।।५९।।

नवोढा : **ईमन जलद-तिताला, १२३ आ**

नैनंनि आयो हो कटाछ बिराजन अति सुष पायौ सुंदर साजन लाज काज दूरि करि री जब लाजन आवै काज न । तुअ तन जोवन सुवन बनो री आली सषीआं सुहांनी लागत जाकों कलपतर अकबर भरि लायौ छाजन ।।६०।।

आगमिष्यत्पतिका, शकुन : **रागिनी टोडी-चपक**

फूली फूलनि आंगन माही मिलन बनेगौ ललनां कौ । सगुन होत और अचरा फहरात और फरकै आंषि बांही । अति हुलास और रोंम-रोंम अंच मई तनकी तनक तनीई । अकबर साहि मिलोगी जब तन मन करिहों बधाई ।।६१।।

दूतीवचन : देसकाल-सूरफाकता, १६ अ

चौकी चाहि रही री तूं तेरे घूंघट में रबिचंद। पीरो पैहैरि उठि चलि री पीतम पै तें कहु कहुं पौहोप हार बंद छूटि रहे और दै रहे पीतम मन फंद। मरगजे बसन नव सिथल सोहै गात गयंद। अकबर साहि पीअ सौ ते रितु मांनि मांनि होत प्रेम आनंद।

कामशास्त्रमर्मज्ञ : टोडी-जलद, ६५ आ

सोई करीअै जो जीअ धारीअै सुषु पावत अकबरसाहि अन्तर जामी कामी कामि-निवारन निस्तारन जौवन भीअ के सुमिरंथ। इतनी विनती सुनि लीजौ कानन परवान जांनोंगी लछिन दछिन प्रीति की जौ रस समझत हौ तुम ही गिरंथ ।।६३।।

दूतीवचन, मानिनी : मारूओ-जलद, १०१ आ

रैनि जाति है ढरकी ललना लाल अरति करन पठई तोकौ हित की कहत जो बदरि चाल। चारौ जांम वितीत भए जामिनी देषीअत अंत कहूं कहू उडगन रहे जीये जानि अजहूं अब बतिआं कहत वरकी। मांन कौ परिवांन जांनत अयानी कहावत सयानी ज्यों त्यों (ज्यों) कहीअत बात त्यों त्यों हठ ही कौ अतही सरकी। उठि चलि मिलि बौहौनाइक है री पैं काउ के बस न भऐ हों जु कहत तोसों तैं प्रीति है री नारि अकबर की ।।६४।।

दूतीवचन, मानिनी : मारूओ-जलद, १०२ अ

गरव गरवानी अयानी न होवे सयानी। जहां तें कब की ऐक ही टेक ऐक ही टेक वे जो सबही त्रीआ अंनेग (अनेक) भांतिनि कीं री पीअ चितवत नही तिनि तन जाते निपट अधिकांनी। पीअ की प्रकत लीयैं जो चलिहै घन तौ पावै सुष अनगन सुभ नव नौ री आली पीति मनभानी। रूसन को न सवाद कों न विवाद उठि चलि हिलि मिलि साहि अकबर प्रत पांनी ।।६५।।

दूतीवचन, मानिनी : सुधकल्यान-चौताला, ११८ अ

हौं मनावन आई तूअ बोलै ते काहे न देषत है करि नैन सतरहे। तेरे गुन रूप की सवै भई है री भाई मेरै तर उतर उतर तर देत कातर ऐ। रगमहल विचित्र लालन तोही तोही तोही करत री छाडि दै अंसीली बातें वतरात ऐ। अकबरसाहि अंग संग सुषु पावैगी रोंम-रोंम घात घातर ऐ ।।६६।।

मानिनी : भोपाली-चौताला, १५३ आ

साहि अकबर कों रिझाई लै री तू मांन कीअै तै कहा पावै। पीअ की चोंप मैं तू उठि चलि री सुषु पावैगी दिन दिन री ।।६७।।

खण्डिता : दक्षिणनायक : ईमनी विराउरि-चौताला ३७ अ

अचानक आऐ हौ जू मेरे हौं लाल भलौ मनांवन गुनगांभन के तेक गुनही औगुन अनगिन न्यारे। नैन बैन कहें देत जागे अनुरागे पागे त्रीअ रंग जगावत और झपकि झपकि

आवत है हो उनीदे जैहें विधि भोर ही पगधारे। जह जांनत ही मोहि पल छिन कबहूं न होइं लाल न्यारे। अकबरसाह पिअ दछिन लछिन जांनत तुमैं षोरि नांहीं हो जाको दरसत सौंई परसत रीझे तामैं रूप अनूप तुम जगत उजारे ॥६८॥

आगतपतिका : **केदार मलार-चौताला, २७८ आ**

आज धनि धनि मेरे भागि भाई सुषदाई मया करि मेरैं आऐ। पलक पाउडे धरौं करौं तन मन धन नौंछावरि रस ग्रेह सब सु चाउ भये मन भाऐ। जोई चाहत ती सोई भऐ आऐ सुष सागर करौ बधाऐ। मनौ कर्म कर्म कै मिले साहि अकबर अंग अंगनि कै रिझाऐ ॥६९॥

आगतपतिका : **मालकोस-चौताला, २२८ अ**

लाल आऐ अनेग जतननि कै पाऐ। तन मन उमग भई रोंम रोंम सुष भयो रसबस करि प्रेम पगाऐ। धनि धरी धनि दिनु धनि रजनी यह धनि मेरे भाथि भाऐ। मन भावन मन छत्रपती साहि अकबर हंसि करि कंठ लगाऐ ॥७०॥

सौभाग्यगर्विता : **रागिनी तोड़ी-चौताला**

पुंननि पाऐ री मै लाल देषौ मेरे भागनि की निकाई री। अैसी प्रकति जीअ सौं बनि आवै बतीआं करत मन भाई री। रस की कुरस की रिस की रौस की जोई कहत सोई लगत सुहाई री। अबकै मोंहि मिलै सोई जीवन कौ फल साहि अकबर लाड लडाऐ री ॥७१॥

स्वाधीनपतिका : **ईमन-चौताला, १२२ आ**

पीआ प्यारी भारी भावत रैनि दिना छिन छिन औ नां माने नाही तु हो। अैसै कें रसबस करि लीनौं है नैंन प्रांन लालन के ललना हित चित नित करि अब तूअ ग्यांन ध्यांन की री लागी री तू ही। तू विनि के रंग रंगी पीअ तेरे रग रंगे अैसै जैसें दर्पन लै प्रतिबिंब देखीअत तू विनि के जीअ वसी लाल के तैं री उक्ति विचारी। धनि तेरौ भागि सुहान आलीं री धनि वे वालम अकबर धनि री धनि तू विचित्र नारी तुही ॥७२॥

दूती यौवनगर्विता : **नटनाराइन-चौताला, ८८ अ**

जौवन गरब ही गरवानी तू गरवांनी अयानी री। कै तू साहि पठई के है आई जह जानी अग्यानी काउ की करतरी अरवरानी। आवत जात आली पग डग मग छकि रही वतीआं करत तोसौ जीभ पिरानी। साहि अकबर छत्रपति की मया तैं उतर न देत आली कहाँ लौं रहैगी अकरांनी ॥७३॥

सम्भोगचिह्ना नायिका : **राग पूरीआ-चौताला, ८० आ**

लोचन जू मिलि करि कमल उनीदी निस अलकै विथुरि रही आनन अंक पर। ठौर ठौर आभूषन चल कों चल विथुरे वार अमल सुफल फल कुच दरसत कुंचुकीतर। रसन दसन देषौ री है री लटपटे री तन तन सोहै री अनोंसी छवि पीअ कमलनि पर। साहि अकबर पीअ सौ रितु मांनी सब सखीअनि मै तू ही वर ॥७४॥

दूतीवचन, सम्भोगफुल्ला नायिका : **पूरीआ-चपक, ८१ अ**

आनंद कीजै सब रैनि तोहि बिहानी तू जु फिरत प्रफुलित भई सु मैने जानी। देषैं तुअ वांनिक गुरजन उठि गई सौतिनि कौ भई कहांनी। यह कौतिग लेषौ इम्रत ढांकि नीकौ करिहै पी हांनी। साहि अकबर विचित्र तुम्हारी मेहरबांनी ॥७५॥

दूतीवचन, अकबर दक्षिणनायक : **सारंग-चौताला, ७१ अ**

ये री मनाओ नां जांनै री पैहेंचानि री जाते चतुर कहैं ते मिलन जोवन भरि भरि रंग करिऐ री। हौ जु कहत तुमसौं रति गति अनदैसे तेरी विचार पीअ रिझवन कौं चतुर नांरि री पीअ री निरुपम रेष दोउ मन एक करि। अंग अंग भेदनि डिढ जानत री कैहू न रसबस करि लीनौं लालन मोहि देषत हैं री जब घरी घरी पल पल छिन छिन पै हैर पै हैर रैनि दिन गाढे कै हूँ न औसर अठिन कठिन करि न जानत हौ जु कहत हित चित दै सनि लै अैसे री अछिन दछिन नाइक जांननि मन जलालंदीन साहि अकबर ॥७६॥

बहुनायक : **छाया धीमा-तिताला, १४५ आ**

सोई भली है री जाकौ साहि अकबर दैहैं बडाई। ऐक तो विचित्र नारी प्रउडा (प्रौढा) अग अंग ली ताई की विद्या उतिम ताई की निकाई। ऐक तौ अगनैनी ऐक तो पिकंवैनी ऐक तो आनंददैनी सब सुषदाई। ताई कौ भागि सुहाग ताही कौ लाल जलाल तुम लाड लडाई ॥७७॥

प्रणय-कलह : **केदारा-चौताला, १६३ अ**

नांगर रस के रोस चितई री पीअ तन सु मेरै जान कहत तू तनमन। अत ही बिच छिन द्रग पीति बाढे तिनि के मांन हूं मै पाईअत अैने बैन। लगन देत लग लागन अैसी कौंन पर क्यों हूं न रिझावत अंतर मति ध्यान। साहि अकबर प्यारे पीअ हधरपान करिहैं जू दुतरी रसन ॥७८॥

अनुरक्त नायक : **दरबारी कान्हरा-ताल चपक, १८२ आ**

जौ तू चितई लालन तन महूं भमर भारे कमल डगे। याकी छवि देषैं तैं चटकि चोंप होति ऐकें दुति षंजन अंग मेरे जान यों ही लागे। तीछनि कटाछिनि फिरि चितई री आली ऐकै दो चंद राह षगे। अकबर साहि पीय तुम वौहौनाइक मोहन नैंन ठगे ॥७९॥

रात में जागी नायिका के नयन : **विभास-चौताला, २१ अ**

लाल के संग ललनि रैन जागी और लाल लोइनि लागे री मांनों बदूके (बन्धूक) पौहोप डीठे। ता मध पुतरी अैसी लागे मानों भमर लटपटात उनि मध उडि परै रंग मजीठे। उनिके हेष भेष रही हौं मेरै जांन कमल षंजन मीन अग लोग हैं सीठे। साहि अकबर की सौ हौ वापै रीझी अलक लड़े फुनि बड़े छबीले ढीले चितवत नीके ॥८०॥

विप्रलब्धा : **श्री-चौताला, ११० अ**

होई वैरागी कीनी लाल अकबर अनुरागी। इनि पतीअनि वतीअनि पीअ वेगि मिलाओ मो को होई गोंयारि कहा जानों अैसो दुष दीनों वे सुष त्यागी ।।८१।।

वीणावादिनी विरहिणी **दरबारी कान्हरा, धीमा-तिताला १८१ आ**

हौ कैसै राषौ प्रान अैसे लालन विना री आली छिननि घटत भई वार काहा वार। वह तौ दधि कौ सुत सारग वाहन नाद भूलौ री आली जवही मैं राषी वीन समझि कर धर। घरी घरी पल छिन जुग से वीतन लागे जवही में वाको रिपु बतायो चित्त चते उरो। अकबर साहि पीअ अकौ भाई भेटै चाहौ जबसे कलकी जंह मोहू तें न्यारो ।।८२।।

विरहिणी : **हुसैनी कान्हरा-चौताला,१६२ अ**

अहन गावौ जे मेरौ मन ललनां कैसै वौहुरि न फेरि आली क्यों न बिसारत। जाकी औसेरनि मोहि वरष बरष वीतत निसु दिन उडगन निहारत। भूल पातिग बिछुरे तैं कहू अनत सिधारत। अकबर साहि पिआरे के अग लागी मो सकत विन देषै कैसै आली री विहैरत ।।८३।।

होरी : **ईमन-धमार,१२७ अ**

होरी षेलेई वनेगी रूसै अब न वनेंगी। मेरौ कहौ तू मानि नवेली जब वारंग में सनेंगी। कैई वेर आई गई तू नही मानत ऊंची करि ठौढी भौहे तनेगी। साहि जलालदीन फगुआ दीजै आपु ते आप मनेगी ।।८४।।

गायिका-प्रशंसा : **ईमन-चौताला, १२३ आ**

ताहि वंदों रीझि रिझाई पीअ कौ मेरे जान गाई वजाई ग्यांन करि औ सुर तार। फुनि अपधाइ रागधाइ परकीरन जे मन रंग जैसी कौन विद्या आर जानत सब अंग अंग प्रकास। जा भूअ लोक की कहा कहौं जे इंद्रलोक कहीअत सुनीअत नांरद तुंवर कमला सी पातुर ऐहो नाही तूअ संम हीय जीय सोच करौ विचार। सर्वकला संपूरन साहि जलाल महंमद ऐक रचौ मधि संसार ।।८५।।

इन्द्रजीत सिंह 'धीरज'

गणेशस्तुति : **भैरों-चौताला, १ अ**

लवोदर गज आंनन गिरिजा सुत गनेस एक रदन प्रसंन वदन अरुनभेस। नरनांरी गुनी गंधृव किंनर जछ तुंवर मिलि अम्हां विस्न आरती पुनवत महेस। सहस्र कला जाय मूष कौ वाहन विद्यापति जाहि सुमिरै सेस। धीरज अस्तुति करत विस्वंभर भूतेसुर सुत नमो नमो आदेस ।।८६।।

रामचन्द्र-स्तुति : **भैरों-चौताला, १ आ**

सूरज वंस नमौ गुर इस्ट हमारौ जसरथ सुत राघव रांम। जानुकीनांथ नांथा त्रभुवन के धनक धरन सोहत सुंदर स्यांम। लछिमन भरत सत्रघंन हनूमांन संत सुधारन कांम। रघुकुल तिलक दीयौ धीरज प्रभु प्रगटे अजुध्या धांम ।।८७।।

गंगास्तुति : भैरों-चौताला, ३ अ

विस्न चरन जल वभा कमंडल सिव जाके राजत देवी गंगा। भागीरथी सकल जुग तारनी भुअ भार उतारनी अलकनि अंकनि दै री कटाछि तरल तरंगा। हरिद्वार प्राग सागर के संगम मत्र वदि वैनी त्रविधि तरंगा। धीरज के दुष दूरि करौ पापपषारनी निरमल करौ यह अंगा ।।८८।।

अनेकरूप विष्णु : ललित-जलद, २६ अ

पीआ बौहौरगी बौहौचगी बौहौरूप मोहि बतावत। तावर जंग में कीटि पतंगी अग सग वनि वनि आवत। कहू बालक कहूं विरद वृद्धा तरुन है कहूं भोर ही स्यान जनावत। कहू नारी कहू नर धीरज प्रभु निगम नेति जसु गावत ।।८६।।

शंकर-वर्णन : अल्हईआ-चौताला, ४२ अ

जटा मध गंग अंग भभूति उमाये विछाअै षाल वघूंमर की। द्रग तीनि त्रसूल धरैं गरैं मुंडमाला विछाये षाल वाघंमर की। गाल बजाई निहाल करत मैई ताप हरै और किंकर की धीरज बनमाल ऐती कहौ छवि कौन लषै सिवसंकर की ।।६०।।

विष्णु : षट-चौताला, ५७ आ

गोकुल गौउअ अचरन गोपाल गरुडापति गरुडगामी गोविंद गिरधारी। जनांरजन रंगनाथ रनछोर वामन वनवारी। जोनराई जक्तपति जगजीमन जगंनाथ माधो मदसूदन मुरारी। धरूजि प्रभु विहारी निपट नांथ निर्तकाली उर्प तर्प लेतं भारी रिझवन गोपधारी तांननि व्रजधारी ।।६१।।

बिष्णु-नामावली : सारंग-चौताला, ७२ अ

गोविंद वनमाली री कैस्न कमरनिधि करतार करम कमलावर केसौ केसकाल। धरनीधर दमोदर धनकधारी गिरधारी संष चक्र गदा पदमकर मुरलीधर गोपरम गोपीनाथ गोपाल। नरहरी नांराइन निरंजन निरंकाल भक्तवछिल भगवांन भक्तनि प्रतपाल। व्रज-विहारी केलि कुंद रसविहारी धीरज प्रभु पर्म पुरिष रिझवत व्रज वाल ।।६२।।

कृष्ण-नामावली : अडाना-चौताला, १६५ आ

जादोंनाथ जगतपति जगजीवन जग्यपुरस जगंनांथ जगवंदन। श्रीधर भूधर संषचक्र गदापदम मुरलीधर कंस निकंदन। नरहरि नांरांइन वासुदेव वीठल मथुरा मदन माधौ मधुसूदन। जोग ध्यान बद्रीनांर मुनि रषी क्रस्न धीरज प्रभु है नंदनंदन ।।६३।।

ख्वाजा हिन्द की स्तुति : सुधमलार-चपक; २७६ अ

बरसत धरा रितु ख्वाजा हंद चातुरी मास। दुरजन वाह विलंद कीनि काई कहत बूंद की तांस। रोग दोष दूरि करौ धीरज कौ होउ शत्रु कौ नास ।।६४।।

कृष्ण का शृंगार : अलहीआ-चौताला, ४७ अ

आज कौ सिंगार सोहै साँवरे गोपाल जू कौ कहतन वनि आवैं देषै ई वान आवैंरी। वसन भूषन भांति भांति अंग अंग की सोभा मानों लटपटी सी पाग सोई चित कौ चुरावैंरी।

चालरी चलनहार हरि ठाढे कुंजडार हित सौ बुलावत जो तेरे मन भाईवैनारी। केसार की षौरि दीयै कट फेटा छोर बांधे यह छवि निरखत क्यों न धीरज मन न लावैरी ॥९५॥

कृष्ण प्रभु : **अडाना-चौताला, १९६ अ**

छाकी छवि आली री तुअ स्याम रंग मतवारी। मोहन नैननि के करौ प्याले रूप मध पीवत कबहू न होत षुमारी। कवहूंक उठत कवहूंक बैठत कवहूक कहत कहां हितकारी। धीरज के प्रभु यह जक लागी चरन चाह तुम्हारी ॥९६॥

वर्षा, राधा-माधव-क्रीडा : **गौड मलार-चौताला, २८२ अ**

बोलत मोर चहूं दिसि चात्रग पिक दादुर घोरि घुमडि घहराने घन। इत दामिनि भांमिनि भुंमि भारी हरी भई जित तित वे लिपिटि झुकि झुमि सघन व्रदावन। राधा माधौ दोउ क्रीला करत है रीझत भीजत टपकत जोवन। ता चढि दंपति कांमही रग हिडौरैं धीरज प्रभु हरषि निरषि झुलावत गोपीजन ॥९७॥

वर्षा-वृन्दावन : **सारंग-चौताला, ११३ अ**

गउरज धूंमरे धुरवा गरजत ऐ घनस्याम विन। पीति वसन दामिनि दुति हंसन वगपाति चन्द्रका धनक रिझावत मन। दादुर बोलत मोरकत सोर अतिसुगंद पवन वरै लागत सीतल प्रवान। धीरज के प्रभु प्रेम वढावत सब सुष दरसत श्री व्रदावन ॥९८॥

शरद्रात्रि, कृष्ण-नृत्य : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १८२ आ**

आज बजाई री वासुरिआ रगभींनी मोहन मोहनी तांननि। श्रवन सुनत कुल कान तजी लजी कुलवधूअनि ग्रह तजि आई री कांननि। वसन भूषन सुधि वाहिनै तन की मृगनैनी लागी मनमथ वाननि। सरद रैनि निर्तत धीरज प्रभु प्रेंममई प्रेमवाननि ॥९९॥

मुरलीधर : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १७७ अ**

वांनिक वनि ठनि ठाडे मोहन सुदर जमनातीर मोर मुकुट कट चदन सौरि कुटिल अलष भौहै धनक द्रग षजन नरयाम वरन नास कीर। अधर दसन अधर विंव चिवुक गाड ग्राम मुक्तिमाल वनमाल और विसाल छीन कर नाभि गभीर। पगनि उपर रुनुकि झुनिक पीत वसन मदन मोहन कर मुरली धीरज प्रभु गोपीनाथ गोविंद बलवीर ॥१००॥

रास : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १७७ अ**

मोर मुकुट माथे मकराकृत कुंडलि कुटिल अलक ललित भाल चदन वंदन भौहैं वकर वरुनि टेढी वडे नैन वांस कीस अधर विंव मधुर सुर मुरली वजावत रिझावत स्याम सरीर। चुवक (चिवुक) गाड मो मन को गाड करत मुक्तिमाल वनमांल गुज गरें पीत वसन कर काछिनी काहैं मिनिकि झुनकि किंकिनि धुनि रुनुकि झुनुकि ठुमुकि पग नूपुर वाजत निर्तत नवल अहीर वीन खाव किंनिरि सुरमंडिल म्रदंग वाजत सुधंग सुसील वरपि तरपि गति देसी दिषवत हैं ताथेई थेई करत गाव वधूअनि की भीर। मांडल मध राजत धीरज प्रभु नवल विहार विरिनि के वस सो सुष सिव सनकादिक दुर्लभ सुप व्रज वृंदावन कालिंद्री तीर ॥१०१॥

रमणीरमण कान्ह **ललित-चौताला, २५ श्रा**

कान्ह काहूं भूलि परे काहू के घौरे भोरे भोरे उठि आऐ। अटपटी पाग ललौहे नैन सिथल गात अलस्याऐ। विनगुन माल मरगजै वागे दुरत न चित्र दुराऐ। प्रभु धीरज रमनी रमन लाल घर घर नेह सवाऐ ॥१०२॥

गूजरी : **सौरठि-चौताला, २२२ अ**

नैन नचावत गूजरी उजरी गोरें गात मौहें कसत मन कसै जात। हरो लैंहैगा केसरि भरि अगीआ सूही सारी तन सुष अति सुहात। मुष की निकाई कहा कहौ माई चद्रमा की जोति मलिन हो जात। रोम रोम छवि पर वारौ धीरज प्रभु क्यो न लाल ललचात ॥१०३॥

गूजरी : **नाइकी-धमार, २०१ अ**

गूजरी मधमाती हरे कसव में डडीआ सोहै गोरी है वौहोत सुराई। गोरे भुजनि मै गाढेवरा चालि चलत इतराइ। प्रभु धीरज ऐ तुम पर रीझे क्यों इतरात गौयार ॥१०४।

गोपी : **छाया-धीमा, १४५ अ**

ग्वारि गोरें गात गोकुल की गली में ठाढी निकरि वगर। जा दिन तें कछू और भऐ हैं ता दिन से आये तेरी डगर। ते रसबस कीनें मदनमोहन धीरज प्रभु नागरि जीति लीओै री सवरो नगर ॥१०५॥

यौवन-मदमाती गूजरी : **आसावरी-धमार, ५५ अ**

गूजरि जोवन माती डोलै हो हो कहिकें वोलै। नैंननि सैननि वैननि गारी गढि गढि वतीआं लागी डोलें। गठि जोरे की गांठि धीरज प्रभु वरुआ होइ सो षोलै ॥१०६॥

ग्वालिनी : **अडाना-धमार, १६८ अ**

ऐ जू जवते निज भई यह ग्वालिनि आयौ फागुन मास। गुरजन डर चित तै जु विसारी विरह चढाई वास। पतिव्रत मै उपाई तै ठेली वाहिन करत सासु की त्रास। धीरज अली रूप मधमाती लगी प्रेंम की गास ॥१०७॥

होली नन्द के घर : **भोपाली-धमार, १३८ अ**

षसी जोवन मधमाती होरी षेलन आई लै लै नाउ नैहैरि रानी को गारी देत सुहाई। वरसाने की अति सरसानी नेह नजरि सौ लम्पाई। धीरज अली नद के द्वारै चाचर धूम मचाई ॥१०८॥

सखीवचन राधा से : **रांमकली-जलद, १४ अ**

मान काहे कौं कीजे श्री राधे रस के कुगर रस भीजै। नवल कुंजनि में सागर बनों नागर तेरौई ध्यान लाडिली लाड लडाई लीजै। तेरी तौ उनिकी ऐक ही प्रीति है जो चाहै सो कीजै। धीरज प्रभु सौ भेटौगी जब हिलि मिलि सब रस कीजै ॥१०९॥

वर्षा, आगतपतिका : **गौड मलार-चौताला, २८१ अ**

उमडि घुमड़ि आऐरी धन जित तित ते स्याम सेत अरुन वरन अरुन पीति अति सपाऐ। गरजनि तरफनि जलधार वरसत पवन चलत हलत पात भीजत वसन कंपत तन दादुर वोलत मन भाऐ। भुभि मंडिल पर हरिआई लहलहाई इद्रवधू साजि आईं द्रुम वेलि लिपिटाई दादुर पिक मोर सोर झींगत झनक भांई मैं पावस धीरज प्रभु भुज भरि गरे लगाऐ आऐ आऐ जीअ आनंद मंगल गाऐ ॥११०॥

वर्षा, विप्रलब्धा : **सुधमलार-चौताला, २७५ अ**

तलईयां ताल भरे जित तित री वोलन लागे मोर। पावसरित चित्रमास जल वरसत आली घन घोर। जैसीअ कोइल कू कू करत है है री निसु कामिनि काम सताई कान विनु तापर चात्रिग करत है री सोर। जैहैं विधि जैहैं जुग जैहैं री धीरज प्रभु मथुरा ते गोकुल ओर ॥१११॥

दक्षिण नायक **भोपाली-चौताला, १३५ अ**

चंद्रमुख नेत्रकमल मूअ भ्रंगी नासा कीर नीकौ। तनकी सुवासु आसपास फैलि रही आली हसनि दसनि दुति दांमिनी दमकत और जराउ को टीकौ। झूमत झुकत जोवन मधमाते मांनों मतंग मन मनमथजू कौ। धीरज के प्रभु तुम वौहौनायक दछिन नाइक सुहाग भागत्रीअ कौं ॥११२॥

आगतपतिका (प्रबन्ध) : **हमीर-चौताला, ११३ अ**

आज आमन कीनौ सुभ घरी सुभ दिन सुभ महूरति लगुन सगुन करन जोग मन भामन। अदंगी अदंग उमंगि वजावत थरर थरर कूकूकू कूकूकू धी धिलाग ताथेई थेईय इनि भेदनि त्रीआ लागी री लाल रिझावन। उरप तिरप लाग डाट देसी दिषावत लेत और भई चरचरी विधि विधि अस्ताक भेद सुधंग वतावन। आउ (हाउ) भाउ कटाछि करि रिझवत धीरज प्रभु सप्त धाई (अध्याय) संगीत तान पावन प्यारे सारे गरेसा सारे गम गरेसा सां नी धपम गरेसा ऐ प्रवंद मध पुरअनू पानि तान वधावन ॥११३॥

भुक्ता नायिका : **आसावरी-चौताला, ५३ आ**

अति अलसानी री आली झपकि पलन गति मंद चलनि। लालन सौ मिलि आई हों जान पाई चतुराई करत चतुर तरन। चोरी की वतीआ मोउसों दुरावत दुरत न जे सुगंदहार अरुन। धीरजि के प्रभु सों रितु मांनि आई काम जीति अब आये चमर ढुरन ॥११४॥

दक्षिणनायक : **विभास-चौताला, २१ आ**

ढीले ढीले पग धरत ढीली पाग ढरकि रही ढऐ से परत अंसे कौन पर ढऐ हौ जू। गाडी जो पीआ के हीअ अंसी गाडी कोंन त्रीअ गाढे गाढे भुजपन सों गाढे करि गहे हौ जू। लाल लाल डोरें लाल उनींदी आंषे सौंची का हौं पीआ हौ तो लाल लहे हौ जू। कहि धीरज प्रभु निसु के उनीदे जागे भयौ प्रात कहौ वात राति कहां रहे हौ जू ॥११५॥

जोगी : **ललित-जलद, २६ अ**

भोरही आयौ मेरे घर जुगीआ अलस कहा कहा जागे। मोहनी मूरति अैन वैन सी नैन अरे अनुरागे। अंग भभूति गरे बिच सेली दरसत ही वैराग। तन मन वारों प्रभु धीरज पर राषौगी ऐक सुहाग ।।११६।।

आदिलशाह

मुख-छवि : **दर मुकाम भुपाली-नौरस (किताबे नौरस, पृ० ९६-९७)**

सकल जन विद्वांस और कवि और महा उत्तम चातुर सुन या कहा धराई एक चांद बीब पेखत एको छंद मेरी माई बोट मानी दरपन भई मूरत और परछाई तेरी उपमां सुधांशु लच्छन चाहे अमृत दिखाई मो चख चकोर परचित अपनी आध सगाई इबराहीम मुर्छन भयो रीझे सुन्दरताई अधर अमृत चखा बहुर जिलाई रेग कर फिराऊं दमतन जोकेती शीशी तास फाल देखे जीव पीव कब आवे मजु पास ।।११७।।

भैरव-ध्यान : **दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० ९८-९९)**

भैरव करपूर गौरा भाल तिलक चन्दरा त्रिनेत्रा जटा मुकुट गंगा धरा एक हस्त रुंड नरा तृसूल करा बाहन बलीवर्द सेत जात गुसाई ईश्वरा कास कुरुत कुंजर पृष्ठ चरम व्यागरा सरप सिगार टिष्ठन परछाई कल्पतरा रमनी वादन मृदंग धाम कैलास तदुपरा ब्राहीम उक्खत लच्छन राग भैरव महा उत्तिम सुन्दरा। सोम दौर सेत मुद स्याम मानो नयन सुन्दरी रूप बादर अंचर तापर मारुत लागे कब गुप्त कब प्रगट दिसै बदन ।।११८।।

हाथी की प्रशंसा : **दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १००)**

नवरस गाओ गीत गुनि जन गुन गज पती जम जम जियो आतश खाँ सदा मस्त हती। आपी पारदी हुआ बहुत चतुर हाना घंट नाद सुना जग किया दिवाना अब दीपक होना सो तुज नाऊं आतश खाना। धन्य धरित्री दमामा दायम धरे हाता नित खुशयाँ अलोल बजाबे भुंइ पर भारे दांता बाजे फ़तेह नुसरत अतीत अनधाता। सौड उचावे गफ़ीरी बजावे जग रिझावे दील इबराहीम अंबर लोक अप पराई राखें मील यो गज नाऊ तुज क्यों साजे इसराफ़ील। दृग धुनी पाडु पयः पुर पलखाँ पाल सोहे तापर तारिका मानों नलिनि अंजन नाल ।।११९।।

तिलक : **दर मुकाम भैरव-नौरस (किताबे नौरस, पृ० १०१)**

मुख गौरा फटिक तिलक छाये अधर तिलक अक्षता सो ईश्वर अगिन नेतर। तिलक चंदन वीच अक्षता मंडल समुद्र मध्य मेरु पर्वता यो उपमा मो मन लागे निस पति लच्छन धरता। उपमा आकहूं भाल तिलक जगत्तर कौं कनक कसे कसौटी कर इबराहीम हेम परिचित तारिका मधुप पर। विद्या छाड जीवनायो अचरज सुन मूरख मूयो प्रान कौ खीजोना इबराहीम संदेशा आपका कहें समेत मोती खान ।।१२०।।

आगतपतिका : **दर मुकाम भैरव-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० १०२)

प्यारे चादा आखों कथ दीन हुइ दुखी मन चाहे सो निस भई हम तुम रहे अब सुखी। बुझाऊं दीपक को तासों दिनकर आवेगा घर घर छप रह जासूस सब सुध पोंहचावेगा पोह फाटी तो देख जा टाक धावेगा। इबराहीम न सो जाग ऐसा पीऊ कहाँ पावेगा सन्ध्या कर सिंगार लोब कंठ लावेगा रात थोडी मदन बहुत बना उठ जावेगा। त्रिदन धुपारती सूरन असबंद सारे तारे मंडागिनी दंडी गगन पखा फिरे सदा पहारे ॥१२१॥

मोतीखान वीणा : **दर मुकाम आसावरी-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० १०५)

मोती खाँ सागर उपमां पुर तापर तत कलोल लहु गुरु। योमगुता समुद्रँ औ जल सारी ये जल मीठा ऊजल खारी। ओ पुर झक दादुर यो पुर गुनिजन एक जल जीव एक विद्या मन। मो विद्या अधिक करपा की परवरदिगार गुरु इबराहीम तम्बूरकार ॥१२२॥

वसन्त : **दर मुकाम तोडी-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० १०७)

सघाती संघात सब सहेलियाँ संग करै पीरत केरयाँ बाजियाँ झोट धरनी जग। होयाँ हो लट पट सट बिट रग तरग जे देखे भूले मन नव रतन नारी अग। कदम कस्तूरी केसरी कुसुम रग ढोलतियाँ झूमतियाँ मद शराब भग। उत्तिम बहुगुन गावे नवरस आहग तंबूरा रबाब जंतर कमाच चग। ढोलक डफ हुडुग ताल त्रिदग शनाई पावा नय खालू उपग। इबराहीम बसन्त खेलैं समुद्र गग भानु बसत विनती करैं अरुन रग मग ॥१२३॥

गणेश-सरस्वती : **दर मुकाम मलार-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० १०६)

गनपति मूरत हस्त मेघ मद बरखत पानी दंत दामिनी घट घोर घोर गोर मडान भाल बिधु बानी। सरसुती पवित्र स्वाति घन जल कैसै जिय जानी। इबराहीम नवरस मगुना निकसत या कारन नहिचै मानी ॥१२४॥

मेघशोभा : **दर मुकाम मलार-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० १०६-११०)

सोभा देत है रे मेघ धाम जैसै मेघ राग असावरी समेत भई अनद कर। फुने ऐसे लागत दुर्गा दर्शन मानो सूर पसिजत लज्जा सकुचनि कपत थर थर। बहुर कचन थाल मोतिया भर इद्र पठायो नैछावर वार डारेव बानी पर। इबराहीम अकहै यो समयूरस बरन बिराजत रजत छीट केसरी बस्तर ॥१२५॥

संगीत : **दर मुकाम कनड़ा-नौरस** (किताबे नौरस, पृ० ११६-११७)

नवरस भेद को उत्पति बचन आखों सर वननी हित चित लाये। ताल चटक सम स्वर मध्यम उपज न्यारी न्यारी कर देखायैं। इबराहीम गाये बजाये रिझाये लच्छमी त्याग पाये हम सेवक सिव के बल बल मया के दिन दिन अधिक अधिकाये ॥१२६॥

जहाँगीर

प्रशंसा : **टोडी-चौताला, ६४ अ**

वषत अरुन वषत वली चली तेरे नाम की करैं सुर नर मुनि गुनी गंद्रप किंनिर जहांगीर। जे अग्यान ते भये सुग्यांन ते धनमांन ध्यान कल्कल्यान (कल कल्यान) करत हैं हो आगर सागर ते कै है चलि धाईतेर ॥१२७॥

शोभा : सूही-चपक, ३४ आ

बाजै ढनन ढनन गज के घटा साहि जहागीर चढौ दलन मलन। घात पाति मनो कैसी नीकी लागत मनहू गगन लागे दिस्टि पै चलन ॥१२८॥

सेहरा : दरबारी कान्हरा-चौताला

साहि अकबर सदां इल्हौ कौ सेषूजू श्री दूल्हौ दुलहिनि सप्त चरंजेवी होइ जौलौं चद्र धरन धूअ तारौ। अनेगनग्नरगन जटत (अनेगन नगन जटित) सेहरौ मुकुट बांधै सीस और विचित्र मालिनि गूंधि लाई चौसरहार वेला चमेली के राजत हार।...परत पगनि जलालदीन चक्रवर्ती कीजै जिनि पठयौ ऐरापति प्यारौ और सब देवनि मिलि कहौं जह देवलोक या छवि पर वारौं ॥१२९॥

प्रताप : मालसिरी-चौताला, ८४ अ

दिल्ली-दलन भारत अचल चलत भूअ कोपौं साहि जहांगीर। जाकी अदलि दीन दुनी में प्रछत्ति (प्रत्यक्ष) जाहर महा पीरानिपीर ॥१३०॥

जहांगीर-प्रताप : ईमांनी बिराउरि जलद-तिताला, ३८ अ

सब सुषदाता विधाता रचौ ऐक नर भूअ पर अचल अडंडनि डंड। तूअ समान आंन कौंन दैहौं अब महाजान तूअ गुननिधान कुलमंडन। अपवली तपवली प्रतापवली जाकी कीरति चहू दिसि प्रचंडन। चर चर जीओ साहि अकबरनंदन सप्तदीप नव-षडन ॥१३१॥

प्रतीक्षमाणा, आगतपतिका वागेसुरी कान्हरा-चौताला

पीअ मिलन कौ आगिम तबही मै जानौ जब फरकेगी वाही (बाई) आषि तब दैहौ सुहाग कौ कजरा। जब कुच फरकैगे सौधै सुवास कचुकी दैहौ मुक्त माल ग्रीम और जब भुज फरकैगे तब दैहौ बाजूवद गजरा। अचरा तओग ही सौ तब दैहौ सरासारी मो आनद रजरा। साहि जहागीर मिले सेज समै सुषु भयौ कामदद मो तन ते तजरा ॥१३२॥

नायिका-छवि : संकरा-चौताला, २३७ आ

सोहत कांननि थीरै देषि वेंदी की झलक। ता मध जरनगात अति ही विराजत रीतिनि ढिग मुकताहल लागे मेरे जान कत कौ चंद्रमा नीरै। तैसी अधर पांननि की लाली और तैसी है वदन जोति दोई पर हीरै। यह छवि देषि रीझे साहि जहांगीर मानौ पदमिनि निकसि जात ससि चीरै ॥१३३॥

नायिका-छवि : टौड़ी-चौताला, ६३ अ

तो तन सुगंध मलिआगर (मलयगिरि) सुवास मानो वैनी भमंग (भुअंग) पवन लेत। चद्रवदन की लाडिली लीनों इम्रत वचन किरिनि देत। या छवि की उपमां मनु रिझावत जहांगीर साहि सुजान सुचेत ॥१३४॥

संगीत : कान्हरा-चौताला, १८६ अ

अग अंगन सयान भरत मध विनान करत सप्तधा वरन सदा समान तांन वरन। ऐर्क पूरै गीत नादभेद उतिम जेते सुर साधै अराधै कठ रूप अनूंप वरन। सुर ग्यान गुन निधान पर परमान ग्याननि सुढावनि सुढान जाते भयौ चित मानों रस सौ उधारन कौ भायौ गुन अभरन। जैहै विधि विदाई कीनी साहि जहागीर जाते वौहौरि लीअनि री मन उधारन ॥१३५॥

शाहजहाँ

अभिषेक : सुध कल्यान-चौताला, ११८ अ

ये अधिक अति चक्रवर्ती रचौ है विरच नर सुलितान चक्रवती साहिजहाँ रचौ भूअ लोक पर। जग्त ईस पानीनिधि क्रया पातसाही नाम छाध दीन पाई साहिब किरानसानी तपवर वषतवर किरवार वर। वौहौ विधि लछिमी विलास भूप भीर आस पास रिसाल मुसाल द्रगपाल उमराउ जाके गीत वाद निर्त करत आनद भयौ प्रथमी घर घर। छत्रनि कौ छत्रधारी तषति बैठे राजकाज दिल्ली आगरै करि अछयादान के कलपतर ॥१३६॥

सेहरा : दरबारी कान्हरा-चौताला, १७८ अ

सुभ दिन सुभ घरी सुभ महूरति सौने छत्र इंम्रत जौग साधै आराधै सुष संतोष भयों यों धारौ लगुन आनंद समधि निधि। पारवती पति महेस सतगुर गनेस वृंम्हा विस्न व्यास आस पुजवन कारन दरसन प्रभात कीनें कर जोर प्रेंम डोरे कंकन बाधौं दौउ अनि और रंग रस पूरन होत षेम कुसल सुफल सिधि। औराइसि तरवर निहारि आतसवाजी फुलझरी यों विराजे मेरै जान वन घन मे झीगन झमकत फुनि रामन पर भारी न्यारी वनि वैठी मनों उदौत ते लछिमी प्रगटी वन घन के रूप चरन चार दिस दिसन सन वाजे प्रवांन निर्त निर्तकाली पूरन चार विधि विधि। अजर अमर जो सिर पर छत्र धरै सेहरा सोहै मोहै जगमग जोति कसूमी सौधै मनों पूरनमाशी साहि जहांगीरनि दिन साहिजहा दिन इल्हौ दुलहिनी सहित चरजवी सुरनर मंगल गावै अति कटाछि वाजे वजावै पावै दान गज तुरग पटवर औ सिधि ॥१३७॥

प्रशंसा : सुध कल्यान-चौताला, ११६ अ

इंद्रपति नरिंद्र साहिजहा तू रचिपचि विरंच विनानी। दिल्ली सुर ईसुर जगदेस मे कौ तू नर नाराइनि राजत जगत भरन पोषन कौ तू राजा छत्रपाल द्रगपाल सप्त दीप नवसंड आनमानी ॥१३८॥

प्रताप : संकरा-चौताला, २३७ आ

अरिनि दर दरेरि मारे भुजनि वर आयु वरननि जित तित द्रुअनि दल मोरै। जब कोपि कर अमर छाड़ै गाजै तव घन निहाल सेस कलमलात सौ कौंन जे जोधा जु तो सौ जंग जोरै। धनि धनि प्रताप पूरौ सूरौ सब ही अंगनि असौ कौन कौन असौ गरव करत जोरै। धनि धनि साहिजहां प्रथीपति जाके गुनीअनि देत लाष करोरै ॥१३६॥

नौरोज : आसावरी जलद-तिताला, ५३ आ

साइरपति नौरोज झर लायौ पोहौय मंदिर आकास दल धुम्र तनायौ दसों दिसा तानी। गरज निसान वाजत राजत हो दान घटन झर लाई वरसत कनिक धारनि मुक्ता वूंद पवन पानी। चमर धुरत चमकत कचन अडंडनि सोई वादवान कीरति पवन चलानी। झालरि घटा और पछी बोलत गावत नर नारी अय अपनी वानी साहि को सुष दयौ साहिब कानसांनी ।।१४०।।

नौरोज सुघराई-चौताला, ३६ आ

छत्रपती कीनौ नौरोज रोज रोज उठत कोठांनि ते गुनी पावत जाचिग भरे भरे घर आगन। आसमान मदन छत्र न होंहि मेरे जान झरोषा राषे जह देषिवे कौ है इद्र वर गनौ। मषमल जरवाफ कीपाप षरे लीने ता मध जरे हीरा मुकताहल काम के मनी साहिब कानसानी। कौ दरसन देषैं अस्टसिधि रहोअत है अब कोउ ना समान ग्यानी ।।१४१।।

काज (उत्सव) : कामोद-सवारी, १५३ अ

भाई द्रमकै द्रमक द्रम द्रम वाजै मदिलरा ऐ। सात सषी मिलि मंगल गावहु साहि-जहाँ घर काज ।।१४२।।

जलकेलि, नौकाविहार, लालमहल : जैत-तिताला, १५८ अ

धनि साहिजहां रिसाल लालमहल आगे करत जलकेलि ससि पाउडे करि जोति दई भैर अंम्रत के रसनि से। यह छवि निरसत सुरनारी, फूलि कमोदिनि जो जा मैं नौछावरि करत सुमन सौ तैं जु हरिं कनि से। प्रभु के चरन परसत कालिमा गई भयौ विधि अब निर्मल तन से। नउका की निकाई कही न जात साहिब किरानसानी की सु दरताई की झाई की तरगिन से ।।१४३।।

नायिका-प्रशंसा : ईमन कल्यान-चौताला, १२० आ

तो सी सुघर नाहि प्रवीन तेरी सय कौन करै प्यारी। तो सी तुही और नाही मेरे जान अैसी रूप गुन उज्यारी। तेरी छवि सरूप मोहि कहि न आवत हाउ भाउ कटाछि गुन चंद्रमा उजारी। साहिजहां पीअ तो ही सौ हिलन मिलन सकल त्रीअनि में तू मनभांनी री ।।१४४।।

दूतीवचन, सोभाग्यमयी नायिका : ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ अ

सुंदर अनूप नव सत सिंगार साजत राजत चंद्रमा सी जौंन वसन षोडस हित लसत तन जोवन प्रगास सोहत वदन तेरैं। हरी ढिग कौ परस भयौ नासिका वेसरि मोती तारिका निकट रही और नछित्र भूषन नगन ते तन पैंहैरैं कुच काम कंचुकी बनाई सो छवि लहीअतु री ज्यौं ज्यौं प्यारी आवत पीअ नेरैं। पति नवल उवै द्वादसिलाते अधिक विसाल छदसचारि विछानि कौ निपुन गुर ग्यान प्रवीन मति श्रेस्ट कीयें बहुत सुष मेरैं। साहिजह के सग अरधंग तू ही ऐक ठौर भई जह अचरज देषि देषि सब सषी मिलि हेरैं ।।१४५।।

सौभाग्यगर्विता : **पूरबी-चौताला, ६५ आ**

माई री अपने पीआ सौं हौ कवहूं न रूसों न उनैहे (उन्हे) रुसाउ। जासौ वे रीझे ताहीअै रिझाउ तासौ वे षीजिहैं ताहि षिजाउ। लगनि दुराउ जीअ की पाउ आनंदनि रसनि रैनिजगाडा साहिजहा पीअ दूलह मेरौ हौ दुलहिनि उनिकी सौतिनि जराइ वहाउ ॥१४६॥

नायिका अधीना : **सारंग जलद-तिताला, ७२ आ**

सव तुमही तन देषत तुम काहू तन देषौ हौ लाल कहा भयौ सवही तै सुघर सुंदर चतुर प्रवीन काहू धौ करौ निहाल। भली भई जो मेरे हू भागि जागे मोउ सौ अनुराग मैंटे काम जंजाल। साहिजहा महाजान रसिकवर वंदी आधीन वाल ॥१४७॥

दूतीवचन, नायिका : **केदारा-धीमा, १७३ अ**

दरस देषौ वेह री किमिस यैसे प्रीतम वलमा के। जल ससि प्रांन वनाई राषै हम करम करम करि अधरसु लै लै सुंदर साहिजहा के ॥१४८॥

आगतपतिका, महलशोभा : **केदारा-चौताला, १६३ अ**

तैसी है चांदनी सोभा वनाई तैसीय निकाई मैहैलनि की मानो विसकर्मा विधै सर के वनाई। और अति सोहत उतिम बिछौनांनि मै रुचित रचे फूलमाल नां अनगन अंग अंग करि आऐ, नौछावरि भयौ ससि साहि पै, कंधौं करत अंक ला नांर वरसा रेग मेरै जान चरन धरत हजरति कै भऐ सुदि धरन कलं कावि देषत ही लौ जू भाऐ। धनि धान साहिजहा प्रथीपति तहां जगेत के मन लै सुख दै दै दई वतलाई जब आऐ ॥१४९॥

दूतीवचन, मानिनी : **पूरबी-चौताला, ८६ अ**

बैठी री कर पै कपोल धरे री जायें दुचिती अनमनी आज पीआ सौं कछू अनबनी। रूषी सी रूठी सी जाननि विलषी सी मनु मारे तामस कीयै मानत न काउ को कहौ सकल तीअनि मै तुही मनमांनी। साहिजहां पीअ तेरे रसवस भऐ वे बना तू बनी ॥१५०॥

अन्योपभुक्त नायक : **गन्धार-धीमा, ३४ अ**

पीअरवा आज कौने कौने के राते भाते साहिजहां सुदर बारे। नैन कहै दैत बैन कहैं देत विन गुन कौ हरवा रे ॥१५१॥

खण्डिता : **ईमन पूरीआ-सूरफाकता**

तुम जु दुरि अनत ही प्रेम प्रीति बढ़ाऐ कीयौ अपनौ मन भाऐ हम जान पाऐ। तुम आऐ रितु मांनन अनत ही रैनि जगाऐ कंठ लगाऐ चंदरत वातै उमग संग की वास जनाई। हम सौ दुराउ करत हौ वाहू कौन रस के उनीदे नैन लीयै ललाई। जानि हौ जू जांनि जाउ साहिजहाँ पीअ सोई तीआ सो तुम्हरे मन अति भाई ॥१५२॥

संगीतज्ञता : **श्रीसग-चौताला, ११० अ**

अथतार सुरसाधें जोई गुनी सोई सुध मुद्रा वानी गावै। गति मति विलंमती (विलम्बित) करि दिखावै। सप्त सुर तीनि ग्रांम इकईस मूरछिना वाईस सुर (ति) ताके भेद पावै। सुरसुती होवै प्रसंन्य ताको सोई साहिजहाँ के श्रवननि को रिझावै ॥१५३॥

संगीतज्ञता : **षट जलद-तिताला, ५८ अ**

चरंजेवी तोहि जांनन मांनन कौ साहिजहा सव गुननिधांन। सकल कला पूरन रागरंग लीये जाते गुनीजन कौ आदर मांन ॥१५४॥

औरंगजेब

औरंगजेब (शोभा) **दरबारी कान्हरा-चौताला, १७८ अ**

सुभ महूरति सुभ घरी लगुन सगुननि मिलि कै दई देग जोग कै वर। बनिक डड चमर ढुरत मानो चद बिरिनि निछावरि कीनी मुकता सीस सेहरौ आयंक आली फुनि मसलानी कै उदोत सब भूम्र पर। आराइसी नव बनाइ ते गनई न जाई फुनि आतसवासी छांडी मानों प्रथम उदौ करि रस्म (रश्मि) पसारी हो दिनकर। कोटि जुगनि चरंजेवी रहौ साहि औरंगजेब या जेव सौ सदा अनगन गीत वाद निर्त करत है सब नांरि नर ॥१५५॥

चतुर्दशविद्या-निधान : **ईमन कल्यान-चौताला, १२० आ**

गुर गनेस्वर सरसुती नरहर और ब्रह्म पर ब्रह्म प्रसन भऐ आराधै तब ऐसौ साहिब मै पायौ। साहिब किरानसानी साहिपजहा नंदन जगवंदन सुलितानि औरंगजेब चतुरदिसि विद्यानिधांन क्रपान जिहांन में नर जाते रीझि जसु गायौ ॥१५६॥

सिंहासन-रत औरंगजेब, देवता, व्यास, नृत्य, काव्य, दानशीलता : **आसावरी-चौताला, ५३ अ**

उतिम लगुन सब सगुन गुनी गाइनि ब्रम्हा विस्न महेस व्यास कीनौ साहि औरंगजेब जसन तखत बैठे आनंदन। नगषचित धाम विसाति वरगातिनि मधम्हा गावत तिनि के साहि रीझि हरत दुष दंदन। ऐकै निर्तत लास तंड ऐके वम्हांवत कवि वंदी करि पडित कावि करत है दंदन। कनिक झर लगाये साहि आलमगीर जगतपीर ई लोक के लोगनि तारे जे फदेई रहत दुष दालिद्र के फंदन ॥१५७॥

सिंहासन-प्रशंसा, गान-वादन-नृत्य, दानशीलता : **आसावरी-चौताला, ५३ आ**

अद्‌भुति कारीगर रचि पचि कै सुनषत वषत वली करन तषत अनूपम वनायौ। जा लागे रतन जनम गुन सव गुन कौ फुनि चिंतामनि करमं देव कौ ऐसे नग कौ कापै जाइ मोल गनायो। गावत बजावत निर्तत जह कला जहां हीर चीर और बढ़ायौ नग कौ लीलक जर वषतर पतझर सव नेंह सो सुभ बनायौ। सुभ घरी सुभ मध्धि बैठौ मधनाइक डिलीपति साहि कौ जेव दाता औरंगजेब इनि ने असीस दई उनी गुनी कौ दुष दालिद्र अन्हायौ ॥१५८॥

पराक्रम, प्रताप : **मेघ मलार-चौताला, २७४ अ**

चकता चमक चहूं चारौ में दलनि मलन आयौ दिल्ली नरेस। उतर दषिन पूरब पछिम अकर करे रौ वैठो सिघ नरेस। तिहारे चढ़ैं दलवा (द) ल उनि आऐ सप्तदीप नवषंड तिहांरी पैर। साहिजहां जू कौ साहि औरंगजेब धौसा की धुकार कापौ पातल कौ सैर ॥१५९॥

पराक्रम, प्रताप, खन्दार-विजय संकरा-झपताला, २३८ अ

सहज लई षंदार विदित कीन तप तेज कौन जोधा तो सौं जंग जोरै। आडड डडनि राषै दिली सरस वाधै पजंरन गढन तोरै। देस देस नवषंड चहू चक्र मन महा जानीअै चहूं चक्र सारै। साहिजहां को औरंगजेब महावली तौ से न भरो और भये करोर ।।१६०।।

पराक्रम, जिन्दापीर : केदारा-चौताला, १६४ आ

आयौ आयौ रे महावली आलमगीर जाकी धाक कोउ धरै न धीर। अपवली तपवली आली जंग जोरै तेउ अटल गंभीर। दाछन दलभले विकट गढ हलहले जाकी तौ धुआई फिर दरीआ तीर। चकतावंस सुलितांन औरंगजेब साहिनि में साहि औलीआ जिंद पीर ।।१६१ ।।

वर्षगाँठ : षट-चौताला, ५७ आ

व्यास सोधन दिन गिन ज्यांन नीके सगुन लगुन धारी। दीनी बरसगांठि साहि औरंगजेब की करत हैं कोटि कोटि वरसन की अविल धारी। भाऐ भऐ नर नारिनि के आनंद जनम जीतव सुफल फली चर चरजीजौ सुभ घरी। नीर पीर आलमगीर की जगत विस्तारी ।।१६२।।

बरसगाँठि : टोडी धमार-षयाल, ६८ अ

सोइलरा आयौ औरंगजेब गाओ सषी मिलि कै सुघर मंगल चाइ। और गु वाजनि वाजे अंछया पूजी सवनि की वरसगांठि आनंद पायौ ।।१६३।।

वसन्त का मुबारकवाद, मंगलामुखियाँ : हिन्दोल-चौताला, २५० अ

चरंजीव रहौ सुख संचति संपति साहि कौ एक छत्र दिलीराज कर वर होई दुहूं पुर जस कीरति अधिकाई। रोमस (लोमश) कै सी जविल सोफल फल अनलेषन, लाष करोर वरस लौं जविल वाढे तिहांरि। और जो मन अछया होइ तुम्हांरी अब सोई करत। करम केरे अैसी सुफल होइ हमारी। अनगिन आनद वसत मुवारष साहिनिसाहि औरंगजेब जू तुम अैसै ही अनगिन वरस लौ हम मगलामुषीनि सग खेलौ धमारी ।।१६४।।

अनुपम चौपरि, नायिका ने पति जीता : केदारा-चौताला, १६४ अ

तैं आपु ही मैं वनाई अनूपम चौपरि ऐ। रूप जोवन गुज वानिक विसाति मांघ वसीकरन घर कीनौ फुनि दीनौ त्रविधि कटाछि पांसे करि। वो सुभ दांव षतन तोही कौ फुरेरी औरनि के चौक चाक वाधि वाधि चतुर वतीआ कीनी जीही ते पूजी सार। सौतिनि सौ वाजू पीअ जीति लीनी साहि औरंगजेब रीझि रुचि सौ कंठ लगाई भुजभर ।।१६५।।

नायिका : सूहौ-चौताला, ३४ आ

जोवन मधमाती राती रातिही अंषीआं लजाई। देषौ चाहत साहिकौ दरस नेह नजरि ललचाईं। अैडात जम्हात और प्रगट चिन्न भौहें चढ़ाईं। रस के रसीले लाल साहि औरंगजेब अपने मन काम के ग्वाई ।।१६६।।

नायिका : **आसावरी-चपक**

परम ग्यांन गुन निधान सुलितांन औरंगजेब मेरी तौ कही हू न मांनत कैधो मेरे भागिनि हू दोस। ऐसी दूती लूती सिषै दै कांव तिहारी मया ते मोहू कौ तो घर अंगना भयौ सहस कोस ।।१६७।।

नायिका-दूती : **पूरिया-सूरफाकता, ८१ अ**

तुम अवदि वदि आऐ कहि आवत हौ जू सो दिन धीरि न धरैंगी । आंनि बैठे जब त्रीअनि में वलमा सो जह रीति कैसें निवहैंगी। हमसों अवदि वदि अनत विलमि रहे कोउ कछू अब जाई कहैंगी। जानौं हौ जू जांनि जाउ साहि औरंगजेब जाइ लगी अधराति सो कैसें कें सहैंगी ।।१६८।।

दूतीवचन, प्रतीक्षारत नायिका से नायक-मिलन : **मालसिरी-सूरफाकता, ८३ आ**

अब घरीं आवत है री लाल माई री अवधि कौ दिन आज। प्रफुलित वौहौ सुगंध मिलि अंजन कटि करि भूषन वसन बनाई पैहैरैं प्यारी तबहीं अरगजा भेंटत लगांये तब होइ मनभामतौ काज। वह देषौ आइ गऐ मनमोहन वलमां अंतरजांमी कामी कमन वरन कारन विरहिनि कारन मांनों गति तिनि कों लीये सुष समझाइ साहि औरंगेजेब लीनीं गरें लगाइ प्रेम पगाइ कीनीं निहाल तोहै वाल दीनौ विभ डिढ सुहाग भाग आनंद-राज ।।१६९।।

आजम

पीरों की स्तुति : आपत्काल में : **भैरव-चौताला**

साहि भरदान अली ष्वाज हसनं वसरी ष्वाज हवीव अजमील हजरति सेष दाअद ताई ष्वाज मौजदीन मांरूपकरक संस साही सकती अवदुलका सम जुनेद वगदादी हव वकर महंमद सेवली सेष साही अवदुल अजीज पीर। हजरति अवदुल वाहद सेष फजल परे तार तूसी सेष सईयद मीरा गौसिल आलम मुही अल अल अकबर सेवकली ष्वाज कुतव लै दीन अली समसदीन अली जलई दादमीर। सेष समुसदीन अली सेष कुतवदीन अवल गौस सेस वलअ्र कारू मसाइक समसदीन हजरति सेष जलाल वुषरी सैद आजम लै सेष वुढन वैराची दर्वेस (दरवेस) कसम साहि अवदुल कदुस सैद जलाल हाके सखदीन हजरति स्याह निजाम मुसकिलि आसान दस्तगीर। जे तुम सकल पीरसब मिलि करौ चरंजीव साहि आजम छत्रपती वे सेवक तिहारे आऐ मन विच क्रम (कर्म) करि जव जाकी तुम ही हरौ कठिन पीर ।।१७०।।

नायिका-छवि : **गन्धार-चौताला, ३२ अ**

प्रगट चतुर वर नैंना री तैंर कैधौं षंजन कमल वसे के कटाछि मांत पिता मुष सुष सागर ये पंकज नछावरि सरोवर मीन करत किलोल। कैधौं चंद लै सो तन गांर लै बैठो कदली, भौंहें डाडी कर पुतरी व होंइ दोउ पल सों पल नां लागत तो मैं, तांमे री विधि अनूप रूप जोवन छवि तोल। मुष सुष सलिता वीच नाव फिरत वाउ वई वरुनी चौंप

तरंगनी फंदे फद फदांन देत षोल। कहूँ 'जुगल माहारूप' हसत मुदत खुलत फिरत जामें भंडारी साहि आजम पीअ हुकम लेज षोलि षोलि देत त्रविधि हीरा मोती मोल अमोल ।।१७१।।

आजम का पुत्र-पौत्र, माधो कवि : **सूहौं-धमार, ३५ आ (सवैया)**

चातुर चार वडौ रिझवार अवीर गुलाल लीजै भरि झोरी। गावत फाग भिगावत रंगनि अंगनि केसरि रोरी। वाजत है डफ ढोल पषावज जैसो री (रीझि) करै बरजोरी लाडिलो है साहि आजम को जंह माधो सपूत सो खेलत होरी ।।१७२।।

शिव-स्तुति, मंगलकामना : **गौरी-चौताला, १०५ अ**

भष्म भूषन अंग कर चक्र गंग सिकर (शिखर) विरूप सिव जोग डंमर में डवरू वाजत फुकत फुनेस भारी। जोग जुगति अग्यात चित सित सरूप संकर हर कठ कंठ गर विष नग्न वरन राजत परम अस्नांन (पद्मासन) ध्यान धरत मुक्ति रूप अवतारी। जंता सती जंगम जोगी नषी सन्यासी उक्तिधारी अघोरी रुद्र वाइव कर इत नगिन करि प्रनाम रहित चारी। धनि धनि धनि महादेव सिधि देव देवनि पति रिधि सिधि दाता साहिनि साहि आजम कौ होउ सुषकारी ।।१७३।।

खण्डिता : **गौरी-चौताला, १०५ आ**

निपट करि जु दुरावत मोसौं नही जानत पीअ अधिक चतुर तुमही और हौ ही अयांनी। कोटि जतन करि तन गुन प्यारे तिहारे देषीअत जे करत फिरत घर घर मनमथ के वस जुवति अंग संग रंग करत वौहौ ग्यानी। अटपटी पाग पेच लटपटे कीयैं बोलत मंद वचन चक कहत कहानी। साहि आजम विचित्र छत्रपति की वाते अब मेरे जान पाई तब धांई मुषरावत मन जावत न तिहांरी घात हम मन विच क्रम करि पैंहेचानी ।।१७४।।

नायिका-बयन : **हमीर-चौताला, ११२ आ**

नै तारनि तीषेरी आली साल सौतिनि सब लालनि मन भावत है री तूअ मन विच क्रम करि तेरे अति प्रवीन अनियारें। कंजरानि कजरारे उजागरनि उजियारे वडे वडे ऋपकारे सील सर्म लाज साज लाज सौ जु पूरन अति जिने देषि मोहत बिरहित आजम प्यारे। चित चौरै चितवत चटकीले मोरे से चमकारे निस्ता तारे भारे छवि छवि मौतिनि निडर निडर दैषत है हो जै कटाछनि भारे। धनि धनि धनि तूअ नैन हैं कुरंग कुरंग कीनै मीन छींनन अति को गनै आली अमल कमल सेवत से षेजरीट हीट हीट सीषि सीषि सीषत झपकत मतवारे ।।१७५।।

सुहागरात : **केवारा-चौताला, १६८ अ**

आजु सुहाग की रैनि मोहि लागत अति ही सुहावनी। सुलितान आजम दूलह दुलहिनि में वातैं भई मनभावनी ।।१७६।।

सेहरा : दरबारी कान्हुरा-जलद, १८१ अ

सोहै सेहरा मोहै सवही के मन मोतिनि की लर विनि के मुष पर नीकी लागै मानौ सुधाधर लागौरी सुधावरसन। छवि के जोर ससि किरिनि जीति रापी ऐकटक रूप सागर सहसवार ह्वै सुरसुती अनूप दरस दरसांनै आई विराजत है अप अपनी भातिनि उडगन। चरंजीव रह्यौ साहि औरगजेब कौ नद सुलितान आजम दूलह जाकी सोभा निरपि अपुनुपै वारत सुर नर हू की धन ।।१७७।।

बहादुरशाह

स्तुति : सारंग-सूरफाकता, ७२ आ

तुमही करीम रवि कवि करता घट घट पूरन जल थल भरतार। तुमही कादर तुमही कुदरति तुम ही साहि बहादुर नर ।।१७८ ।।

वर्षगाँठ : भोपाली-चौताला, १३५ अ

सुभ दिन सुभ घरी सब सगुन सौ भले गावै सुभ नछित्र साहि आज बैठे नगन गरत तखत। नरनारी सब मगल गावत ऐक चतुरबाजे लीअै कर सों बजावत मनकी फूल सब ही के डहाडहे मुख ससि से लागत लखत। अैसीअ सोहत भीर राजा राना उमरावनि की तैसेई सोहत तन विछौना रखत। कोटि जसन बरस गांठिकर साहिब आलमगीर दुलारे वधू अधरनि जगाऐ जाके जागे बखत ।।१७८।।

नई वर्षा : गौड मलार-चौताला, २८३ अ

नऐ पवन नऐ वादर नयौ सजन नयौ नेह नई मैंहैंदी हाथनि रंग सुरगीरी। नईअ कसूमी सारी थोरे दिननि प्यारी मोती भरी मगीआ अगीआ उतंगी री। नयौ नेह नयौ मेह नईअ भूमि पर अति सुष संगीरी। साहि बहादुर तुम वौहौनाइक सामली सूरति और मधुकर रंगी री ।।१७९।।

नायिका-प्रशंसा : परज-चौताला, २०२ अ

तू अंग अंग अंगरानी अत ही सयांनी पीअ जीअ मन मानी। सोरैहू कला सवांनी वोलत इम्रत वांनी तेरौ रूप देषि चंद जोति हू लज्यानी। कर केहरि कदली षंभ जिनि मै तू आंनी। जह छवि देखि रीझे साहि बहादुर तेरी प्रीति जौलौ तौलौ गग जमुन पांनी ।।१८०।।

नायिका-छवि : परज-चौताला, २०२ अ

तूअ तन जोवन आयौ धायौ अैसैं जैसैं जौनं सी फूलि रही ठौर ठौर अंगना कौन दैहुं पटितर तोसी न देषी सिस्ट मध इंद्रहू कै नारि नै वारंगना। रतन जटत की सारी सोहै कर सोहै कंगना। साहि बहादुर तुम वौहौनायक कांम कोटि तरगना ।।१८१।।

नवोढा, सौभाग्यगर्विता : छाया धीमा-तिताला, १४५ अ

नैक दुरि चितयै मो तन लाल सो सौतिनि में प्रगट भयौरी। वह मो तन हैरत वह वातन कर पव दसन लयौरी। कहा कहौं कछू कहत न वनि आवै सकुच कौ आनंद उर में सहौरी। साहि बहादुर तुम वौहौनायक हसि करि चीर गह्यौरी ।।१८२।।

अधीना : **कुब-मलार (खयाल), २८० अ**

मैं कब कीयौ मांन पिआरे सौ तु तौ मोहि लैन आई। तु तौ मो लैन आई पीअ नै पठाई अति सुष भयौ मेरै आंगै आगै तू चलि पिछे तै मै आई। साहि बहादुर तुम वौहौनाइक सकल त्रीअनि मै तूं मन भाई ॥१८३॥

नयन : **हमीर-चपक, ११४ अ**

इनि मेरी अंखीअनि मोसौं वैर कीयौ। आयु मिली जाइ दरस परस करि मोहू मन वांधि लीयौ। देषत ही वस हो रही विनिके अंसौउ लाहौ लीयौ। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक रस सों रास कीयौ ॥१८४॥

आगतपतिका : **गौड-मलार, २८२ अ**

प्यारे हौं वलि वलि गई अंसे सांमन मै आंमन की। हौ तो तिहारी आग्याकारी सेवा की करन हारी अनूप रूप दरसावन की। कैधौ आयु ते आऐ कैधों मेरे भागि ल्याए कैधौ मो विरहिनि की पीर हरन की। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक भली सुधि लई मो जिवावन की ॥१८५॥

अन्योपभुक्त नायक : **भैरव-चौताला, १ आ**

कहू लगौ काजर कहूं पीक लीक सोहत नष की रेष गात। ऐक तो चतुर जामै प्रगट भऐ री नैन अंसे तों तिहारे सांच अवधि वांनिक वनैं दिषरावन आऐ पीअ प्रात ॥१८६॥

खण्डिता : **गौड मलार-धमार, २८३ आ**

ठाडे रहौ आंगन ही मेरै जो लौ देह नष सिष भीजै। न्हाइ लेउ गंग वानै पांनी उतारि धरौ जे वस्तर जब ग्रेह देहरी पग दीजै। अधरनि अ जन लिलाट महावर चतुर चतुरई जिनि कीजै। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक सकचौ जिनि दर्पन लीजै ॥१८७॥

दूतीवचन, मानिनी से : **गौड मलार-चौताला, २८३ अ**

रूसनौ छाडि दैरी वौरी आवे विचित्र वहुनायक। अनेग भातिनि करि लाड लडावत वौहौ भातिनि सुषदाइक। वे चले आवत तेरे री महल उठि आदर करि सुनि मन भाइक। साहि वहादुर तेरे री वस भऐं सकल त्रीअनि मै तूं लाइक ॥१८८॥

सामान्या : **गौड मलार-धीमा**

द्रिगनि मेरे जौ ही लौं सुष जौलौ देषिवों करत हरि आंनन। ऐक पल अंतर होत अध्यारौ सूजत न विन दीअै वोल न सुहात काहु कानन। हों तो तिहारी अग्याकार सेवा की करन हारी तिहांरी लौ लागी मोहि निसुदिन प्रानन। साहि वहादुर तुम्हारी त्रुया ते सब कोउ लागौ मो जांनन ॥१८९॥

विप्रलब्धा : **मधमाध-चौताला, ७५ आ**

लीजै हो सुधि मेरी पीअ प्यारे निसु तउल घटत लई इनि जु दवटि निपट याते विरह भारी। ऐक जो विरह गात जा और छिर होत सो तुम श्रम जल सीचि सीचि हारी। सुधि पवन सांस रूधै आवत जैसीअ टरावनी (डरावनी) रैनि अंधेरी। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक पंचवान मोहि मदन घेरी ॥१९०॥

विप्रलब्धा : **बरारी टोड़ी-चौताला, ७० अ**

अवधि वीतन लागी री अजहूं न आऐ कंत। चारौ जांम मोहि जुग से वीतत उत रितु मांनी राजा वसंत। द्रुम वेली फूलैंगी री जब आमे कांम मूरतिवंत। साहि बहादुर कौ मिलिवे कौ री कव धौं वंनैगो तंत ॥१९१॥

दूतीवचन : **ईमन-धीमा, १२४ आ**

जासों मन लागो ताई कौ मन लीअै चंलीअै रस सौ, रसीली रस ही रस ल्याईअै प्यारे। वे तौ वौहौनाइक सव सुषदाइक, वे तो भई आपुवास कैसै मन मनाई लीजै। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक, अपनी चौप लाल आप लाईअै हौ प्यारे ॥१९२॥

प्रणय-कलह : **आसावरी-चौताला, ५३ अ**

लांलन भऐ हो नाइक पर भऐ है जू तुमसों अब नही बोलौं। सूधे चितवे की चालि चलत इत घूघट ई नही षोलौ। मेरौ मन तुम सों जु लागों रहतु है चद चंकोर। साहि वहादुर तुम वौहौनाइक हमसों करत पीति जोर ॥१९३॥

मुईजुद्दीन जहाँदारशाह

प्रशंसा : **सूहौ-चौताला, ३४ अ**

ऐक रचौ साहि मौजदीन कौ ताके कारन दीनौ पयानौ। दौरी दौरी आवै कहा लग जावै कस्तूरी सग सु दीनौ पयानौ ॥१९४॥

प्रताप : **ईमन जलद-तिताला, १२३ अ**

आयौ आयौ रे छत्रपती नरेस नर देस देस षलबल हलहल चलत दल जमि कें पति राषत, तूअ डरनि। सकल षांन सुलितान वान कृपान तूअ करि कमान औसांन जात गुमांन भजत और जित तित और घर धरनि। अति प्रचंड वलिवड भुजनि वर वौहौ षंडं षंड अति अडंड डंड दीनै वौहौत जु अरि निकरि डारे थारनि। सुभट सुर सामंत कौ आनद जसु गावत साहि मौजदीन जू चरंजीव कुलि करन ॥१९५॥

विभिन्न मुल्क, विजय : **गन्धार-चौताला, ३२ अ**

मुलक पर मालाहोवाद मांरू मरहट मुगेल मालवा महावन मकनपुर मेवात मुलितान मिसर। वगेदाद वंदर वदा वुषार काविल खंदार गुजराती बूंदी वुदेलषंड वीजापुर वंदान हो विधि नूरविदर। सुमिरि कंठ सोरापरु सारगपुर सुनि सहांनपुर सूरति समसावाद पांनीपति सुनपति सिरोज रूम स्यांम षुरासांन सुंदरपुर तरंगपुर सेषपुर सषारपुर कासी कुमाउ कनवज केदार करार। करगहें कमन कोकिल जीते साहि मौजदीन महावली मुलक घुमाई नर नारीनि सकल भूअ पर ॥१९६॥

सवारी : **पूरबी-चौताला, ९६ अ**

तिहांरे होति असवारी सेना इनि राग विस्तार मिलि मुरि सलिल ठनंकार धुकार वनौं रंग अपार तामें उनपति धुनि सुरपति सुनि विचार सवादि सवादि गुनी गावत पठाऐ।

करन। इनि रमन लागौ नवि दर्पन उडनि मांझ असुरनि घर दलन छोडन लगे अस्तुति करन धधंवान धमंकन लगो व्हैहै मंडल हलन मनौ गरजन तरपन अति झांज झनंकार दंत व्रन गहै इंद्र मेघ रिसाल लाऐ। तुरही वजत यो लागत मांनौ ऐरापति वोलत आवत है तिनि में नरासिंघा नफीरी मनौ अछोई सवाद दै वाजे न आऐ। साहि मौजदीन की जंह असवारी सुनत द्रगज द्रगज लंकेस फुनेस दनेस छिपि पताल गऐ सवनि पारि विष लाल कोउ न ठहराऐ ॥१९७॥

सवारी : **पूरबी-चौताला, ९६ आ**

सोहत माही मरातवं मानौ पातुर सोभा रवि निसान जामे धनक ते निर्तत छवि गुवंद संग गुवंद सवै राजै। गांइनि सेहैनानि अलापनि सुनाई अस्तुति गाइ मचाई राग कर मुरसलीनें मुदेगी परौ संग रंग करना औ वदन औ धरन तालधारी झंझी मुर मिलि तुरहीआ वुंगी नैं (नै) छाजै। फुनि महाविद दीरग दंद मचौ रग धूम गज निसान चलीधि घुंघरू पगनि धरी पौहौप उजरी वरछी चमंकै दीप छवि उज्यारे नाइक अग्याकारी देषौ साहि मौजदीन प्रताप रीझै ताकी तिहूं पुर गांजै ॥१९८॥

शिकार : **टोडी-चौताला, ६३ आ**

गढपति दलपति देसपति अतिमाते ते गरव अंग धीरे लीअे सिंघ वैठे और हैं कल-गजिनि की षेलै सिकार मारि मारि जीति लाऐ। तूअ प्रचड दल सकल गात वेनकर गात जानौ प्रचंड प्रवंद के देषि मगदाता अकन सकल परी षलभली तव वे आऐ पग पंस पसारि भजम उडन कौ भऐ। तां वर वरछी कुही वनाइ कुलाहि म्यांन पीर दस्तगीर जो दई दिसाई जो लगी जाइ भाई भूअ गिराइ कै मारे जिनिके चकई चकवा प्रान भऐ। साहि मौजदीन महावली सिकार कीनी कंपौ थरर थरर सुरेस फुनेस सुर लकेसुर द्रगपाल तजि भजि गऐ ॥१९९॥

मन-वनजारा : **ललित-जलद, २६ आ**

मो मन वनिजारौ आयौ प्रेम पुजी (पूंजी) लै सुरति पैंड के गाहौ पीअ छवि तन। चित व्रषक (वृषभ) धर ग्यांन मौ न लै सूत सूतरी विभि सूआ सेर यामे तामें भरि पीअ रूप सवनि। ऐसी षेप लाइ भ्रमत चिकारि नाचै वचाइ भरि राषौ हीयौ चिकन जह वन जू के मन। जीये कहा जो भयौ विवेष दुष गयौ गुपत प्रगट लाहि लीयौ साहि मौजदीन जू दरसन धन ॥२००॥

मुहम्मदशाह

संगीत-कृषि : **मधमाध-चौताला, ७५ आ**

आकार भुमि (भूमि) तामें गमक पवन झकोर सों राग कर लागौ तांन वुंद (वूंद) वरसत षरी। आरोही अवरोही दोउ व्रषव कै सुर हल सौं सोधि सुरति वीज वयौ तांते रीति वेलि वढी हरी। सप्त सुर साषा उपजी अलंकार फूल लगे ताल सोई पात और मूरछिनां वार दई चारौ तुकै चारौ दिसां यह विधि नाद षेती भरी। गाइनि गुनी गंधर्व

किसान तीनो ग्रामनि करि वानी ल्याऐ छत्रपती महंमद साहि नेत्रनि सौ देषि श्रवननि सवाद लै सव की अंछया पूरी करी ।।२०१।।

नायिका-छवि : पूरीआ-चौताला, ८० आ

मंगली ललाट दियै चूनौं रंग आभोज भ्रकुटी भ्रमर भूले । वंदन आगें आवत कुच कैसे के नीके लागत मै जान हैरी झगरन झूले । कंचुकी कौधन लागी अग टाटग नीके वनै गत घर लीले । यह छवि चाहों महंमद साहि कौं दसन कुंदमंद तिल फूले ।।२०२।।

नवोढा : ईमन पूरीआ-जलद, १४३ अ

कँहू कँहूं करि चौकि झझकि मिटी औ प्यारे महमद साउ वाम की । ज्यौं ज्यौ समझाउं त्यौ त्यौं षिनि षिनि अधिक होत धकधकी धरकी जीअ मै कवि रही है दिस्ट अस्टजाम की ।।२०३।।

नायिका : हमीर-धमार, ११५ अ

नही मानें री न माने तव तौ ऐ सैननि वरजौ । हो हो करि गावत निदरत वात कहत निधरक गरजौ । महमद साहि सुजान पिआरौ लगौई आवत जीअ ती तन जौ । है उनहि सकुच काहू की न रही वह तौ सासु ननद के ऐ लरजौ ।।२०४।।

खण्डिता : ललित-धमार, २८ अ

तुम जाउ जू जाउ पियारे जिनि के संग सब निसु जागे । भोर ही आऐ मोंहि षिजावन रसरग के पागे । चोवा चंदन अतर अरगजा सव रंग रग के वागे । महंमदसाहि प्रवीन पियारे जवहूं आछे लागे ।।२०५।।

होली : टोडी-धमार, ६७ अ

सुर सनीताननि होरी गाओ, गाइ गाइ साहि कों रिझाओ, चतुर वाजे गहगड सों वजाओ, नीके फागु रचाओ, जेहें विधि रिझाई महंमद साहि कों वौहो भांतिनि मान मनाओ ।।२०६।।

होली, मान : ललित-धमार, २७ अ

हो तोकों कौलौ सिख देहों री नागर । तू तो होरी षेलत छिन छिन में रिसाइ बिनि को मन राषै नं रस गुन के आगर । ऐतो मान गेहैरो न कीजै री जो (ज्यों) सागर । अवकी महंमदसाह कों कोउ मनाइ ले आवे तो भरोगी काची गागरि ।।२०७।।

फाग : दरबारी कान्हरा-धमार, १८४ अ

जह देषौ धूंम गुलाल अवीर अवरष की कहा लौं जामे दुरत ननें (नैंन) सवनि के । फूलनि की मूठै छूटै कुमकुमां ऐक मारत ऐक रोकत देत गुमान सौ गारि ।।२०८।।

होली : ईमन-धमार, १२२ अ

रंग महल में होरी षेलन आऐ प्रभु लाल महंमदसाह चतुर सुघर । चले वंठनि (बनिठनि) फेंट अवीर गुलाल छोडों पिचकारी रंग भरि भरि ।।२०९।।

फाग : **हमीर-धमार, ११५ आ**

वांनिक वानि आऐ री लालन षलन फागु आज अनुराग भाग मेरै महल। करि सुगंद अंग लाइ लाइ मुष गाइ गाइ नीकी तान मानिनी जीवन सुफल रंगरस की करौंगी टहल। महंमद साहि रिसाल लाल हौ दआल कृपा कीजै मो पर मेरी करैगी सौतैं सहल। हितूअनि वौही सुष पाइ भाइ प्रभु मन चीते कारज करे मची चाचर भई अति पैहैल चैहैल ।।२१०।।

होली-युद्ध : **टोडी-धमार, ६७ अ**

अव कैं होरी में प्यारी लीखे के सांमांन तै कीन तै कीनै। डफ ढाल नोंलासी षर्ग लीये सौतिनि के गुमांन सुभट राग मारि लीनै। अदंग तोप गेंद गोला गुलाल लायें ताकी अवाज सुनि गरूर गढ छीनि लीनें। महंमद साह को सुहाग वढो वाके हितूअनि के मुष धुंद फेरि दीनै ।।२११।।

आलमगीर द्वितीय

प्रताप : **टोडी-चौताला, ६३ अ**

हिंद में आनंद भयौ को जह दुरजन गायौ वैठे तषत वली आलमगीर सानी। वजि निसान ठहरानी सुने गजपती फिरि गई धाक डर हुकम मानी। चले चहुं ओर तैं मिलन कौं जोरि कर आगै चंडोल घर सुघर रानी। अदलि इनसाफ अदारंग कहां लग कहौ कादर करीम की मेंहेंरवानी ।।२१२।।

आगतपतिका : **पूरबी-जलद (खयाल)**

आंमन कही आगिम भईलवा उनको भुज फरकै आखि वाही (बाईं) मोरी। अैसो सगुन विचार करौ जौ अदारंग वेगि मिलै मोहि आलमगीर सानी ।।२१३।।

शाह आलम

प्रेमपगे नयन : **तोड़ी-चौताला (नादिराते-शाही, पृ० २१६)**

हार गये सब चातुर चित मै सीख सिखाय के जेते सगे है। चचल चाल सौं भूल गये, और लाज के काज सबे ते भगे है। देखत रूप न औरनहार के जा दिन तैं उन संग जगे हैं। नैंन नही सुरझे उरझे अब, ऐ री सखी, अत पेम पगे है ।।२१४।।

नायिका : **तोड़ी-चौताला (नादिराते-शाही, पृ० २०७)**

अंगन में आय देखौ सहज सुहाय, मो ही सोभा दरसाय प्रेम रस पियाय दियौ है। नैंनन लगाय फेर मन को लुभाय, बैन मुख बनाय, मेरा चित चुराय लियौ है। आनद समाय, वह कीनी चित चाय, मांगन हूं से बुलाय, और रिझाय कर हियौ है। नीके सुर गाय, आछी तान परबीन कूं बजाय सुनाय, कछु चेटक सो कियौ है ।।२१५।।

दूतीवचन : **तोड़ी (नादिराते-शाही, पृ० २०५)**

रीझ रीझ, रिझाय रिझाय, काम के किलोल कर मन के मनोरथ करे सहस सहस आंखों देखी, न कानों सुनी ऐसी जैसी तू तिया है, भचक रहत हूं तो कों लहस लहस यह

देखी तो मैं रीत नई, सखी, जाने न पूंछे कछु पीतम के जब आवे मौ सूं रहे बहस बहस हंस हंस करत अछी बतिया, लग छतियां सूं अपने पिया को उर लावत रहस रहस ।।२१६।।

मेंहदी : अड़ाना, चौताला (नादिराते-शाही, पृ० १६६)

क्या नीकी आज यह रोशनी मिहदी की हज़रत पीर दस्तगीर की बन आई। चिरागन की जोत जगर ऐसी लागत जैसी रंगारग के जवाहिर से छाई। कैसी धूम की बाजत नौबत और छूटत आतिशबाज़ी, गुनियन मिल के गाई कीनी नज़र मिहर की अपने मुरीद पर, 'शाहे-आलम' ते मन की मुराद भर पाई ।।२१७।।

होली : जैजैवन्ती-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १६०)

ले पिचकारी चलाए लला, तब चंचल चोट बचाए गई है। अपनी नाक सूं खेलत है, कहा चातुर नार खिलार नई हैं। ऊचक आए सखियन को छोर के लाल गुलाल के मूठ दिई है। नीकी लगे यह आंखन में, कहा रग अबीर सूं होरी भई है ।।२१८।।

वसन्त : भटियार-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १५६)

फूलन के हार चार जूही, चबेली, चपा, सोसनरा बेल देख को किला की बानी जीत जीत के करैं। सरसों पाए लो फूल रही मुख गुलाब नैनन नरगिस अधर दस कंवलन की साम्ता धरैं। बेली सी नवेली बाल जाके बात में सब दादर केवरा, केतकी, मोतिया, सुगंध फूल झरैं। आप बन आई कामनी बसन्त रुत गड़वा देन आईं 'शाहे-आलम' बादशाह के घर भरैं ।।२१६।।

गान : अड़ाना-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १५१)

ताल, मिरदंग मुहचंग बजाय के प्यारी तिया गुन बैठ के गाओ खेलिये खेल अबीर गुलाल सूं, औरन कौ नित पेम पगाओ। भूल गई, कछू याद नही, अब सोवत है काम जगाओ अग में तोरी सो बोरी, लला, अब अग सूं हात न मेरे लगाओ ।।२२०।।

होली : मुलतानी धनासिरी-होरी (नादिराते-शाही, पृ० १४०)

तुम तो बडी हो चातुर खिलार, लालन तुम सूं खेल मचाऊ रंग भिजाऊं दफ़, ताल, मिरदंग, मुहचग बजाऊं, फाग सुनाऊं, अनेक भांत के भाव बताऊ। चोवा, चंदन, अबीर सुगंध लगाऊ, फेंट गहन कों धाऊं, और तुम को रिझाऊं। जह यह राग रंग ढग मचाऊं, तब देखूं चतुराई, तुमहारे जी को कैसे न भाऊं ।।२२१।।

होली : (नादिराते-शाही, पृ० १३३)

जाओ चले जित जावत हो तुम हूं अब तो चुप नाह रहूंगी। नौखे नये जो खिलार भये, तुम जैसी कहोगे, हूं तैसी कहूंगी। छाड़ के लाज सखी की पिया की सूं रावरे तो अब फेंट गहूंगी। एक सही और दो भी सही, पर तीसरी चोट न लाल सहूंगी ।।२२२।।

छत्रसिह

सिंहासन : दरबारी कान्हरा-चौताला, १७६ अ

धनि धनि धनि धरी सधि कनिक रतन जटत तषत तापर वैठे राजा छत्रसिंह जगतपती आनंद सरसाऐ। रन राजा राउ उमराउ कवि, राजत लैलैं रिसाल ठाढे अति

प्रफुलित भऐ जाचिक अनेग कौटिक दरसाऐ। तव अमोलक वसन आभूषन पावत पांन सनमान वौहौ विधि सिस्ट कौं सुष परचाऐ। चरंजेवी महांराज छत्रपति छत पर अंसेंई नित नित करत कोटि कोटि जसन जाइ निरषि देव सुमन बरसाऐ ।।२२३।।

प्रताप : **सारंग-चौताला, ७१ आ**

जीतत तुरत जे अजीत और प्रचड अडंड डडे षंड षंडनि वलिवंत तिहारी फिरत आंन। असपती गजपती सुरपती नरपती डरपत है जाते झपटि झहरावत झुकि झहरावत गिदवांन। कौंन और कौंन सरवर करै को धीरज धरै जब राम रोस करि गहत कमांन। अपवली तपवली महाराज छत्रसिह तुमही जानत जीति जान ।।२२४।।

प्रशंसा : **केदारा-चौंताला, १६६ अ**

अैसों दीनदयाल कृपाल महांराज छत्रसिह वहादुर। सव राजनि सिरताज इंद्र सम जस कीरति सुष सागर। धूअ प्रैहैलाद समं राषै भूअ लोक पर अटल राज चहू दिसि भरपूर। पर्मं पुनीत सुभग जसु गावत भक्त प्रभु कृपा कर ।।२२५।।

प्रशंसा, दानशीलता : **सुध कल्यान धीमा-तिताला, ११६ अ**

अैसो को तिहांरी सरवरि करि सकै तुम तेगवली दानवली जीओ जुगु जुगु भू पर। देस देस के गुनी आवत तुम तक तिनि कौ आदर मान सों देत हौ अनगन तुरग नग अंवर। मेरे ऐक रसना तिहांरे दांव करन की कहा लौ कहौ तुम से तुम ही नर। 'भूपति' कहत जगत के दालिद्र हरन को ऐक रचौ विघन माहांराज छत्रसिह वहादुर ।।२२६।।

दसहरा : **टोडी-चौताला, ६४ अ**

दैसैहैरौ मुवारष होइ तुमकों संचति संपति और सहित समांजा। गुनी गाइ गाइ आनंद वधाऐ जै असीस कोटि वरस लों भूअ पर अटल करो राज। तिहांरी अस्तुति को करि सकै तुम राजनि के राजा सवनि में सिरताज। 'भूपति' कहत महाराज छत्रसिंघ दाता गुनी अनि की मनसा को दांन अभही मगाइ दीजै आज ।।२२७।।

नादबाग, संगीतज्ञता : **सुध कल्यान-चौताला, ११८ आ**

कैसो नादबाग रचौ गुनी गाइनि कंठ भुंमि मध तुम दिषाओ सकल जांन। सप्त सुर तरवर अछिर पौहौप पात सुधि वानी छाट सघन सुरनर मुनि नीर अषाडत यों लागत उपजि फल नीके लागत सुघरनि मन। 'भूपति' कहत जाकी सेल करन करिवे कों महाराज छत्रसिह के श्रवन ।।२२८।।

आगतपतिका : **कान्हरा-चौताला, १८६ आ**

करमनि वर पाऐ री आली सवही तीअनि में होंई सुख स्यानी। जनम जीतव सुफल करि मनायौ मैं आजु ही जो हरि की निरषी अंषीआं सिरानी। दिन दिन के अभिलाष पूरन भई गाइ वधाऐ नवनिधि पाई। प्रानपति महाराज छत्रसिंघ जू कौ मिलि कीनी रस की वतीआ मनभाई ।।२२९।।

आगतपतिका : **सारंग-चौताला, ७२ अ**

नेत्र कमल प्रफुलित भऐ देषै ते मोहन पीतम कों दरस । दिन दिन के ताप विरहा विलाप गऐ हैं री ततछिन जब अंकों भर लीनी अंक व रस । धनि धनि भागि सुहाग नैंना धंनि जनम जीतव सुफल प्रानपती प्रानेसुर घरी घरी पल पल छिन के दऐ सुख सरस । महाराज छत्रसिंह अंतरजामी जब अतरगति जानत तव अंग अंग अंग के मिटात रस ।।२३०।।

चेतसिंह राजबहादुर

दरबार, दानशीलता : **ईमन कल्यान-चौताला, १२० आ**

अैसौ दरवार राजवहादुर को जामे रंक राउ राजा उमराउ आवे तिनि कौं लाषन देत करत राजी । सव जग के दालिद्र हरन कों ऐक चेतसिंघ नरेस रचो या भूम्र पर विधनां धनि भाग वाके जावे तुम करत सरफराजी ।।२३१।।

गुरु-महिमा : **भैरो-चौताला, ३ अ**

गुर सहाई तो उनिके चरन कृपा ते सब कांन वनि आवैं । मनभरि अर्थ धर्म्म काम मोक्ष आदि दै जोई जोई मामै सोई सोई पावैं । वृंम्हरूप हरि विस्न प्रजापति अगिम निगम गुन जाको यह विधि गावैं । राजवहादुर चहत लहत महा मोद उपजावैं ।।२३२।।

श्रीधर-स्तुति : **भैरों-चौताला, २ अ**

आनंत ब्राह्मांड नायक परब्रह्म श्री श्रीधर महाराज । कृपासिंधु भक्तिपाल सुषकर रक्षक मेरी लाज । जह विनती कवूल कीजै तुम जग सिरताज । श्री लक्ष्मीनारायण राजवहादुर के पूर्ण करौ सब आछे काज ।।२३३।।

श्रीनिवास-स्तुति : **भैरों-चौताला, २ आ**

प्रसंन्य होहु श्री श्रीनिवास अभय वर देउ । वानी सरस्वती हृदयैं श्रीपति रोंम रोम दास भाव ग्यान संतति सनेहु । दीनवध दयासिंध पतित पावन दुष दरिद्र हरि लेहु । राजवहादुर पै नित नित घरी घरी पल छिन कृपा दिस्ट करि देउ ।।२३४।।

श्रीपति-स्तुति : **भैरों-जलद, ४ आ**

चरन सरन तन मं पात आ (पालय) त्वं श्री श्रीधर । राजवहादुर प्रनत जन कों कृपा करु चक्रधर गदाधर ।।२३५।।

श्रीपति-स्तुति : **भैरों-जलद,४ आ**

श्री श्रीपति महाराज प्रभु तुम्हांरी कृपा ते सिधि होत मम मन के कांम । राजवहादुर के त्व दाता राज अचल धन धन दूजै नित्य आनद जांम ।।२३६।।

लक्ष्मीनारायण-स्तुति : **भैरों-जलद, ५ अ**

भई है कृपा मोपै प्रभु लक्ष्मी नारांइन प्रभु की अधिक वर । राजवहादुर के मनवांछित ते फल पावे सुष उपजाय आनंदकर ।।२३७।।

लक्ष्मीनारायण-स्तुति : **भैरौ धीमा-तिताला, गीत-अंग चतुरंग, ५ अ**

परमात्मा जीवात्मा तु अतंरात्मा श्री लक्ष्मीनाराइण जग व्यापक। संगीत नाद ताल सकल आपु त्तकिरितकधिधिकिरितक धुंडड तक जगनग नगधुमकिरितकधा गुप्त आपु ही व्यापक। सप्तसुर संपूरन तुम ही पमां रेरेरे रेरे सा सानी धप मा गरेसा तुमही जप जापक। तीअँय तीअँय आ सब तुमही राजवहादुर परम पुरिष श्री श्रीधर साहिब ध्यान आपु ही ध्यापक ॥२३८॥

नारायण-स्तुति : **पूरबी-चौताला, ६५ अ**

देषीअत दरवार जलाल वपु तरुनी अग्र हू ते भारी। हरिविरंच सुरपति सुरगनपति कर जोरि जोरि सोहै दंड धरी। जोई गात सोई पावत इछ्याफल अस्टासिधि नवनिधि सुरमुनि नरनारी। नृप नारांइन चक्कवै चतुर्भुज राजवहादुर चाहत कृपा तिहारी ॥२३६॥

विष्णु-स्तुति : **रामकली-चौताला, १४ अ**

वृम्ह भगवान विस्न नरोतम नाराइनि जपो नित्य तुअ नाम। वासुदेव गरुडध्वज कमलापति राजवहादुर कौ दीजै कल चारौ अभिरांम ॥२४०॥

शिव-स्तुति : **भैरौ-जलद, ५ अ**

विस्वेस्वर विस्वंवर वीरेस्वर वीरभद्र विस्वनाथ गौरी धर। गावत ही तुअ जस राजवहादुर पायौ अचल हावर ॥२४१॥

इन्द्र-स्तुति : **केदार-सूरफाकता, १६७ आ**

दंहू दिसि जीति लई राजा पुरदर सुरिंद्र असुरनि सौ छिति प्रभु भुज जोर। ऐक तौ इन्द्र दूजै वज्र तव कर सम कौन तेरे करि सकै तू ही तक्कत राजा को ओर। सव के जान तुमं आपु वली महावली अरिगन के दरन तेज तुंग अति तोर माहा माहा दीजै राजवहादुर की जह विनती सकल मनोरथ कीजै मोर ॥२४२॥

सूर्य-स्तुति : **पूरबी-चौताला, ६५ अ**

श्री मारतंड प्रचंड वृम्हाड मंडन तिमिरहरन त्रभूवन कौ। चंड करि भासमान अर्क आदित्य रवि ऐक चक्र रथ रूढ ईस जगत कौ। वल प्रताप अघ आप संघार करता ग्यांन वान धर्मदान सुषदाता तिनि कौ। राजवहादुर कौ दुषमोचन मोद भरन पूरन करत प्रन(त) मन को ॥२४३॥

हनुमत्स्तुति : **भैरों-तेवरा, ५ आ**

वाइपुत्र महावलंद ससी समांन निषंडनं श्री रामदुत प्रनांमिहं। वैरीनिषंडन दनुजदंडन भक्ति वरन जानामिहं। वज्र अंग गदाधरं हरिभवित ईस वरामिह। राजवहादुर सरण तुअ प्रभु चरन कमल भजामिह ॥२४४॥

विन्ध्यवासिनी-स्तुति : **भैरों-तेवरा, ५ आ**

आदि तू भमानी जै जै सकल जगरानी मांन सममांन दे विद्यावुधि वांनी। करत दरसन होत प्रन्य (पुण्य) कलक सकल गऐ इंछा पूर्णन मनोकामनां वरदांनी। तकिटि

तकता किटि किटि तक धिलांग धिलांगि धिलांगि धाती आती अैयआ तीआ तीआ राज वहादुर पै प्रसन्य ह्वी विदेवासिनी सकल गुन की षानी ।।२४५।।

गंगा-स्तुति : **ललित-चौताला, २५ आ**

जै जै गंगे त्वगांमिनी अघहारनी विस्न पादोदकी अरु धर्मदानी। उजिल वरन यातें उजिल करत जन कौ जंह्‌ गांनी सुरनर मानी। अवढर ढरनि सरनि असरनि की जगतारनी जगरानी। राजवहादुर सेवत तूअ चरणाम्वुज सव सुष की पानी जानी ।।२४६।।

व्यास-स्तुति : **पूरबी-चौताला, ६५ अ**

पारास्वरी सुत तुम जगवंदन हरी रूप धरन वौहौ विधि सास्त्र करन। वेद भेद करी वेदव्यास मुनि राजवहादुर तुअ सरन ।।२४७।।

नाद : **मालकोस-चौताला, २२७ आ**

अगिम निगम अगोचर निरंकाल नाद सरूप तामै अगरंग तरंग। गीत प्रचड धारू छुआ मढा त्रेवर तिलोना गाइ धुरपत कवित अधिक धनी तीआईआ चतुरग। निरौस्टक चतुराष्टक मनि मलिपति द्रुवनिचद निपरजा जोगी कट रागसागर राजवहादुर गायौ अंग ।।२४८।।

नाद-महिमा : **अडाना-चौताला, १६५ आ**

जनमनि आवै न पावै घाट नाद कौ जहू ऐतौ सुनि नर। जाकी वडाई करै सुरमुनी साक्षात व्रंम्ह रूप अरु व्यापत हीअ घर। जाकौ जेतौई घर ते तोई भरत आप पुरन सुधा सौ सागर। राजवहादुर कहत नाद की वात साच मांनि श्रवन धर ।।२४९।।

संगीत-नादनगर : **कान्हरा जलद-तिताला, १८७ अ**

नांदनगर ऐ तामै करत राज राजाधिराज जाकर सुरपति जै रूप भरै। श्रुतै मूर्छना ताल लै रूप पचतत्व जाकौ षटराग षट अग ग्यान नैन करै। सप्त सुर सप्तनाडी तीनि ग्राम गुन लाग डाट चतुराई गमक वानी गंभीरिता की गरै। आरोही अवरोही गज चढि गीत लै उनचास कोटि तान वसुधा कौं वस करि राजवहादुर मोहन नाम धरै ।।२५०।।

संगीत : **कान्हरा-तेवरा, १८७ अ**

अकार सप्त सुर सपूरन श्रुति मूर्च्छना उनंचास कोटि तांननि सौ गाअौ गुनी। जे वरन सुंदर सुध राग सुध मुद्रा दोष रहित विस्तार करहु या विधि कहत राजवहादुर जे गुरनि के मत सुनी ।।२५१।।

नाद-विचार : **भैरों-चौताला, ५ अ**

जो जानै नाद कौ रूप तौ वोलि नाही तौ मौन गहु। संगति की तांन लै गुरनि कै मत की जेते भेद जांनी राजवहादुर तव जग जीवन पद लहु ।।२५२।।

स्वर-विचार : **भैरों-चौताला, २ आ**

कौंन सुरनि सौ कौंन राग उपजै सहाइक मधिम कौ करत विचार। सुरनि की गति अपरंपार गुरनि सौ पावै जो सो रे सरेग मप धनीसा नीधपमगरेसा तव लैवै सुढार।

आरोही अवरोही सुरनि की उलटि पलटि अैसैं लैत राजवहादुर श्रुतै मुर्छिनां सहित करत विचार। सारेग सारेग रेगमरेगम गमपा गमपमधमपधमप पध पधनी पधनी धनी साधनीसा सनीधपमगरेसा तेवर मधिम सुकुमार ।।२५३।।

आदर्श गायक-लक्षण, संगीतज्ञता : **मारुओ-चौताला, १०१ आ**

सव मिलि विचार लेउ जह वात कौ सुधिताई सुर अछिर तांन राग की संगति मै ढराने मुरनि सों ढरै तव कहीअै वाकौ गाइक। और उक्ति जुक्ति कावि मै धरै अनूप्रास सौ धुरपद वनाइ गावै सुनावै अैसो जु होइ सिस्ट स्रवन सुषदाइक। सुधि वानी लीये अलाप करम करि दिबावै वौहौ भातिनि सो राग गाइक। या गुन कौ गाहक जाननि मन जान राजा चेतसिह जू वौहौनाइक ।।२५४।।

गायक : **अडाना-चौताला, १६५ आ**

सुध मुद्रा नीकी वानी गाउ संगीतमत भरत हुनमत प्रकरण। अरे अरे वर 'रागारणव', 'संगीत रतनाकर', 'सगीत दर्पन' के वधूधति अनूंसरण। ऐ तौ आवै तव हौवै गाइक वाहों तो परममूरिष ऐ वरन राजवहादुर ते गुंनीजे ना विस्तार करै जाही ढण ।।२५५।।

गायक (संगीत)-लक्षण : **गौड़ मलार-चौताला, २८१ आ**

तव वे गावै गीतनाद के जेते अग जानि भरत हनुमत के मत के। जव रूप राग को साचौ मानीअै तव देषीअै प्रभाव सकल नैननि ते गुन गथ के। अरु सुनि मोहै भाति भाति जीव जंतु जेते तरे गलित सिला पर्वत के। राजवहादुर अैसौ गुन जानै ताकौं कहीअतु नायक नाद सत के ।।२५६।।

वसन्त : **हिन्दोल-चौताला, २५१ अ**

आयौ वसन्त वन उपवन फूले सव याते कहायौ रितुराज। कोकिला करि अलाप भमर गुज सुर त्रिविधि समीर नीस तूअ करि समाज। लता तरुनी वसन पल्लव वहुरंगनि पहिरै भरी वीनां मध लाज। राजवहादुर श्रीपति कै सौहै षरोन्है सव सुष साज ।।२५७।।

होरी : **गौड-धमार २८५, अ**

षेलत होरी फागुन मे रचो वरषा सुघर कुवर नदलाल। घन सम डफ धुकार गरजावत वरसावत रंग वडी वडी वूदिनि कोकिल सुरतें रिझावत हैं व्रजवाल। अधर दसन दांमिनी सी वैहैसत (विहँसत) जुगनू सो भोडर चमकावत है चतुर रिसाल। ग्वाल वाल सव सग लीअै राजवहादुर कौ करत निहाल ।।२५८।।

होरी : **ईमन-धमार १२७ अ**

गाइ नाचि वजाइ रिझैहों पीअ तुमकौ रची होरी। कुचनि कौ कुमकुमा उर विच लैहौ मुष सो माडिहौ रोरी। अधरनि अ जन जावक लिलाट पलकन पीक न थोरी। राजवहादुर मन की करिहौ मदनमोहन वरजोरी ।।२५६।।

होरी : **ईमन कल्यान-होरी, १२२ अ**

फागुन मास में धूम मचाई गाइ तान सुथरी सुषदाइक । कर लीग्रे डफ गति नीकी वजावत संग सषा जन सषी मनभाइक । अपने गुमांन भरौ काउ की न लाज मानैं व्रज लगवारो रस लाइक । सकल गुननि में दच्छ रंगीलौ राजवहादुर नाइक ।।२६०।।

होरी : **हमीर-धमार,११५ अ**

अज रंग वरषै पिचकारिनि सो षेलत नाइक राजवहादुर होरी । उडत अवीर गुलाल लाल सुष वौहो छवत नाचत गावति सोभली सुंदर गोरी । चहल पहल चांचरि की माची सव सघन पौरे पुरषोरी । डफ धुकार वाजै म्रदग नीके तानपूरा वीना रवाव ताल की जोरी ।।२५१।।

होरी : **पूरबी-धमार, ६८ अ**

चढी अटारिनि दौरि दौरि षेलत कौ होरी । प्रसन्न वदन मुषचंद सोवैं हसत कर लीयें अवीर की झोरी । आनत देषौ व्रजवीथनि सौ मुकुट लकुट गरे चदन षौरि लगाये । म्रदंगवीन डफ झांझि वजावत सग ग्वाल लीयैं धूम मचायें । इत राधा इत कुवर कांन जू दोउ जोरी मिलि फाग रचाये । नंद जसोमति राजवहादुर अैसी चाचरि वरसाने मे सुरनर मुनी मन ललचाये ।।२६२।।

होरी : **भैरौं-धमार, ७ आ**

षेलै लाल गुलाल लीयें कर दोउ मुष मीजत जुवतिनि के । ऐक सकुचत ऐक रोकत राजवहादुर ऐक कहत तोहि लाज नहीं हरि दिन के ।।२६३।।

प्रियाजू : **ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ**

तेरौ री गुन अपार कैरै के कासों वरनी न जाई । ऐक चितवनि में मनवस कीनौ राजवहादुर त्रभूवनपति व्रजभूषन वौहौनाइक के जातें सवति सव जेर पाइ ।।२६४।।

अधीना : **श्री-चौताला, ११० अ**

कठिन गुन मन जो राषै ललनकौ सोइ सुघर नारी कहावै । जोई जोई कहै पीअ सोई सोई करै मनभावत प्यारी सुहागिनी राजवहादुर मोहन कौ सो भावै ।।२६५।।

दक्षिण नायक : **ललित-चौताला, २५ आ**

जागे अनुरागे आऐ अब लालन वहुत दिननि परमंदे । झूठी झूठी सोहैं षत अंग अलसात भरि रहीं नैंननि नीद घेरे । वेनी उपर लपट लपट रही कपोलन कहैं देत है तेरे । राजवहादुर मोहन मो मन आऐ छूवन न देवैंगी नेरे ।।२६६।।

विरहिणी : **ईमन कल्यान-सूरफाकता, १२१ अ**

पीअ प्यारे कौं पाउ तव हीये लाउ अति सुष छाउ । रही न जात मोसों उन विन ऐक घरी पल छिन कहा करौं मोरी सजनी कहां लग जीव तरसाउ । मेरे जांन वे निपट प्रवीन चतुर सुंदर गुन सागर काम रूप देषै तै कैसे नैननि को समझाउ । महाराज नृप राजवहादुर कृपा करें तव आनंद पाउ ।।२६७।।

जगतसिंह (सवाई प्रतापसिंह)

प्रशंसा : **खंमाइच-धीमा (ख्याल)**

सुहेली आली जारी छवि म्हानैं भावैं छै, निरसि नैन सुष पावैं छै। रंग भीनों महाराज जगतसिंघ कृपा करि म्हारे मैं है लों आवैं दै। कूरम कुल मैं मान उदै हुओ जारौ जग जस गावैं छै। सवाई प्रताप ताप सुत छूअ जौ अटल रहौ पाता प्रीति निवावैं छै ॥२६८॥

यादव-नरेश

प्रताप : **षट-झपताला, ५८ अ**

कौन तोसौ लरै कौन धीरज धरै कौन सनमुष अरै तोसों जादों नरेस। चढत सजि सैन सुनत जह डका राउ राजा तजि भजे गढ देस ॥२६९॥

प्रशंसा : **टोडी-झपताला, ६५ अ**

सुतेरी कीरति की कथा कथा ते जा भूअ पर जेते रहै गुनी। आप औतार विस्तार परम पार सप्तदीप दधि पार सुनी। जादों नरेस अवतंस कृस्नवंस जाकौ ध्यान धरै सुरनर महामुनी। रतनपाल कल्पव्रछ कलजुग रचौ जाकी सेवा कर जौरै दुनी ॥२७०॥

यादव-वंश : महाराज गोपाल

प्रशंसा : **टोडी-झपताला, ६५ अ**

सुजस जगमगि रहौ देत गज तुरग नग लाल। देस देस के गुनी गंधर्व आवत पावत मुक्ता माल। अपवली तपवली दांनवली धर्म की धजा कवि होत निहाल। कहत साहिब जादों वंस चरंजेवी रहौ महाराज गुपाल ॥२७१॥

नवाब अमीर खां

प्रशंसा : **सारंग-चौताला, ७१ अ**

सरस प्रताप तेरौ सूरते सकल जग सांचौ है समुद्र सौ सिमिकि सिमिकि सिधारि लीजै ताकौ दरस। वाकी दिन जोति तूअ निसु दिन जोति रहै अव भर्म अस्टौ जांम रचि पचि भली बुरी सब लेत फिरि तूअ गजहै रचि पचि लैत कंठ नव है छरस। वाके लषि कमलनि के अुष कोलज तेरे लषि कज चदुमुषी नैंकें सुष कौ लाज गेजापति तेरे न उगै करिहौ परस। वाकैं गैहै रहौ तूअ गैहै तज नावत अैसैई सदा राज करौ नवाब अमीरषां जू मागत अंछ्या 'अछ्या वरस' ॥२७२॥

नवाब गैरत खां मुर्त्तजा अली शेरेखुदा

ईद : **टोडी-चौताला, ६४ आ**

सुभ दिन सुभ धरी सुभ महूरति सुभ नषत वषत वली तुम जु मुवारष होइ ईदि सौ सै जुग भरि। चाइनि गाइनि गावत अधिक वजावत निर्तकै निर्त करत ऐक असीरवाद

देत चर चरजीव हो कलपतर। पुनि सव सुषा दीनौ अनैंग भातिनि वौहौ गज तुरगवर। वानी तिहारी जे हरि चरजीव रहौ नवाव गैरतिषा मुर्तजा अली सेरे षुदा तयवर औरनि कै ईदि तुम्हारे हज्ज अकबर ॥२७३॥

बीरनारायण

प्रशंसा : **मालसिरि-चौताला, ८३ आ**

वालापन गायौ तरुन जायौ जव थोरे थोरे भयौ गज मे मत। ग्यांन महावत सकुच अंकुस लियैं घूघर पट अधिरी जव षुरि लाकी नारि सूंनी देत। कुभ कीला चौकी पीठि कसी ऐते पर साइर संत। सव सखी मिलि महां लै आई जाहा वैठौ राजा वीर नाराइन प्रतापवंत ॥२७४॥

खान सुजान ? सुरज्ञान खाँ ? सुजान खाँ ?

शृंगार : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १७८ आ**

लिलाट केसरि षौरि चंद्र की आकृत तामैं मोंहैं धनक नैंन विसाल श्रवन कुल (कुंडल) सौहत गैहैनै भुज पर द्रस्ट परत प्यारी के स्यांम तार तान की मानौ अधनैं लेत भमरु भमरि। सदर वाकैं हुदै कमल कुच कमलनि की वनी करहार कर कमलनि द्रोन लछिन भरौ पीअ मिलिवे कौ तैं वचन चुवत अधर लागत मन रग भमर। श्रुती सेज विश्राम गज चाल चलत कांमिनि जग जुगल कदली झझी आकृत कीयैं तामैं दोहा लैं लगनैं आछौ दिल दीअैं दिलावर। षान सुजान प्यारे पीअ जंवत लगनि लागी री पीअ प्यारे चौंहुर टूटैं छूटै ऐ मानौ कांम जीति ढुरै चमर ॥२७५॥

चकता नवाब

मंगल : **षटमंजरी-चौताला, २६२ अ**

निअै गुननिधान पैहैलै समांन आ भुअ मंड जमि रहै राजकाइम तैरौ रहै जौ लौं उदै भांन। जा कलजुग मैं का प्रकाल अैसौ नवाब चकता सु धरनि मुरनि प्रवान ॥२७६॥

नूरसाहि

रूपशोभा : **गौड मलार-चौताला, २८१ आ**

करि मंजन प्यारी ठाढी चौहोर पवन लेत लागत अैसे जैसें जलधर की घटा उनै आई। लाल जरद वस्तर सोहत अंवर तामें हरी कोर धमक कैसी दामिनि चौका चमकनि भारी। अैसी कुच स्यांम तासी देषी नांहि न मानौं विभि गिरिवर पर घूमरी धाईं। पौहौप माल और वगुला सी वरवर लीनैं साहि अचानक नूरसाहि कौ अ कौ भरि लई याते रंगमहल रंगमूरति उमगि कांम की चौप वरसै वडी बूंदिनि दिन दिन नई नई ॥२७७॥

नवलजस खाँ

वर्षा-मंगल : **सुध मलार-चौताला, २७५ अ**

विसांति कीनी भुमि हरिआई तामें वीरवहौटी सेज वनाई तामध आनि वैठे मनराज। वादर मत मतंग दौरत झपटत नौबति भई घन गाज। कोकलनिकी कूकनि पपीआ करत सोर(आ)ज, हसत षेलत तषत वैठो नवलजसषां प्यारौ अंचल रहौ ध्रुवराज ।।२७८।।

नवललाल

दूतीवचन, मानिनी से : **संकरा-चौताला, २३७ आ**

धरीअं जू धरीअं महल पग धरीअं पीअ मग जोवत प्यारी। चित्र की लिखी सी वल कैसी कह वैठी हो जू नव सत साज तन भूषन सम्हारीअं जू। कहौ री निहोरि हारी सोंहै कर जोरि षात चित धरि और न विसारीअं जू। 'सिभू' नवललाल रसिक पीतम प्यारे उठि चलि हिलि मिलि वचन न टारीअं जू ।।२७९।।

उदयराज नवललाल

वर्षा : **गौड मलार-चौताला, २८१ आ**

नीर भरे नील वरन नीरधार धरि समीर धावत ज्यों माते गज पगवदन (वधन) तोरैं। वगपंथ मतदेत धुरवां सोई सुंड डंड वलकत मगजोर हृत वरषत घन घोरैं। दामिनी की दमकनि चरषी सी लागत पिक चात्रग मोर करैं मज सोरैं। उदैराज नवललाल पीअ के समीप वाढे हरषि हरषि धवल अटा षरकत मन मोरैं ।।२८०।।

फकर खान

संगीत : **केदारा-चौताला, १६५ अ**

सुध सुर लेत प्रथम अति फुनि सांचै अलापत ठीक तांन लेत सुरवूडि उठावत सुघर धार रीति गाइ रंग करत। हांक डांक दपटि गांम गावत तीषे मन तिषी नीकी ताननि पर जाइ होत उमगि परत असूझ उठावत गुरनि धुरनि धावत धक धक धकार धमकि धाम धूंम परत। अया अपाकरत सकल जग के विद्याधर देषत दरस गरै की हो फुनि निपट पौहौंच दोउ षरज नीकें हो रंग करत। फकरषाने कौ घरी घरी पल पल छिन छिन मन हरत ।।२८१।।

वीरम साहि

प्रशंसा : **दरबारी कान्हरा-चौताला**

हौ राजा वीरम साहि साहि वीरम तुम्हरौ दरगुनी जन सरद फुनै लेत जिनिकौं सकल कला जीवन भीनरौम साहि। भरत मतंग के नर जगनाइक है सुरति मूरति व्याप तान पावत ऐक छिन मैं सु तुम पै सरस ।।२८२।।

भारति साह

प्रशंसा : **ईमन-चौताला, १२ अ**

तू नैनानि मिलिकै प्रान रिझावत मोहन मूरति वलमा कौ । और जो कोउ कवहूं कवहूं दरसन पावत दूजै घरी घरी पल पल छिन छिन परभात । प्यारे के जीग्र की हौ नीकै जानत प्यारी अव जानत जाये कहा कछू वाहिनै वनावत । रुद्रावती भारत साहि उजारे की अरधगी रुद्रानी रुद्रावत ।।२८३।।

साहि विक्रम

प्रशंसा : **ईमन कल्यान-चौताला, १२० अ**

नागा तू है गुन पटितर को नांहि नै आन । जैसी साहि विक्रम के मनमानी सकल गुन निधान ।।२८४।।

परिशिष्ट 'आ'

ध्रुवपदकारों की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद

(रागमाला से संगृहीत)

बैजू की रचनाएँ

भगवन्महिमा, प्रबोध : **सोहनी-चौताला, २३३ अ**

अगम निगम नेति नेति करि गुन गावत गोविंद के ऐ नर गुरनि की साषिबानी। साषि सुनत नाम रटत ध्रूअ प्रहैलाद ध्रूअ धरनि अकास पवन पानी चद सूरज नेत्र नाराइन के उग्रत उदित उदार अभिमानी। सहश्र सुष सेस कौर स्वास नही समाधान सुमेर सरस्वती रसना रहना करि ध्यान धरन सुषदेव जती जोगी जंगम सिद्ध चौरासी बुधि उर आनी। आंनन बरनन करत नाम अनत अनेग रूप ऐक ब्रंम्ह बैजू के प्रभू परमात्मा जीवात्मा भरन पोषन करते सुजदानी ॥१॥

प्रभु-महिमा : **अल्हईआ-तेवरा, ४२-अ**

जंह रंग मों लाऐरी जाके द्रुंम द्रुंम द्रुम द्रुम अवजु मोती पर मांलरे चंपे। अस्नांन ताइन मन रचौ बलवंत बैजू बावरे जाकी कीरति कमला सिस्ट उपर रचौई चपे ॥२॥

ताल-स्वर के भेद : **देसकाल-सूरफाकता, १८ अ**

तार सुर के भेद गुनीजनि की संगति करै तौ कछू पावै। सीषत सुनत रहत निसु दिन सदां ढरनि मुरनि मुद्रा प्रवान सों आवै। आपुही गावै आपु बजावै तार गिनत के बैउरे (ब्यौरे) समझावै। बैजू के प्रभु रस बस करि लीनें रीझि रिझावै ॥३॥

नाद-विवरण-निबन्धन, नाद-प्रभाव : **बड़हंस-झपताला, ८५ अ**

साधंन करते गुनी जन जेते केतौ नाद केतौ ब्रम्ह (वर्ण) केती अलंकार। कौन ढरनि कौन मुरनि कौन सुर कौन तार जेई बैउरे (ब्यौरे) न्यारे न्यारे बाधे विचार। रचि गऐ पचि गऐ ब्रम्हा वेद महेस काउ न पायौ पार। बैजू के गाये तें भूलि गऐ सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूडि गऐ तार ॥४॥

इतिहास : **भीमपलास-चौताला, ८६ अ**

पार किनिहू न पायौ दूजैहू पंडित कहायौ धुरपत गीत गुनी मरजीअउ न गलायौ। सात गुपित सात प्रगट नाइक गोपाल गायौ ब्रंम्हा वेद उचरायौ सारग बौहौरायौ गर्भधारी (गर्वधारी) गुनी उलटि बार आयौ। देस देस के जुरे गुनी सकल सिस्ट महामुनी तेउ पचि गऐ तिनि पाहन पिघिलायौ। कहें बैजू बावरे सुनौ हो सुघर नर जिनिही मिलौ तिनिहीं लुकायौ ॥५॥

इतिहास : भीमपलास-चौताला, ८६ आ

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल। रंगमहल मे दोउ जुरि बैठे रीझि अगनि दई माल। सात गुपति सात प्रगट चौदह डांडो बाधि आऐ नाइक गोपाल। बैजू के गाये नें भूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूडे ताल ॥६॥

गुणसागर : ईमन-चौताला, १२२ आ

प्रथम गुन सागर अप्रंपार, तन जिहाज कर, ता मध बीन चुनी नग अछिरे भरे आंनि। घट कूप चोंप चाप प्रवेट धारु धुरपद उपज लेत लगर बुधिवान। केतौ ग्यान केतौ ध्यांन तजि कर्म धरै ध्यान करि सुमिरन साउधान। कहै बैजू बावरे सुनो हो सुघर नर नाइक गोपाल तजि अभिमान ॥७॥

नाद-परमेश्वर : सोहनी-सूरफाकता, २३३ आ

प्रथम आदि सिव सक्ति नाद परमेसुर नारंद तुबर सरस्वती मन अईआ। अनहद आदि नाद गुनसागर सरूप ब्रम्हा विस्न महेस लगि मुनि अईआ। आदि धरनि सेस आदि चेरा सूरज आदि पवन पानी अन्न धन्न मन अईआ। आदि बैजू कवि गुन प्रकास या तै सुधि बुधि अछिर अति गति धन अईआ ॥८॥

अनाहत नाद, तीन ग्राम, इतिहास : केदारनाद-चौताला

गुर प्रसाद नाद धुनि सुनि रे। पाच तत्त पाच मूल पवन पानी गावै नाद गुनी रे। अनहद नांद उचार करत है तीनि ग्राम पर चित धरि रे। नाइक बैजू पाहन पिघिलायौ मोहे म्रग नाद ससि कुनि रे ॥९॥

रास : सोहनी-चौताला, २३३ आ

ब्रजवनिता बनि बनि आवत भुषन सजि समुह ग्रह ग्रह तैं मुरली की धुनी सुनि प्रांन प्यारे। तजो लाज गुरजन की को जावै लगनि मन की तंन की तपति बुझी दरस परस देषै तैं तिहारे। इक टक रहो निहारि मुगधा गौमारि मुगधा आइ रास मडिल मडि बीच बंसी वट पर बिहारिनि बिहारी बिहरै। बैजू प्रभु बदन चद निर्त करत नद नंद भई छमासी रैनि बाजत मद बैनं विमानहू थाकत भऐ देव पुस्प बरषा करत होत नही उदै भान उडगन निहारे ॥१०॥

गोपाल की, अथवा उससे सम्बद्ध रचनाएँ

संगीत : मालसिरी-पटिताल, ८३ आ

राजा नांद कत निहांल अरे नर बल विक्रम सुजांन जे आदि ताल गजल गीत धृपद आंन। सर्व अंगनि जोति लीऐ धुर नितांन तांननि ओट गढ गाढंत रे अछिर साधि धरनि त्रवट या प्रसाद पर निसु मांन। तपस करंत कौंन ग्याता रे सपूत सुर और ग्राम तिनि के करत विवेष वीन। भनत नाइक गोपाल तूअ गान अपरंपार वौहो निस्तार पावै होइ परम सयांन ॥११॥

संगीत : **बागेसुरी कान्हरा-सूरफाकता, १८९ आ**

भेद सों भेदनि गाइ बजाइ ज्यौ जाननि के मन अति भावै जब पच सुमित्र ऐक मित्र मित्र मिलावै जब अछिर धरन मुरन प्रवान सौ आवै। एक अलाप दूजै तान गावै तीजै तान तार सप्त मान पगावै। प्रकति सौ प्रकति मिलावै विद्याधर नव तवही पावै। जोती सरूप सौ ध्यान लगावै जब नाइक गोपाल परम सुहावै ॥१२॥

भगवन्त की रचनाएँ

सखी-वचन, नायिका : **अल्हईआ-जत, ४३ अ**

तेरी दुर डोलाने प्यारी बस कीने कुज विहारी। राजत अरुन अधर के उपर मनो मदन फदवारी। जनु कीर गहे तारागन कों सुनि चौरस के नहि डारी। मंद हसन दसननि की या छवि दामिनि की उनिहारी। भगवत गुपाल के चित्त वसै मल ऐक टरै नही टारी ॥१३॥

श्याम-छवि : **मुलतानी आडा-चौताला, ६३ अ**

ना टरै री मो मनतें मन मोहन मूरति स्यांम। मोर मुकुट ऐरी मकराकृत कुंडिल और बनमाल गरे। बनते आवत गावत है सिर मोर पषांन धरें। देपि देपि ऐरी छविरूप अनूपम मन मय लाज करे। श्री भगवंत निहाल करें निस वासर ध्यान धरें ॥१४॥

नयन : **गोरी-जत १०७ आ**

अंजन सान धरे तेरे द्र (ग) बान बिसारे। ब्रम्हादिक सब पार न पावै, ते इनि सुबस करे। कंज गुलाब करे आव लई अग षजन फद परे। मोहन मोहन हार रचे जे सब विधि छवि अगरे। भगवंत कहै नंद नंदन के निस वासर चित्त अरे ॥१५॥

स्तुति : **ईमन-चौताला, १२५ आ**

पारब्रंम्ह परमेसुर बिस्न भगवंत मदसूदन मुरार मुरली, धर कमलनैन केवल कल्यांन राहि। धनि धनि स्यांम धैनि चत्रभुज नरहर निरोतम बसदेव बीठल मुकद नाराइन गज तारन गगाराम बाल राम वामन परसराम बामन सीतापति रघुवीर रामचद्र राधारमन जिनिहू जइ लघु लापों के प्रभु कृपा कीजै भवत बछिल द्रोपती की रछिया करी आपु आऐ ॥१६॥

तानसेन की रचनाएँ

गणेश-स्तुति : **भैरों जलद-तिताला, १ अ**

तुम हौ गनपति देवा बुधिदाता धरै सीस गज तु ड। सिधि सिरी नाम तुम्हारौई कुहीअत जे विद्या धरे गुनी तीनि लोक मध सप्तदीप नवषड। जोई जोई धावत सो फल पावत चदन लेप करै भुज दंड। तानसेनि प्रभु तुम्हारौ कहावत कासौ जा लग सुड ॥१७॥

गणेश-स्तुति : **भैरों-इकताला, ११ अ**

जै गनेस जै गनेस जै गनेस देवा। मन बुधि हित चित लगाइ करौ नित सेवा। ऐकदंत दयावत चारि भुजो भारी। मस्तक सिदूर सोहै मूसे असवारी। माता वाकी

गवरि कही जै पिता महादेवा। तीनि लोक ध्यान धरत नित करत सेवा। अ धनि को नन देत कुस्टनि को काया। बझनि को पुत्र देत निर्धन को माया। भालचद्र सिव विलोकि देव सकल बारी। तानसेंनि गजानंद गावे सुभकारी ॥१८॥

विष्णु-स्तुति : **ईमन-सूरफाकता, १२४ आ**

गोवरधन ग्रधर (गिरिधर) गुपाल गजाधर (गदाधर) गरुरापति गरुरगामी गोविंदे गोपीनाथ कृस्न केसीरलन काम करतार कूरंम केवल करुनानिधि कुंजबिहारी कांन कदन किशोर। जोग ध्यान जोतीसरूप जनारंजन मुकुट माधौ रगनाथ रपीकेस (ऋपीकेश) रनछोर। पारब्रंम्ह परमेसुर परसोत्तम प्रैहैलाद उबारन महाबली जोर। तानसेनि कौ प्रभु भक्तनि रछिकरि अधम तरत है चितवत कोर।।१९॥

शिव-माहात्म्य : **लछिमा टोडी-चौताला, ५६ आ**

काली सकर विषहारी, चद्रमा लिलाट भसम भूति जाके सोहे मुंडमाल नाग। हीओ रिधि सिधि लीजे पार्वती महादेव ऐक कर त्रसूल डौरु डंबर धारी। काम क्रोध बस कीये ब्रद (वरद) वाहन संग लीओं अैसे सिभू महादेव गंगा जटाधारी। ब्रम्हड लोक पतिन लोक तीनों लोक महादेव तानसेंनि कौ प्रभू कोटि जुक्ति लागी रहे तारी ॥२०॥

शिव-स्तुति : **भैरों-जलद, ५ अ**

महादेव सिव सिभू महाबली महारूप महापति मंत्र सुरगुइ सिंगी। गरे मुंडमाल भुज व्याल दयाल त्रसूल डवरु डंबकाहित बाजत पिनाक उपगी। बाघमर जौ भस्म डगबर जटाजूट सिर राजत गंगी। त्रईलोचन मोचन सकल जग वषववाहन राजत सगी तानसेनि कौ प्रभु पार्वती लीआ अरधगी ॥२१॥

सरस्वती-स्तुति : **भैरों-चौताला, १ आ**

महां बाकी बरदानी सनमुष दूजै आहूजै। जाई से त्रभुवन मानी जासै भमांनी जो जाकी मन अ छया तो पै सोई सोई पूजै। रिधि सिधिदाता मांता तूअ पग पाव छूजै। मागत है तानसैनि रचै पचै फुदै जहा तहा तान इस रीति आवत रंग सूजै ॥२२॥

सरस्वती, जालपा : **आसावरी-चौताला, ५३ अ**

तेरे तौ सरसुती घट घट भरि पूरि रही नांव धरौ बाकबानी। जलथल मे पूरि रही जलपा भमांनी जाई ते करीअत तोसौ सर्वानी। कोटि काठन में जांनी अैसो सप्त दीप नवषड जलपा भमानी। तांनसेनि को प्रभु प्रसाद दीजै दयानी मयानी भवानी कंठपाठ ठहरानी ॥२३॥

देव : **भैरों-सूरफाकता, १ अ**

साधौ विद्याधर ध्यान गनेस सुरुसती मांता करौ आदेस। नमो नमो देवा रिधि सिधि दाता काटत दुषदद करन प्रगास प्रवेश। जे धावै ते फल पावैं और जो होत गनेस। कहैं मीआं तानसेनि तीनी लोक में जागे ब्रंम्हा विस्न महेस ॥२४॥

विनय : **मारुओ-चौताला, १०१ अ**

जहां जहा जननि गाड धरी तहा तहां तुम भऐ हौ सहाई । इतनी कृपा करि ढील काहे करात अैसी जौ मोसों कराई । बूडत ते ब्रज राषि लायौ हे द्रोपती को चीर बढाई । तानसेनि को प्रभु अंछया पुजवत भक्तनि सदा सहाई ॥२५॥

प्रबोध : **ईमनी बिराउरि-जलद, ३८ आ**

तू जपि जपि रे मन रांम नांम जापे होइ कांम बनवारी स्यांम हरि नाराइन निरंजन। भक्त बछिल जगदीस गोसाई अनांथन नाथि श्रीपति सुदांमां दालिद्रभजना। दीनबंध दीनानाथ मनोहर कंसराइ निकंदन तानसेनि लघुविनती करते राधापति मनरजन ॥२३॥

अलख पुरुष : **केदारा-चौताला, १६४ आ**

जागै रोगी भोगी कहा जागै । मन सुमिरन ग्यांन ध्यांन रसना रटत जाकै, अग्न पवन सीत कहा लागै । सुर नर मुनि गुनी गधर्व ध्यान धरन है अनहद नाद आरागैं। अलष पुरिस की अव गति वरनी न जाइ तानसेनि प्रभु अनुरागै ॥२७॥

अलहनाम, शेख (सलीम) : **भैरों-चौताला, ४ आ**

मेरें तौ अलहनांम कौ अधार जिनि रचौ सिंसार काम क्रोध लोभ तजि जंजाल। जिनि रचौ अरस कुरस जिसी आसमांन निरंजन निरकार साची क्यों न जपौ परवरदिगार। जाही ते जह गुन गायौ सांचे तुम सेष बार बार कहें जाको नाम भुजवार। कहें मीआं तानसेनि पाक साफ रहीअै जाते जनम जीतव नाहिने बार बार ॥२८॥

शाह मदार-स्तुति : **ललित-जलद, २६ अ**

नूरी मन सुमिरन करि करि निसु दिन रढि रढि साहिनि साहि मदार । हौ तिहारे दरबार को जाचिक तुम अल्लाह हजूरी । जोई जोई धावत सो फल पावत न्यांमति देत भरिपूरी । तानसेनि प्रभु इतनोंई मांगत तार तांन सम पूरी ॥२६॥

गोपाचल, गुरु मकरन्द : **चौराष्टक जलद-तिताला, १८ अ**

गढ गोपाचल रे जाकी है कमला सन नारि कमला जाकी लाली लीये प्रथम औतार कीनो । तुम त्रईफन धर चारि वरन इनिके जतन जतन गुन तीनो । अस्तर जल पुसकर जल ताके चारौ कगूरा तीजे नीके लागत नों । दलसल कर गुर मकरद पर राग रागनी कीरति सुवासन तानसेनि को दीनो ॥३०॥

प्रताप : **परज जलद-तिताला, २०२ आ,**

जाकै दान थरथरात मेदिनी अैसौ वीरभांन कौ नंदन राजा राम वघैलो वीर । जाके चढत सेस कलमलौ अैसो प्रचंड बलवीर अपवली तपवली भागिवली दान किरबांन वली हद करनी साइरतीर, सप्तदीप लौं चरंजीव रहौ तानसैनि करै परदुष काटन पीर ॥३१॥

प्रशंसा : **मालकोस-चौताला, २२७ आ**

राजनि कौ राजा महाराजाधिराज चत्रदिसि विद्यानिधांन राजा राम । जोई जोई धावत मन अंछया फल पावत रचौ विधाता करन के जे काम । लाज को जिहाज

सिरताज गरीबनवाज गरीबनि की मनसा पूरन होत तेरै धांग। जेसरनि सरनि हरनि दुष दुमिनि कौ अब तांनसैनि लै गावै तेरौ नांम ॥३२॥

प्रशंसा : मेघमलार-चौताला, २७४ अ

गगन रौर दालिद्र भौ कौन हरै जौ निरंद के जीअ मै जौनं धरे। कहा भयौ जौ भरो छत्रपति नरेस, राम राजा कौ परसाद पाये विना विपति सागर कौन तारै तरै। बलि भऐ बैन भऐ सप्त (सत्त) हरिचंद भऐ जिनिकि कीरति कौन तारै करे। वीरभान जू कौ नंद काटन दुष दंद फंद विनती करत तांनसैनि डरै उत्तर दिसा ते पछिम जौ उगै भान दैवे को राम स्यानं करै ॥३३॥

राजा राम, सुलितान-प्रशंसा : ईमनी-बिराउरि, ३८ अ

राजा राग निरंजन देस निरजन मनि मतौ ग्यान गुन मंत्र भरे। जैसै जो विद्यागुनी जीअ सुप सुलितान धर्म पथ पग पाई धरे। तरन गऐ ते अटल करे भरे। कहे मीआ तानसेनि ग्रैसी सर कोउ नहि तिहारी सरवर कोउ नाहि करे ॥३४॥

अकबर-प्रशंसा : दरबारी कान्हरा-चौताला, १८० अ

धनि धनि धरनी धरै साहि अकबर जाकी जगत मै चली धुआई उदीआचल अस्ताचल। धनि धनि तुअ रानौ तूअ करतार राज साज दीयौ है तपत वषत अटल नर नरिंद जाकी सेवा करत जेउ भरे ते तजि गऐ है माल। तानसैनि कौ प्रभु राजत सदा दिनमनि मध मंडिल गढ गोपाचल ॥३५॥

प्रताप, मुहम्मद अली : भोपाली-सूरफाकता, १३५ अ

चारौ चक चकता लीए अकवर गहै समसर मरदान अली जमसेर। महमद अली की सेवा सुमिरन जौ उबरौ अबरे वली गर भेद। असपती गजपती भूअपती राजा साहि के दरबार रहत भीरा भीर। कहै मीआं तानसेनि धूअ जटल जेसे गग सुमेर ॥३६॥

प्रशंसा : केदारा-चौताला, १६३ अ

छत्रपती अकबर चरजीव रहौ जौलौ धरनि धूअ तारौ। करत सलाम टोरौ कुफर अधिआरौ हिमाउ कौ जगत उज्यारौ। दिनकरि प्रताप गैहैरौ गर सागर कल्प वृंछ छायो सुमेर हूते भारौ। करत असीस फुनेस सेस महेस अस्तुति करत तानसैनि लघु विचारौ ॥३७॥

प्रशंसा : ईमन-धीमा, १२४ अ

रचि पचि विरंच कीनो, लीनो साहि अकबर तीन लोक नाथ माथें करि धरिय भार मेरे गुन अधारनि अधार। नर नाराइन रागपसोई विचित्र धनि दीदार पाइनि पर संसार जुहार। गरीबनवाज लाज काज साहिनि सिरताज लाज कौ कीयौ विचारु। तानसैनि के प्रभु उनचास कोटि बसंत बसन बसंत कहि न सकत जलाल मुहंमद कौ औतार ॥३८॥

मंगलकामना, प्रशंसा : **हमीर-चपक, ११४ अ**

इक छत राज करौ सुपसचति संपति भूअ लोक पर सुभघरी सुभदिन महूरति आपवर तपवर जानि ऐकरनि वर। दसन दपटि और लका पर पोल कीनी हिंद लौं हद बाधी चारौ चक ऊपर। तानसैनि कौ प्रभु तुम वौहौनायक दीन दूनी मे जगत गुर अकबर ।।३९।।

मंगलकामना : **मारऒ-जलद, १०१ आ**

अन्हात जिनि बार षसै सोहत वर्न बार लों होये तुमको दोस्त सदा दुसमन पायमाल। इतनोई मांगत करता तुम पर जाउ क्रस्न जंजाल। दीरग आर्बल भूअ लौवै है चल चक्र वै चकता सब ही कौ प्रतपाल। तानसैनि असीस देत चरजेवी रहौ छत्रपती साहि जलाल ।।४०।।

कृष्ण-जलद : **भैरो-चपक, ५ आ**

कान्ह ओलरि आयौ हो बरसि बरसि रिमि झिमि रस बूंदिनि। मुरली की गरजन तपनि तडत मुसिक्यानि दसन ओप बगपाति ग्रीम डुलनि पौहौप गूधन। चहू ओर धुरवा से धरें तामे मोर चंद्रका इंद्र भयौ रस गूधन। तानसेनि प्रभु की अधिक झकोरनि भीजि गई बृजवनिता सहित भूषन फूदन ।।४१।।

कृष्ण : **दरबारी जलद-तिताला, १८१ अ**

केते बद छंद करत दुटौना बारे कान्हा सुंदर नद दुलारे तब बे बन घन जात ललारे तब वे षेलत न्यारे। भोर ही सै मिसु करि जात सौ कारे गोपिनि सौ मिलवत नैनं सैन तारे बहीआं गहत कूल कनारे ढूढत फिरत ग्वाल बिचारे। मुरली नाद साधि सब मोहे बिरद (वृद्ध) तरुन और बारे। गौरी इंद्र चंद्र ब्रम्हा रे तट छिन ते उतारे। तानसेनि कौ प्रभु कबहूं बालक कबहू व डारे क्रस्न कारे ऐहो अबगति तेरी अकथ कृपा रे ।।४२।।

लाल रंग : **मालकोस-चौताला, २२७ आ**

लोयन लाल चुनरी लाल बूटे छूटे सबुज लाल। गरै बीच हीरा लाल नासिका कौ मोती लाल पांय लाल प्यारी लाल सेज लाल। बाजूबद लाल लाल कर कगन लाल लाल चरन पाइं लाल चलत हैं मंद चालि। तानसैनि भूमि लाल ब्रज की सब गोपी लाल ता मध मदन गुपाल लाल ।।४३।।

गोपी : **सूहौ-धमार, ३४ अ**

लै चली हो गोरस बेचन तनक मटुकी और मधुरी बाल। तरफरात प्रात बिथुरी अलकै आननि पर और सोहै कुम्हिलानी माल। गोरस के मिस झूठे हूं डोलत ढूंढत फिरत गोपाल। तानसेनि के प्रभु सौ हिलि मिल अैन बैन चली गज की चाल (लै चली) ।।४४।।

गोपी-प्रेम : **आसावरी धीमा-तिताला**

मेरौ मन बौराइ राषौ इनि गोविंद बैननि, हौ पचि करि पछिताइ रही । वे जौ अंतरजामी स्वामी कहीअत है दीसे न परे चैनन । रूप ठगौरी मोहि ठगी जौ चले और फिरि हू न चितऐ सूधें नैननि । तानसेनि कौ प्रभु रस सागर गर सुनों बू दहू न देपी मेंन्हें चैननि ।।४५।।

ग्वालिनी : **मुलतानी-धमार, ६० अ**

ग्वालिनि घूघटवारी षेलन जौ आवै । और दिना होरी के गोरी अब किन लाज भंजावै । हमही पै तें लै गुलाल अरु हमारे मुषहि लगावै । सकरी पोरि लजीली ग्वालिनि मुरि मुरि बदन छिपावै । तानसेनि प्रभु रंग रगीले तारी दै दै नचावै ।।४६।।

विरहिणी : **जैत-चपक, १५६ अ**

कान तेरै बिन देषै गईयां काजर पीअरी धौरी धुंमरी दूबरी । और ग्वाल पैहैं-चानत नाही, अधरनि दसनि तिरन चरत जह पाय लीऔ है कूवरी । ऐकनि तजे बान ऐकनि तजे प्रांन ऐक रही सूपि सूषरी । तानसैनि को प्रभु वेगि ओमन कीजै कब दैहौ हेरी उबरी ।।४७।।

नायिका मुग्धा : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३८ अ**

उंचे चितै री तु नीचें चितै चितवत तूं निहारत लालन डर सौतिनि चितवत । दरस देषि दिस्ट परी रचि पचि प्रानेसुर सों विन सनीप (समीप ?) बिन रस बिनही अनुराग अति सुषु दैरी इतविता ज्यों ज्यों तू अमन ना मिलवत । पीअ सों सांची कहत तो सो वा उत डरवत । ज्यों अयानी ज्यो सयानी दोउ तजिहें गी तानसेनि प्रभु की प्रकति लीयें तुंअ काहे कों जोबन वितवत ।।४८।।

नयन : **गौर सारंग-चौताला, ७६ अ**

अैसे नैना अरुन वरन तेरे री पीअ सग जाये रग रस पाये । सेत सेत तारे कमल दल लोचन निरखि आंनन कुल त्यागे । पलक पपुरीआ सी मुदत चितवत ही मनों बान से लागे । पौहौप सरोवरि पानप पूरे तांनसेनि प्रभु अनुरागे ।।४६।।

कटाक्ष : **गौर सारंग-चौताला, ७६ अ**

त्रिबेनी उलटि वही मानों तिरछी चितवनि त्रीआ पीआ तन देषों त्रिबेनी गगा सलिता कों संग लीयें सागर सों कुछ अनबन देषौ । कैधौ कहू पति तन घेरी कैधों कहू पाप मोछ कैधों बौहौराइवे के ठन गन पेषौ । तानसैनि कौ प्रभु मोहिनी सी पाढि डारत कैधौं कहू जागे संकर मुनि देषौ ।।५०।।

छवि : **विहाग-चौताला, २४१ अ**

झूंमि झूंमि आवत नैनां भारे तिहारे । बिथुरी अलकै स्याम घन सौं लागत झपकि झपकि उघरि जात मेरै जान तारे । अरुन वरन नैनां ता नै लाल लाल डोरे

तापर यह मौज बारि बारि डारे। तानसैनि कौ प्रभु सदा ई छके रहत कोकिल की धुनि मोहि बिन अंजन कारे ।।५१।।

प्रेम-निवेदन : **विहाग-चपक, २४१ आ**

नैनां सलौने री तेरे चितवनि मै बस कीयौ दीरग जमांल विलोच कटाछिन ता मध भरि भरि कजरा दीयौ। भौहै धनक और चंद सौ बरन कंचन गात तेरौ रूप दीयौ। कमलकली छवि छाई तानसैन प्रभु रीझि रीझि करि बोलिबे कौ नैनं लायौ ।।५२।।

नायिका : **सुध मलार-चौताला, २७५ अ**

चली अँड बैंड पैंडनि नां चली उमग ना चलत बैंड। अनेग भांतिनि करि लाड लडावत काहे न छोडत अँड। बाल तरुन होइ बाल नाइक जाते कछू कैहै न सकत सारंग तेरी उमैंड। अँसेई पावत री तानसैनि कौ प्रभु मिलि क्यौ न री याते जीग्र डरपत हौ लागी काम उमैंड ।।५४।।

नयन-बन्दूक : **दरबारी-चौताला, १७६ आ**

नैन बंदूक, साधै घूघट पट ओट कीअँ। पलकुदा नौसिका पै भौहै चढायैं सैननि मूक। रस रंजक ताई लगनि जामगी ढारि दई विधिरूप अनूपक। तोपची मीआ तानसैनि मांरत बिरहा अचूक ।।५४।।

दूतीवचन, मानिनी से : **टोड़ी धीमा-तिताला, ६५ अ**

जेइ जेइ बचन कहत हो तो सों तेइ तेइ बचन तू मानि लै सुजांन। मेरे कहे तू चलि री पीअ पै धरौई रहैगो तेरौ मान कौ गुमान। वे तौ बिनि के अंग संग रीझे लाल तूअं बिनि के प्यारी प्रांन। तानसेनि के प्रभु तुम बौहौनाइक कै तू मूरिष कै कुपढ अजांन ।।५५।।

नायिका : **परज-चौताला**

आईअै जू कैसै आमंन पाऐ भलै ही आऐ मेरै नवल लाल। तुम हौ जान सुजांन पुछत सब गुर ग्यांन महाजांन मूरति अति विसाल। जौ लौ इनि नैननि हौ नाहीं देषत तौलौं फिरत हौं बेहाल। तांनसैनि को प्रभु कीजीअै मया मोहि दीजीअै दरस कीजीअै निहाल ।।५५।।

खण्डिता : **मालकोस धीमा-तिताला, १२८ आ**

आजु आऐ रसमसे अलसांनै गात, धनि वह को है गावै वसरि रासैं हौ जू। चरननि डगमगात बचननि तुतरात बारबार हौ जम्हात सौ है जूठी हौ जू षात। रैनि के चिन्ह जानै जानै हौ जू जानि जाउ प्रगट बताअै देत दुरत न रस बात। तानसैनि कौ प्रभु तुम बौहौनाइक भली कीनी सुधि लीनी मेरै जाऐ हौ जू प्रात ।।५७।।

वियोग : **महीअरी टोड़ी-झपताला, ५२ आ**

माई री माहावि(कट) कठिन मिलि बिछुरे की है पीर। घरी घरी पलछिन जुग से बीतन लागे नैननि भरि भरि आवत नीर। जब तै प्यारौ भयौ न्यारौ तब से कछू न सुहता मेरी बीर। तानसेनि कौ प्रभु बेगि दरस दीजै हीअरा धरत न धीर ।।५८।।

नायिका, वर्षा : **सुघराई-चौताला, ३६ आ**

ऐरी हो कैसे भरौ दिन रैनि अंधेरी, नीद उचटि गई लाल बिन। चहूं ओरते घन उमडि घुमडि आवत रितु फेरी पीआ मे हेरि न फेरी। काहे को गरूरी करत मन मुकताई आली चत्रदेस चतुरा मुंडगाल फेरी। तानसेनि जगत गुरु अकवर से नर रंग रस लै चढी दूनी फौजे फेरी ॥५९॥

विरहिणी : **मालकोस-सूरफाकता, २२८ आ**

आमन कैहै गऐ अजहूं न आऐ प्यारे सब निसु बीती मोहि गिनत तारे। दीपक जोति मलिन हो चली अब कहा करीअै री सषी किनि दूती बिरमाऐ प्यारे। हौ तौ चेरी जनम जनम की कृपा करौ मो पर नद दुलारे। तानसैनि के प्रभु अब कैसै पाउ छतीआं लगाइ न करिहौ न्यारे ॥६०॥

विरहिणी : **ईमन-चौताला, १२४ अ**

ऐते दिन अनगिलें गऐ है री पीअ बिन मोकों ऐते दिन मेरे अनलेषे। निसु बासर मोहि गिनत गए री आली आवत है री नैननि देषें। बा पीअ पाती पढाई ना आमन भयौ दो में ऐक न भई रही हेषे भेषे। तांनसेनि कौ प्रभु अैसी अनबूझीअत जोवन जान परेषे ॥६१॥

नायिका, विरहिणी : **परज-चौताला २०२ अ**

मति कोउ प्रीति के बस परौ हो लालन दै दै अपनौ सरबस। हमसौ अवधि बदि अनत विलमि रहे बिरह बीज बोयौ बरबस। तन तल बेली लागी रसना रटनहारी जैसैं पंछी भयो पिंजराबस। तानसैनि के प्रभु उसकी प्रतीति देषौ उनकी न्यारी उनिकी न्यारी अंतरगति दिन निस ॥६२॥

विरहिणी, वर्षा : **षंमाइच-चौताला, २११ आ**

आमन कै है जुं गऐ माई अजहू न आऐ मन भामन चहू ओर ते घन उमडि धुमडि आवत पपीआ जु बोलें बरसावन। का उनै न सुनाई आली पिय की षबरि मोहि भई हौ बिहाल हाल मरन सतावन। तानसैनि के प्रभु तुम बौहौनाइक अवधि गयी भर सांमन ॥६३॥

विरहिणी, वर्षा : **गौड मलार-चौताला, २८१ अ**

घन न हौइ री माई जे आई मो पर मनमथ की फौजै धांवन। दामिनि पर्ग लीयै बूंद बांन बरसत गरजन बीर रस दमांमौ बजावन। जासूस चात्रग लायौ हौ टेर मोहि माहि अकेली सप्त सुरन दादुर नंफीरी सुनावन। सैहैनाइनि मोंर मार करन है नाचि नाचि जे सब तानसैनि के प्रभु के आगै आवत करन ॥६४॥

अनाहत नाद : **परज-चौताला, २०२ अ**

अन अनहद नाद नमो नमो अईआ त्रगुन सरूप मत सुप सागर भरत। कंटक मोचन अघहरन प्रकास रास तंत्र यंत्र सुभ अछिर सोधि धरत। अषल (अखिल?) बृम्हंड

देव तुही जीवन मूल तुंही हरत। तांनसैंनि साधै ताकौ कौउ न साधै जे गुनी पचि हारे ते उनिहूं धरत ।।६५।।

नाद : **सोहनी-चौताला, २३३ आ**

कैसौ ग्यान कौसौ ध्यांन पूरन नैम बिरस कैसैं सूधी विकट गावै। कैसे गन कैसैं अगन कैसी संगति कैसी असंगति नांद ब्रंम्ह कंठ अलापि सुनावै। तांनसैंनि प्रभु को भेद पावै। भाति भांति के तौ गुनीअं कहावै ।।६६।।

नादनगर : **टोडी-चौताला**

नाद नगर बसायौ सुरपति मेहैल छायो उनचास कोटि तान अछिर विश्राम पायौ। गीत छद तत बितत धारू कचन जलद ताल काल के किबार लागे हीरा तर षरे जंजीर त्रेवट कुजी तामें धुरपत सौ नग छिपायौ। आरोही अवरोही अस्ताई सचाई जवाहर ओडव षाडव ढरनि मुरनि तेउ लाल कहायौ। जोंहरी मीआं तानसेनि गाहक जलालदीन जिनि जानौ मोल कीयौ अर्ब जर्ब और करोर मन मिलाइ कंठ लाइ जनवर पारखी पायौ ।।६७।।

नादगढ़ : **मालसिरी-सूरफाकता, ८४ अ**

नादगढ सुघर गढ वाकौ कीनो सप्तसुर कोटि कगूरा विकट गढ षाई। आरोही अवरोही इकईस मूरछिना चारौ गुरज चारौ रज चारौ दिसा तोमे लगाई। तांन मांन आछी तीषी नीकी लागी अैसौ बिरच गढ विधना बनाई। करैं मीआ तानसेनि सुनो हो सुघर नगर (नर) अपबल भुजबल लियौ हू न जाई ।।६८।।

संगीत-व्यापार: **छाया-भीमा, १४५ अ**

धर्म कर्म की अलाप हाट सम्हारी गुन पूरौ करिबे कौ बैठौ हटवारी। अकार की डांडी कीनी जोति करि काइम ग्राम डोरे मांनौ श्रवननि पालरा तारकी चटक पाटी पाछैं गहि डारी। अर्थ मूल ते अछिर समझौ नीकी नीकी धुरपत चतुर तौल तुंक अति भारी। जा गुन कौ गाहक राजा रामचद्र देत करोरनि बेचत तानसैंनि बैंपारी ।।६९।।

तानसेन-विधान : **कान्हरा-चौताला, १८७ अ**

धईवत पचम मधिम गंधार, रेषब खरज सुर साधि साधि साधि गुनी निषाद रे। तेरौ अलंकार बाईस श्रुती साधि बाद चारि (उचारि) सारे गम पधनी सा सुघर सानी धानी ध प म ग रे। त्रविधि त्रविधि सुरनि मधि त्रतीअ त्रतीअ त्रतीअ अरे विर्तत जानत वेदमांन (विद्वान्) सप्त सुर तीनि ग्रांम इकईस मूरछना छतीस भेद नादवाद तानसैंनि विधान रे ।।७०।।

गानवाद : **षट-सूरफाकता**

विद्याधर गुनीअनि सो क्यो अरीऔ गुन चरचा की लराई लरीऔ जाइ कछू आवै नही तासों कहा कहीऔ दौरि गुनीनि के चरन परीऔ। मेरो तेरो न्याउ निरंजन आगे चंदन बभूर कैसे इक ठौरे धरीऔ। और लराई नहीं गुन की लराई तानसेनि तानंनि तरीऔ ।।७१।।

प्रकृति, भैरव राग प्रथम : भैरों-चौताला, २ श्रा

सघन बन छायौ द्रुम वेली मध पवन श्रति प्रगास वरन बदन पहुप रग लायौ। बोलत कोकिला कीर पीक कपोत चात्रक सब ही श्रानंद करै चहू श्रोर रंग बरसायौ। बाजत किंनिरि रिसाल बीन मृदंग सुरसुती बर पायौ। कहै मीश्रा तानसैनि सुनौं ही श्रलाप करि प्रथम ही राग भैरो गायौ ।।७२।।

वसन्त : हिन्दोल-चौताला, २५० श्रा

सब मिलि करौ श्रनेग रग कौ श्रब जाई हो रितु बसंत। कोउ हसि तार देत कोउ छूश्रन किनेर कोउ मौरे बधावत री त्रीश्रा प्रसंग। कोउ गावत कोउ श्रदंग बजावत कोउ सुगंध लै लगावत श्रग। तानसैनि कौ प्रभु रीझि रीझि बारत सषीश्रां सहित सब संग ।।७३।।

इलाहाबास : हिन्दोल जलद-तिताला, २५१ श्र

ब्रंम्हा विस्न महेसुर गगा जमुनां सरस्वती नीर सरिर धरै सत रज तम त्रई तीनौं पाप पषारन कौं जगत तारन कौ निपट प्रगट प्रगास। नाग नर झूमि झूमि रहै नित नित इंद्र श्रादि दै सुरनर मुनि गुनी गंध्रप किन्निरि यछिक कहीश्रत है हो तिनिहू की मन मुक्ति हौंन की श्रास। तब प्रश्राग वैराग महा ऐक करवत लेत ऐक श्रग्न जीश्रै देत एक सीचत जल गल कल्पत ऐक काया कर्म करत यातै भयौ विधि श्रस्तल श्रब निर्मल भयौ तीरथ राज राज धरै साचौ त्रास। तानसैनि कहै सकल जीवधरन कनभूंमि भरन छत्रपती साहि श्रकबर धर्मनीव धरी सुभ ग्रेहनि ग्रेह छतीस कुली बसाई इलाहाबास ।।७४।।

तानतरंग की रचनाएँ

पनिहारिन-छवि : कुकब-चपक, २६० श्रा

चुनरीश्रारी प्यारी पचरँग पैहैरे सु पनीश्रां गगरीश्रा भरै श्रावत श्रोर दोउ हाथ ग्रीवानि धरै। गोरे भुजनि मे गाढे बरा फूनि दडवनि में स्याम चुरी हथेरिनि नौहंनि मैहैदी गैहैरौई रंग करै। उसासनि बेसरि दधिसुत डोलत ता मध मुष प्रसिधि भौहै तांनै श्रधर दसन दंपति सो काननि वीरै गरै मोतिनि लरै कुच उतग मतग से देषीश्रत बनीता जनौरी सु चोषे फुलेल भरै। जेहरि जोति सूरज सौ होउ परी श्रागै विछीश्रा बाजनै तिनि मध लाल गुधाश्रै महावर पगनि तरै। तांन तरंग प्रभु कौ मन मोहत गति सी दिषावत सो मुसिक्याई बाल हरै ।।७५।।

बानलीला : गौरा-चौताला, ८६ श्र

सुधेई मांगि लैहो दांन, हम पर जाति को रहौ न नातौ। मन मिली बातें काहे कों बनावत राषौजू श्रपनो ग्यान। श्रैसी छलबल की बतीश्रां काहे कों करत हौ जू जैसी न देषी सुनी कहू कान। तानतरंग प्रभु श्रपने ही गौं की करत मानत न काहू की श्रांन ।।७६।।

चंचलसस की रचनाएँ

नाद-समुद्र : **हमीर-चौताला, ११२ आ**

नाद समुद्र अपरंपार काहू नही जाकौ भेद पायौ। ऐक गाइनि पैरि पैरि इडा पिंगला सुषमुनि तुवी धरि आंगे कहू अंत न पायौ। पैरि पैरि हारे और बार फिरि फिरि गायौ। फुनि सप्त सुर जिहाज कीनें पुलबांधन कों मूरति अमूरति तर'दान वनि नहीं आयौ। चचलससि प्रभु कौ ग्यांन कहत सुनो गुनी ग्यांनी ध्यांनी अभोग (अमोघ ?) दधि जेहें विधि बतायौ ॥७७॥

मेघ : **गौड-मलार, २८१ आ**

घू'मरे र ग बादर पहरैं स्यांम सेत लीलांमर बिरह धारनि धरैं। निसु सब सम ऐक भऐ चातग पिक मोर सोर करत रहत है दूजैं पावस जामैं चतुर मेघ जसरैं। जे समीप तिनि कौ सुषदाता मों बिरहिनि जानि उमडि उमडि उमडि उमडि तकत फिरैं अकस करैं। है हैं न चचलससि प्रभु के आगैं गे रसविनोद कीनैं होत चले रैंनि मोर विन धरैं ॥७८॥

नायिका : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ**

दुरि दुरि देषत मुरैं मुरि चलत है री सुकौन कारन मानों पीआ कों अंको भरत पल पल पल कलनां। मोसी चातुर आतुर मिलों चाहत दरस परस करिहो रीझी तुम रीझे निरषत फिरि फिरि फिर चलि द्रग मलिन। अब जानी रितु मानीऐं मन मांनी ऐसी कैधौ नंद वैहैरत फिरत चित्त कलल्यान। चंचलससि प्रभु मोहन के अग संग देषिवे कों जे अचरज जे कटाछि वस्तर निर्मल ते भऐ मलिन ॥७९॥

नायिका : **टोडी-चौताला, ६३ अ**

जेई जेई अंग तिने तिने रिझावत पीआकों अनरागैं र ग करि सुदे जु तर'गनि। आउ (हाव) भाउ कटाछ गुन रूप जेहैं विधि मन मनावत लाल कौ ललनि तोहि दीनी सुहामनि। निपट चतुर आतुर चौप बढावत गावत सुरसुती परसन भई कंठ पाठ मुष रसना भनि। चंचलससि प्रभु के अंग संग अरधंग राग तोसी सुघर तुही धंनि धंनि ॥८०॥

दूती : **केदारा-सूरफाकता, १६७ आ**

उठि चलि सूधैं ने चितौरी आली हौं आई तोहि लैना लालन तेरी आरति करत तुम सु'दर नट नांगर नारी। बैठे हरि कु'जनि मै तेरौ मग जोवत करि सिंगार पंहुचि कैं सम्हांरी। चंचलससि प्रभु तेरी सौ राधे उठि चलि मिलि कु ज बिहारी ॥८१॥

रतान्ता : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ आ**

उरझे फूल वसीले वारन मांनौ घटा मधि तराइन ऐसे नीके मोमन। मुक्ति माल बगपांति तरषासी कौधत सुरति अत लट छूटी स्याम घन। जंह अचरज देषौ अग मीन कमलवनि रहे ऐक ठौर मोमन सोमन। चचलससि प्रभु के अंग सग राषोरी भुम्र पर तुअवनि रही ई धनि धनि ॥८२॥

दक्षिण नायक : **ईमनी बिराउरि-चौताला, ३७ अ**

बरुनीनि कौ अजन ऐ बिराजै लाल अधरनि पर ताही में अत ही उजागर कपोलनि लागीयै ते ऐ ठठ अंक। बिनां अंग पीठि पाछे मुद्रका गढि रही गाढे आनंदन (आलिंगन ?) सोहत मुक्ति माल और और अंक। फुनि शाल तीलक दीये लिलाट सो लगै जगै और दोउ पर रीझीं सूधी सूधी अलक परत परत बक। चचलससि प्रभु रीझे भीजे वा छविसो आऐ मेरे सौंहे भऐ निसंक ॥८३॥

विरहिणी : **पूरबी-चौताला, ६५ अ**

री हौ तौ मांन करि पछितानी भाई बौहौरि आवै कब मिलेंगे री मनभांमन। वे जौ मनावत हों अनबोली ह्वै रही जोवन अति गर्व कहा कीजै लागौ बिरहा तन तांवन। हो तौ कबहू न भई न्यारी जब तौ में जानी बिछुरन की सार। त्यों त्यो सुधि आवत पीय की त्यो त्यो लागी दुष पावन। मेरौ तौ जनम जीतब तबही गिनो माई जब मिले चंचलससि प्रभु आवेंगे मेरे प्रान जिवावन ॥८४॥

होरी : **कामोद-धमार, १५२ अ**

उठत तरग सुगध की छवीली आउत है तेरे अंग। षेलत होरी छिपाउत काहे कौ वे न गऐ तेरे ढग। लाज भरे नैना रतनारे भीजे है अग अंग। चचलससि अब प्रगट देखीअत रंगे स्याम के रंग ॥८५॥

सुरज्ञान (सुजान) खाँ की रचनाएँ

इस्लाम : **पूरबी-चौताला, ६६ अ**

करत सब जग कामें सुभै हौत तवही जब पैहैले कैहै लेत विसमिल्लाह। जासों बढै दीन उदोत इलम जे पावे अति बुधि को ततछिन पढत रहत मोंला मोंला। अरस कुद (स) लोह कलम को भेद जब पावै रसना सों पढत रहत लाइलाइइलिला (लाइलाह इल्लिल्लाह)। फर्ज सुनति (सुन्नत) सों लगाइ ग्यांन ध्यान सुजान सेवक पर करम कीजै महंमद रसूलिला (मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह) ॥८६॥

नाद-दल : **टोडी-झपताला, ६५ अ**

नाद दल कटक अलाप सुर करनांल तार छरीदार रवाब नगारौ। बीन सुरबीन सुरमंडिल कीनों उमराउ तोपची तमूरा सेंन सम्हारौ। गुनी जुरे सब मजलसि मेंदान दारु धुरपत सुढाल तरवार। तांन कमांन षिरिर गांसी भई लागी सुजांन के आर पार ॥८७॥

नीति : **अैमन-तेवरा, १५५ अ**

ऐक संचरत संजोग तिनि मध आजु रासै मन मै कालिमां तासौं न रीझै नेह। ऐकै तजत ही ऐकै करत ही जेहै सुरग्यान जो जा भावै सो सोइ लेइ ॥८८॥

नायिका-प्रशंसा : **टोडी-चौताला, ६६ अ**

रूप जोवन गुन विद्यावर रिझाइ लीनों प्यारे सब तीअनि में विचित्र घन । अंग अंग के प्रसंग राषत तुम्र तन भावत मन । तोसी तु'ही और नांहिनै मेरे जान इतने नानां प्रकाल इतने मे पाई मन । प्रभु सुजान प्यारे कों राषोंगी अरधग जांन न दीजै अन तन ।।८६।।

धौंधू की रचनाएँ

नायिका : **दरबारी-कान्हरा, १८१ आ**

तैं ही मोह्यों मनमोहन ब्रज को ठाकुर तू काहे न अ'डी डोलै । हाथ लकुट बन धैन चरावत गयौ हो मो पूछत कहा कोउ आइ बतायौ जौ कबहूं बोलै । कहू है लकुट कहू मोर मुकट कहूं मुरली अधर धरै डोलै । अैसौ कान ग्वाल अअौलनौ उठि चलि हिलि मिलि धौधू के प्रभु कौ ऐचपरी तू दोलै ।।६०।।

लीला : **अडाना-इकताला, १६६ अ**

अरे कान्ह धीरौ रे धीरौ रे । हाथ लकुटीआ कांधै कमरीआ निडर आवै वीरौ । जानत हौ कुल गोत बडे हौ काहे कौ होत रातौ पीरौ । धौधू के प्रभु तुम वौहौनाइक आषरि जात अहीरौ ।।६१।।

वर्षा : **संकरा-चौताला, २३७ आ**

आली री गरजत, घन रिमिझिमि झनंकार ता समयै प्यारे कीनौ आंमन । चात्रग घन मोर सोर तै सौई तैसी तिरछी तरेर बुदिनि बरसत सामन । कोकला रितु मांनी प्रान प्यारे सुषदैनी बोलत इम्रत बानी हर्ष बढावन । धौधू के प्रभु तुल बहुनाइक पै नही मानत दंपति प्रीति बाढी लीगे (लागे ?) री अति सुष पावन ।।६२।।

मदनराइ की रचनाएँ

देवी की कृपा, गर्वोक्ति : **आसावरी-चौताला, ५३ अ**

ऐक कर षपर होत सुतो कों दांहिनी भई । जहा जहा गुन की चाह होति तहां तहां राषति रसु कावि नई । फुनि तुम्र वे अदलि बदलि करिवें जानत राग की होति कंठ जोति दिन दिन सांचु सहाई । मदनराइ कों अैसो दीयौ प्रसाद अलापि सुनावै अनगनती अंग निकाई ।।६३।।

तन-मन्दिर : **आसावरी-चौताला, ५४ अ**

कांम नींम (नींव) धरौ हो ता पर अग्न मारी पांनी कयारि मिलि कियौ गारौ । अस्त पषांन बनाइ भरे विचित्र रजरोसन सजिकै प्रकत पचीस लगाइ कीनौं मंदिर भारौ । आंषै करीअ झरोषा पलक पट और धरे कुच कलस नीकी बात धरिबे को कीनौं हो दिलुआरो । मदन कौ साहिब अलष लष्यौ न जाइ सो रसनां के बोलन मै उनारौ ।।६४।।

अल्लाह्-स्मरण : **पूरबी-चौताला, ९६ आ**

मेरे मन याहू याहू लै हरदम लै नाम और जो होइ तेरे नीके काम। निसु वासर वाही सुमिरन वाही सुमिरन मे रहि रे रढि रे अग्यान ओर मग पग जिनि धरि सूधे कयो देन जो मागे आइ दीन धन। जो तू वाहि ऐक वारि यादि करै तौ तोहि वह यादि आवै अस्ट जाम। मदन के साहिब कों यौ पैहैचानो यो अलप अल्ला साहिब छिन मे देत अस्टसिधि रिधि नवनिधि और अमांन ।।९५।।

नाद : **हमीर-चौताला, ११२ आ**

बोल पवन जाते जु नाद होत मेरे जांन करतार को जह है मग। ज्यौ ज्यौ रीझि होत त्यौ त्यौ मानों विधात के जीअ में आइबे को रही है जगै उग। मो मे अब पाक जाति प्रथम ते कहौ न जात ताते रहै अस्टजांम मे ऐक टुग। मदन कहत आनंद सुजान सुनो पाईऐ अलष लग ।।९६।।

हरिदास डागुर की रचनाएँ

शिव-स्तुति : **गौरी-चौताला, १०५ आ**

सिव सिव सिव करत देव तेतीस कोटि महादेव तुअं नाम जपत पार्वती पति पतितपावन पातिगहर तेउ तन के जे सुमिरत। त्रईलोक अनाथ सकर त्रसूल धरै मन मुकति पराई मन महेस दस देसनि के नरेस जोई जोई मागत सोई सोई पावत है हो तुरत। देवाधिदेव देव जिनिकी अस्तुति को करि सकै जटा गंग डवरु संग अपवाहन कर त्रसूल भोंर भये सब ही को फुरत। बामदेव कामदेव लीलकंठ चरनकठ है हो हरिदास डागुर कहे उनि सहित गाउ कावि करौ जाको जस कहीअत हे हो सास्त्रमत ।।९७।।

त्रिवेणी : **तिरवन-झपताला, १०४ आ**

त्रवेनी कालिद्री सरस्वती अरुन वसन और उजिल वरन सोई गंगा। बेंनी प्रवाह कटाछि तरंगनी नेंन मीन लिये संगा। तुही तारन निस्तारन तू ही अघ दुप दालिद्र पाप कटगा। इतनी बिनती करे हरिदास डागुर देवान सेवा सीस अंगा ।।९८।।

ज्ञान-प्रशंसा : **गूजरी-चौताला, ५१ अ**

ग्यान मध माते जे नल (नर) निसुदिन तिनिकों कबहूं न होत षुमारी। सत्त के प्याले में धर्म भरि भरि पीवत छके रहत निसु दिन लगी रहत तारी। तन करि माटी मन करि चढाओ पंच भूतारी अगिन पर जारी। हरिदास डागुर प्रभु तुम्हांरौ सुमिरन करत धनि विधना रचौ पुरिप यौर (और ?) नारी ।।९९।।

बहुरमणी-रमण : **केदारा धीमा-तिताला, १६७ आ**

लाल कहौ आग कौन कौन सौ रितु मानी कासौ कासौं कानी प्रीति कासौ नेह बाढौ है बौरौ रमनीरमन। कौन कौंन धौं मनाई कौंन कौन धौ रिसाई कासौ कासौ कीनी भामरि

को है भागिमंती कांमहू के काम डोलत हौ भमन भमन। तुम वौहौनाइक ऐकनि सो हसत बोलत डोलत ऐकनि रिझावत ऐकनि षिजावत ऐकनि सो घातें मिलवत तान्नीग्र के कठिन जो तुम्है ही देषै ही अनदेषै बेकल होत घर घरी के गमन मै हरदास डागुर के प्रभु या प्यारी सौ अवधि बदि जात जे होत बोल पवन ॥१००॥

ग्वालिन : **टोडी जलद-तिताला, ६५ आ**

भरि भरि धरि धरि आवत गागरि नागरि नांरि री तू कोंन के रस मिस करि। थोरे दिननि तू ऐक ही बेर री पनीआ भरन, आज कईयौ बेर आई गई अैसे कहा भऐ नंद के हरि। जौ तू सासु ननद की कान न करिहै जौ तू अपने कुलहि लजावै करि। मोहि दोस हरिदास डागुर के स्वामी नैन प्रान जु गऐ डरि ॥१०१॥

नादगढ : **सुधकल्यान-चौताला, ११८ आ**

कै लीयौ नादगढ महा आतंग आरोई अबरोई अस्ताई संचाई महाविकट निपट अति। छ राग गुरज भये तीस भारजा के कोट इकईस मुरछिना बाईस सुरति के कगूरा तीसे नीके लागत। सप्त सुर सप्त पुर ओडब षाडव किवार तीनि ग्रांम परकोट ओला गोला वनि। धुरपत की चारो तुकैं चतुर दिसा को चिनोती दीये अैसौ बाकौ कीनो नो रंग जल भरि राषौ कंठ गुनिनि करि रिसाल लागत लागत हरिदास डागुर ग्यान गुरु अैसें कहे लरि लरि पचि पचि अटूट टूटन जात मेरे जान वे रीझें प्रानन ॥१०२॥

संगीत-सैन्य : **टोडी जलद-तिताला, ६५ आ**

तान तरवार, तार की, सपरलीये फिरत गुनी जहां तहा जीतत तुरत। सुर कमांन, बोल वांन, छूटे जहां लागत रीझत जांनि सभा जे आगे विद्याधर सब जुरत। सप्तक तरकस, ऊंची सुरति नेजा, समांन बषतर बनाइ उर षपरा सों फोरत। इकईस बाईस छतीसौ अवाजे लागति गडग कैसे करि रंगनि हरिदास डागुर यौ कहत तुम सुनों सुधर सुग्यान अग्यांन आगें फौजे मुरत ॥१०३॥

व्यास की रचनाएँ

सिंहासन-अभिषेक : **दरबारी कान्हरा-चौताला, १८० अ**

जहा पातसाई बैठो साहि नवल बाल बलि जईअै वह लषत की। कनिक डंड चमर, ढुरत गुनी गध्रप गावत मगल इंद्र ठाढे सिधरै कुरसी ईस लीअै आवत हैं नगन जटत की। छत्र कुला हीरनि बनाई हो ताढिग मुकता लागे कही न जाइ सोभा नषत की। व्यास कहत सुलितान महंमद चिर जीजो जह निकाई को गुनीअनि के बषत की ॥१०४॥

आशीर्वाद : **नाइकी-चौताला, २०० आ**

आली री गगनथार तामै उडगन पौहौप सकल वरन वरन नादर चंदन अबीर लीअै हैं री अवछरा साहिजादे कौ अैहै विधि इंद्र कीयौ टीकौ। सेत सेत अैरापति तुरंग अति

सोहत तुअनारद मगल गावत है ऐ अब तुम नर चारौ चंक्री कौ। कलपबृछ सफल हम जानैरी आगै भऐ निहालं उदीआचल अस्ताचल ज्यौ बदी बद नीकौ। व्यास आसीरवाद यौं दीनौ काइम सुलितांन जुगानिजुग चरजीव अकबर छत्रपति कौ ।।१०५।।

जगन्नाथ कविराय की रचनाएँ

नौरोज-शाहजहाँ : **भोपाली-चौताला, १३५ अ**

जेहै विधि कीयौ नौरोज मुसजर लीलक मषमल गरवाफ भमन बनाऐ दिवि बसन छाऐ अनूप बिछौना बिछाऐ अनेग सुगधनि सुबसत (सुवासित ?) अगर धूप दीप दिपत अति। चेत्रविधि बाजे बाजत नित नित गाइनि गावत बेद ब्रंम्हावत विप्र पढत कवि कवित्त सरस नारी रिझावत है अनेग जुगति। तैसी सोहत भीर उमराउ राजा राइ द्रगपाल समता मध विराजत साहिजहां नगिन जटत लसत जैसी मूरति प्रथीपति। जगनांथ कविराइ देव आसीरवाद चरजीव रहै ग्रैसौ दाता ग्याता चक्रता चक्रवती ।।१०६।।

प्रमुख गुणी : **कान्हरा-धोमा, १८६ आ**

सर्व कलासंपूरन मति अपार विस्तार मति नाद कौ नाइक बैजू गोपाल। ता पाछै बकसू वैहैसि बस कीनो, मैहैचू मैहै मडल मैं उदोत चहूं चक्र भरौ ढिढ विद्यानितान (निधान ?) सरस धरु करन ढिढताल। भगवत सुरमरन, रामदास जसुपायौ, तानसैनि जुगतिगुरु (जगद्गुरु ?) कहायौ, धौंधू बानी रिसाल। सुरतिविलास (श्रुतिविलास ?) हरिदास डागुर, जगंनाथ कविराइ तिनि के पग परसिवे कौ स्याम रांम रंग लाल ।।१०७।।

नायिका-छवि : **चिरवन-चौताला, १०४ आ**

ते आज दीनो लिलाट वधू कुजगौ टीकौ सुतामध नीकौ लागे भाई। मनों पूरन ससि बिभिमंडल मे अरुन नैन बिभि जाई। जोबन के बर काहू बदत नाहि नैरी तेरे नैननि की निकाई। जगनाथ कविराइ के प्रभु कों मनो प्रीति रूप धरि कै आई ।।१०८।।

दम्पती-केलि : **अल्हईआ-चौताला, ४२ आ**

एहो बैठे दंपति सुरति सुजकी बाते करत प्यारी के पलक झपकि आवत माधौ कूकि जगावत। छिनुकु आषि षुलि जात पुनि मुसिक्यात अचल ओट दै जम्हांत अरसात बह्नि रसिक रंग उपजावत। बदन चिबुक गहि आपु तन सूधौ करि हरजि निरषि हरि हीये लगावत। जगंनाथ कविराइ के प्रभु रिझवार रीझि नैननि सो बेन प्रान प्यारे मुष गावत ।।१०९।।

मानिनी : **बरारी टोडी-चौताला, ७० अ**

कैसेहूं न बोलों तुमसौ जौ मोहन मोंहों (मुंह) और जीअ औरु। कहत रस की करत अनरस की काहूं सों सांचे हौर। नेक सुनो अपने कपट कौ घेर ठौर ठौर। जंगनाथ कविराइ के प्रभु कैसे पतिआईअै तुम दूतिनि के सिरमौर ।।११०।।

सदारंग की रचनाएँ

संगीत : **कान्हरा-चौताला, १८६ अ**

षरज् रसब गंधार मधिम पचम धैवत निषाद ऐ सप्त सुर सोधि नीकै बुलाइ दऐ धुरपद मध सुनि लेउ गाइनि गुनी। आरोही अवरोही जाकी उलटि पलटि अैसै होत निषाद धैवत पंचम मधिम गंधार रषव। दुगन सरिगम की सदारंग नै तुमकौं जाकै बताइ दई समझि लेउ सुमति वारे सारेसा सारेगारेसा सारेगम गरेसा, सारेगम पमगरेसा सारेगमपध-पमगरेसा सारेगमपधनी धपमगरेसा नीधप नीध पधनी नीध पमपधनी नीधपमगमपधनी नीधपमगरेगम पधनी नीधपम गरेसा षोटमन की पैहैले दूरि करि लेउ तब फुरैगी जह विद्या ।।१११।।

होरी : **संकरा-धमार, २३६ अ**

कैसे नाचत आवैरी ललना करि हो हो षेलत होरी। डफ म्रदंग षटि तार संगति सौ और बाजत मजीरनि की जोरी। देषि डरपि भाजी मैं जब तब दिस्टिवचइ निरषि भरी ओरी। अैसौ निलज सदारंग मधमातौ लाज न करत काहू की थोरी षेलत होरी ।।११२।।

होरी : **सोरठी-धमार, २२३ अ**

तुम बिन हीअ मै उठत पीर अति भारी। जैहैं विधि होरी तू षेलिलै मोहन संग सदारंगीले बारी। बाजत है डफ ढोल पषावज और मजीरनि की जोरी। महहद साहि कै फागु मची है इतनी कैहौ हमारी ।।११३।।

होरी : **गौरी-धमार, १०७ अ**

सकल समाज या होरी करै आयौ माई री कैसी नीकी भाति बनि आयौ जह। बीन रबाब म्रदंग झाझ लै राग रंग बरसायौ यह। हिलि मिलि झुरमट कीनी सब बनिता अबीर अरगचा गुलाल उडायौ (यह)। सदारंगीले महंमद साहि पै फगूआ लैहों अंको भरि भरि गरें ही लगायौ यह ।।११४।।

होरी : **पूरीआ-धमार, ८१ आ**

अब तौ महंमद साहि पीआ घर आऐ। चैहैल पैहैल फागुन की देषौ जित तित सदारंग बरसाऐ। चैन गाऔ रहसि रहसि करि लाषनि लाषनि पाऐ। ऐक होरी दूजै अन्हाऐ रंग सों यह सुषु गिने न जात गिनाऐ ।।११५।।

होरी : **टोडी-धमार, ६७ अ**

नऐ हौ षिलार नऐ हौ रसीआ अनोषे नई भई ठकुराई। भलौ बुरौ पहचानत नाही ऐक ही बेर चले इतराई। नाउ न जानौ गाउ न बूझौ अैसी ब्रज में धूंम मचाई। रस में फागुलला पैहैलेई रसिक छैल रसभीने गिरधर सदा रंग सुषदाई ।।११६।।

होरी, वर्षा : **टोडी-धमार, ६७ अ**

फागुन मास में बरषा जहि रितु प्रगट दिषाई। पिचकारी और भो डर चपला अबीर गुलाल घटा छाई। करि सिंगार हार मोती माल बगपगति छवि छाई। सदारंगीले छबीले महंमद सा उमगे पनरे उमगौ झर लाई ॥११७॥

होरी : **चट-धमार, ५६ अ**

अब तौ कोकिल धूम मचाई पीआ विदेस मोहि पाइ अकेली बिरहिनि जानि सताई। ऐक तौ हुती मैं बैरिनि उनिकी करत चंबाउनि आई बोलि बोलि जब बान से मारत तन मन बेधत जाई। कुकि कुकि डरपाई रीजीअ मे अति ही उक बढाई। चीतौ बसंत जब आयौ फागुन अब कहा करो मोरी माई। ये समये सुधि लीजौ सदारंग सुषदाई दुषदाई ॥११८॥

मानिनी : **आसावरी-झपताला, ५४ अ**

कोउ तो मोहि बताओ री पीअ सों मान करिब कौ ढब। पै असे कीजै जामै नैंके मलीन न होवे और अपनी हूं बात रहै सब। उनिकी कहा कहौं वै तो निपट प्रवीन रसिक लाल देषि रहे अनेग औषिनि की फरकनि तिनि सो छिपि सकै कब। यह भूल मो मन आई गई तातें सदारंग पीअ सो रिस हूं मे न रूसीअै कबहूं अब जब तब ॥११९॥

अदारंग की रचनाएँ

पीर गुलशन : **टोडी-चौताला, ६३ अ**

अपने अदारंग कों मोज तकि भेजी नां सरै पीर गुल्सं (गुलशन) नामी। जह बिनती कबूल कीजै कैत दरिद दिल सों इलाही आमी। सब गुनीअनि के कदरदान तुम प्यारे मोरे अंतरजामी। जो सेवक तिहांरौ तुमही को जानत दूरि करौ उनिकी वेद अरामी ॥१२०॥

प्रशंसा : **टोडी-चौताला, ६३ अ**

कीयौ करतार प्रतिपाल कौ करनहार 'आलमगीर' पातसा बषत बली दानी। परजा सुषी भयौ षोज दुष कौ गयौ बढौ आनद और जुगति जानी। अदारंग देषत बुधिसरस (सरिस) न लेषत रसनां तकत प्रगट गति जात बषांनी। अटल राज जटल छत्र राजै करीम कर सधि जौ लग गंग जमुन पांनी ॥१२१॥

प्रशंसा : **अल्हईआ-चौताला, ४२ अ**

अरज सुनि लीजो हमारी साहिनिसाहि, साहिनिसाह दिन दूल्हौ अब तिहारौई सुनि सीर जस को धाऐ जाऐ ठाम ठाम तैं देषत जमाल भऐ निहाल दुष दूरि भयौ बिनि कौ सब। गज तुरंग इनाम पावत गावत रिझावत सुष आनंद होत चहू ओरनि प्रताप कीनो रमि। अदारग तुम्हारौई कहावत कदीम ते निसुदिन नाम तुम्हांरौई जपत करम करि कृपा करि यादि करौगे कब ॥१२२॥

संगीत : टोडी-चौताला, ६४ अ

होत मधिम पंचम (खरज ?) पंचम रषब धैवत गंधार, मधिम निषाद पंचम सुर। अदारंग जाको ब्यौरो काउ सों न बूझीएँ जे जांनत है तिनि पायौ बडो गुर ॥१२३॥

संगीत : टोडी-चौताला, ६२ अ

संगति मुद्रा सुभेद उगति जुगति सुधिवानी तुम ही पै पाइग्रै। हाहाकरत नांद तीनि ग्रांम सप्तसुर भरे सारेगमपद (ध) नी सा कंठ भरन बनाईग्रै। बा गुर सों सो तैने जह पायौ अदारंग बाकौ जह चाहीग्रै। जहां जहां जुरति फुरति तांन अछिर की होति तहां तहां सदारंग को नाम लै गाईग्रै ॥१२४॥

होरी : हमीर-धमार, ११५ अ

अरगजा गुलाल लै केसरि रंग पिचकारी भरि भरि छोडत। अतर गुलाब और चोबा चदन पीअ मुप मींजत बनि बनि बनितासो तब बेहू लाल मिलि गऐ गुपित गांठि टकटोरत। लाज सकुच छाडि दीनी लोगनि की जब ऐक ऐक कों जो बस करि रस में बोरत। कहा कहौ समयौ अति सुदर सदारगीले ऐ नोंला सी तिनि कों भुज भेटत कुचहि मरोरत। मध को मतवारौ अदारग करिहौर गरबहीआ ठारत मसकोरत ऐं सषी री याह बौहौत दिननि को बिछुरौ मिलौ याते फागु प्रीति नाहन जुरत ॥१२५॥

होरी : अडाना-धमार, १९७ आ

नारि ऐरी नैक सूधे हमसों बोलि। होरी मैं गुमान कांम नही आवै तू तौ मुगद गमारि। कहू रग कहूं अबीर गुलाल कहूं कुमकुमा कहूं पिचकारि। हसि हसि फगुआ मांगीग्रै, मुषते अदारंग अचरा डारि ॥१२६॥

दूतीवचन : मालकोस-चौताला, १२७ अ

ऐरी यह औसर भलौ है अलबेली चतुर नारि चलि चलि पीअ पास। नवसल सिंगार साज तजि तीअ लाज आस अधराति भई चंद्र हू चढौ अकास। मेरौ कहौ मांनि ग्रैसी छांडी कै रसरी बाम तुम अब जानि करि विविधि विलास जास। जब हौं निहारी तोहि अदारग जब तै महमद सा प्यारे देषि प्रान लागि रही तेरी आस ॥१२७॥

मनरंग की रचनाएँ

होरी : ईमनी बिराउरि-धमार, ४० अ

कुछू ग्रैसो मत्र पढि रग छिरकै री होरी के दिननि में इनि मन मोहन बनवारी। सकल तीअनि में कोने सिषाई हों न जानों ग्रैसी कौन है नारी बारी। मोहि जानि ब्रषभान दुलारी मनहरि लीनों नंद के बिहारी। जौ हों ग्रैसी जानती मनरग सै हैस गारी है भई मतवारी बजाई तारी ॥१२८॥

लीला : मुलतानी-जत, ३ अ

ग्रैसौ लंगर ढोटा कान सषी चितवत ही चोरी लगावै। फेंकत गेंद अचराकी ओट में ऐक गई दो मांझ लै पावै। चंचल चपल करौ मनरँग गाइ लोक लाज नही आवै ॥१२९॥

नूररंग की रचनाए

होरी : टोडी-धमार, ६७ अ

आली आयौ जह फागुन मास पीअ कीनों गमन मो पै कैसें कटै जह रितु उन बिन माई। ज्यौं ज्यौ सुधि आवत मोहन की ग्रेह आंगन अति दूबर भईली देत बिरह दुष दुषदाई। चहू ओर डफ बाजन लागे मनमत (थ) करत चढाई जह दुष बैरी पाछै लगौ बडौ कठिन है माई। पल पल छिन छिन औसी बीतत कैहै न सकत तेरी धुआई। नूर रंग के दरस देषें बिनां बैननि नींद न आई ॥१३०॥

होरी : हमीर-धमार, ११५ आ

आवत हीं फागुन औसे निलज भऐ सब कै देषत जह ढंग करत हौ प्यारे। जह होरी कैसे षेलत हौ गुलाल मसल अपनें मन के कारज करत आंगे बारे। वे का कहैगी इतनों अपने जीअ में समझि ढीठ हा हारे। नूर रंग हो लाजन भीजी मानि मेरी सिष अबूत मेरी सें हों अब तौ सरकि जारे ॥१३१॥

होरी : संकरा-होरी, २३६ अ

कट लचकावत भौहै मटकावत औसी ढीठ निलज यह दईआ। जहां पावत तहां पकरि रंग मैं बोरत है हलधर कौ भईआ। नूररंग कहै या कौ तकत हैं जैसौ होइगौ ब्रज कौ बसईआ ॥१३२॥

सबरंग की रचना

होरी : मालकोस-धमार, २२६ अ

लाल लै गुलाल सषी मेरौ मुष मांडो गरज मुरकी नथ की इनि बरजोरी। कंचुकी दरकी मोरी अंक भरि लीनी यह गति कीनी हैं मोरी। लाल लगर लगराई करत है गोरी दिननि की थोरी। जाही नगर मैं अब सब रंग सौ षेली है मन भाई होरी ॥१३३॥

रसरंग की रचना

लीला : षटमंजरी-चौताला, २६२ अ

जो पीअ तोसों कहत सषी सो पीअ है प्यारी राधे संग। वह देषौ जमुना कुंजविहारी निर्तत मोहन भयौ रसरंग ॥१३४॥

अदारस की रचना

होरी : दरबारीकान्हरा-मलार, १८४ अ

कहा बैठी है री तु नारि उठि चलि पीआ पास षेलिलै होरी। अतर गुलाब और चोबा चंदन और अबीर गुलाल की भरि लै झोरी। मेरे कहैं तूं उठि चलि पीअ पर मति करि मान ऐ गोरी अदारस मिलि करि फागु षेलिलै अभिचल रहौ राधा कृष्ण की जोरी ॥१३५॥

इंछाबरस की रचनाएँ

होरी : **आसावरी-धमार, ५५ अ**

ढीठोंही दै दै को षेलत जैसें तुम षेलत जह होरी। अंक भरत कंचुकी भोरी दरकी गुलाल मुष मीडत बरजोरी। धरके लोग लरैंगे मोसो जब देषेंगे सब रंग बोरी। जाइ कहौ अंछयावर सखिआ सों निकसि जाइगी चोरी ।।१३६।।

नाद-बन्दूक : **हमीरनाट-चौताला, १५६ अ**

कर साधै नांद बंदूष धुरपद कुदा धरै ताल बंद मगरै अलाप करैं। दारु गोली गोला पूरकी आधी ठासि तांन साचेज भरैं। मीन सूजन कीअैं चातुरी रंजक ता मैं होइगी अवाज धरै। मनके अछ्या प्रभु तुम बौहौनाइक अधम पलीती लागी कर्म करैं ।।१३७।।

होरी : **केदारा-धमार, १७० अ**

रंगमहल मैं रग मचौ रँगभीनी दवि सोहत नारी। ऐक नांचत ऐक म्रदंग बजावत ऐक गावत होरी दै दै तारी। ऐक ओट होत अलसात ऐक तकत घात सौ दाउ। ऐक पाछै मुष मीडत पूरन करत आपनौ चाउ। मूठि गुलाल लाल मुष केसरि करत फिरत अनुराग। महंमद साह कौ अंछ्यावर पायौ सोउ लहै रीझि सुहाग ।।१३८।।

संगीत : **बागेसरी कान्हरा-चौताला**

गुन समुद्र तामैं तन जिहाज मन सौदा गलौ सांस पवन कै जोर। गमक बादबांन सप्तसर लरि परे सुरनि षुदा सुरति अैंनक दीअै चितवत मगर विवादी की ओर चारौं तुकैं तेउ चारौ कोटनि मैं बोल मोती जोति जवाहर अनत सुबरन देषत ओर छोर। अैसौ धुरपत जहाज सौ पुरौ महंमद साहि कौ लाओ गाओ अंछ्यावर सब कौं सकल गिनि दीन्हें लाष करोर ।।१३९।।

नयन : **गौड मलार-चौताला, २८१ अ**

तुअ नैनां मैं मानौं काम की घटा सी उमड़ि आई। पलक धुनि सोई गरजनि चंचल चितवत चपला सी कौधत अैसी सुहाई। अरु बरुनी धुरवा सी ताही वग पंथ तारन की जोति जोगन सो मन भाई। अरुन डोरिनि मांनौ इंद्रवधू पाति सौहै पानपै रसबूंदिनि सौ महंमद साहि पीआ की अंछ्या बरसाई ।।१४०।।

वर्षा : **गौड मलार-चौताला, २८१ अ**

भमन जानौं सूनौ भाई कांम कैसै मोपै आज घन असवारी करी है जहै कोप। पवन तुरंग छाडि धुरवा निसांन आगैं गरजि दमामुद पछी मोर ब्रम्हांवत चपलान हौंइं दई अती अरुन ओप। अनेग दल बादल सैनां तमकि पचि पैहैरवान बूंद बरसावत धरिन जांम गीलगा मांरत ओला गोला धर धरात सो मानौ बरषै तोप। सुष सब लूटि लयौ बैठौं जब दिनकर छत्रपती महंमद साहि अपनी अंछ्यावर सौ सादि नाहीं करत हैं तप ।।१४१।।

फुटकर रचनाएँ

तानबरस की रचना

संगीत : **ईमन-पटिताल, १२५ अ**

कवितांन करत भरी है कबहू और जु विधि की, विधि होयै विधि की, विधि तब किनरी विधि भक्त जांन। और जो सगीत मत डइडहारो कवि तांन बरस वषान ॥१४२॥

निर्मल की रचना

विष्णु-स्तुति : **विभास-चौताला, २१ अ**

ऐ नरहरि नाराइंन गोपाल गिरधर। गोपीपति घनस्यांम कमलनैन बनवारी गुरुडधुज चतुरभुज मदहार। उपइद्र पम्दनाब (पद्मनाम ?) ब्रजनाथ सारगै कहूं सुर असुर संघारन और निजु भगवत कौ दुष निवारन अैसौ तिलोक मैं न कीजै समसर। प्रभु निरमोल कों आनंद आत दीजै सचति संपति सुफल तरंगनि जै जह बिनती सुनि लीजै तुम दयाल दयाकर ॥१४३॥

गुलाब की रचनाएँ

ध्यान : **ईमन-चौताला, १२५ आ**

तेरौई ध्यान धरत ब्रम्हां सिब व्यास बाल नारद मुनि सनकादिक सेस सुरेस सुनत रटत रहत निसुवासर चंद सूरज और तराइन ध्रुअ मेर पवन पांनी पसु छंती जलथल के ध्यांन... तमुनि हैं नारी नर। दीनबंद दीनानाथ दीनदयाल जगत के जगजीवन जगंनाथ नरहर। भरन पोषन विस्वबर संचति संपति तेरौई सब समूंह दीजै गुलाब कौ दिनप्रत यह रामक्रुस्न वासुदेव चरन सह्न दया कर ॥१४४॥

प्रबोध : **बिहारा-चौताला, २४१ अ**

नित जीअ धरि रे मन रांम नांम या तैं होंइ तेरे नीके कांम। झूठी जग माया लोभ देजि भूलौ भूलौ देस देस बिपति परत पर स्वारथ हित कोउ कोउ अस्ट जांम। यंद्री बलि मान जौ पैहैंचानौ आत्मांरांम अंतकाल संग चलै न सुत बांम। याही तैं नैम धर्म नैम ही सों लीजै नांम तब पावैगौ प्रभु गुलाब कौ श्री माधौ सुष धांम ॥१४५॥

मंगलकामना, वसन्त : **हिन्दोल-चौताला, २५० अ**

आऐ हैं सब गुनी गांइंनि तब वितत घन सिषर बजावत गावत राग हिंडोल सरस सुभ आछर मुद्रां सुघंग संगति सौं सुर तांन तार। नरगस नौरंग सोसन सेवती सरसौ करनां केतु की चंपौ चमेली बरन बरन के पुस्पनि भरि भरि गडुआ बनाइ नगन जटत लसत सरस कनिक थार। कवि पंडित सोधि लग्न वधावत बसंत मोर निर्तकाली निर्त करत बरप तिरप लाग डाट लास तंड और मई (माई) संगीत रीति करि द्रिषावत रिझावत अति

चतुर नारि। रीझि रीझि बसन भूषन गज तुरंग दांन दीनैं अजाची जाचिग कीऐ गुलाब कौ प्रभु माधौ महाराज राज करौ भूम्र लोक मध जौलौ नारद सुष व्यास बेद बेद चारि ।।१४६।।

संगीत : मुलतानी सिरी-चौताला, ८८ आ

जाइ करतार देत सब विधि के ग्यांन अति प्रवांन तांन राग की भरन की। सतजुग त्रैता द्वापर सिव हनु भरत मत सुनावत समझावत नई उपज की धरनि की। आरोही अवरोही ओडब षाडव संपूरन ग्यांन अर्थ भेद बरन की। प्रभु गुलाब कौं जब मानत है गुनी ग्यान धुरपद की तांन तार संगति सो ओप देत सदा राजि ध्यान गुरनि के चरन की ।।१४७।।

संगीत : सुध कल्यान-चौताला, ११८ अ

षरज पंचम मधिम गंधार रषब गंधार धईवत रषब गंधार जरजं रसबं षरज पंचम धईवत निषाद रषब गंधार धईवत मधिम गंधार रषब जर। पंचम षरज रषब निषाद धईवत रषब गंधार धैवत निषाद धैवत पंचम मधिम गंधार रषब मूरछिनां सुहृति सों बुलावैं सुर सरेगम के सरेगरेगम गमपम पध पधनी धनीसा सानीधप मगरेसा आरोही अवरोही वादी समवादी अनुवादी विवादी ओडब षाडब संपूरन सुध मुद्राबानी अर्थ तांन तार गावैं जो सेवैं मनविच क्रम करि गुनिनि के चरननि हू रज कहत गुलाब सीषि सुनें साधि रागभेद करैं नित षेद कोउ सकै नही ताहि बरज ।।१४८।।

वंशी : संकटा-धमार, २३९ अ

अरे निरदई लंगर मोहन मोहि लई। बंसी तांन सुनत ही श्रवननि सुधि बुधि बिसरि गई। इत कुल कांन प्रीति अति तेरी तापर होरी चौप नई। प्रभु गुलाब दोउ ओर फिरत जैसैं मानौ फिरत नई ।।१४९।।

होरी : बिहाग-धमार, २४३ अ

देषौ री ढीठ हठीलौ और रसमांतौ और मातौ जोबन कौ लगर ढीठ कन्हांई। मानत नाहिं नै आंन काहूं की कासौ कहीऐ भाई। हौ जल जमुना भरन गई ताहा आइ अचानक मेरी ओर मुसिक्याइ नीके सुर तांननि होरी गाई। प्रभु गुलाब दई भिजैं दई मेरी अगीआ रेंगी रंगाई ।।१५०।।

होरी : मधमाध-धमार, ७६ अ

अतरस भारी पीअ प्यारी नारी षेलत हैं होरी। गोद गुलाल भरि लीयें कर पिचकारी कंचन की ता पद रंग डारत बरजोरी। अबीर कुमकुमा अरगजा अंमर मुष मांडो लै केसरि रोरी। रीझि रिझाइ गुलाब कौ प्रधु माधौ महांराज कौ बस करि लीनें द्रगनि की चोरी ।।१५१।।

नख-शिख : दरबारी कान्हरा-चौताला, १८९ आ

आली तेरौ बदन चंद्र भाल कला भौंहैं धनक पला सुषपला नेत्र षंजन बरुनी सम्हारि श्रवन छीप दसन हीरक रसना पौहोप दल कपोल दर्पन नासा कीर अध (अधर ?) विद्रम

कंचन की पाटी पीठि तापर सोहै वैनी व्याल । ठोडी गाड स्याम कुद रूप दस गुनौ भयौ कु (च) श्रीफल अंधर पांन रौमावली सलिता ना (भ) भमर भुज मृनाल (मृणाल) कंठ भ्रंगीरव षंभ जाघै पिडुरी बिनांन जाबक चरन ऐडी (एडी) तरवा अगुरी नप अरुन अति रिसाल। यह छवि देपि रीझे नाइक दछिन चतुर विच छिन षुलछि भल छिन वौहौ भांतिनि करि गुलाब कौ प्रभु माधौ मनमोहन लाल ।।१५२।।

पुतरी-पातुर : **मालकोस-धमार, २२९ आ**

आली री तेरी पुतरी पातुर नीकौ निर्त करत है डोरे बस्तर पैहैरैं सुरंग । हाउ भाउ अैसी सुधंग बतावत निपट चतुर अग अंग । त्रविधि कटाछि सगीत भेद सौ सोभा अधिक सुधंग तारहों तार गुलाब बाजत सभ पलक थाप नैना अदंग ।।१५३।।

नयन-गोपी : **सोरठि-चौताला, २२२ अ**

दूनि अंषीअनि भेष धरौ जोग जुगति सकल सिधि जब ते तब ते पीअ विदेस गमन कीनौ ब्रह (विरह ?) गुरु मंत्र श्रवन फूकि दीनी । अंजन सेली बनाइ, सुरति साधि ध्यांन लाइअ रक्त बरन भई सुभ गुन बसन लसत असूआ टपकि परत जपत स्यांम नांम मनमाल लीनी । बरुनी सघन जामैं जटाजूट ससि सोहैं तारे चक्र कटाछि त्रसूल भभूति व बरुन कीनीं । निसु दिन मांगत गुलाब के प्रभु पर अवधि मुकुति मिलिबै की प्रेम भीनी ।।१५४।।

सखीवचन, मानिनी से : **मुलतानी सिरी-चौताला**

तेरे आली दास की तरस लागी रहत मोहन कैं पीति कटि पिकबैंनी कैस्न संगुन गुन मूरति अनेग रागरंग करत सुरतन (श्रुतिन ?) मध उतिम ग्यानी । वे तौ बौहौनाइक पीति न करत कासों तू तौं हित रीति की जांनि समझि अपानी । प्रभु गुलाब कौं अब बस करि लैरी बौरी तन मन धन कुरबानी ।।१५५।।

विरह : **मुलतानी सिरी-चौताला, ८८ आ**

जाकौ पीतम परत्रीअ हित बिने बिरहिनि नीद कैसे आवै री । बरषा रितु दादुर मोर चात्रग चपल घन घोर, सरद चांद चांदनी नई न भावै री । हेमत तेल तूल असन बसन, सिसिरि सीत अरगजा अबीर रितु बसंत फूलीं द्रुम बेली, ग्रीषम कुम कुमांनी इतन तपति बढावै री । ज्यों ज्यों छिन मिले मोहि प्रभु गुलाब ते ते छिन सुष बाढै तन मन मैं निरषि नैंब प्रान सुषु पावै री ।।१५६।।

प्रेमदास की रचनाएँ

गणेश-स्तुति : **भैरों-चौताला, १ अ**

ऐ गननाइक सब सुषदाइक मो पर कीजै कृपा दीजै कुछि बांनी । लंबोदर आनंदकरन सकल विग्न हरन मोद बढावन अति मंगल महामति गतिदांनी । इतनों प्रसाद पाउं सदां हरि गुन गाउं सुधि बुधि हित चित चारि तन मन और आनी । प्रैमदास म्हारोई ध्यान धरत निसुदिन अब तुम तौ पूरन जगतगुर ग्यांनी ।।१५७।।

सरस्वती-स्तुति : **भैरों-चौताला, १ अ**

बानी री वाकबानी दयानी दया करि मो पै सुदिस्टि कीजै जगरानी कृपा की कटाछि होत कमषनि उचरत षटसास्त्र पुरान विद्या बेद दानी। जो तिहारे चरननि ध्यांन धरत निसिवासर तिनि प्रसाद देत करत प्रसिधि प्रवानी। प्रेमदास मांगत यह मन बाच क्रम करि श्री रघुवर के गुन उतिम उतिम नांनां विधि गाइ गाइ रिझाइ रिझाइ पाउ मनमानी ।।१५८।।

अर्द्धनारीश्वर : **गन्धार-चौताला, ३१ अ**

ऐक ओर पाटी सम्हांरि गुहे मुकताहल एक ओर जटाजूट सोहत है सिर गंग। ऐक ओर चद्रमाल ऐक ओर आड दीये ऐक ओर नेत्र लाल ऐक ओर अजन छबि ऐक ओर गौर बदन ऐक ओर भस्म लाये ऐक ओर अरुन अधर तमोल (ताम्बूल) ऐक ओर विष मुभेष अचवत लै भंग। ऐक ओर श्रवन ताटक नासा पेसरि ऐक ओर मुद्रा छवि अध बदन केस ऐक ओर स्याम पीति ऐक ओर लील कठ ऐक ओर रत्नंहार मुंडमाल ऐक ओर ऐक ओर बाघंमर ऐक ओर कुचकी बसन अति सुरग। ऐक ओर अग अंग आभूषन झिलमिलात ऐक ओर ठौर ठौर नाग लिपिटाये एक ओर बीन बजत एक ओर डबरु नाद ऐक ओर त्रसूल कर कमल ऐक ओर ऐक ओर चरन पार ऐक ओर नूपुर धुनि प्रेमदास जाकौ त्रैलोक। सकल ध्यांन धरत सो गिरिजापति अरधंग ।।१५६।।

राम-दूल्हा : **दरबारी-कान्हरा, १७७ आ**

श्री रघुवति बर सदाई दिन दुलह सीतापति दूल्हो चरंजेवी रहौं अटलराज जगत सुषु तुम्हारौ। नगन जटत कचन सिर सेहरौ बारद धरौ विचविच मनि मुकताहल कोटिक सोहै कोटि मान उजिआरौ। सजे राजा जसरथ देव सकल छत्रधारी ऐरापति नौवति वाजै हलै सेस थरहरात सुनै झनकारौ। साहि करन लछिन दिपै हवाई मसाल तिलकु कीयै रघुनदन जनकराइ हसि लषि प्रेमदास हरषि निरषि या छवि पर कोटि काम बारौ ।।१६०।।

प्रबोध : **भैरवी-चौताला, ४६ अ**

जौ तूं रचौ समाई दया सो नाना प्रकार ताहि नां बिसारि सदा हरिगुन गाइ गाइ। दुष सुष जौ है सहाइ और न अैसा उपाइ हित चित सुषु पाइ हुलसि ध्यांन अंतर लाइ लाइ। जाकी माया निरकार लखी न जात अप्रंपार सुरबर मुनि कर विचार थके सब धाइ धाइ। प्रेमदास श्रीनिवास पूरन घट प्रगास त्रभूअन जल थल बिलास रहौ है प्रभु छाइ छाइ ।।१६१।।

प्रबोध : **चौराष्टक-तेवरा, १८ अ**

श्रीपति रांम नांम सम्हांरि रे धरि रे ध्यांन करन जगविस्तार। सकल जीवन भरन पोषन सर्व दोष निवारन विस्वरूप सरूप सुंदर तीन लोक विस्तार। जाकी

अद्‌भुति अनत अवगति अत नाहि अपार रे प्रेमदास दासनिदास नित प्रत कीयौ जह निरधार ।।१६२।।

ग्रीष्म : सारंग-चौताला, ७१ अ

सघन कुंजन आज रचौ षसषानो राजत देपति अति रसभीने । नगन जटत लसत पांति नग अमोल भाति भाति जनन जूथि जन बरुथि साज कीने । अनेग सुगंधनि सो सीचि सींचि सम्हारि पोर (और) विच विचित्र चित्र वरन वरन सुमन सरस सुहाऐ लागत असन बसन भूषन सकल लसत नवीनें । चहु ओर गावत गुन गध्रव जस विमल विमल नाचत नव (नभ) उर्वसी वसीकरन सुरनर मुनि प्रेमदास सेवक जन बीजना डुरावत वरषि मोद महा सुष दीने ।।१६३।।

वसन्त : हिन्दोल-चौताला, २५० अ

षेलत बसत लाल रंग भीनै प्यारी सग बसी बट जमुना तट सघन कुज । बागत सुरबनि किनर सुरमंडिल म्रदंग धुनि निर्तत सब ब्रज बनिता अनेग प्रकालनि करि तामध सोभा देत कोकिला मयूर भमर करत गुंज । बौहौ सुगध लै केसरि छिरकत सब बाल ग्वाल पीरे पट सुभग सोहत स्याम तन मझ । प्रैमदास प्रभु प्यारे बैहुरत आनंद भरे डारत और पुस्पनि की माल पुज ।।१६४।।

होरी : मुलतानी-धमार, ८९ अ

अरी जहु जोबन तेरौ होरी में कैसें वचैगो री । ऐक डर है मोहि बा दिन को सषी जा दिन रंग मचैगो । जौ कहू डीठि परैगी स्याम के तब बासों को न पचैगो । प्रेमदास प्रभु कठिन कानरस लै और संग नचैगो ।।१६५।।

होरी : टोडी-धमार, ६७ अ

तोहि कछू सुधि है कहा बैठी भूलि तेरे षेलन आवत हरि होरी । बाजत म्रदंग धुकार तार सम गावत नई नई तांन और सब निर्तत हैं ब्रजगोरी । ऐकनि पकरि गुलाल मींडि मुष ऐक ऐक सों लै गांठि गैहै जोरी । प्रेमदास प्रभु तोसों कहत है ऐ ब्रषभानं किसोरी ।।१६६।।

सिंगार : केदारा-चौताला,१६२ अ

प्रथम मंजन करि सिंगार बैठी कामिनि बार बार रचि रचि बैनी गुही मुक्तनि सौं मांग सम्हारि दीनी । सीस फूल सिर धरैं कांननि करन फूल कैसे नीके रागत मुंकुटी कमांन जौंक सीस जौं लागत तानि तानि निहारत नेत्रनि छवि अति विसाल ता मध्र अंजन की लीक सम्हारि दीनी । नासिका बेसरि अनूप बिराजत अधर हसन दसननि दुनि दामिनी सो दमकत कंठ सिरी दुलरी तिलरी छवि राजत कुंचुकी तापर मुक्ति माल सोहत उर हार भुजनि बाजूबंद मोहत डार बगरी हरी हरी चुरी मधि राजत कर कंकन रतंन जुटत हातनि मैंहैंदी सुरंग आरसी अगूठी छिगुरीवि छाप सोहत पीति पट सारी पैंहैरैं कट निरषि केहरि तें अति ही सुढार बनौ जैसी विधि मुरति रचि रचि कीनी । घांघरौं अति विचित्र पाइल बाजत आवै झंझननन झंझननन मंद मंद चालि चलत मन महाल गति

लेत अनवट बिछुआ नषनि महावर ऐठी अति राजत छह छवि निरषि प्रैमदास प्रभु प्रफुलित होत आजु प्यारी राजत रंगभीनी ।।१६७।।

सखीवचन : **षंमाइच-चौताला, २११ अ**

आली आजु तेरै आवत मोहन बनि ठनि उठि उठि चलि करि सजि सिंगार। बनि म्रदग बजाइ रिझाइ गाइ सप्त सुरनि सरस तांन तार। धांम धांम धूपभ समीप सुगंध लेय रुचिर सिंगासन आसन सम्हांरि। प्रैमदास प्रभु के प्रीति सौं परसि चरन परम प्रवीन सुष करनिहार ।।१६८।।

नायिका-छवि : **विभास-चौताला, २१ आ**

तेरौ वदन चंद्र नीकौ लगत अति सौतिनि के देषि मुष रुषे परे हैंरी। आई सब सजि सिंगार अनेग प्रकालन करि जाकी छवि छीनि मध्र मांन हरें हैंरी। ग्रैसो सरूप रूप विधनां दीयौ सम्हांरि बार बार नारिनि जु उतार धरे हैंरी। प्रेमदास प्रभु प्यारे रीझि रीझि तोरत तन दूजें षीझि षीझि रतिपति झगरे है री ।।१६९।।

आगतपतिका : **ललित-चौताला, २५ आ**

आजु मेरे भागि जागे हरि आऐ आंगन पलकनि सों मग झारों। धरत चरन डगमगात दरसत अलसोहै गात जा छवि पै कोटि काम बारो। ग्रैसी रमनि छाडि गमनि कैसे कीनों जह जीग्र सोच विचारौ। प्रेमदास प्रभु प्यारे मोहू अभिलाष जह प्यारी कौ दरसनिहारौ ।।१७०।।

दूतीवचन, मानिनी से : **रामकली-चौताला, १४ अ**

तोहि मनावत केतीअक बेर भई समझि समझि सुनि सुनि सिख अति हौ अयांनी री। बैठ भमन रमन तेरौई मग जोवत अब लागि रह्यौ हित तो तन मोहि कर जोरत सब रैंनि बिहानी री। बौहौत वकाई हों आई पछिताई माई कहां लौ कहौ तोसोग्रं कह कहागी। प्रेमदास प्रभु सों मिलि चलि री गोयारि नारि ग्रैसो हठ कौन आली मांन ही बिकांनी री ।।१७१।।

संगीत : **मारुग्रो-चौताला, १०१ अ**

सकल गुनी गाइनि नीके सुनि लेउ जह मत गुन पाइ काउसों वाद विवाद न कीजै। जोई जोई तान लेत नांना प्रकालनि करि न तरक विद्या धरनि श्रवन सो अम्रत रस पीजै। नई नई उक्त जुक्त सुध मुद्रा सुरति सोधि तांन तार सम प्रवान तन उपज लीजै। प्रेमदास सोई सुजांन जांननि रिझाइ गाइ रग करत तन मन सुषु दीजै ।।१७२।।

मृदंग-वादन : **हमीर-चौताला, ११३ आ**

बाजत हैं हो मिरदंगी इनि भेदनि त्तकिटि तक धिधिकिटि तक धाधा किटि तक। सम विसम अतीत अनाघात आंन आंन भांतिनि दिषावत तकिटि धिकिटि धिधिकिटि धिलांग तक धा किटितक। उलटि पलटि परनि ढरनि मुरनि संगीत रीति नैम बिरस सरस करत सुध मुद्रा जानता प्रेमदास यह प्रकाल गुनीअनि मन आवत त्तकिटि तक धिधिकिटि तकधिधि धिलांग धिलांग तकध्धि धिलांग धिलांग धिलांग तक धाधा किटितक ।।१७३।।

सहायक ग्रन्थ-सूची

(संस्कृत)

१. ऋग्वेद ।
२. अथर्ववेद ।
३. तैत्तिरीय संहिता ।
४. तैत्तिरीय आरण्यक ।
५. ऐतरेय ब्राह्मण ।
६ शांखायन ब्राह्मण ।
७. मनुस्मृति, गुजराती मुद्रणालय, बम्बई, सन् १९१३ ई०—संस्करण ।
८. वाल्मीकीय रामायण, निर्णयसागर प्रेस, सन् १९३० ई० ।
९. अमरकोश, राजकीय ग्रन्थमाला, बम्बई, सन् १८८२ ई० ।
१०. नाट्यशास्त्र : भरतमुनि, गायकवाड-संस्करण ।
११. ध्वन्यालोक : आनन्दवर्द्धनाचार्य, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, सन् १९५२ ई० ।
१२. काव्यप्रकाश : मम्मट, गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल प्रेस, सन् १९१७ ई० ।
१३. साहित्यदर्पण विश्वनाथ, विमला टीका-सहित, द्वितीय संस्करण ।
१४. संगीतरत्नाकर : निःशंकशार्ङ्गदेव, अडयार-संस्करण, प्र० खं०, सन् १९४३ ई०; द्वि०खं०, सन् १९४४ ई०; तृ० ख०, सन् १९५१ ई० तथा द्वितीय आनन्दाश्रम-संस्करण ।
१५. कलानिधि, संगीतरत्नाकर की कल्लिनाथी टीका ।
१६. बृहद्देशी : मतंग, राजकीय मुद्रण-यन्त्रालय, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९२८ ई० ।
१७. नैषधीयचरितम् : श्रीहर्ष ।
१८. चतुर्दण्डिप्रकाशिका : वेंकटमखी ।
१९. भरतकोश : प्रो० रामकृष्ण कवि (प्रथम संस्करण) ।
२०. नृत्तसंग्रह : जयपुर (प्रथम संस्करण), सन् १९५६ ई० ।

(फारसी)

२१. सौतुल्मुबारक : वाजिद अलीशाह, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२२. रागदर्पण, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२३. बादशाहनामा, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।

२४. खुलासतुल्-ऐश्-आलमशाही, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई०
२५. मिराति-आफताबनुम:, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२६. इकबालनामा जहाँगीरी, रामपुर-रजा पुस्तकालय, लखनऊ, सन् १८५३ ई० ।
२७. किरानुस्सादैन : खुसरो, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
२८. नूह्-सिपह्र : खुसरो, इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, हस्तलेख-सस्करण, सन् ११८७, १२१६ ई० ।
२९. ह्याते-खुसरो : अमीर सैय्यद महरवी, ब्रिटिश-म्यूजियम-प्रति, सन् ११०९ ई०, ए० वी० वी० ३ ।
३०. इजाजे-खुसरो, रामपुर-प्रति ।

(उर्दू)

३१ मअदन्-उल्-मूसिकी : मोहम्मद करम इमाम . प्र० संस्करण, सन् १९२५ ई०, लखनऊ।
३२. नादिरातेशाही : सम्राट् शाह आलम : रामपुर, सन् १९४४ ई० ।
३३ औरंगजेब आलमगीर पर एक नजर ; मौलाना शिवली (प्रथम सस्करण), दिल्ली ।

हस्तलिखित (हिन्दी)

३४. रागमाला; प्राप्तिस्थान : अयोध्याप्रसाद पखावजी, रामपुर ।
३५. व्यंजन-प्रकाश; प्राप्तिस्थान : डॉ० शरणविहारी गोस्वामी, कानपुर ।
३६. बैनदास की पदावली; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
३७ वृन्दावनधामानुरागावली; प्प्तिस्थान : उपरिवत् ।
३८. वंशावली : वलदेव-कृत, प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
३९. श्रीकुंजविहारी-सर्वस्व; प्राप्तिस्थान : गो० रामनाथ शास्त्री, वृन्दावन ।
४०. विहारिणीदास की वाणी; प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।
४१. वाणी-संग्रह : लालस्वामी;प्राप्तिस्थान : उपरिवत् ।

(हिन्दी)

४२. उत्तर भारतीय सगीत का सक्षिप्त इतिहास : भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
४३. भारत में अँगरेजी-राज्य : सुन्दरलाल, ओंकार प्रेस, प्रयाग, सन् १९३८ ई० ।
४४. दक्खिनी हिन्दी : डॉ० बाबूराम सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडमी, सन् १९५२ ई० ।
४५ भारत का इतिहास : डॉ० ईश्वरीप्रसाद, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९५० ई० ।
४६. खिलजीकालीन भारत : रिजवी : अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।
४७. खुसरो की हिन्दी-कविता, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
४८. मानसिंह और मानकुतूहल : हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्यामन्दिर-प्रकाशन, मुरार, ग्वालियर, सं० २०१० वि० ।

४९. संगीतशास्त्र : वासुदेव शास्त्री, सूचना-विभाग, लखनऊ, सन् १९५८ ई० ।
५०. हमारे संगीत-रत्न . लक्ष्मीनारायण गर्ग : सगीत-कार्यालय, हाथरस, प्रथम सं०, सन् १९५७ ई० ।
५१. मध्यकालीन भारत : गोरखनाथ चौबे, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, सन् १९४९ ई० ।
५२. भरत का संगीत-सिद्धान्त : बृहस्पति : सूचना-विभाग, लखनउ, सन् १९५९ ई० ।
५३. बाबरनामा (हिन्दी-अनुवाद) : देवीप्रसाद मुंसिफ, रिजवी प्रेस, दिल्ली, सं० १९६७ वि० ।
५४. अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि : डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्र० लखनऊ-विश्वविद्यालय, सं० २००७ वि० ।
५५. अकबर : राहुल सांकृत्यायन : किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५७ ई० ।
५६. जहाँगीरनामा (हिन्दी-अनुवाद) : मुं० देवीप्रसाद, भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता, सन् १०९६ ई० ।
५७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, सशोधित संस्करण ।
५८. देव और उनकी कविता : डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, सन् १९४९ ई० ।
५९. श्रीहितहरिवंश गोस्वामी-सम्प्रदाय और साहित्य : लालताचरण गोस्वामी, वेणु-प्रकाशन, वृन्दावन, सं० २०१६ वि ।
६०. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास : ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त, सन् १९५१ ई० ।
६१. सर्वेक्षण : ग्रियर्सन ; अनु० किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ ई० ।
६२. रागकल्पद्रुम (द्वितीय संस्करण), कलकत्ता, वंगीय साहित्य-परिषद्, सन् १९१४ ई० ।
६३. मआसिरुल् उमरा (हिन्दी-अनुवाद) : व्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ।
६४. हिन्दी-वीरकाव्य : डॉ० टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, सन् १९५४ ई० ।
६५. भारतीय संगीत का इतिहास : उमेश जोशी, आदर्श प्रेस, आगरा, सन् १९५७ ई० ।
६६. मुगल-राजमहलों का जीवन : भगवतीप्रसाद पान्थरी : किताबमहल, प्रयाग, सन् १९४७ ई० ।
६७. किताबे-नौरस, संगीत-नाटक-एकेडमी, दिल्ली, प्र० संस्करण, सन् १९५६ ई० ।
६८. औरंगजेब : यदुनाथ सरकार; अनुवादक : महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई सन् १९५१ ई० ।
६९. मुगल-साम्राज्य की जीवन-सन्ध्या : राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह, आत्माराम ऐण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५७ ई० ।
७०. राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा : मोतीलाल मेनारिया, प्रयाग, सन् १९३९ ई० ।

७१. मिश्रबन्धु-विनोद : मिश्रबन्धु (प्रथम संस्करण), गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ।
७२. संगीतज्ञ कवियों की हिन्दी-रचनाएँ : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग।
७३. शिवसिंह-सरोज : डॉ० शिवसिंह सेंगर (प्रथम संस्करण)।
७४. भातखण्डे संगीतशास्त्र : भातखण्डे, संगीत-कार्यालय, हाथरस।
७५ ध्वनि और संगीत : श्रीललितकिशोर सिंह : भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५५ ई०।
७६ केलिमाल : स्वामी हरिदास : भूमिका-ले० श्रीचक्र, श्रीकुंजविहारी पुस्तकालय, वृन्दावन, स० २००६ वि०।
७७ भक्त कवि व्यासजी वासुदेव गोस्वामी, मथुरा।
७८. भक्तमाल : नाभादासजी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
७९ क्रमिक पुस्तकमालिका : भातखण्डे, सगीत-कार्यालय, हाथरस।
८०. बैजू और गोपाल : प्रभुदयाल मीतल, मथुरा, सं० २०१७ वि०।
८१. निजमतसिद्धान्त : किशोरीदास, केदारनाथ, लखनऊ।
८२. जहाँगीरनामा : व्रजरत्नदास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।
८३ हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण : नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।
८४. दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता, प्रका० व्रजभूषण गोस्वामी, सं० २००६ वि०।
८५. चिन्तामणि (प्रथम भाग) : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।

(अँगरेजी)

मूल

८६. Akbar, the Great Moghul : Smith; 2nd Edn.
८७. Mathura Memoirs : Grouse.
८८. Life and Work of Amir Khusro : M. Wahid, Lahore, 1935.

अनुवाद

८९. Aine-Akbari : Gladwin, 1783 A. D. Edition.
९०. Aine-Akbari : Blockman, 2nd Edin. 1927.
९१. Hazrat Amir Khusro : Prof. Habib, Aligarh.
९२. Akbarnama : Beveridge, Second Vol. 1912.
९३. Alberuni's India : Dr. Sachan.
९४. Tuzuke-Jahangiri : Alexander Rogers, 1909.
९५. Firishta : John Briggs.

पत्र-पत्रिकाएँ

९६ 'आजकल' (उर्दू), म्यूजिक-न०, सूचना-विभाग, दिल्ली ।
९७. साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', नई दिल्ली ।
९८. 'सगीत' मासिक, सगीत-कार्यालय, हाथरस ।
९९. 'संगीत' मासिक, रजत-जयन्ती-विशेषांक : संगीत-कार्यालय, हाथरस ।
१००. 'संगीत' मासिक, हरिदास-विशेषाक : संगीत-कार्यालय, हाथरस ।

नामानुक्रमणिका

आ

इ

ख

ग

भ

स

ह